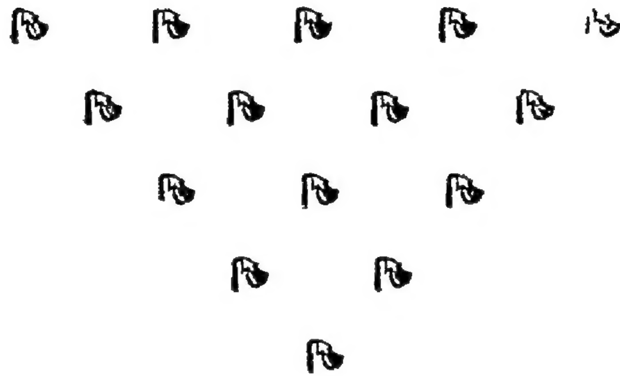
प्रकाशक—
छगनमल बाकलीवाल,
मालिक—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाव—बम्बई ।



मुद्रक—
रामकिशोर गुप्त,
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झांसी)
और
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार, बम्बई ।

ज्ञानबोधक

(प्रथम खण्ड ।)

पं० पन्नालालजी संघी ।

विद्वज्जनबोधक

[प्रथम खण्ड

संग्रहकर्त्ता—
श्रीमज्जिनवचनप्रकाशक श्रावक ।

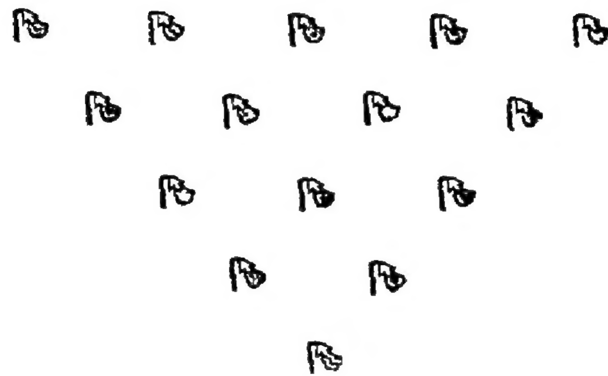
प्रकाशक—
श्रीजैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग बम्बई

आषाढ, १९८२ वि० ।

जून, १९२५ ई० ।

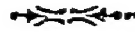
पहली बार] [मू० तीन रुपया

प्रकाशक—
छगनमल बाकलीवाल,
मालिक—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाव—बम्बई।



मुद्रक—
रामकिशोर गुप्त,
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झासी)
और
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ठाकुरद्वार, बम्बई।

निवेदन ।



यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है—लगभग सत्ताईस हजार श्लोक परिमाण है । अतएव हमने इसको खण्डशः प्रकाशित करना ही उचित समझा। यदि पाठकोंने इसका यथेष्ट आदर किया, तो आगेके खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जायगा । लगभग इतने ही बड़े तीन खण्डोमें ग्रन्थ सम्पूर्ण हो जायगा ।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायकी रक्षा और उन्नति करनेवाले तथा उसको सर्वथा नष्ट होनेसे बचानेवाले तेरहपन्थका यह एक प्रधान और माननीय ग्रन्थ है और इसमे उन सब विवादग्रस्त विषयोकी चर्चा की गई है जिनपर आज भी लोग तरह तरहकी शंकाये और कल्पनाये किया करते है । इसमे सैकडो ग्रन्थोंके उद्धरण और प्रमाण दिये गये है और इस दृष्टिसे यह एक अपूर्व संग्रहग्रन्थ है ।

यद्यपि इस ग्रन्थमे ग्रन्थकर्त्ताने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया है—अपनेको केवल ‘ जिनवचनप्रकाशक श्रावक ’ लिखा है; परन्तु यह बिल्कुल निश्चित है कि इसके कर्त्ता स्वर्गीय पं० पन्नालालजी संघी थे जिन्होने और भी अनेक ग्रन्थोंकी रचनाये की थीं। संघीजीका जीवनचरित्र सज्जनोत्तम श्रीयुत बाबू पाचूलालजी कालाने जैनहितैषीमे प्रकाशित कराया था, जिसे हम धन्यवादसहित आगे उद्धृत कर देते है । इस चरित्रसे पाठक संघीजीका पूरा पूरा परिचय पा जावेंगे ।

श्रीयुत बाबू राजमलजी बड़जात्याके हम बहुत कृतज्ञ हैं जिनकी विशेष प्रेरणा और उत्साहप्रदानसे हम इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेमे समर्थ हो सके है और जिन्होंने इस ग्रन्थकी २५० प्रतियाँ खरीदकर अपनी गुणज्ञताका परिचय दिया है ।

—प्रकाशक

स्व० पं० पन्नालालजी संघी दूणीवाले।

जयपुर नगरसे दक्षिणकी ओर लगभग २० कोसपर **निवाई** नामका एक कस्बा है, जो तहसीलका सदर मुकाम है। वहाँकी इमारतों और मन्दिरोंके देखनेसे मालूम होता है कि, वह किसी समय एक बडा भारी नगर था और जैनधर्मके उच्च गौरवको प्रकट करता था। हमारे चरित्रनायक संघी **पन्नालाल**-जीके पितामह संघी **शिवजीराम** इसी नगरमें रहते थे। अपनी जन्मभूमि सबको प्यारी होती है, उसे कोई प्रसन्नतासे नहीं छोडना चाहता। शिवजीरामजी निवाईको क्यों छोडते? परन्तु भाग्यके चक्करमें पडकर मनुष्य सब कुछ करनेके लिये लाचार होता है। संघीजीको अपना ग्राम छोडकर अपने कुटुम्बके सहित **उदयपुर** (मेवाड) में आकर रहना पडा। यहाँ लाभान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे उन्हें व्यापारमें अच्छी प्राप्ति होने लगी और थोडे ही दिनोंमें वे एक नामी धनवान् हो गये—उनके भाग्यका सितारा चमक उठा।

उन दिनों जयपुरके राजकीय गगनमें एक गृहकलहकी काली घटा उठी थी। महाराज सवाई **जयसिंहजीने** अपने एक पुत्र **ईश्वरीसिंहके** होते हुए भी उदयपुरनरेशकी पुत्रीके साथ इस प्रतिज्ञामें बद्ध होकर विवाह कर लिया कि, **सीसोदणी** महाराणीके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही जयपुरके राज्यका अधिकारी होगा। निदान सीसोदणीके कुमार **माधवसिंह** उत्पन्न हुए और उन्होंने वय प्राप्त होनेपर गद्दीके हकका दावा किया। परतु ईश्वरीसिंह ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिये उन्हें ही राज्यका कार्य सौंपा गया। माधवसिंहजी रुष्ट होकर उदयपुर चले गये और वहाँसे उन्होंने लडाईका सामान एकत्र करके जयपुरपर चढाई कर दी। इस चढाईमें उदयपुरराज्यके कई सरदार तथा मंत्रीगण भी माधवसिंहके साथ आये थे। सरदारोंमें एक **त्योंदके** ठाकुर **प्रेमसिंहजी** भी थे, जो बडे भारी वीर और विश्वस्त पुरुष समझे जाते थे। संघी शिवजीरामजी उक्त ठाकुर साहबके दाहिने हाथ थे। संघीजीकी सम्मतिके बिना वे अपना जरूरीसे जरूरी कार्य नहीं करते थे। अत. ठाकुर साहबके साथ इस समय संघीजीका भी जयपुरमें आगमन हुआ था।

कुमार माधवसिंहजीको इस चढाईमें सफलता हुई। अर्थात् जयपुरके राज्यके वे स्वामी हो गये। ठाकुर प्रेमसिंहजी पर उनकी विशेष कृपा रहती थी, इसलिये राज्य प्राप्त करते ही उन्हे उन्होंने दूणीका परगना जागीरमे दे दिया और 'राव' की पदवी देकर अपना मत्री बनाया। इसी समय सघीजी रावजीके ठिकाणेके कार्याध्यक्ष नियत किये गये।

संघीजीको ३ पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिनमेसे ज्येष्ठ पुत्र **रतनचन्दजी** अपने पितासे भी अधिक भाग्यशाली हुए। रतनचन्दजी उस समय हुए जिस समय जयपुरमे दीवान मुसाहिब तथा अन्य राजकार्यकर्त्ता प्रायः सभी जैनी ही थे, सारा राज्यकार्य जैनियोंके ही हाथमें था। जैनियोंके इतिहासमे जिनका नाम सोनेके अक्षरोंसे लिखना योग्य है वे सज्जनोत्तम **अमरचन्दजी** उस समय दीवान थे और सघी **झूथारामजी** मुसाहिब थे। झूथारामजी और रतनचन्दजीमे बड़ी भारी मित्रता थी, यहाँ तककी झूथारामजी रतनचन्दजीसे प्रायः प्रत्येक राजकार्यमें सम्मति लेते थे।

रतनचन्दजीके पहले कोई पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उन्होंने पहले अपने छोटे भाईके पुत्र **हीरालालजी**को दत्तक लिया था, परतु पीछे उतरती अवस्थामे **ब्रजलाल** और **पन्नालाल** नामके दो पुत्रोंने उनके गृहससारको हराभरा कर दिया। ब्रजलालजीका युवावस्थामें जब कि उनका विवाह हो गया था देहान्त हो गया। संघी रतनचन्दजीको इस पुत्रवियोगसे बडा शोक हुआ, पर क्या करते! भवितव्यपर किसका वश चलता है! द्वितीय पुत्र पन्नालालजीको संघीजीने सस्कृतका अध्ययन कराना शुरू किया, परतु उनकी यह आशा पूर्ण न हो सकी। अपने पुत्रको सस्कृतका पडित देखनेके पहले ही वे अपनी यात्रा समाप्त कर चुके। पिताकी मृत्युके समय पन्नालालजीकी अवस्था १३-१४ वर्षकी थी और **मथुरा**के जगद्विख्यात सेठ **मनीरामजीके** भाई **फतेहलालजी**की पुत्री **मानबाई**के साथ उनका विवाह हो चुका था।

पिताके वियोगसे और ससुरालके धनसम्पन्न होनेसे संघी पन्नालालजीका विद्याध्ययन शिथिल हो गया। केवल काव्य, नाटक, चम्पू और अलकारादिके ग्रन्थोमे उनका मन लगने लगा। शृगाररसके आस्वादनमे उन्हे अपने जीवनकी सफलता दिखने लगी। जैनधर्मके तत्त्वोकी अनभिज्ञतासे और संगतिके प्रभावसे इसी समय इनके हृदयमे मिथ्यात्वने ऐसा डेरा डाला कि ये खुल्लमखुल्ला गणेश-

जीके भक्त हो गये और पचेन्द्रियके (योग्य) विषयोंमें आकण्ठ निमग्न हो गये। इसी लिये धर्मात्माजन कह रहे हैं कि, धर्मशून्य कोरी शिक्षा चाहे वह संस्कृतकी हो, चाहे अँगरेजीकी हो, कल्याणकारी नहीं है। विद्यार्थी—अवस्थामें बालकोंको मिथ्यातियोंकी संगतिसे बचाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिसमें उन्हें कमसे कम धर्मात्माओंसे वचनालाप करनेका मौका तो निरन्तर मिलता रहे।

विक्रम संवत् १९०१ से १९०७ तक संघी पन्नालालजीको ठिकाणे दूणीमें अपने पिताके स्थानपर काम करना पड़ा और संतोषकी बात यह है कि उन्होंने उसे अपने भाई **हीरालालजी**की सहायतासे अपने पिताके ही समान प्रवीणताके साथ चलाया। इस बीचमे एक दिन आपको **रत्नकरंडश्रावकाचार अर्थप्रकाशिका टीका** आदि ग्रन्थोंके कर्त्ता सुप्रसिद्ध **पंडित सदासुखजी**से मिलनेका मौका आ पड़ा। उक्त पंडितजीने आपको अनुभवी चतुर तथा विद्यारसिक जानकर ऐसा मार्मिक सदुपदेश दिया कि उसके प्रभावसे आपकी चित्तवृत्ति पलट गई और जैनधर्मके ग्रन्थोंके अवलोकन करनेकी ओर आपकी लालसा प्रबल हो गई। यद्यपि आपको ठिकाणेके कार्यसे अवकाश नहीं मिलता था, तो भी आपने उक्त पंडितजीकी सेवामें नित्य रात्रिके १० बजे पहुँचकर पठन पाठन करनेकी प्रतिज्ञा ले ली। यह प्रतिज्ञा लेते समय सदासुखजीने कहा, "भाई पन्नालालजी, आप बड़े घरके हैं—सुखिया हैं। आपसे इस कठिन प्रणका निर्वाह कैसे होगा?" उत्तरमें पन्नालालजीने मुँहसे तो कुछ नहीं कहा परंतु जब तक पं० सदासुखजी जीते रहे, तब तक आप उनके यहाँ उसी समय नियमपूर्वक पहुँचते रहे और आपने वहाँ कई सिद्धान्तग्रन्थोंका अवलोकन उनकी सहायतासे कर डाला—तथा मिथ्यात्व मलको धोकर दृढ सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया।

पंडित **सदासुखजी** जैनधर्मके अच्छे नामी विद्वान् थे। आपने अनेक प्राचीनग्रन्थोंकी भाषाटीकाएँ रचकर जैनधर्मका वह उपकार किया है जो सैकड़ों उपदेशकोंसे और वक्ताओंसे नहीं हो सकता है। आज ग्राम ग्राम नगर नगरमें आपके रचे हुए ग्रन्थोंसे लोग जैनधर्मका स्वरूप जानकर अगणित विधर्मियोंके बीचमें रहकर भी अपने धर्माभिमानकी रक्षा कर रहे हैं। यदि आप और आप सरीखे दो चार विद्वान् संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंको भाषामें करनेका प्रयत्न न करते तो शायद ही आज भारतवर्षमें यह सुन पड़ता कि, जैनधर्म भी कोई एक धर्म है। परोपकारी पं० सदासुखजीने अन्त समयमें अपने शिष्य

सघीजीसे कहा कि, "अब मैं इस अस्थायी पर्यायको छोडकर विदा होता हूँ। मैंने तथा मेरे पूर्ववर्ती **पं० टोडरमल्लजी, मन्नालालजी, जयचन्द्रजी** आदि विद्वानोंने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी सुलभ भाषावचनिकाएँ की हैं, और अनेक नवीन ग्रन्थ भी बनाये हैं। परन्तु अभीतक देश देशान्तरोंमें इनका जैसा प्रचार होना चाहिये था, वैसा नहीं हुआ है। और तुम इस कार्यके सर्वथा योग्य हो, तथा जैनधर्मके मर्मको भी अच्छी तरह समझ गये हो, अतएव गुरुदक्षिणामें मै तुमसे केवल यही सेवा चाहता हूँ कि, जैसे बने तैसे इन ग्रन्थोंके प्रचारका प्रयत्न करो। वर्तमान समयमें इसके समान पुण्यका और धर्मकी प्रभावनाका और कोई दूसरा कार्य नहीं है।" यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, सदासुखजीके सुयोग्य शिष्यने गुरुदक्षिणा देनेमें जरा भी आनाकानी नहीं की। आपने अनेक सज्जन धर्मात्माओंकी सम्मति लेकर उसी समय अपने घरपर एक **सरस्वतीकार्यालय**की स्थापना कर दी और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि, उसके द्वारा देशदेशान्तरोंसे जितने ग्रन्थोंकी मॉग आती थी, वह सब शुद्धतापूर्वक लिखवा कर और भेजकर पूरी कर दी जाती थी।

थोडे दिनोंमें निरन्तरके शास्त्राध्ययन तथा मननसे सघीजीके भावोंमें वैराग्यकी झलक आई और उसने बढ़ते बढ़ते विक्रम संवत् १९०७ मे उन्हे राज्यसेवासे पृथक् कर दिया। राजकीय सेवा छोड़कर कुछ दिनों आपने देश तथा तीर्थपर्यटन किया और पाँच छह वर्षके पश्चात् परिणामोंमें स्थिरता तथा दृढ़ता आनेपर अपने गुरुका अनुकरण करके आप भी प्राचीन ग्रन्थोंकी भाषा टीकाएँ तथा स्वतत्र नवीन ग्रन्थोंकी रचना करनेमें दत्तचित्त हो गये।

इन दिनों आपका समयविभाग इस प्रकार थाः—४ बजे रात्रिसे उठकर प्रातःकाल तक आप सामायिक वा आत्मध्यान करते थे, और फिर शौच स्नानादिसे निवृत्त होकर अपने गृह-चैत्यालयमें पूजन करते थे। यह चैत्यालय आपके घरमें अबतक विद्यमान है। पूजनके पश्चात् ८ बजे भोजनसे निवृत होकर पठनपाठनमें लग जाते थे और रात्रिके दश बजे तक इसी कार्यमें लगे रहते थे। इस बीचमें जो देशी विदेशी विद्यार्थी वा धर्माभिलाषी लोग पढ़नेको आते थे, उन्हे बड़ी प्रसन्नता और रुचिसे पढ़ाते थे। जयपुरके और बाहिरके चार छह पंडित जनोंसे आप निरन्तर ही घिरे रहते थे और धार्मिक चर्चामें मग्न रहते थे। उस समय आपका गृह एक खासा **विद्यालय** बन रहा था। २६ वर्ष तक

आपकी यह दिनचर्या बराबर इसी रूपमें रही। का जीकी इस अवस्थाको एक प्रकारसे गृह त्यागी इस समय उन्होंने गृहकार्योंसे अपना हाथ सर्वथा और पुत्र पौत्रादिको ही गृहप्रबन्ध सञ्चालित करनेका भार सौंप दिया था।

सघीजीने, उत्तरपुराण, राजवार्तिक, न्यायदीपिका, रत्नकरंडश्रावकाचार, पूज्यपादस्वामीकृत इष्टोपदेश, षडावश्यक, द्रव्यसंग्रह और तत्त्वार्थसूत्र इन मूल ग्रन्थोंकी भाषा वचनिकाएँ या टीकाएँ बनाई हैं, जो बहुत अच्छी और सबके समझने योग्य हैं। एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी आपने ढूंढाडी भाषामें बनाया है, जिसकी श्लोकसंख्या २७ हजार है। इस ग्रन्थमें आपने बडी ही स्वतन्त्रतासे जैनधर्मकी भिन्न २ शाखाओंके मन्तव्योंका विचार किया है और उनके उचितानुचित वाक्योंका उल्लेख करके जैनधर्मके मुख्य मार्गका प्रतिपादन किया है। आपने यह भी सिद्ध किया है कि, जैनधर्ममें प्राचीन बडे २ आचार्योंके नामसे बहुतसे ऐसे ग्रन्थोंकी भी रचना हो गई है, जिनमें सैकडों बातें वीतराग मार्गसे विरुद्ध हैं। इस ग्रन्थका नाम है **विद्वज्जनबोधक**। यद्यपि इस ग्रन्थके बहुतसे प्रतिपादित विषय विचारणीय हैं और बहुतसे विद्वान् उन्हें पसन्द नहीं करते हैं—उनका विरोध करते हैं, तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि सघीजीने इसकी रचना अच्छे परिणामोंसे प्रेरित होकर की है। प्रत्येक विद्वान्को इस ग्रन्थका स्वाध्याय करना चाहिये। **समवसरणपूजा**, **सरस्वतीपूजा** और **पंचकल्याणपूजा** आदि तीन चार छन्दोबद्ध ग्रन्थोंकी भी सघीजीने रचना की है, जिससे जान पडता है कि, आप भाषाकी कविता भी कर सकते थे। संस्कृत भाषापर भी आपका अच्छा अधिकार था। **दशावतारनाटक** और **जैनविवाहपद्धति** ये दो ग्रन्थ जो कि संस्कृतमें रचे गये हैं, इस बातके साक्षी हैं। शहर **जयपुर** प्रतिमाओंके लिये सदासे विख्यात है। यहाँपर हजारों शिल्पकलाकुशल कारीगर निवास करते हैं। जब आपने देखा कि, बहुतसे कारीगर मनमानी प्रतिमाएँ बनाकर बेचते हैं और शास्त्रोक्त रचनापर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, तब आपने अनेक शिल्पशास्त्रोंके आधारसे एक **बिम्बनिर्माणविधि** नामकी पुस्तक बनाकर प्रत्येक कारीगरको दी और कहा कि, तुम्हें इस मापकी प्रतिमाएँ बनाकर बेचनी चाहिये। इस पुस्तकके बनानेके विषयमें स्वर्गीय पंडित **भागचन्द्रजी**की विशेष प्रेरणा थी।

पडित **फतेहलालजी** नामके एक विद्वान् जो एक भट्टारकजीके शिष्य थे और जैनधर्मके अच्छे जानकार होकर सत्यके भी पक्षपाती थे, सघीजीके परम मित्र थे। संघीजी लिखने पढनेका कार्य बहुत समय तक इनके साथ मिलकर करते रहे हैं। सघीजीकी रची हुई **विवाहपद्धति** आदि कई पुस्तकोंमें जिन पं॰ फतेहलालजीका नाम है, वे ये ही हैं।

एक बार भट्टारकोंके दो तीन शिष्योंने प्राचीन आचार्योंके नामसे **प्रायश्चित्त** और **दायभाग** सम्बन्धी दो ग्रन्थ **जयपुरके** न्यायालयमें पेश किये और कहा कि, ये ग्रन्थ हमारे पूर्वाचार्योंके बनाये हुए हैं, इसलिये जैनजातिसम्बन्धी सारे मुकद्दमोका फैसला इनके अनुसार होना चाहिये। राज्यने इस विषयमे स्वय हस्तक्षेप करना ठीक न समझकर जयपुरकी जैन पचायतको उक्त दोनो ग्रन्थ सौंपकर उसकी सम्मति माँगी। पचायतमें उस समय सघीजी अग्रणी थे, इसलिये आपने पहले देशदेशान्तरोके अनेक विद्वानोकी सम्मतियॉ मँगाई और फिर शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध किया कि, उक्त दोनो ग्रन्थ जैनाम्नायके विरुद्ध और अप्रामाणिक हैं। फल यह हुआ कि, राज्यने उक्त ग्रन्थ जब्त कर लिये और अब तक वे राजकीय कोषमें रक्षित हैं।

संघीजीके ३ पुत्र और २ पुत्रियॉ इस तरह पाच सतान थीं, जिनमेंसे एक पुत्रका और दोनो पुत्रियोंका युवावस्थामे विवाहादि हो जानेपर वियोग हो गया। पुत्रका समाधिमरण आपने स्वय बडी दृढ़ता और विरक्ततासे कराया था। शेष दो पुत्रोमेंसे बडे पुत्र सघी **नेमिचन्दजी** राज्यका कार्य करते थे और दूसरे पुत्र सघी **बखतावरलालजी** यद्यपि विशेष विद्वान् नहीं थे, परन्तु धर्मात्मा और विरक्त पुरुष थे। उन्होंने अपना सारा जीवन धर्मध्यानमे ही व्यतीत किया—अपने उपयोगको अन्य कार्योंमे नहीं लगाया। इनके एक पुत्र और दो पुत्रियॉ हुईं। पुत्रका नाम सघी **आनन्दीलालजी** है, जो इस समय ४८ वर्षकी अवस्थामे विद्यमान हैं। इन्होंने अपने पितामह सघीजीसे ही धर्मशिक्षा पाई है।

सघीजीके शिष्योमे एक **धन्नालालजी** काशलीवाल नामके सज्जन थे, जो उस समय जयपुरके सिटी मजिष्ट्रेट थे और 'धन्नालालजी फौजदार' इस नामसे विख्यात थे। अपनी परलोकयात्राके समय सघीजीने इन्हे उपदेश दिया था कि, जयपुरमे एक बृहत्पाठशालाके खोलनेका प्रयत्न करना। तदनुसार फौजदारजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और दूसरे धर्मात्माओकी सहानुभूतिसे जयपुरमे **महापाठशाला** स्थापित हो गई और वह अब तक निर्विघ्नतया चल रही है।

संघीजीने अपने गुरुवर्य पं० सदासुखजीके उपदेशसे जो सरस्वती-कार्यालय स्थापन किया था और जिसके द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थों, प्रतिमाओं तथा अन्यान्य उपकरणोंकी माँग पूरी की जाती थी, उसे आप गुरुजीकी 'अमानत' समझते थे। अतएव अन्त समयमें आपने इस अमानतको अनेक प्रकारका सिखापन देकर अपने पौत्र संघी आनन्दीलालजीको सौंप दी और विदेशी भाइयोंको सूचना दे दी कि, आगेसे सरस्वती कार्यालय सम्बन्धी समस्त पत्रव्यवहार "संघी नेमिचन्द् आनन्दीलालजी" के नामसे होना चाहिये। संतोषका विषय है कि संघी आनन्दीलालजी इस कार्यको अपने पितामहकी शिक्षाके अनुसार अभी तक चला रहे हैं।

पीछे पीछे संघीजीने संसारसे और भी विशेष उदासीन वृत्ति धारण कर ली थी। मृत्युके लगभग दो वर्ष पहले आपने अपने समस्त मिलने जुलनेवाले परिचित पुरुषों मित्रगणों और शिष्योंसे स्वयं उनके घर जाकर क्षमाकी याचना करके और उन्हें स्वच्छ हृदयसे क्षमा प्रदान करके बिलकुल एकान्तवास और वीतराग भावोंका अनुभव करना पसन्द कर लिया था। वि० संवत् १९४० के ज्येष्ठ मासमें जब कि आपको यह भान हुआ कि मेरी आयुके अब केवल आठ दिन शेष हैं, तब आपने अपने पौत्रों तथा शिष्योंको बुलाकर विधिपूर्वक समाधि-मरण करानेका उपदेश दिया और उसकी विधि सबको समझा दी। अपनी भार्या तथा अन्य कुटुम्बीजनोंको समझाया कि, यह मोह आत्माका प्रबल शत्रु है और संसारमें रुलानेवाला है, अतएव मेरे साथ उस मोहका त्याग करके संतोष धारण करो और धर्मके सिवाय किसी भी विषयकी चर्चा मत करो। संघीजी इस प्रकार समाधिमरणका प्रबंध करके ६९ वर्षकी अवस्थामें ज्येष्ठ कृष्ण १० की अर्धरात्रिको केवल एक वस्त्र मात्र परिग्रह रखकर प्रणवमन्त्रका ध्यान तथा उच्चारण करते हुए शान्त हो गये। अन्तसमयमें आपको हल्केसे ज्वरके सिवाय असातावेदनीयका विशेष उदय नहीं हुआ था, इसलिये शरीर छोड़ते छोड़ते तक आपकी इन्द्रियोंकी चेष्टा नष्ट नहीं हुई और धर्मचेतना बराबर बनी रही। श्रीजिनेन्द्रदेवसे प्रार्थना है कि, जैनसमाजमें ऐसे विद्वान् परोपकारी धर्मात्मा और शान्तपरिणामी महात्मा निरन्तर जन्म लेवें। इति।

जैनसमाजका सेवक—

पांचूलाल काला, जयपुर।

[जैनहितैषी भाग ७, अंक ४–५, वीर नि० सं० २४३७]

विषय-सूची ।



सम्यग्दर्शनोद्योतक प्रथम काण्ड ।

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

दशमोल्लास

एकादशोल्लास

पृष्ठ संख्या

द्वादशोल्लास

॥ श्रीः ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

जयपुरनिवासी दूनीवाले संघी पंडित पन्नालालजी
संगृहीत

विद्वज्जनबोधक ।

अथ शास्त्रके अवसरमैं प्रथम पढ़नेकी पद्धति सार्थक लिखिये है;—

श्लोक ।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

अर्थ,—मनोवांछित कामको देने वारो अर मोक्षको देनें वारो बिन्दुसंयुक्त ओंकार जो है ताहि योगीश्वर नित्य ध्यावै है। ऐसो पंच परमेष्ठी रूप ओंकार जो है ताके अर्थ नमस्कार हौ नमस्कार हौ। इहां दोय वार नमस्कारके कहनेतै वारंवार नमस्कार हौ ऐसे जनायो है ॥ १ ॥

छंद आर्या ।

अविरलशब्दघनौघ-
प्रक्षालितसकलभूतलकलंका ।
मुनिभिरुपासिततीर्था
सरस्वती हरतु नो दुरितम् ॥ २ ॥

अर्थ;—अविरल संबंधरूप जे शब्द ते ही भये जे मेघ तिनको जो समूह ताकरि प्रक्षालित कीयो है सकल पृथिवीतलको कलंक जानै, अर मुनीश्वरनि करि उपासना कीयो है तीर्थ जाके ऐसी सरस्वती जो है सो हमारा दुरितनैं हरो ॥ २ ॥

श्लोक ।

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अर्थ;—जानै अज्ञानरूप तिमिर करि अंध जे हैं तिन नेत्र ज्ञानरूप अंजनमयी शलाका करि उद्घाटित किये, वै गुरु हैं तिनके अर्थ हमारौ नमस्कार हौ ॥ ३ ॥

धारा ।

परमगुरुभ्यो नमः। परंपराचार्यगुरुभ्यो नमः ।

अर्थ;—परमगुरु जे अर्हंत भगवान तिनकै अर्थ नमस्क हौ, अर परम्पराचार्य गुरु जे गणधरादिक निर्ग्रन्थाचार्य तिन अर्थ नमस्कार हौ ॥

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म संबंधकं भव्यजीवप्रतिबोधकारकं पुण्यप्रकाश पापप्रणाशकमिदं श्रुतं श्रीविद्वज्जनबोधकनामधेय

अर्थ;—समस्त पापको विध्वंस करने वारो, अर कल्या समस्तपणैं वृद्धि करने वारो, अर धर्मको संबन्धी, अर भव्यजी न प्रतिबोध करनें वारो, अर पुण्यको प्रकाश करने वारो, पापको प्रणाश करने वारो यो विद्वज्जनबोधकनाम श्रुत है ।

अस्य मूलग्रंथकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवाः तदु

ग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य कर्त्रा श्रीउमास्वाम्यादिना विरचितं । तत्र उत्तरोत्तरमांगल्यमालया यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यं वक्तृश्रोतृणां मंगलं भूयात् ।

अर्थ;—या ग्रन्थके मूल ग्रन्थकर्त्ता तौ श्रीसर्वज्ञदेव है, अर ताके उत्तरकर्त्ता श्रीगणधरदेव है तथा प्रतिगणधरदेव है। बहुरि तिनके वचननिका अनुसारनै ग्रहण करि कर्त्ता श्रीउमास्वामी आदि जे हैं तिनकरि विरचित है। तहां उत्तरोत्तरमंगलमयी माला जो है ताकरि जो पुण्य उत्पन्न होय सो वक्तानिकै तथा श्रोतानिकै मंगलनिमित्त हौ।

श्लोक।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मंगलं कुंदकुंदाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥४॥

अथ;—महावीर अंतिम तीर्थंकर भगवान जो है सो मंगलरूप हौ, अर अन्तिम गणधर गौतम प्रभु जो है सो मंगलरूप हौ, अर कुंदकुंदादि आचार्य जे हैं ते मंगलरूप हौ, अर जैनधर्म जो है सो मंगलरूप हौ॥

ऐसे श्रीॐकार पद्धतिनै पढ़ि जो ग्रन्थ वांचै ता ग्रंथको प्रथम श्लोक पढ़ि व्याख्यान करै।

इति श्री ॐकारपद्धति संपूर्ण ।



ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ विद्वज्जनबोधक लिख्यते.—

छन्द शार्दूलविक्रीडित।

श्रीसुत्रामशतार्चितांघ्रिजलजद्वन्द्वाय लोकत्रय—
प्रेष्ठोन्मिष्टगरिष्ठहृष्टसुवचोजुष्टाय तेऽर्हन्नमः।
अंतातीतगुणाय निर्जितभवव्राताय बुद्धोल्लस—
द्बुद्धे! बुद्धिविशुद्धिदायक! महाविष्णो! विजि-
ष्णो! जिन! ॥ १ ॥

अर्थ,—हे बुद्धोल्लसद्बुद्धे कहिये बुद्ध जे गणधरादिक ज्ञानवान तिनतैं अत्यन्त उल्लसायमान ज्ञानके धारक, अर हे बुद्धिविशुद्धिदायक कहिए बुद्धिकी विशुद्धिताका दातार, अर हे महाविष्णो कहिये अत्यन्तपणैं व्यापनशील, अर हे विजिष्णो कहिये विशेषपणैं जयनशील, अर हे जिन कहिये कर्म शत्रुका जीतनहार, अर हे अर्हन् कहिये इंद्रादिकनिकरि पूजनेयोग्य, अर लक्ष्मीवान देवेंद्रनिके सैकड़ेनिकरि पूजित है चरण कमलको युगल तिहारो, अर लोकत्रयके जीवनिनै अत्यन्त इष्ट मिष्ट गंभीर सुन्दर ऐसा समीचीन वचन करि युक्त, अर अनंतानतगुणवान, अर जीत्यो है संसारको समूह जानै, असो तू है जो ताकै अर्थ नमस्कार होहू ॥ १ ॥

दोहा।

चउविध विधिगन नाशि जिन, भये ज्ञानमय आप।
सत इंद्रनि जय जय कह्यो, अगनित धरत प्रताप ॥१॥
ताहि वंदि तद्वदनतैं, उपजी गिरा प्रसिद्ध।
नमूं नित्य कल्मषहरन, गुरु गुनगन करि इद्ध ॥२॥

ष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्याव-
गाहागुरुलघुकाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपल-
क्षणं । तेन तदनुसार्यनन्तानंतगुणानां तेष्वेवांत-
र्भाव इत्यर्थः । अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यंतोच्छि-
त्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रा-
यः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः । कृतकृत्याः कृतं नि-
ष्ठापितं कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं
यैस्ते कृतकृत्याः । अनेनेश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्नि-
र्माणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टि-
वादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः । लोकाग्रनि-
वासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति लो-
कः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रांते निवा-
सिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्म-
क्षयानंतरं तथा गमनस्वभावात्ते गच्छंति, तथापि
लोकाग्रत ऊर्द्ध्वं गमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावा-
न्न तदुपरि; इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां,
अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अने-
नात्मनः ऊर्द्ध्वंगमनस्वाभाव्यान्मुक्तावस्थायां क्वचि-
दपि विश्रामाभावादुपर्युपरि गमनमिति वदन्मं-
डलिमतं प्रत्यस्तम् ॥ ६७ ॥

ष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्तज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्याव-
गाहागुरुलघुकाव्यावाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपल-
क्षणं । तेन तदनुसार्थनन्तानंतगुणानां नेष्वेवांत-
र्भाव इत्यर्थः । अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यंतोच्छि-
त्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रा-
यः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः । कृतकृत्याः कृतं नि-
ष्ठापितं कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं
यैस्ते कृतकृत्याः । अनेनेश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्नि-
र्माणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टि-
वादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः । लोकाग्रनि-
वासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्थो अस्मिन्निति लो-
कः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रांते निवा-
सिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्म-
क्षयानन्तरं तथा गमनस्वभावात्ते गच्छंति, तथापि
लोकाग्रत ऊर्द्ध्वं गमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावा-
न्न तदुपरि; इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां,
अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अने-
नात्मनः उर्द्ध्वं गमनस्वाभाव्यान्मुक्तावस्थायां क्वचि-
दपि विश्रामाभावादुपर्युपरि गमनमिति वदन्मं-
डलिमतं प्रत्यस्तम् ॥ ६७ ॥

निवेदन ।

—••·×·••—

यह ग्रन्थ वहुत बड़ा है—लगभग सत्ताईस हजार श्लोक परिमाण है। अतएव हमने इसको खण्डशः प्रकाशित करना ही उचित समझा। यदि पाठकोने इसका यथेष्ट आदर किया, तो आगेके खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया जायगा। लगभग इतने ही वडे तीन खण्डोमें ग्रन्थ सम्पूर्ण हो जायगा।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायकी रक्षा और उन्नति करनेवाले तथा उसको सर्वथा नष्ट होनेसे वचानेवाले तेरहपन्थका यह एक प्रधान और माननीय ग्रन्थ है और इसमें उन सब विवादग्रस्त विषयोंकी चर्चा की गई है जिनपर आज भी लोग तरह तरहकी शकाये और कल्पनाये किया करते है। इसमे सैकड़ों ग्रन्थोके उद्धरण और प्रमाण दिये गये है और इस दृष्टिसे यह एक अपूर्व सग्रहग्रन्थ है।

यद्यपि इस ग्रन्थमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया है—अपनेको केवल ‘ जिनवचनप्रकाशक श्रावक ’ लिखा है; परन्तु यह विल्कुल निश्चित है कि इसके कर्त्ता स्वर्गीय प० पन्नालालजी संघी थे जिन्होने और भी अनेक ग्रन्थोकी रचनाये की थीं। सघीजीका जीवनचरित सज्जनोत्तम श्रीयुत बाबू पाचूलालजी कालाने जैनहितैषीमे प्रकाशित कराया था, जिसे हम धन्यवादसहित आगे उद्धृत कर देते है। इस चरितसे पाठक संघीजीका पूरा पूरा परिचय पा जावेंगे।

श्रीयुत् बाबू राजमलजी बड़जात्याके हम बहुत कृतज्ञ है जिनकी विशेष प्रेरणा और उत्साहप्रदानसे हम इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो सके है और जिन्होंने इस ग्रन्थकी २५० प्रतियाँ खरीदकर अपनी गुणज्ञताका परिचय दिया है। —प्रकाशक।

स्व॰ पं॰ पन्नालालजी संघी दूणीवाले।

जयपुर नगरसे दक्षिणकी ओर लगभग [illegible] कोसपर निवाई [illegible] कस्वा है, जो तहसीलका सदर मुकाम है। यहाँकी इमारतों [illegible] नेसे मालूम होता है कि, वह किसी समय एक बड़ा भारी नगर था [illegible] उच्च गौरवको प्रकट करता था। हमारे चरित्रनायक पं॰ पन्नालालजीके पितामह संघी शिवजीराम इसी नगरमें रहते थे। अपनी जन्मभूमि सबको प्यारी होती है, उसे कोई प्रसन्नतासे नहीं छोड़ना चाहता। [illegible] निवाईको क्यों छोड़ते? परन्तु भाग्यके चक्करमें पड़कर मनुष्य सब कुछ करनेके लिये लाचार होता है। संघीजीको अपना ग्राम छोड़कर अपने कुटुम्बके सहित उदयपुर (मेवाड़) में आकर रहना पड़ा। यहाँ लाभान्तरायके क्षयोपशमसे उन्हें व्यापारमें अच्छी प्राप्ति होने लगी और थोड़े ही दिनोंमें वे एक नामी धनवान् हो गये—उनके भाग्यका सितारा चमक उठा।

उन दिनों जयपुरके राजकीय गगनमें एक गृहकलहकी काली घटा उठी थी। महाराज सवाई जयसिंहजीने अपने एक पुत्र ईश्वरीसिंहके होते हुए भी उदयपुरनरेशकी पुत्रीके साथ इस प्रतिज्ञामें बद्ध होकर विवाह कर लिया कि, सीसोदणी महाराणीके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही जयपुरके राज्यका अधिकारी होगा। निदान सीसोदणीके कुमार माधवसिंह उत्पन्न हुए और उन्होंने वय प्राप्त होनेपर गद्दीके हकका दावा किया। परंतु ईश्वरीसिंह ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिये उन्हें ही राज्यका कार्य सौंपा गया। माधवसिंहजी रुष्ट होकर उदयपुर चले गये और वहाँसे उन्होंने लड़ाईका सामान एकत्र करके जयपुरपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाईमें उदयपुरराज्यके कई सरदार तथा मन्त्रीगण भी माधवसिंहजीके साथ आये थे। सरदारोंमें एक त्योदके ठाकुर प्रेमसिंहजी भी थे, जो बड़े भारी वीर और विश्वस्त पुरुष समझे जाते थे। संघी शिवजीरामजी उक्त ठाकुर साहबके दाहिने हाथ थे। संघीजीकी सम्मतिके विना वे अपना जहूरीसे भी जरूरी कार्य नहीं करते थे। अत ठाकुर साहबके साथ इस समय संघीजीका भी जयपुरमें आगमन हुआ था।

कुमार माधवसिंहजीको इस चढाईमें सफलता हुई। अर्थात् जयपुरके राज्यके वे स्वामी हो गये। ठाकुर प्रेमसिंहजी पर उनकी विशेष कृपा रहती थी, इसलिये राज्य प्राप्त करते ही उन्हे उन्होंने दूणीका परगना जागीरमे दे दिया और 'राव' की पदवी देकर अपना मंत्री बनाया। इसी समय सघीजी रावजीके ठिकाणेके कार्याध्यक्ष नियत किये गये।

सघीजीको ३ पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिनमेंसे ज्येष्ठ पुत्र **रतनचन्द**जी अपने पितासे भी अधिक भाग्यशाली हुए। रतनचन्दजी उस समय हुए जिस समय जयपुरमे दीवान मुसाहिब तथा अन्य राजकार्यकर्त्ता प्राय॰ सभी जैनी ही थे, सारा राज्यकार्य जैनियोंके ही हाथमे था। जैनियोंके इतिहासमे जिनका नाम सोनेके अक्षरोंसे लिखना योग्य है वे सज्जनोत्तम **अमरचन्दजी** उस समय दीवान थे और सघी **झूथारामजी** मुसाहिब थे। झूथारामजी और रतनचन्दजीमे वडीभारी मित्रता थी, यहाँ तककी झूथारामजी रतनचन्दजीसे प्राय प्रत्येक राजकार्यमें सम्मति लेते थे।

रतनचन्दजीके पहले कोई पुत्र नही हुआ था, इसलिये उन्होंने पहले अपने छोटे भाईके पुत्र **हीरालालजी**को दत्तक लिया था, परतु पीछे उतरती अवस्थामे **व्रजलाल** और **पन्नालाल** नामके दो पुत्रोंने उनके गृहससारको हराभरा कर दिया। व्रजलालजीका युवावस्थामे जव कि उनका विवाह हो गया था देहान्त हो गया। सघी रतनचन्दजीको इस पुत्रवियोगसे वडा शोक हुआ, पर क्या करते! भवितव्यपर किसका वश चलता है! द्वितीय पुत्र पन्नालालजीको सघीजीने सस्कृतका अध्ययन कराना शुरू किया, परतु उनकी यह आशा पूर्ण न हो सकी। अपने पुत्रको सस्कृतका पडित देखनेके पहले ही वे अपनी यात्रा समाप्त कर चुके। पिताकी मृत्युके समय पन्नालालजीकी अवस्था १३-१४ वर्ष की थी और **मथुरा**के जगद्विख्यात सेठ **मनीरामजीके** भाई **फतेहलालजी**की पुत्री **मानबाई**के साथ उनका विवाह हो चुका था।

पिताके वियोगसे और ससुरालके धनसम्पन्न होनेसे सघी पन्नालालजीका विद्याध्ययन शिथिल हो गया। केवल काव्य, नाटक, चम्पू और अलकारादिके ग्रन्थोंमे उनका मन लगने लगा। शृंगाररसके आस्वादनमे उन्हें अपने जीवनकी सफलता दिखने लगी। जैनधर्मके तत्त्वोंकी अनभिज्ञतासे और सगतिके प्रभावसे इसी समय इनके हृदयमे मिथ्यात्वने ऐसा डेरा डाला कि ये खुल्लमखुल्ला

सधीजीसे कहा कि, "अब मै इस अस्थायी पर्यायको छोडकर विदा होता हूँ। मैंने तथा मेरे पूर्ववर्ती **पं० टोडरमलजी, मन्नालालजी, जयचन्द्रजी** आदि विद्वानोंने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी सुलभ भाषावचनिकाएँ की हैं, और अनेक नवीन ग्रन्थ भी बनाये हैं। परन्तु अभीतक देश देशान्तरोंमे इनका जैसा प्रचार होना चाहिये था, वैसा नही हुआ है। और तुम इस कार्यके सर्वथा योग्य हो, तथा जैनधर्मके मर्मको भी अच्छी तरह समझ गये हो, अतएव गुरुदक्षिणामे मै तुमसे केवल यही सेवा चाहता हूँ कि, जैसे बने तैसे इन ग्रन्थोंके प्रचारका प्रयत्न करो। वर्तमान समयमे इसके समान पुण्यका और धर्मकी प्रभावनाका और कोई दूसरा कार्य नहीं है।" यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि, सदासुखजीके सुयोग्य शिष्यने गुरुदक्षिणा देनेमे जरा भी आनाकानी नहीं की। आपने अनेक सज्जन धर्मात्माओंकी सम्मति लेकर उसी समय अपने घरपर एक **सरस्वतीकार्यालय**की स्थापना कर दी और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि, उसके द्वारा देशदेशान्तरोंसे जितने ग्रन्थोंकी माँग आती थी, वह सब शुद्धतापूर्वक लिखवा कर और भेजकर पूरी कर दी जाती थी।

थोडे दिनोमे निरन्तरके शास्त्राध्ययन तथा मननसे सधीजीके भावोंमे वैराग्यकी झलक आई और उसने बढते बढते विक्रम संवत् १९०७ मे उन्हे राज्यसेवासे पृथक् कर दिया। राजकीय सेवा छोडकर कुछ दिनों आपने देश तथा तीर्थपर्यटन किया और पॉच छह वर्षके पश्चात् परिणामोंमे स्थिरता तथा दृढता आनेपर अपने गुरुका अनुकरण करके आप भी प्राचीन ग्रन्थोंकी भाषा टीकाएँ तथा स्वतत्र नवीन ग्रन्थोंकी रचना करनेमे दत्तचित हो गये।

इन दिनो आपका समयविभाग इस प्रकार था —४ बजे रात्रिसे उठकर प्रात काल तक आप सामायिक वा आत्मध्यान करते थे, और फिर शौच स्नानादिसे निवृत्त होकर अपने गृह-चैत्यालयमे पूजन करते थे। यह चैत्यालय आपके घरमे अवतक विद्यमान है। पूजनके पश्चात् ८ बजे भोजनसे निवृत होकर पठनपाठनमे लग जाते थे और रात्रिके दश बजे तक इसी कार्यमें लगे रहते थे। इस बीचमे जो देशी विदेशी विद्यार्थी वा धर्माभिलाषी लोग पढनेको आते थे, उन्हें बडी प्रसन्नता और रुचिसे पढ़ाते थे। जयपुरके और वाहिरके चार छह पडित जनोंसे आप निरन्तर ही घिरे रहते थे और धार्मिक चर्चामे मग्न रहते थे। उस समय आपका गृह एक खासा **विद्यालय** बन रहा था। २६ वर्ष तक

सघीजीने, उत्तरपुराण, राजवार्तिक, न्यायदीपिका, रत्न-करंडश्रावकाचार, पूज्यपादस्वामीकृत इष्टोपदेश, [illegible], द्रव्य-सग्रह और तत्त्वार्थसूत्र इन मूल ग्रन्थोंकी भाषा [illegible] बनाई हैं, जो बहुत अच्छी और सबके समझने योग्य हैं। [illegible] भी आपने ढूढारी भाषामें बनाया है, जिसको [illegible] है। इस ग्रन्थमें आपने बड़ी ही स्वतत्रतासे जैनधर्मकी भिन्न [illegible] विचार किया है और उनके उचितानुचित मार्गोंका [illegible] मुख्य मार्गका प्रतिपादन किया है। आपने यह भी सिद्ध किया है कि, [illegible] प्राचीन बड़े २ आचार्योंके नामसे बहुतसे ऐसे ग्रन्थोंकी भी रचना हो गई है, जिनमें सैकड़ो बातें वीतराग मार्गसे विरुद्ध है। इस ग्रन्थका नाम है विद्वज्जन-बोधक। यद्यपि इस ग्रन्थके बहुतसे प्रतिपादित विषय विवादास्पद है और बहु-तसे विद्वान् उन्हें पसन्द नहीं करते है—उनका विरोध करते है, तो भी इसमें सन्देह नहीं है कि सघीजीने इसकी रचना अच्छे परिणामोंसे प्रेरित होकर की है। प्रत्येक विद्वान्को इस ग्रन्थका स्वाध्याय करना चाहिये। समवसरण-पूजा, सरस्वतीपूजा और पचकल्याणपूजा आदि तीन चार छन्दोबद्ध ग्रन्थोंकी भी सघीजीने रचना की है, जिससे जान पड़ता है कि, आप भाषाकी कविता भी कर सकते थे। सस्कृत भाषापर भी आपका अच्छा अधिकार था। दशावतारनाटक और जैनविवाहपद्धति ये दो ग्रन्थ जो कि सस्कृतमें रचे गये हैं, इस बातके साक्षी हैं। शहर जयपुर प्रतिमाओंके लिये सदासे विख्यात है। यहाँपर हजारों शिल्पकलाकुशल कारीगर निवास करते है। जब आपने देखा कि, बहुतसे कारीगर मनमानी प्रतिमाएँ बनाकर बेचते है और शास्त्रोक्त रचना-पर कुछ भी ध्यान नहीं देते है, तब आपने अनेक शिल्पशास्त्रोंके आधारसे एक बिम्बनिर्माणविधि नामकी पुस्तक बनाकर प्रत्येक कारीगरको दी और कहा कि, तुम्हें इस मापकी प्रतिमाएँ बनाकर बेचनी चाहिये। इस पुस्तकके बनानेके विषयमें स्वर्गीय पडित भागचन्द्रजीकी विशेष प्रेरणा थी।

पंडित **फतेहलालजी** नामके एक विद्वान् जो एक भट्टारकजीके शिष्य थे और जैनधर्मके अच्छे जानकार होकर सत्यके भी पक्षपाती थे, संघीजीके परम मित्र थे। संघीजी लिखने पढनेका कार्य बहुत समय तक इनके साथ मिलकर करते रहे हैं। संघीजीकी रची हुई **विवाहपद्धति** आदि कई पुस्तकोंमे जिन प० फतेहलालजीका नाम है, वे ये ही हैं।

एक वार भट्टारकोंके दो तीन शिष्योंने प्राचीन आचार्योंके नामसे **प्रायश्चित्त** और **दायभाग** सम्बन्धी दो ग्रन्थ **जयपुर**के न्यायालयमे पेश किये और कहा कि, ये ग्रन्थ हमारे पूर्वाचार्योंके बनाये हुए हैं, इसलिये जैनजातिसम्बन्धी सारे मुकद्दमोंका फैसला इनके अनुसार होना चाहिये। राज्यने इस विषयमे स्वयं हस्तक्षेप करना ठीक न समझकर जयपुरकी जैन पंचायतको उक्त दोनो ग्रन्थ सोंपकर उसकी सम्मति मॉगी। पंचायतमें उस समय संघीजी अग्रणी थे, इसलिये आपने पहले देशदेशान्तरोंके अनेक विद्वानोंकी सम्मतियॉ मॅगाई और फिर शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध किया कि, उक्त दोनों ग्रन्थ जैनाम्नायके विरुद्ध और अप्रामाणिक हैं। फल यह हुआ कि, राज्यने उक्त ग्रन्थ जब्त कर लिये और अब तक वे राजकीय कोषमें रक्षित है।

संघीजीके ३ पुत्र और २ पुत्रियॉ इस तरह पांच संतान थीं, जिनमेसे एक पुत्रका और दोनों पुत्रियोंका युवावस्थामें विवाहादि हो जानेपर वियोग हो गया। पुत्रका समाधिमरण आपने स्वयं बडी दृढता और विरक्ततासे कराया था। शेष दो पुत्रोंमेसे बडे पुत्र संघी **नेमिचन्दजी** राज्यका कार्य करते थे और दूसरे पुत्र संघी **बखतावरलालजी** यद्यपि विशेष विद्वान् नहीं थे, परन्तु धर्मात्मा और विरक्त पुरुष थे। उन्होंने अपना सारा जीवन धर्मध्यानमे ही व्यतीत किया—अपने उपयोगको अन्य कार्योंमे नहीं लगाया। इनके एक पुत्र और दो पुत्रियॉ हुई। पुत्रका नाम संघी **आनन्दीलालजी** है, जो इस समय ४८ वर्षकी अवस्थामे विद्यमान हैं। इन्होंने अपने पितामह संघीजीसे ही धर्मशिक्षा पाई है।

संघीजीके शिष्योंमे एक **धन्नालालजी** काशलीवाल नामके सज्जन थे, जो उस समय जयपुरके सिटी मजिष्ट्रेट थे और 'धन्नालालजी फौजदार' इस नामसे विख्यात थे। अपनी परलोकयात्राके समय संघीजीने इन्हे उपदेश दिया था कि, जयपुरमें एक वृहत्पाठशालाके खोलनेका प्रयत्न करना। तदनुसार फौजदारजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और दूसरे धर्मात्माओंकी सहानुभूतिसे जयपुरमे **महापाठशाला** स्थापित हो गई और वह अब तक निर्विघ्नतया चल रही है।

विषय-सूची।



सम्यग्दर्शनोद्योतक प्रथम काण्ड।

पृष्ठ संख्या

चतुर्थोल्लास—

पृष्ठ संख्या

दशमोल्लास

एकादशोल्लास

॥ श्रीः

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

जयपुरनिवासी दूनीवाले संघी पंडित पन्नालालजी संगृहीत

विद्वज्जनबोधक.

अथ शास्त्रके अवसरमैं प्रथम पढ़नेकी पद्धति सार्थक लिखिये है;—

श्लोक।

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥ १॥

अर्थ;—मनोवांछित कामको देने वारो अर मोक्षको देने वारो विन्दुसंयुक्त ओंकार जो है ताहि योगीश्वर नित्य ध्यावैं हैं। ऐसो पंच परमेष्ठी रूप ओंकार जो है ताके अर्थ नमस्कार हौ नमस्कार हौ। इहां दोय वार नमस्कारके कहनेतैं वारंवार नमस्कार हौ ऐसे जनायो है॥ १॥

छंद आर्या।

अविरलशब्दघनौघ-
प्रक्षालितसकलभूतलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था
सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥ २॥

अर्थ;—अविरल संबंधरूप जे शब्द ते ही भये जे मेघ तिनको जो समूह ताकरि प्रक्षालित कीयो है सकल पृथिवीतलको कलंक जानैं, अर मुनीश्वरनि करि उपासना कीयो है तीर्थ जाको, ऐसी सरस्वती जो है सो हमारा दुरितनैं हरो ॥ २ ॥

श्लोक।

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अर्थ;—जानैं अज्ञानरूप तिमिर करि अंध जे हैं तिनके नेत्र ज्ञानरूप अंजनमयी शलाका करि उद्घाटित किये, वै गुरु जे हैं तिनके अर्थ हमारी नमस्कार हो ॥ ३ ॥

धारा।

परमगुरुभ्यो नमः। परंपराचार्यगुरुभ्यो नमः।

अर्थ;—परमगुरु जे अर्हंत भगवान तिनकै अर्थ नमस्कार हो, अर परम्पराचार्य गुरु जे गणधरादिक निर्ग्रन्थाचार्य तिनकै अर्थ नमस्कार हो ॥

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्मसंबंधकं भव्यजीवप्रतिबोधकारकं पुण्यप्रकाशकं पापप्रणाशकमिदं श्रुतं श्रीविद्वज्जनबोधकनामधेयं।

अर्थ;—समस्त पापको विध्वंस करने वारो, अर कल्याणको समस्तपणैं वृद्धि करने वारो, अर धर्मको संबन्धी, अर भव्यजीवनिन प्रतिबोध करनें वारो, अर पुण्यको प्रकाश करने वारो, अर पापको प्रणाश करने वारो यो विद्वज्जनबोधकनाम श्रुत है।

अस्य मूलग्रंथकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवाः तदुत्तर-

ग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य कर्त्रा श्रीउमास्वाम्यादिना विरचितं । तत्र उत्तरोत्तरमांगल्यमालया यत्पुण्यमुत्पद्यते तत्पुण्यं वक्तृश्रोतॄणां मंगलं भूयात् ।

अर्थ;—या ग्रन्थके मूल ग्रन्थकर्त्ता तो श्रीसर्वज्ञदेव है, अर ताके उत्तरकर्त्ता श्रीगणधरदेव है तथा प्रतिगणधरदेव है। बहुरि तिनके वचननिका अनुसारनैं ग्रहण करि कर्त्ता श्रीउमास्वामी आदि जे है तिनकरि विरचित है। तहां उत्तरोत्तरमंगलमयी माला जो है ताकरि जो पुण्य उत्पन्न होय सो वक्तानिकै तथा श्रोतानिकै मंगलनिमित्त हौ।

श्लोक।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मंगलं कुंदकुंदाद्या जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥४॥

अर्थ,—महावीर अंतिम तीर्थंकर भगवान जो है सो मंगलरूप हौ, अर अन्तिम गणधर गौतम प्रभु जो है सो मंगलरूप हौ, अर कुंदकुंदादि आचार्य जे हैं ते मंगलरूप हौ, अर जैनधर्म जो है सो मंगलरूप हौ॥

ऐसे श्रीॐकार पद्धतिनैं पढ़ि जो ग्रन्थ वांचै ता ग्रंथको प्रथम श्लोक पढ़ि व्याख्यान करै।

इति श्री ॐकारपद्धति संपूर्ण ।



ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ विद्वज्जनबोधक लिख्यते,—

छन्द शार्दूलविक्रीडित ।

श्रीसुत्रामशतार्चितांघ्रिजलजद्वन्द्वाय लोकत्रय—
प्रेष्ठोन्मिष्टगरिष्ठसुष्टुसुवचोजुष्टाय तेऽर्हन्नमः ।
अंतातीतगुणाय निर्जितभवव्राताय बुद्धोल्लस—
द्बुद्धे! बुद्धिविशुद्धिदायक ! महाविष्णो ! विजि-
ष्णो ! जिन ! ॥ १ ॥

अर्थ;—हे बुद्धोल्लसद्बुद्धे कहिये बुद्ध जे गणधरादिक ज्ञानवान तिनतैं अत्यन्त उल्लसायमान ज्ञानके धारक, अर हे बुद्धिविशुद्धिदायक कहिए बुद्धिकी विशुद्धिताका दातार, अर हे महाविष्णो कहिये अत्यन्तपणैं व्यापनशील, अर हे विजिष्णो कहिये विशेषपणै जयनशील, अर हे जिन कहिये कर्म शत्रुका जीतनहार, अर हे अर्हन् कहिये इंद्रादिकनिकरि पूजनेयोग्य, अर लक्ष्मीवान देवेंद्रनिके सैकड़ेनिकरि पूजित है चरण कमलको युगल तिहारो, अर लोकत्रयके जीवनिनै अत्यन्त इष्ट मिष्ट गंभीर सुन्दर ऐसा समीचीन वचन करि युक्त, अर अनंतानतगुणवान, अर जीत्यो है संसारको समूह जानै, असो तू है जो ताकै अर्थ नमस्कार होहू ॥ १ ॥

दोहा ।

चउविध विधिगन नाशि जिन, भये ज्ञानमय आप ।
सत इंद्रनि जय जय कह्यो, अगनित धरत प्रताप ॥१॥
ताहि वंदि तद्वदनतैं, उपजी गिरा प्रसिद्ध ।
नमूं नित्य कल्मषहरन, गुरु गुनगन करि इद्ध ॥२॥

बुद्धि शुद्ध निजकरनहित, संशय मिथ्याहार ।
विद्वज्जनबोधक कहूं, सुगम वचनिका सार ॥ ३ ॥
सुनत भव्य उर मधि प्रचुर, प्रकटत हर्ष विवेक ।
दृढ श्रद्धा संशयरहित, उपजत युक्ति अनेक ॥ ४ ॥
शब्द न्याय साहित्यके, ग्रन्थ पठित मम नांहि ।
भक्तियुक्त वुध जननितैं, श्रवन किये हित चांहि ॥५॥

अथानंतर महापुराणसंबंधी शांतिनाथपुराणमें,—

श्लोक ।

वक्तृश्रोतृकथाभेदान् वर्णयित्वा पुरा बुधः ।
पश्चाद्धर्मकथां ब्रूयात् गंभीरार्थो यथार्थदृक् ॥ २ ॥

अर्थ,—यथार्थ पदार्थके स्वरूपकूं जाननवारो ज्ञानी जो है सो प्रथमही वक्ता श्रोता अर कथा इन तीननिके भेदनिनै वरनन करि पीछे गभीर है अर्थ जाविषै ऐसी धर्मकथानै कहै ॥ २ ॥

यातैं प्रथम ही वक्ताके लक्षण कहिये है,—

विद्वत्त्वं सच्चरित्रत्वं दयालुत्वं प्रगल्भता ।
वाक्सौभाग्येंगितज्ञत्वे प्रश्नक्षोभसहिष्णुता ॥३॥

अर्थ—न्याय सिद्धांत व्याकरण छंद अलंकारादि समीचीन विद्यावानपणूं, अर समीचीन चारित्रवानपणूं, अर छहू कायकी रक्षारूप दयालपणूं, अर स्खलित गद्गद अस्पष्ट आदि दोषरहित वचनको सौभाग्यपणौ, अर प्रगल्भपणौ, अर श्रोतानिकी चेष्टाका जाननपणानै होता संता अनेक प्रश्ननिका क्षोभका सहन पणौ ॥ ३ ॥

सौमुख्यं लोकविज्ञानं ख्यातिपूजाद्यवीक्षणम् ।
मिताभिधानमित्यादिगुणा धर्मोपदेष्टरि ॥ ४ ॥

अर्थ—अर प्रसन्न निर्विकार चेष्टारूप सुमुखपणौ, अर देश जाति कुल भेदयुक्त लोकव्यवहारको जाननपणूं, अर विख्यातताका तथा पूजालाभादिकका अभिलाषरहितपणूं, अर प्रमाणीक वचन इत्यादिक गुण धर्मके उपदेशदाता विषै होय हैं ।४।

तत्त्वज्ञेऽप्यपचारित्रे वक्तर्यैतत्कथं स्वयम् ।
न चरेदिति सत्प्रोक्तं न गृह्णंति पृथग्जनाः । ५ ।

अर्थ—अर वक्ताकै विषैं आगमको तत्त्वज्ञानहोतसतै भी चारित्ररहितपणूं होवै तौ लौकिक जन कहै कि यो आप कैसें नहीं आचरण करै है, ऐसै कहि वा वक्ताको कह्यौ सामान्यजन नहि ग्रहण करै है ॥ ५ ॥

सच्चारित्रेऽप्यशास्त्रज्ञे वक्तर्यल्पश्रुतोद्धताः ।
सहासमुक्तसन्मार्गे विदधत्यवधीरणम् ॥ ६ ॥

अर्थ—अर वक्ताकै विष शुद्ध चारित्र होत संतैं भी शास्त्रज्ञानरहितपणूं होय तौ अल्पश्रुत ज्ञानकरि उद्धत पुरुष जे है ते वा वक्ता के कहे सम्यक मार्गके विषै हास्य करता संता निरादर करै है ॥ ६ ॥

विद्वत्वं सच्चरित्रत्वं मुख्यं वक्तरि लक्षणम् ।
अवाधितस्वरूपं वा जीवस्य ज्ञानदर्शने ॥ ७ ॥

अर्थ;—तातैं वक्ताकै विषै शास्त्रज्ञानवानपणूं अर शुद्धचा-

रित्रवान पणूं ये दोऊ मुख्य लक्षण है । जैसे जीवको ज्ञान दर्शन अवाधित स्वरूप है ॥ ७ ॥

अथ श्रोतालक्षण ।

युक्तमेतदयुक्तं वेत्त्युक्तंसम्यग्विचारयन् ।
स्थाने कुर्वन्नुपालंभं भक्त्या सूक्तं समाददत् ॥ ८ ॥

अर्थ;—अबै श्रोताको लक्षण कहै है । यो उपदेश योग्य है, यो उपदेश अयोग्य है, ऐसै कह्या अर्थनै भलै प्रकार विचारतो संतो प्रश्न करने योग्य स्थलकै विषै प्रश्न करतो संतो भक्ति करि सम्यक् उपदेश्या अर्थनै अंगीकार करै है ॥ ८ ॥

असारप्राग्गृहीतार्थविशेषाविहितादरः ।
अहसन् स्खलितस्थाने गुरुभक्तः क्षमापरः ॥ ९ ॥

अर्थ;—अर असारभूत पूर्वैं ग्रहण कीया जो अर्थविशेष ताकै विषै नही रच्यो है आदर जानै, अर उपदेशका भूल्या-स्थल मै नहीं हास्य करतो संतो गुरुभक्त क्षमामे तत्पर है ॥ ९ ॥

संसारभीरुराप्तोक्तवाग्धारणपरायणः ।
पशुमृद्धंससंप्रोक्तगुणः श्रोता निगद्यते ॥ १० ॥

अर्थ—अर संसारतै भयभीत जिनवचनके धारणमैं परायण, अर गऊ मृत्तिका हंसके कहे जे गुण तिन समान गुणवान श्रोता सराहने योग्य कहिये है ॥१० ॥

अथ कथालक्षण ।

जीवाजीवादितत्त्वार्थो यत्र सम्यग्निरूप्यते ।
तनुसंसृतिभोगेषु निर्वेदश्च हितैषिणाम् ॥११॥

अर्थ;—अबै धर्मकथाको लक्षण कहै है कि जाविषै जीव अजीव आदि तत्त्वार्थ सम्यक् निरूपण करिये, अर आत्महितके इच्छुक पुरुषनिकूं देह संसार भोगनिविषै वैराग्य निरूपण करिये ॥ ११ ॥

दानपूजातपःशीलविशेषाश्च विशेषतः ।
बन्धमोक्षौ तयोर्हेतू फले चासुभृतां पृथक्॥१२॥

अर्थ—अर दान पूजा तप शील आदिके भेद विशेषपणें वरनन करिये, अर आत्मप्रदेशनिमें कर्मप्रदेशनिका एकत्व होना जो बंध, अर आत्मप्रदेशनितै सर्वथा कर्मनिका क्षय होय छूटनां जो मोक्ष, अर बधके कारण जे आस्रव, अर मोक्षके कारण जे संवर निर्जरा, अर आस्रव अर संवर निर्जराको फल प्राणधारीनिकूं भिन्न भिन्न जान्यूं जाय ॥ १२ ॥

श्लोक ।

घटामटति युक्त्यैव सदसत्त्वादिकल्पना ।
ख्याता प्राणदया यत्र मातेव हितकारिणी ॥ १३ ॥

अर्थ—अर जाविषै जीवादिक पदार्थनिकी सत् असत् आदि सप्तभंगरूप कल्पना युक्तिकरिकै हीजानी जाय, अर जाविषै सर्व जीवनिकूं हितकारिणी माताकी नाई दया विख्यात होय ॥ १३ ॥

सर्वसंगपरित्यागाद्यत्र यात्यंगिनः शिवम् ।
तत्त्वधर्मकथा सा स्यान्नाम्ना धर्मकथा परा ॥ १४ ॥

अर्थ—अर जहां सर्वसंगका परित्यागतै देहधारी मोक्षनैं प्राप्त होय सो तत्त्वभूत धर्मकथा है । अर पूर्वें कहे लक्षणनितैं अन्य

कथा है सो नाममात्र धर्मकथा है ॥ १४ ॥

अथ मोक्षलक्षण । दोहा ।

धर्म अर्थ जग काम फुनि, मोक्ष तुर्य पुरुषार्थ ।
तिन मधि उत्तम विनय जन, गिनत मोक्ष परमार्थ ।६।

सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मैं,—

आर्या छन्द ।

सर्वविवर्त्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति ।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक् पुरुषार्थमापन्नः ॥११॥

अर्थ—सो आत्मा जा समय सर्वपर्यायनितै रहित ऐसा अचल चैतन्यनै प्राप्त होय है, ता समय कृतकृत्य हुवो संता उत्तम पुरुषार्थनै प्राप्त होत है ॥ ११ ॥

प्रश्न—असा परम पुरुषार्थरूप मोक्षका स्वरूप कहो ?

उत्तर—तत्त्वार्थसूत्रमै । सूत्र—**कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।**

अर्थ—समस्त कर्मनिका अत्यन्त छूटनां है सो मोक्ष है ।

तथा आदिपुराणमै;—

श्लोक ।

निःशेषकर्मनिर्मोक्षो मोक्षोऽनंतसुखात्मकः ।
सम्यग्विशेषणज्ञानदृष्टिचारित्रसाधनः ॥ ११७ ॥

अर्थ—समस्त कर्मनितै छूटनां है सो मोक्ष है, अर अनन्त सुखस्वरूप है सो सम्यक् विशेषणयुक्त ज्ञानदर्शन चारित्र है साधन जाको असो है ॥ ११७ ॥

ऐसा मोक्षभावकूं प्राप्तभया सिद्ध परमेष्ठी जे हैं तिनका स्वरूप गोम्मटसारमें;—

*अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६७॥

अर्थ—अष्टविध कर्मरहित, शांतरूप, निरंजन, नित्य, अष्ट गुणधारक, कृतकृत्य, ऐसे लोकके अग्रमें निवास करने वारे सिद्ध हैं ॥ ६७ ॥

टीका—न केवलमुक्तगुणस्थानवर्त्तिन एव जीवाः संति, सिद्धा अपि स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिसंपन्नमुक्तजीवा अपि संति । ते कथंभूताः, अष्टविधकर्मविकला अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भाणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिकर्मणां अत्यंतक्षयात् सिद्धिं प्राप्ताः ।

उक्तं च,—

गाथा ।

मोहो खाइयसम्मं केवलणाणं च केवलालोयं ।
हणदि हु आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घं तु ॥
सुहुमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं ।

---

*छाया—अष्टविधकर्मविकला, शीतीभूता निरंजना नित्याः ।
अष्टगुणाः कृतकृत्या लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥

अगुरु लहुगं च गोदं अव्वाबोहं हणेइ वेयणियं ॥२॥

टीका—इति अष्टगुणप्रतिपक्षाणां प्रक्षयेण विकलाः निःप्रतिपक्षा मुक्ता इत्यर्थः । अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतमपास्तं । सर्वदा सर्वकर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्तएव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं चापास्तं । पुनः कथंभूताः । शीतीभूताः सहजशरीरागंतुक-मानसादि-विविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयेण सुनिर्वृत्ता इत्यर्थः । अनेन मुक्तावात्मनः सुखाभावं वदत्सांख्यमतमपाकृतं । पुनः कथंभूताः । निरंजनाः अभिनवास्रवरूपकर्ममलरूपांजनान्निष्क्रांता इत्यर्थः । अनेन मुक्तात्मनः कर्मांजनसंसर्गेण संसारोऽस्तीति वदन्मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं । पुनः कथंभूताः । नित्याः यद्यपि प्रतिसमयवर्त्यर्थपर्यायैः परिणमंतः सिद्धाः उत्पादव्ययौ स्वस्मिन् कुर्वंतोऽपि विशुद्धचैतन्यसामान्यरूप-द्रव्याकारान्वयमाहात्म्यात्सर्वकालाश्रिताव्ययत्वात्ते नित्यतां न जहतीत्यर्थः । अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्याया एव एकसंतानवर्त्तिनः परमार्थतो नित्यं द्रव्यं नेति वदंतीति बौद्धाः प्रत्यवस्थाः प्रतिव्यूढाः । पुनः कथंभूताः । अ-

ष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्तज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्याव-
गाहागुरुलघुकाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपल-
क्षणं । तेन तदनुसार्यनन्तानंतगुणानां तेष्वेवांत-
र्भाव इत्यर्थः । अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यंतोच्छि-
त्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रा-
यः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः । कृतकृत्याः कृतं नि-
ष्ठापितं कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं
यैस्ते कृतकृत्याः । अनेनेश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्नि-
र्माणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वदद्दीश्वरसृष्टि-
वादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः । लोकाग्रनि-
वासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति लो-
कः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रांते निवा-
सिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्म-
क्षयानंतरं तथा गमनस्वभावात्ते गच्छंति, तथापि
लोकाग्रत ऊर्द्ध्वं गमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावा-
न्न तदुपरि; इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां,
अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अने-
नात्मनः ऊर्द्ध्वं गमनस्वाभाव्यान्मुक्तावस्थायां क्वचि-
दपि विश्रामाभावादुपर्युपरि गमनमिति वदन्मं-
डलिमतं प्रत्यस्तम् ॥ ६७ ॥

अर्थ,—केवल कहिये गुणस्थानवर्ती ही जीव नही है, सिद्ध भी है। निजस्वभावकी प्राप्तिलक्षण सिद्धि ताकरि संयुक्त भी जीव हैं। ते कैसेक है, अष्टविधकर्मरहित हैं। भावार्थ—अनेक प्रकार उत्तर प्रकृतिनिकरि गर्भित ज्ञानावरणादिक अष्टप्रकार मूल प्रकृतिरूप शत्रूके अत्यन्त क्षय करि सिद्धि तानै प्राप्त भये है, ते भी जीव ही है। यहां "उक्तं च" गाथा है ताको अर्थ लिखिये है कि निश्चय करि क्षायिक सम्यक्तनै मोह हणैहै, अर केवलज्ञान केवलदर्शननै ज्ञानावरण दर्शनावरणको युगल हणैहै, अर अनंतवीर्यनैं अंतराय हणैहै, अर सूक्ष्म गुणनै नाम कर्म हणैहै, अर अवगाह गुणनैं आयु कर्म हणैहै, अर अगुरुलघुगुणनै गोत्रकर्म हणैहै, अर अव्याबाध गुणनै वेदनीय कर्म हणैहै। या प्रकार अष्ट गुणके प्रतिपक्षीनिका अत्यत क्षय करि शरीररहित निःप्रतिपक्षी मुक्त जीव है। या विशेषण करि संसारी जीवकी मुक्ति नही है या प्रकार माननै वारा याज्ञिक मतनै, अर सर्वदा कर्ममलस्पर्श रहितपणांकरि जीव सदा मुक्त ही है, सदा ईश्वर ही है या प्रकार माननै वारा सदाशिवमतनै दूर कियो। भावार्थ;—इहां अष्टकर्मके नाश करि अष्टगुणयुक्त सिद्ध भए कहे ताते याज्ञिकमतवाला सिद्धता होनेका सर्वथा निषेध करै है, ताका निराकरण कीया, अर सदाशिवमतवाला जीवनै सर्वथा शुद्ध मानै है ताका भी निराकरण कीया, क्यौंकि शुद्ध तौ कर्मनिके नाशतै होय है ऐसा कह्या है। बहुरि सिद्ध कैसेक है, शीतीभूत कहिये सहजशरीरसंबन्धी तथा आगंतुक, मानसिक आदि नाना प्रकारके संसारसम्बन्धी दुःख, वेदना, परिताप आदिका अत्यन्त क्षय करि भलै प्रकार सुखरूप रचे हैं। भावार्थ,—सिद्ध भये हैं

या विशेषण करि मुक्त जीवनिकै सुखका अभाव कहने वारा सांख्यमतनैं दूर किया ॥ बहुरि सिद्ध कैसेक हैं, निरंजन हैं, निरंजन कहिये नवीन आस्रवरूप तथा प्राचीन संचितरूप कर्ममल सो ही भया जो अंजन ताकरि रहित हैं। या विशेषण करि मुक्त जीवनके भी कर्म अंजनके संसर्ग करि संसार है या प्रकार कहने वारा मस्करी जो संन्यासी मत तानैं प्रत्युत्तर कियो ॥ बहुरि सिद्ध कैसेक हैं, नित्य हैं, जो समय समयवर्त्ती अर्थपर्याय करि परिणतरूप सिद्ध जे है ते अपने स्वभावविषै उत्पाद व्यय करै हैं तौहू विशुद्ध चैतन्य सामान्यरूप द्रव्याकारकरि जोडरूप माहात्म्यतैं सर्वकालके आश्रित अविनाशीपणांतै ते सिद्ध नित्यपणानैं नांही छांड़ै है। या विशेषण करि क्षण क्षण प्रति विनाशीक चैतन्यकी चित्पर्याय जो चैतन्यपणौ सो ही एक संतानवर्ती है, परमार्थतैं नित्य द्रव्य नहीं है, या प्रकार कहनेवारो बौद्धनिकी व्यवस्थाको निरस्कार कियो। भावार्थ,—बौद्धमती द्रव्यनैं क्षणस्थायी मानै है अर यहां नित्य विशेषण करि बौद्धमतका निराकरण कीया। बहुरि सिद्ध कैसेक हैं, अष्टगुणवान हैं। भावार्थ;—क्षायिकसम्यक्त क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकवीर्य, क्षायिकसूक्ष्मत्व, क्षायिकअवगाहन, क्षायिकअगुरुलघु, क्षायिकअव्याबाध इन अष्ट गुणनिकरि युक्त हैं। ये अष्ट विशेषण उपलक्षण पद हैं, तातैं इनमैं अनंतानंत गुणनिका अन्तर्भाव जाननां। या विशेषण करि आत्माकै ज्ञानादि गुणनिका अत्यन्त विच्छेद है सो मुक्ति है, या प्रकार कहनेवारे नैयायिक वैशेषिक जे हैं तिनका अभिप्राय प्रति उत्तर कियो। भावार्थ;—नैयायिकवैशेषिक मतवारे द्रव्यनैं निर्गुण कहै हैं ताका इहां अष्ट गुण आदि अनंतगुणसहित कहि निराकरण कीया। बहुरि सिद्ध कैसेक हैं, कृतकृत्य हैं, कृतकृत्य

कहिये प्राचीन सकल कर्मका क्षय कर चुके, अर आगामी कर्मका कारण अनुष्ठानादिक कृत्य जे हैं तिनहैं भी करि छोड़ि दिये, ते कृतकृत्य हैं। या विशेषण करि ईश्वर सदामुक्त भी जगतके रचबामें क्रिया आदरपणा करि अकृतकृत्य है, या प्रकार कहनेवारे ईश्वर सृष्टिवादके प्रश्न जे हैं तिनहैं निराकरण किये। फेर सिद्ध कैसेक हैं, लोकाग्रनिवासी हैं, लोक कहिये जीवादिक पदार्थ जा विषै देखिये सो लोक है। या प्रकार लोकत्रयकी रचनाका अग्रभाग मैं तनुवातके अन्तके विषैं निवास करनेवारे हैं, जो वै कर्मक्षयके क्षेत्रतैं ऊपरि ही कर्मक्षयके अनंतर उर्द्धगमन स्वभावपणांतैं गमन करै हैं, तथापि लोकके आगैं गमन सहकारी धर्मास्तिकाय-का अभावतैं लोककै ऊपरि नहीं गमन करै हैं, या कारणतैं यो लोकाग्रनिवासीपणूं ही सिद्धनिकै योग्य है, अर लोकाग्रनिवासी-पणूं नहीं मानिये तौ लोक अलोकका विभागको अभाव सिद्ध होय। या विशेषण करि आत्माका उर्द्धगमनस्वभावपणातैं मुक्त अवस्थामें भी कहूं ही विश्रामका अभावतैं ऊपरि ऊपरि गमन है या प्रकार कहने वारा मंडलिमततैं अत्यन्त अस्त कियो ॥ ६७॥

अबैं न्याय व्याकरणसिद्धांतरूप तीन विद्याके स्वामी त्रैवि-द्यदेव माधवचन्द्रनामा मुनीश्वर नेमिचन्द्रसिद्धांतीके शिष्य जे है ते अष्टविधकर्मविकलत्वादिक सप्त विशेषणनिका अभिप्राय जनावनें निमित्त कहै हैं।

सदसिवसंखो मक्कडि बुद्धो णइयायियोय वे सेसी।

ईसर मंडलिदंसण विदूसणट्ठं कयं एदं ॥ १ ॥

संस्कृत ।

सदाशिवः सांख्यः मस्करी बौद्धः नैयायिकः च वैशेषिक ईश्वरः मंडलिक दर्शन विदूषणार्थं कृतं इदम् ॥ १ ॥

अर्थ,—सदाशिव, सांख्य, मस्करी, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, ईश्वर, मंडलिक, इनि आठूँ मतनिके दूपण दिखावने निमित्त ये सप्त विशेषण सिद्धपदके दिये है ॥

अब इनि आठू मतनिका अभिप्रायकू जनावने वारा श्लोक,

सदाशिवः सदाकर्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम् ।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम् ॥ १ ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं तमीशानो मंडलीचोर्ध्वगामिनम् ॥ २ ॥

अर्थ,—वा सिद्धस्वरूपनै सदाशिव तौ सदा कर्मरहित कहै है, अर साख्य मुक्तजीवनै सुखरहित कहै है, अर मस्करी निश्चयकरि मुक्तजीवनिकै फेरि संसारमे आगमन मानै है, अर बौद्ध क्षणिक कहै है, अर यौग निर्गुण मानै है, अर ईशान कृतकृत्य मानै है, अर मंडली ऊर्द्धगमन मानैं है ॥

तथा अमृतचन्द्रजी कृत तत्वार्थसारमै सिद्धलक्षणकौ श्लोक,—

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम् ।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ,—सिद्धनिकै संसारके विषयनितै रहित अविनाशी सुख है, यातै ही परम ऋषिगण जे है ते अव्याबाध परम कहै है ॥८

चौपई।

त्यागि उपाधि भये गुनइद्ध,
सच्चित् आनंद घनमय सिद्ध।
होत कृतारथ आप स्वमेव,
मोक्ष स्वरूप कह्यो इम देव॥ १॥

॥ इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जन-
बोधके सम्यग्दर्शनोद्योतकनाम्नि प्रथमकांडे
ॐकारपद्धति मंगलाचरण वक्ताश्रोताकथा
लक्षण मोक्षस्वरूपवर्णनो नाम
प्रथमोल्लासः॥

श्रीरस्तु।

अथ मोक्षमार्गस्वरूपं लिख्यते;—

छन्द दोहा।

सम्यग्दर्शनज्ञानयुत, चारितको समुदाय।
कह्यो मार्ग जिन मोक्षको, नमूं ताहि शिरनाय॥१॥

प्रश्न;—मोक्षको स्वरूप कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो, परन्तु वा परम पुरुषार्थरूप मोक्षको मार्ग भी कहौ।

उत्तररूप पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं श्लोक,—

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम् १५

अर्थ,—जो विपरीत श्रद्धाननैं दूरि करि निजतत्त्वमैं भले प्रकार निश्चय करि वा निजतत्त्वतैं नहीं चलायमान होनां सो ही

यो पुरुषार्थसिद्धिको उपाय है ॥ १५ ॥

भावार्थ—परभावमे निज भावरूप मिथ्या श्रद्धान जो है ताहि दूरि करि निजभावनै पिछाणि वामैं स्थिर रहनां है सो मोक्ष-का उपायरूप मार्ग है ॥ १५ ॥

तथा,—

अनुसरतां पदमेतत्करंबिताचारनित्यनिरभिमुखा ।
एकांतविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः॥१६॥

अर्थ;—ये पूर्वोक्त पद जो आत्मतत्त्व, तानै अनुसरण करता मुनि जेहैं तिनकी पाप पुण्य रूप कर्बुरित कहिए मिल्या हुवा-गृहस्थाचारतैं नित्य परान्मुख ऐसी एकांतविरति रूप अलौकिक प्रवृत्ति है ॥ १६॥

तथा,—

बहुशः समस्तविरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृह्णाति ।
तस्यैकदेशविरतिः कथनीयानेन बीजेन ॥ १७ ॥

अर्थ—बाहुल्यतातैं समस्तविरतिरूप चारित्र कहिवायोग्य है, अर जो कदाचित् शिष्य वा समस्तविरतिरूप चारित्रनै नहीं ग्रहण करै तौ वाकूं एकदेशविरतिरूपचारित्र वाही समस्तविरतिरूप बीज करि कहवा योग्य है ॥ १७ ॥

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्म्ममल्पमतिः ।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्॥ १८ ॥

अर्थ;—जो अल्पबुद्धि मुनि यतिधर्मनै पूर्वें बिनां कह्यां गृहस्थ-धर्म नै उपदेश करै है, ताकूं भगवतका प्रवचनमैं दंडको स्थान धदिखायो है ॥ १८ ॥

तथा,—

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्सहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि संप्रतृप्तः प्रतारितोऽनेन दुर्मतिना ॥ १९॥

अर्थ—यातै या दुर्बुद्धीगुरुनै अनुक्रमहीन कथन करि सर्वोत्कृष्ट अति उत्साहमान शिष्यनै भी हीनस्थानमे ही भलै प्रकार अत्यत तृप्त कियो, सो शिष्य अत्यंत दूर ठिग्यो गयौ।

भावार्थ—जा समय शिष्य धर्म ग्रहण करनेकै सन्मुख भयो कि तीव्र वैराग्यरूप परिणामको धारी भयो, वा समय सर्वोत्तम साक्षात् मोक्षको कारण मुनिधर्म तौ सुनायो नही, अर परंपराय मोक्षको कारण श्रावक धर्म सुनायो, तदि अज्ञातशिष्य वाहीकूं मुख्य धर्म मानि ग्रहण कियो, तातै ठिग्यो गयो ॥१९॥ या वचनतै प्रथम सर्वदेश पीछै एकदेश उपदेश देवो योग्य है।

तथा—

एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति॥२०॥

अर्थ,—या प्रकार सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप त्रितयात्मक एक मोक्षमार्ग है, सो गृहस्थनिकूं भी यथाशक्ति निरंतर सेवन करने योग्य है ॥ २० ॥

या वचनतै, यथाशक्ति रत्नत्रय ही सेवनीक है, वाही मोक्षमार्गको लक्षण उमास्वामी कहहै—

सूत्र—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।

अर्थ—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन

तीननिकी एकतारूप मोक्षमार्ग है ।

तथा पूज्यपादस्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिनामा टीका—

सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दः व्युत्पन्नो वा। अंचतेः क्वौ समंचतीति सम्यगिति । कोऽस्यार्थः प्रशंसा । सप्रत्येकँ परिसमाप्यते; सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्रमिति । एतेषां स्वरूपं लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्यामः, उद्देशमात्रं त्विदमुच्यते;—भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणं । येन येन प्रकारेण जीवादयःपदार्थाः व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानं, मोहसंशयविपर्ययनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषण । संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रं, अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणं । यस्मादिति पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्रं वा दर्शनं । जानाति ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानमात्रं वा ज्ञानं । चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं । नन्वेवं स एव कर्त्ता स एव करणमित्यायातं, तच्च विरुद्धं । सत्यं ? स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथा विधानात्, यथाग्निर्दहति इंधनँ दाहकपरिणामेन । उक्तः कर्त्रादिसा-

धनभावः पर्यायपर्यायिणोरेकत्वादनेकत्वं प्रत्यनेकांतोपपत्तौ स्वातंत्र्यपारतंत्र्यविवक्षोपपत्तेरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुद्ध्यते, अग्नौ दहनादिक्रियायाः कर्त्रादिसाधनभाववत् । ज्ञानग्रहणमादौ न्याय्यं दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात्, अल्पाक्षतरत्वाच्च । नैतद्युक्तं, युगपदुत्पत्तेः । यदास्य दर्शनमोहस्योपशमात् क्षयात् क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्यग्दर्शनपर्यायेणाविर्भवति, तदैव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वकं मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चाविर्भवति, घनपटलविगमे सवितुः प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत् । अल्पाक्षतरत्वादभ्यर्हितं पूर्वं निपतति, कथमभ्यर्हितत्वं ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् । चारित्रात्पूर्वं ज्ञानं प्रयुक्तं तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य । सर्वकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः, तत्प्राप्त्युपायो मार्गः । मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तमार्गभावज्ञापनार्थं, तेनव्यस्तमार्गत्वनिवृत्तिःकृता भवति । अतः सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य मार्गो वेदितव्यः ।

अर्थ;—इहां सम्यक् असा पद अव्युत्पन्नपक्षकहिये शब्दशास्त्र आदि ग्रंथ जाकै स्फुरायमान नही है ताकी अपेक्षा तो रूढि

है। बहुरि व्युत्पन्न पक्ष अपेक्षा "अच" धातु गति अर्थ तथा पूजन अर्थ विषैं प्रवर्त्तै है ताका रूप है, अर कर्त्ता अर्थ विषैं क्विप् प्रत्यय भया है तातैं भले प्रकार प्राप्त होय सो सम्यक्, ऐसा निरुक्तिका अर्थ होय है। प्रश्न—याका अर्थ इहां कहा भया। उत्तर—इहां प्रशंसा अर्थ ग्रहण किया है, अर यो सम्यक् पद तीना ऊपरि लगायें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ऐसा भया, अर इन तीननिका स्वरूप लक्षणत तथा प्रकारतैं आगैं विस्तार करि कहैंगे, अर इहां नाममात्र कहिये है कि पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान है विषय जाका ऐसे श्रद्धानके समहके अर्थि दर्शनकै सम्यक् विशेषण है। बहुरि जिसर प्रकार करि जीवादिक पदार्थ व्यवस्थित हैं तिस तिस प्रकार करि निश्चय जांनना सो सम्यग्ज्ञान है, याकै सम्यक् विशेषण विमोह, सशय विपर्ययरूप दोषकी निवृत्तिकै अर्थि है। बहुरि ससारके कारण जे मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग इनतैं भये जे आश्रव ब ध तिनकी निवृत्ति प्रति उद्यमी सम्यग्ज्ञानी पुरुषकै कर्मग्रहणनैं कारणभूत क्रियाका त्याग सो सम्यक् चारित्र है, तथा कर्मनिका आदान कहिये ग्रहण ताके निमित्तरूप क्रियाका त्याग सो सम्यक्चारित्र है। भावार्थ—किंचित् कर्मग्रहणके कारण परिणामविशेषका भी त्याग चौदहां गुणस्थानके अंतसमयवर्ती है सो सम्यक् निवृत्तिरूप चारित्रहै ऐसाभी अर्थहै, याकै अज्ञानपूर्वक चारित्रकी निवृत्तिकै अर्थ सम्यक् विशेषण है। तातैं इन तीननिकी निरुक्ति ऐसे है,— "पश्यति" कहिये श्रद्धान करै सो दर्शन है, इहा तौ कर्तृसाधन है तहां करनेंवारा आत्मा है सो ही दर्शन है। बहुरि "दृश्यते अनेन दर्शनं" कहिये जाकरि श्रद्धान करिये सो दर्शन, इहां करणसाधन

भया, तहां भी श्रद्धानपरिणामरूप आत्मा ही दर्शन है। बहुरि "दृष्टि-मात्रं दर्शनं" कहिये श्रद्धान करने मात्र है सो दर्शन है, इहां भावसाधन भया, इहां भी दर्शनक्रियारूप आत्माहीकूं दर्शन कह्या। ऐसे ही "जानाति ज्ञानं" कहिये जाणै सो ज्ञान, इहां कर्तृत्व साधन भया, इहां भी जानने वाला आत्मा ही कूं ज्ञान कह्या। बहुरि "ज्ञायते अनेन ज्ञानं" कहिये जाकरि जानिये सो ज्ञान, इहां करणसाधन भया, तहाँ भी जानन परिणाम रूप आत्मा ही है। बहुरि "ज्ञानमात्रं ज्ञानं" कहिये जानने मात्र सो ज्ञान है, यहां भाव साधन भया, यहां भी जानन क्रिया रूप आत्माही कूं ज्ञान कह्या। बहुरि "चरतीति चारित्रं" कहिये आचरण करै सो चारित्र, ऐसै तो कर्तृ साधन भया, जातैं आत्मा ही चारित्र है। बहुरि "चर्यते अनेन इति चारित्रं" कहिये जाकरि आचरण करिये सो चारित्र है, तहां भी आचरण परिणाम रुप आत्मा ही है, ऐसे करण साधन भया। बहुरि "चरण मात्रं चारित्रं" कहिये आचरण मात्र सो चारित्र है ,इहां भाव साधन भया, इहां भी आचरने रूप आत्मा ही कूं चारित्र कह्या। ये कथन अभिन्न कारक अपेक्षा है। इहा सर्वथा एकाती तर्क करै है क्रिया मै सो ही कर्त्ता सोही करण आया सो विरुद्ध है,ताकूं कहिये है कि तेरे अभिप्रायमैं तैनैं कह्या सो सत्य है क्योंकि तेरै सर्वथा एकांत पक्ष है, तातै विरोध आवै है स्याद्वादीनकै निज परिणाम परिणामीकै भेद विवक्षा होतां संता पूर्वोक्त कहनेतै विरोध नाही है, जैसै अग्नि दाहकपरिणाम करि इंधननैं दग्ध करै है तैसै ही पर्याय पर्यायीकै एकपणांत अनेकपणां प्रति अनेकांतकी उत्पत्ति होता संतां कर्त्ता आदि साधन भाव कह्या है, अर अग्निकैविषैं दहनादि क्रिया करि कर्त्ता आदि सा-

तद्भवमोक्षगामी उत्तम देहके धारक, इहां उत्तम पद चरम देहका विशेषण जाननां, अर संख्येयवर्षायुष कहिये संख्यात वर्षकी आयुके धारक भोगभूमिया इनकी आयुका अपवर्त्तन नही होय है॥५३॥ या वचनतै चरमशरीरीनिकी आयुका अपवर्त्तन तो होता नाही, अर नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीकर्मकी स्थिति आयुपर्यंत रहनेका नियम है, तातै अवस्थान है ही, अर जिनकै आयुकर्मतै अधिक नाम कर्म गोत्रकर्म्म वेदनीकर्मकी स्थिति रहजावै है ते दंड कपाट प्रतर लोकपूरण क्रिया करै है। तातै केवलीका अवस्थान रहनां योग्यहै।

प्रश्न—तीनूं अघातियाका नाश क्यूं नही भया।

उत्तर—चारित्रमैं अंतर्भूत तप है सो कर्म्मकी निर्जरानै कारण है क्योंकि "तपसा निर्जरा च" ऐसा हुकम है अर तपमै मुख्य ध्यान है, अर ध्यानको लक्षण एकाग्र चिंतानिरोध है सो चित्त निरोधनादिक परिणाम बारमां गुणस्थान पर्यंत है, तातैं आगानै ध्यान नाही अर ध्यान विना कर्मकी निर्जरा नाही तात अवशेष कर्म आयुकी स्थिति पर्यंत रहै है।

प्रश्न—शुक्लध्यानके दोय चरण केवलीके कहे है सो कैसे है।

उत्तर—इहां ध्यानका कार्य कर्मक्षय देखि कार्यकै विषै कारण का उपचार करि कह्या है। सो ही आदिपुराणका इकवीशमांपर्वमै,—

श्लोक,—

छद्मस्थेषु भवेदेतल्लक्षणं विश्वदर्शिनाम्।
योगाश्रवस्य संरोधे ध्यानत्वमुपचर्यते॥ १० ॥

अर्थ—एतल्लक्षणं कहिये पूर्वोक्त लक्षण ध्यान छद्मस्थकै विषै है, अर समस्तदर्शी भगवानकै योगनिका अर आश्रवनिका संरोधन होता संतां ध्यान पणूं उपचारतै कहिये है॥ १० ॥ अर

या सूत्रकी सामर्थ्यतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र संसारके कारण है ऐसा भी सिद्ध होय है ॥

तथा कुंदकुंदस्वामीकृत समयसारमै गाथा,—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥१५७॥

संस्कृतच्छाया।

जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमः ज्ञानम्।
रागादिपरिहरणं चारित्रं एषः तु मोक्षपंथाः ॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थनिका श्रद्धान भाव है सो सम्यक्त है, अर तिनि पदार्थनिका जानन भाव है सो ज्ञान है, अर तिनि पदार्थनिमै रागादि विभाव भावनिका परिहार है सो चारित्र है। यो ही त्रितयात्मक एक मोक्ष मार्ग है॥

या त्रितयात्मक मोक्षमार्गक द्विविधपणों पंचास्तिकायमै अस कह्यो है,—　　गाथा।

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं तहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥७२॥
दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति सेवितव्यानि।
साधुभिः इदं भणितं तैः तु बंधः वा मोक्षः वा ॥७२॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र जेहै ते मोक्षके मार्ग है, तातै सेवन करणे योग्य है, अर यो मार्ग साधुनि करि भाषित है, अर या मार्ग करि बंध भी है तथा मोक्ष भी है॥

टीका—दर्शनज्ञानचारित्राणां कथंचिद्बंधहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य

साक्षान्मोक्षहेतुत्वद्योतनमेतत् । अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या संवलितानि कृशानुसंवलितानीव घृतानि कथंचिद्विरुद्धकारणत्वरूढेर्बंधकारणान्यपि भवंति । यदा तु समस्तपरसमयप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपतया स्वसमयप्रवृत्त्या संगच्छंते तदा निवृत्तकृशानुसंवलितानीव घृतानि विरुद्धकार्यकारणभावाभावात् साक्षान्मोक्षकारणान्येव भवंति, ततः स्वसमयप्रवृत्तिनाम्नो जीवस्वभावनियतचरितस्य साक्षान्मोक्षमार्गत्वमुपपन्नम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र, जे है तिनक कथंचित् बंध कारण पणांका देखवा करि जीवस्वभावमैं स्थिर असा चारित्र साक्षात् मोक्षकारणपणूं यो गाथामें प्रकट कियो । निश्चय करि ये दर्शन ज्ञान चारित्र कितनांक स्वभावमात्रकरिही परसमयकी प्रवृत्ति करि मिल्या हुवा, अग्नितैं मिल्या हुवा, घृतकी नांई कथंचित विरुद्ध कारणपणांकी रूढितैं बंधका कारण भी है, अर जा समय समस्त परसमयमैं प्रवृत्तिकी निवृत्ति रूप स्वसमयमैं प्रवृत्ति करि प्रवर्तै, ता समय दूरि भयो है अग्निको मिलाप जाकै असा घृत की नाईं विरुद्ध कार्य कारण पणांका अभावतैं साक्षात् मोक्षको कारण ही है, तातैं स्वसमयप्रवृत्तिनामा स्वभावमें स्थित चारित्रकै साक्षात् मोक्षमार्ग पणूं उपजै है ॥ ७२ ॥

तथा,—

अएणाणादो णाणी जदि मएणदि सुद्धसंपओगादो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं परसमयरदो हवदि जीवो ।७३।
अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्ध-संप्रयोगात् । भवति इति दुःखमोक्षं परसमयरतः भवति जीवः ॥७३॥

टीका; — सूक्ष्मपरसमयस्वरूपाख्यानमेतत्— अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तित्वभावानुरंजिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः। अथ खल्वज्ञानलववेशाद्यदि यावद् ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्त्तते, तदा तावत्सोपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते । अथ न किं पुनर्निरंकुश रागकलिकलंकितांतरंगवृत्तिरितरो जन इति ॥७३॥

अर्थ—या गाथामै सूक्ष्म परसमयस्वरूपका व्याख्यानहै । इहाँ सिद्धि ताके साधनीभूत अर्हदादि भगवान् जे हैं तिनकै विषैं भक्ति भाव करि अनुरागित चित्तकी वृत्तिको नाम शुद्धसंप्रयोग है, तातै निश्चय करि जो जितनै काल ज्ञानवानभी अज्ञान अशका प्रवेशतै शुद्धसंप्रयोगतैं मोक्ष होय है, ऐसा अभिप्राय करि खेद खिन्न हुवो संतो शुद्धसंप्रयोगमै प्रर्वत्तै तौ तितनै काल ज्ञानवान भी राग अंशका सद्भावतै परसमयरतही कहिये है तौ निरंकुश राग रूप कालिमा करि कलंकितहै अंतरग जाको ऐसो अन्यपुरुष परसमयरत कैसै नहीं कहिये ॥ ७३ ॥

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्म क्खयं कुणादि ॥७४॥
अर्हत्सिद्धचैत्यप्रवचनगणज्ञानभक्तिसंपन्नः।
बध्नाति पुण्यं बहुशः नहि सः कर्मक्षयं करोति ॥७४

अर्थ—अरहंत सिद्ध जिनप्रतिमा प्रवचन मुनिसमूह ज्ञान इनकी भक्ति करि संयुक्त पुरुष बहुत पुण्यको बंध कर है, अर वो पुरुष प्रकट कर्मको क्षय नही करै है ॥ ७४ ॥

टीका—उक्तशुद्धसंप्रयोगस्य कथंचिद्बंधहेतुत्वेन मोक्षमार्गनिरासोऽयं। अर्हदादिभक्ति संपन्नः कथंचिच्छुद्धसंप्रयोगोपि सन् जीवद्रागलवत्वात् शुभोपयोगतामजहन् बहुशः पुण्यं बध्नाति नखलु सकलकर्मक्षयमारभते, ततः सर्वत्र रागकणिकापि परिहरणीया परसमयप्रवृत्तिनिबंधनत्वादिति ॥ ७४ ॥

अर्थ—कह्यौ जो शुद्ध संप्रयोग ताकै कथंचित बंध कारणपणां करि मोक्ष मार्ग को निरास या गाथा मैं है। अरहंतादिकनकी भक्तिसयुक्त शुद्धसंप्रयोगी हुवो संतो जीव कथंचित विद्यमान रागका अंशपणांतैं शुभोपयोगको नही छांडतो संतो बहुत पुन्य बांधै है, अर निश्चय करि सकल कर्मक्षय नही करै है, तातैं सर्व पदार्थनिमै रागकी कणिका भी परसमयमैं प्रवृत्ति का कारणपणांत त्यागव योग्य है ॥ ७४ ॥

तथा भाव पाहुडमैं—

गाथा—अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुड जीवो। जाणइ तं सण्णाणं चरदि हु चारित्त मग्गोत्ति ॥३१॥ आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः। जानाति तत् सद्ज्ञानं चरति खलु चारित्रं मार्ग इति ॥३१॥

अर्थ—आप आपकै विषै प्रीतिवान होय सो जीव प्रकट सम्यग्दृष्टी है, अर वा सम्यग्दर्शनरूप आत्मानै जाणै सो सम्यग्ज्ञान है, अर वाही श्रद्धानज्ञानस्वरूप आत्माकै विषैं स्थिर रहै सो सम्यक् चारित्र है, अर तीननि का समुदायरूप एक मोक्ष मार्ग है ॥३१॥

तथा आदिपुराण का चौवीशमां पर्वमै व्यवहार सम्यग्दर्शनका लक्षणरूप श्लोक,—

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं प्रथमं मुक्तिसाधनं ॥११८॥

अर्थ—आप्त आगम पदार्थ जे है तिनको परम हर्ष करि श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन है, अर वो सम्यग्दर्शन ही प्रथम मोक्ष को साधन मान्यूं है ॥ ११८ ॥

ज्ञानं जीवादिभावानां याथात्म्यस्य प्रकाशकम् ।
अज्ञानध्वांतसंतानप्रक्षयानंतरोद्भवम् ॥११९॥

अर्थ—यथावत जीवादिक पदार्थनिको प्रकाश करनेवारो अज्ञान अंधकार संतानका नाशकै अनंतर उत्पन्न होय सो ज्ञान है ॥ ११९ ॥

श्लोक—माध्यस्थ्यलक्षणं प्राहुश्चारित्रं वितृषो मुनेः।
मोक्षकामस्य निर्मुक्तचेलस्याहिंसकस्य तत् ॥१२०॥

अर्थ—मोक्षका वांछक, अर त्यागे है वस्त्र जानैं, अर अहिंसक, अर गई है तृष्णा जाकै ऐसा मुनीश्वरकै इष्ट अनिष्टमैं रागद्वेष का अभावरूप माध्यस्थ्य लक्षण है सो चारित्र कहे है ॥ १२० ॥

त्रयं समुदितं मुक्तेः साधनं दर्शनादिकम्।
नैकांगविकलत्वेऽपि तत्स्वकार्यकृदिष्यते ॥ १२१ ॥

अर्थ—सो दर्शनादिक तीन रूप एक मुक्तिकौ साधन भलै प्रकार कह्यो है, सो एकांगविकलपणानैं होतां संतां भी निज कार्य को कर्त्ता नहीं इष्ट करिये है ॥ १२१ ॥

सत्येव दर्शने ज्ञानं चारित्रं च फलप्रदं।
ज्ञानं च दृष्टिसच्चर्यासान्निध्ये मुक्तिकारणम् ॥१२२॥

अर्थ—सम्यग्दर्शननैं होतां संता ही ज्ञान तथा चारित्र फलदायक होत है, अर ज्ञान भी सम्यग्दर्शन सम्यक् चारित्रकी निकटतानैं होतां संतांही मुक्तिनै कारणभूत है ॥ २२२ ॥

चारित्रं दर्शनज्ञानविकलं नार्थकृन्मतं।
प्रपातायैव तद्धि स्यादंधस्येव विवल्गनं ॥१२३॥

अर्थ—दर्शन ज्ञानविकल चारित्र भी प्रयोजनको कर्ता नहीं मान्यू है, वोविकचारित्र निश्चय करि उलटो संसार पतनकै अर्थि ही है, अंधकी नांई दौड़ना है ॥ १२३ ॥ श्लोक

त्रिष्वेकद्वयविश्लेषादुद्भूता मार्गदुर्नयाः।
षोढा भवंति मूढानां तेऽप्यत्र विनिपातिताः॥१२४॥

भाववानकै अभेदहै यातै तत्व कहिये यथावस्थित वस्तु सो ही अर्थ कहिये निश्चय कीजिये सो तत्वार्थ है, अभेदविवक्षातै ऐसा भी अर्थ है। अर तत्वार्थका श्रद्धान कहिये प्रतीति होय ताकूं तत्वार्थ श्रद्धान कहिये, अर याहीकूं सम्यग्दर्शन मानवो योग्य है, अर तत्वार्थनाम जीवादिक षट् पदार्थनिका है सो व्याख्यान करने योग्य है। प्रश्न—दृशि धातुकै आलोकार्थ पणातै श्रद्धान अर्थ की गति नहीं उपजैहै उत्तर—धातुनिकै अनेक अर्थ पणांतै दोप नाहीं। प्रश्न—प्रसिद्ध अर्थका त्याग काहेतै किया। उत्तर—मोक्षमार्गके प्रकरणतै प्रसिद्ध अर्थका त्याग किया, क्योकि तत्वार्थश्रद्धानरूप आत्म परिणामही मोक्षको साधन संभवैहै भव्यजीवका विषय पणातै। अर चक्षु प्रकाश आदि निमित्तक आलोक जो है सो सर्व संसारी जीवनिकै साधारण पणातै समान है तातै याका मोक्षमार्गमै कहना युक्त नांही। प्रश्न—अर्थश्रद्धान ऐसाही क्यूं न कह्या। उत्तर—ऐसै कहे सर्व अर्थनिका ग्रहणको प्रसंग आवैहै क्योंकि अर्थनाम धनका भी है, अर्थनाम प्रयोजनका भी है, तथा सामान्य अर्थका भी नाम अर्थ है, तिनका भी श्रद्धान सम्यग्दर्शन ठहरै। तातै तिनतै भिन्न दिखावनैके अर्थि अर्थका तत्वविशेषण किया है। प्रश्न—तत्व श्रद्धान ऐसा ही क्यूं नहीं कह्या। उत्तर—ऐसै कहे सर्वथा एकांतवादीनि करि कल्पिततत्वका प्रसंग आवै, तथा तत्वशब्द भाववाची है तातै भावमात्रका प्रसंग आवै। तथा केई वादी सत्ताकूं तथा द्रव्यत्वकूं तथा गुणत्वकूं तथा कर्मत्व आदिकूं ही तत्व कल्पै है तिनका प्रसंग आवै। अथवा एक पणांकू तत्व कहैहै ताका प्रसंग आवै तथा सर्वपदार्थनिकै ऐक्यताका प्रसंग आवै क्योंकि सर्व वस्तु एक पुरुषही है इत्यादिक कितनेक कल्पना करै है। तातै अ-

व्यभिचारकै अर्थ तत्व तथा अर्थदोऊ शब्दनिकाही ग्रहण है। भावार्थ;-सर्वएकांतीनितै भिन्न अनेकातात्मक वस्तुका स्वरूप है अैस जनावनेके अर्थ तत्वार्थका ग्रहण किया है अैसा तत्वार्थका श्रद्धान रूप सम्यक्दर्शन है। सो दोय प्रकार है सो सराग वीतराग विपय भेदतै है, एक सरागसम्यक्त है, दूसरा वीतराग सम्यक्त है। तहाँ प्रशम संवेग अनुकपा आस्तिक्य आदि भावनि करि प्रकट होय सा तो सराग सम्यग्दर्शन है, अर प्रशमादिकनि का भिन्न भिन्न लक्षण अैसै है कि जहा अनतानुवधी कपायकी चौकड़ी संबधी रागद्वेषादिकका तथा मिथ्यात्व सम्यकमिथ्यात्वका उदय नांही होय ताकूँप्रशम कहिये।बहुरि पचपरिवर्त्तनरूप संसारतै भय उपजनां ताकू सवेग कहिये। बहुरि त्रस थावर प्राणोनिकै विषै दयाका होना ताकू अनुकंपा कहिये। बहुरि जीवादिक तत्वनिविषै युक्ति अर आगम करि जैसा का तैसा अगीकार करनो ताकू आस्तिक्य कहिये। ए च्यार चिन्ह सम्यग्दर्शनिकू जनावै है क्योकि ये सम्यग्दर्शनके कार्य है। तातै कार्यकरि कारण का अनुमान होय है। तहां आपके तौ स्वसवेदनतै जाने जाय है, अर परके काय वचनकी क्रिया विशेपतै जाने जाय है क्योकि सम्यग्दर्शन विनां मिथ्यादृष्टी कै अैसे चिन्ह नाही होय है।

प्रश्न—क्रोध का उपशम तौ मिथ्यादृष्टी कै भी होय है, ताकै भी प्रशम आवै है।

उत्तर—मिथ्या दृष्टीनिकै अनतानुबधी मान का उदय है, तातै अपने मानका निर्वाहकै अर्थ क्रोधकौ प्रगट नही करै है, सो जैसे द्वीपायन मुनि कै सब लोक कौ क्रोधादिक का उपशम बहुत काल तक दीखता रह्या, तथापि मानभंग के समयमैं क्रोध प्रगट भया ही,

अर सर्वथा एकात तत्व मिथ्या है, ताविषै सत्यार्थका अभिमान है सो ही मिथ्यात्व है, तातैही एकातीनिकै अनेकांतात्मक तत्वविषै द्वेष का अवश्य सद्भाव है। बहुरि स्थावर जीवनिका घात नि:शंकपणैं करै है तातै उनके प्रशम भी नांही है,अर संवेग अनुकंपा भीनाही है।

प्रश्न—स्थावर जीवनि का घात तौ सम्यग्हष्टीकै भी होय है, तातै सम्यग्हष्टीकै भी अनुकंपा कैसै कहिये।

उत्तर—सम्यग्हष्टीकै जीवतत्वका ज्ञान है, तातैं अज्ञानतै तौ घात विषै प्रवृत्ति नाही, परन्तु चारित्र मोह के उदयतै अविरत प्रमादतै घात अपने योग्य विषयनि निमित्त होय है, तहां भी अपनां अपराध मानै हैअर अनर्थ दंडरूपनहीं प्रवर्त्तै है,अर ऐसाभी नहीं मानै है कि ये जीव ही नाही है तथा जीवनिके घाततै कहा विगाड़ है अर जो ऐसा मानै तो मिथ्यात्व का सद्भाव ही है।

प्रश्न—मिथ्याहष्टीकै भी अपनै मानें तत्वविषै तो आस्तिक्यता है।

उत्तर—मिथ्याहष्टी तत्वकू सर्वथा एकातरूप श्रद्धान करै है सो मिथ्या है, तातैं ताविषै आस्तिक्यता है सो मिथ्यात्व की ही आस्तिक्यता है, सम्यक्त्व तो कह्या जाय नांही, अर प्रत्यक्षादि प्रमाण करि बाधित है कि जैसै घृत पौष्टिक भी है अर घातक भी है, रोचकभी है अर क्षुधाकूं बंध करनेवाला भी है, याकू एक गुणयुक्त ही कहै सो प्रत्यक्ष बाधित है। तातै जे सर्वथा एकात श्रद्धान करै है ते अरहंत के मत तै बाह्य है, मिथ्याहष्टी है, नास्तिक है। बहुरि—

प्रश्न—जे सम्यग्दर्शन के चिन्ह प्रशमादिक कहे तिनकूं आपके स्वसंवेदन गोचर कहे, तिनतै सम्यक्त्वका अनुमान करनां कह्या तौ तत्वार्थश्रद्धानहीं कूॅ स्वसंवेदन गोचर क्यूॅ नहीं कह्या ?

उत्तर—जो तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है सो दर्शनमोहके उपशम क्षयोपशम क्षयतै प्रकट भया आत्म स्वरूप का लाभ है सो यह छद्मस्थकै स्वसंवेदन गोचर नाही अर प्रशमादिक स्वसवेदनगोचर है, तातै इनतै सम्यग्दर्शनका अनुमान करनाकह्या है । अर ये प्रशमादिक अभेदविवक्षा तै सम्यग्दर्शनतै अभिन्न है । तथापि भेद विवक्षा तै भिन्न है । जातै ये सम्यक्‌दर्शन के कार्य है तातै कार्य तै कारण का अनुमान करणां कह्या है । अर केई वादी सम्यग्ज्ञानही कूं सम्यग्दर्शन कहै है, तिनप्रति ज्ञानतें भेद जनावने के अर्थि सम्यग्दर्शनके कार्य प्रशमादिक जुदे कहे है तिनकरि सम्यग्दर्शनकूं सम्यग्ज्ञानतै जुदा जानिये ।

इहा कोई कहै है कि प्रशमादिक चिह्न मिथ्यादृष्टी का अर सम्ययग्दृष्टी का कार्य आदि व्यवहारमै समान दीखै तहां कैसे निर्णय होय । ताका उतर–आप कै जैसे दीखै तैसेपरकै भी परीक्षा करि निर्णय करना । बहुरि वीतराग सम्यग्दर्शन है सो अपने आत्मा के विशुद्ध परिणामतै ही गम्य है । तहां प्रशमादिक का अधिकार नाहीं । ऐसे तत्वार्थ श्रद्धानरूप दर्शन मोह रहित आत्माके परणाम है सो सम्यग्दर्शन है ।यातै केई अन्यवादी इच्छादिक कर्म के परिणाम कूँ सम्यग्दर्शन कहै है तिनिका निराकरण भया क्योकि कर्मका परिणाम कर्मके अभावरूप जो मोक्ष ताका कारण होयनाहीं यातैं ॥

तथा कुंदकुंदस्वामी कृत दर्शनपाहुडमें कहै है,—गाथा ।

छद्दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा ।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥१९॥
षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त तत्वा-

नि निर्दिष्टानि। श्रद्दधाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ—षटद्रव्य, नव पदार्थ, पंच अस्तिकाय, सप्त तत्व कहे है तिनका रूपनै श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी है ॥ १९ ॥ तथा—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहई।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ।२२॥
यत् शक्नोति तत् कुरुते यत् च न शक्नोति तत् न श्रद्दधाति। केवलिजिनैः भणितं श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो करनेकूं समर्थ होय सो तौ करै, अर जो करनेकूं नही समर्थ होय सो श्रद्धान करै। यातै श्रद्धान करते जीवकै केवली जिनेद्रनै सम्यक्त्व कह्यौ है ॥ २२ ॥ तथा––

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठु जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छादिट्ठी हवइ एसो ।२४।
सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरितः।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिर्भवति एषः ॥२४॥

अर्थ—स्वाभाविक उत्पन्न भया दिगंबर रूपनै देखि मत्सरता तै जो नही मानै है सो यो संयम सयुक्त है तौ हू मिथ्या दृष्टी ही है ॥ २४ ॥ गाथा।

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया हुंति ॥ २५ ॥

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानां।
ये गारवं कुर्वंति च सम्यक्त्वविवर्जिता भवंति ॥२५॥

अर्थ—जे पुरुष शीलसहित तथा देवनि करि वंदनीक ऐसा साधुनिका स्वरूपनै देखि गर्व करै है ते सम्यक्त रहित है ॥ २५ ॥

असंजदं ण वंदे वत्थविहीणो वि सो ण वंदिव्वो।
दुण्णि वि हुंति समाणा एगो विणसंजदो होदि॥२६॥
असंयतं न वंदे वस्त्रविहीनः अपि सः नवंदितव्यः।
द्वावपि भवतः समानौ एकोऽपि न संयतः भवति ॥
॥ २६ ॥

अर्थ—असंयमीनै नहीं वंदिये बहुरि भाव संयम रहित वस्त्र विहीन होय सो भी नहीं वदवे योग्य है। दोऊ ही समान है, इनि मै एक भी संयमी नहीं है॥ भावार्थ—देवनिकै वा गृहस्थनिकै तो असंयत गुणस्थानहै, अर परमहंसादिक वस्त्ररहित है। तातै कह्याहै कि दोऊ ही समान है क्योकि वै तौ बाह्य असंयमी है, वै अंतरग असयमी है यातै दोऊ ही वदवे योग्य नहीं है ॥

तथा चारित्रपाहुड मै, – गाथा

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराण ।
ते हुंति लल्ल मूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥
ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान् ।
ते भवंति पंगवः मूकाः बोधिः पुनर्दुलभा तेषाम्॥१२॥

अर्थ—जे आप तौ सम्यग्दर्शनकै विषै भ्रष्टहै अर सम्यग्दर्शन कै धारकनिनै अपने चरणनिमै पटकैहै कि नमस्कार करावै है ते

पांगुला गूंगा होय है कि एकेंद्रिय स्थावरमै उत्पन्न होय है, अर तिन कै फेरि रत्नत्रयकी प्राप्ति दुर्लभ होय है ॥१२॥

जे विपडंति च तेसिं जाणंता लज्ज गारव भएण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥ १३ ।

ये अपि पतंति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन।
तेषां अपि न अस्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानां ॥ १३ ॥

अर्थ—जे सम्यग्दृष्टी मिथ्यादृष्टीनिकूं जानते सते भी लज्जा करि गौरवता करि भयकरि नमस्कार करै है तिनकै भी रत्नत्रयकी प्राप्ति नही है, जातै मिथ्यादृष्टीनिकी अनुमोदना करहै तिनकै पाप कर्मका बंध होय है ॥ १३ ॥

तथा प्रवचनसारका चारित्राधिकारकै आगै चूलिकावर्णनमै, गाथा,—

परमणुपमाणं वा मुच्छा देहादिगेसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो-वि ॥ ८ ॥

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः।
विद्यते यदि सः सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोऽपि ॥ ८ ॥

टीका—बहुरि जा मुनिकै देहादिकनि विषै परमाणू मात्र भी मूर्छा है अर सर्वागमका ज्ञाता है तौ हू सिद्धि जो परमपद ताहि नहीं प्राप्त होय है, अर अनंत संसारमै ही वास करै है ॥ ८ ॥

टीका—यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतं भवद्भावि च स्वोचितपर्यायविशिष्टमशेषद्रव्यजातं जानंतमात्मानं जानन् श्रद्दधानः संयमयँश्चागमज्ञानतत्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येऽपि मनाङ्मोहमलोपलिप्तत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छोपरक्ततया निरुपरागोपयोगपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलंककीलिकाकीलितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्ध्यति, अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥८॥

अर्थ—जो हस्ततलमै प्राप्त भया आवलाकै समान किया सकल आगमका सारपणां करि भूत भविष्यत वर्त्तमान जो अपने योग्य पर्याय तिन करि विशिष्ट ऐसा समस्त द्रव्यनिका समूहनै जाणतो जो आत्मा ताहि जानतो, अर श्रद्धान करतो, अरु आचरण करतो, ऐसा आगमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान, चारित्र, जे है तिनका एकै काल सयोग होत सतै भी जा समय रंचमात्र मोहरूप मलका लिप्तपणातै शरीरादिकमै मूर्च्छाका रागपणा करि रागोपयोग परिणति रहित ज्ञानस्वरूप आत्मानै करि नही अनुभव करै है ता समय तावन्मात्र मोहमलकलंककी कीलिका करि कीले ऐसे पुरुष कर्मनिकरि नहीं छूटता सन्ता नहीं सिद्ध होय है ,यातै आत्मज्ञानशून्य आगमका ज्ञान तत्त्वार्थका श्रद्धान सयमका आचरणपणाको युगवत् पणोभी किंचित्कार्यकारी नही है ॥ ८ ॥

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जो विहोदि समणोत्ति। होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी ॥ ३६ ॥ गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येष कोऽपि भवति श्रमण इति। भवन् गुणाधरो यदि सः भवति अनंतसंसारी ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो मै श्रमण हूं गुणनिको आधार हूं ऐसा अभिप्रायत गुणतै अधिकको विनय नहीं चाहे है सो अनत संसारी है ॥

टीका—स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात् परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन् श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनंतससारयैपि भवति ॥ ३६ ॥

अर्थ—आप जघन्यगुणवान हुवो सतो मै हूँ श्रमणहूं ऐसा अभिप्रायतै गुणाधिक पर जे है तिनको विनय नहीं वाछतो सतो श्रामण्यपणां का अभिप्रायतै कदाचित् अनत संसारी ही होय है ॥ ३६ ॥ इत्यादि वर्णन या प्रकरणतै सर्व ही जानवायोग्य है ॥

तथा चारित्र पाहुड मै,—गाथा

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो। कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होई ॥ ४० ॥

कुत्सितधर्मेषु रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः। कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनः भवति॥४०॥

अर्थ—कुत्सित धर्ममें प्रीतिवान पुरुष कुत्सित पाषंडीनिकी भक्ति संयुक्त कुत्सित तप करते संते कुत्सित गतिके पात्र होय है ॥४०॥

तथा,—

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चल सवओ ।
सवओ लोय अपुज्जो लोउत्तरियम्मि चलसवओ॥४३॥
जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तः च भवति चलशवः ।
शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जीवरहित है सो मृतक है, अर दर्शनरहित है सो चालतो मृतक है सो लोकमैंअपूज्य है, अर लोकोत्तर जो परमार्थ ताकै विषै चालतामृतक मिथ्या दृष्टी अपूज्य है ॥ ४३ ॥

तथा मोक्षपाहुड मैं,—

गाथा—दंसण सुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं । दंसण विहीण पुरिसो ण लहइ तं मण इच्छियं लाहं ॥ ३८ ॥

दर्शनशुद्धः शुद्धःदर्शनशुद्धः लभते निर्वाणं ।
दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं मनः ईप्सितं लाभम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि शुद्ध है सो शुद्ध है, अर सम्यग्दर्शन शुद्ध पुरुष जो है सो निर्वाणनै प्राप्त होय है, अर सम्यग्दर्शनविहीन पुरुष जो है सो ता मनोवाञ्छित लाभनै नही प्राप्त होय है । भावार्थ—मोक्षनै नही प्राप्त होय है ।

तथा आदिपुराण का नवमपर्वमै,—श्लोक ।

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा ।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं तन्मूले ज्ञानचेष्टिते ॥ १२१॥

अर्थ—आप्त तथा आगम तथा पदार्थ जे है तिनको परम हर्ष करि श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन मान्यो है, अर सम्यग्दर्शन है मूल जिनका अैसे ज्ञान अर चारित्र है । भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञान चारित्र है ते कुज्ञान कुचारित्र नाम पावै है, सम्यग्ज्ञान सम्यक चारित्र तौ सम्यग्दर्शन हूवांही होय है ॥ १२१ ॥

तथा——

आत्मादिमुक्तिपर्यन्ततत्त्वश्रद्धानमंजसा ।
त्रिभिर्मूढैरनालीढमष्टांगं विद्धि दर्शनम् ॥ १२२॥

अर्थ—जीवनै आदि लेय मुक्ति पर्यन्त सप्त तत्वनिका श्रद्धान सो निश्चयकरि तीन मूढतारहित अष्ट अंगयुक्त सम्यग्दर्शन है ॥१२२॥

तथा,——

अपास्य लोकपाषंडिदेवतासु विमूढतां ।
परतीर्थ्यैरनालीढमुज्वलीकुरु दर्शनं ॥ १४१ ॥

अर्थ—लोकके विषै तथा पाषंडोनिकै विषै तथा देवतानिकै विषै मूढतानै दूर करिकै अन्यधर्मकरि दूरवर्त्ती जैसैं होय तैसै सम्यग्दर्शननै शुद्ध करहू । भावार्थ—लोकमूढता देव मूढता गुरुमूढतानै त्यागि तथा अन्यधर्मनै त्यागि जिनधर्ममै श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शननै शुद्ध करहू ॥

तथा रत्नकरंडमै;—श्लोक ।

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृतां ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—परमार्थरूप आप्त तथा आगम तथा तपस्वी जे है तिनि कोश्रद्धान तीन मूढता रहित अष्ट अंगसंयुक्त अष्टमदरहित जो है सो सम्यग्दर्शनहै ॥ ४ ॥

तथा,— **भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनां ।**
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ३० ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जे है ते भयतै आशातै तथा स्नेहतै तथा लौभतं ,अर चकारतै अन्य प्रयोजनतै भी कुदेव कुआगम कुलिंगी जे है तिनिको प्रणाम तथा बिनय नही करै ॥ ३० ॥

तथा भगवती आराधना मैं, गाथा ।—

तत्थोवसमिय सम्मत्त खाइयं खओवसमियं वा ।
आराहंतस्स भवे सम्मत्ताराहणा पढमा ॥ ३१ ॥
तत्रौपशमिकं सम्यक्त्वं क्षायिकं क्षायोपशमिकं वा ।
आराधयतः भवेत् सम्यक्त्वाराधना प्रथमा ॥ ३१ ॥

अर्थ—तहां आराधनाकै बिषै उपशमसम्यक्त्व तथा क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व इनि तीनस म्यक्त्वनिमै एक सम्यक्त्व का आराधन करता पुरुषकै प्रथम सम्यक्त्वको आराधन होय है ।३१।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहई ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ ३२ ॥
सम्यग्दृष्टी जीवः उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं अज्ञायमानः [1]गुरुनियोगात् ।३२

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या जिनागमनैं श्रद्धान करै है,

१"गुरुवियोगात्" यह भी पाठ है ।

अर आप अज्ञानवान होतसंतै गुरुनिका नियोगतै अथवा वियोगैत असद्भावनै भी श्रद्धान करै है ॥

भावार्थ—आप तो अज्ञानी है अर समीचीन गुरुनिका संबंध नांही यातै असद्भावकूं ही सर्वज्ञका वचन मांनि श्रद्धान करै है ॥३२॥

सुत्तादुत्तं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि ।
सो चैव हवदि मिच्छादिट्ठी जीवो तदो पहुदि ॥३३॥
सूत्रात् उक्तं सम्यक् दृश्यमानं तं यदा न श्रद्दधाति ।
स च एव भवति मिथ्यादृष्टिः जीवः ततः प्रभृति ॥३३॥

अर्थ—बहुरि कोई सम्यग्ज्ञानी वाही तत्वनै सूत्रतै सत्यार्थरूप दिखावै ताहि जो नही श्रद्धान करै तौ जो पूर्वकाल मे श्रद्धानी नाम कहावै था सो ही जीव वाही समयतै मिथ्यादृष्टी है ॥ ३३ ॥

प्रश्न—सूत्रतै दिखाया तत्व श्रद्धान करनो कह्या तौ सूत्र का लक्षण भी कहौ ।

उत्तररूप गाथा ।

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयवुद्धिकहियं च ।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥३४
सूत्रं गणधरकथितं तथैव प्रत्येकबुद्धिकथितं च ।
श्रुतकेवलिना कथितं अभिन्नदशपूर्विकथितं च ॥३४॥

अर्थ—प्रथम तौ गणधरनि करि कहे हैं ते सूत्र है, अरवैसे ही प्रत्येकबुद्धिऋद्धिके धारकनि करि कहे है ते सूत्र है, तथा श्रुत केव-लीनि करि कहे है ते सूत्र हैतथा परिपूर्ण दशपूर्व धारीनकरि कहे है तेसूत्र है ॥ ३४ ॥

प्रश्न—ये सूत्र तौ मिलते नांही तातैं इनि सिवाय औरनिके बचननिकी कहा व्यवस्था।

उत्तररूप गाथा—

गिहिदत्थो संविग्गो अत्थुवदेसे ण संकणिज्जो हु।
सो चेव मंदधम्मो अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो॥३५॥
गृहीतार्थः संविग्नः अर्थोपदेशे न शंकनीयः स्फुटं।
स च एव मंदधर्मः अर्थोपदेशे भजनीयः॥३५॥

अर्थ—जो परमागमका अर्थनै गुरुपरिपाटीकरि तथा प्रमाण नय निक्षेपकरि तथा शब्द ब्रह्मका सेवनकरि तथा स्वानुभवप्रत्यक्ष करि भलप्रकार सत्यार्थ ग्रहण किया होय, तथा संसार देह भोगते विरक्त होय पापतैं भयभीत होय सो वक्ता शास्त्रका उपदेश मैं नही शंका करने योग्य है, अर सो ही उपदेशदाता मंदधर्मी होय तौ अर्थ का उपदेशमैं भजनीय है। भावार्थ—सम्यक्‌ज्ञानी वीतरागीका वचन तौ निःशंक ग्रहण करने योग्यहै, अर सम्यक्‌ज्ञान वैराग्य रहितका वचन ग्रहण करने योग्य नाहीहै, अर भजनीयपदतैं कथंचित् वीतरागीनिकी परिपाटीसूं मिलता अर्थ कहै तौ ग्रहण करने योग्य भी है, अर उनतैं विरुद्ध कहै सो सर्वथा नही ग्रहण करने योग्य है॥ ३५॥

धम्माधम्माकासाणि पोग्गले कालदव्व जीवे य।
आणाय सद्दहंतो सम्मत्ताराहओ भणिओ॥३६॥
धर्माधर्माकाशानि पुद्गलान् कालद्रव्यं जीवान् च।
आज्ञया श्रद्दधन् समक्त्वाराधको भणितः॥ ३६॥

अर्थ—धर्म , अधर्म , आकाश , पुद्गल , काल ,जीव , ये छह द्रव्य जे है तिनन भगवान्‌की आज्ञाकरि श्रद्धान करतो जीप सम्यग्दर्शनको आराधक कह्यो है ॥३६॥ गाथा—

संसारसमावण्णा य छव्विहा सिद्धिमस्सिदा चेव ।
जीवणिकाया एदे सद्दहिदव्वा हु आणाए ॥ ३७ ॥
संसारसमापन्नाःच षड्विधाः सिद्धिमाश्रिताः च एव।
जीवनिकाया एते श्रद्धातव्या स्फुटं आज्ञया ॥३७॥

अर्थ—पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति रूप है काय जिनकै ऐसे पंच थावर अर एक त्रस ऐसै छह प्रकार के संसारनै प्राप्त भये , अर अनंत चतुष्टयादि निजगुणरूप सिद्धि तानै आश्रय किये ऐसै ए सप्तभेद जीवनिकाय जे है ते भगवान सर्वज्ञकी आज्ञा करि श्रद्धान करने योग्यहै ॥३७॥ गाथा—

आसव संवर णिज्जर बंधो मोक्खो य पुण्ण पावं च ।
तह चेव जिणाणाए सद्दहिदव्वा अपरिसेसा ॥३८॥
आस्रवः संवरः निर्जरा बंधः मोक्षः च पुण्यं पापं च ।
तथा चैव जिनाज्ञया श्रद्धातव्या अपरिशेषाः॥३८॥

अर्थ—आश्रव , संवर , निर्जरा , बंध, मोक्ष, पुण्य , पाप अर तैसै ही आर समस्त द्रव्य भेद जे हैं ते जिन आज्ञा करि श्रद्धान करवे योग्यहै ॥३८॥ गाथा—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं ।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ३९ ॥

पदं अक्षरं च एकं अपि यः न रोचते सूत्रनिर्दिष्टं।
शेषं रोचमानोऽपि खलु मिथ्यादृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥३९॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रतैं दिखाया एक पदनैं तथा एक अक्षरनैं भी नहीं श्रद्धान करहै सो पुरुष और समस्त आगमका अर्थनैं श्रद्धान करतो सतो भी प्रकट मिथ्यादृष्टी जाननौ ॥३९॥ गाथा,

मोहोदयेण जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा ॥४०॥
मोहोदयेन जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं अनुपदिष्टं वा ॥४०॥

अर्थ—मोहका उदयकरि जीव उपदेश्या सद्भावरूप प्रवचननैं तो नहीं श्रद्धान करैहै, अर असद्भावरूप उपदेश्या तथा नहीं उपदेश्यानैं श्रद्धान करैहै ॥४०॥ गाथा—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होई।
णय धम्मं रोचेदि हु महुरक्खुरसं जहा जुरिदो ॥४१॥
मिथ्यात्वं वेदयन् जीवः विपरीतदर्शनः भवति॥
न च धर्मं रोचते खलु मधुरेक्षुरसं यथा ज्वरितः॥४१॥

अर्थ—मिथ्यात्वनैं अनुभव करतो जीव विपरीतश्रद्धानी होयहै, कि जैसै ज्वरसहित पुरुषकूं प्रकट मधुर इक्षुरस नहीं रुचैहै तैसैं मिथ्यात्वसहित पुरुषकू धर्म नहीं रुचै है ॥४१॥ गाथा—

सुविहियमिमं पवयणं असद्दहंतेण णेण जीवेण।
बालमरणाणि तीदे मदाणि काले अणंताणि ॥४२॥

सुविहितं इदं प्रवचनं अश्रद्दधता अनेन जीवेन ।
बालमरणानि अतीते मृतानि काले अनंतानि ॥४२॥

अर्थ—भलै प्रकार करि कह्या जो ये प्रवचन तानैं नहीं श्रद्धान करता या जीवनै अतीतकालमैं अनंते बालमरण मरे । इहां बाल शब्दतैं बाल बाल मरण किये जानने ॥४२॥ गाथा—

णिग्गंथं पव्वयणं इयमेव अणुत्तरं सुपरिसुद्धं ।
इयमेव मोक्खमग्गो त्ति मदी कायव्विया तम्हा ॥४३॥
निर्ग्रंथं प्रवचनं इदं एव अनुत्तरं सुपरिशुद्धं ।
अयमेव मोक्षमार्गः इति मतिः कर्त्तव्या तस्मात् ॥४३॥

अर्थ—या निर्ग्रंथरूप रत्नत्रयही प्रवचन है, अर यही सर्वोत्तम अत्यंत शुद्ध है, तातैं यो ही मोक्षमार्ग है असी बुद्धि करवो योग्य है। इहां निर्ग्रंथ शब्दकी निरुक्ति असी जाननी "ग्रंथतीति ग्रंथः निर्गतो ग्रंथो यस्मात्स निग्रंथ" याका अर्थ असा है कि ग्रंथ जो संसार ताकूं रचै सो ग्रंथ, यातैं संसारका रचनेवारा मिथ्यात्व अविरत कषाय योग है ते ग्रंथ है ते जातैं दूर होय सो निर्ग्रंथ है। असो निर्ग्रंथ रत्नत्रयही है, सोही सर्वोत्तम अत्यंत शुद्ध आत्मस्वरूप प्रवचनरूप मोक्षमार्ग है ॥४३॥ गाथा—

सम्मत्तादीचारा संका कंखा तहेव विदिगिंछा ।
परदिट्ठीण पसंसा अणायदणसेवणा चेव ॥ ४४ ॥
सम्यक्त्वातीचाराः शंका कांक्षा तथैव विचिकित्सा ।
परदृष्टीनां प्रशंसा अनायतनसेवना चैव ॥ ४४ ॥

अर्थ—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, परदृष्टीनिकी प्रशंसा,

अनायतनसेवा ये पांच सम्यग्दर्शनके अतीचारहै। इहां शंका नाम सशयका है तातै जिनवचनमै संशय नही करना, अर कांक्षा नाम आगामी सुखकी चाहका है तातै आगामी विषयनिकी वाछा नही करनी, अर विचिकित्सा नाम ग्लानिका है तातै धर्ममै तथा धर्मके धारकनिमै ग्लानि नही करनी, अर अन्यदृष्टिप्रशंसानाम मिथ्यादृष्टीनिकी प्रशंसाका है तातै मिथ्यादृष्टीनिकी प्रशसा नही करनी, अर अनायतनसेवा नाम कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर कुदेव कुगुरु कुशास्त्र के माननेंवारे ऐसें ये छह आयतन नही है अनायतन है धर्मके स्थान नाही है तातै इनि छहूनिकी सेवा भक्ति प्रशंसा नही करणी क्योकि ये पांच सम्यक्त्वके अतीचारहै, अर अतीचार नाम मर्यादके उलंघनेका है, अर इनि पाचू कर्मनितै सम्यक्त्वका घात होयहै तातै त्याज्यहै ॥४४॥ गाथा —

उवगूहणं ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा गुणा भणिदा।
सम्मत्तविसोहीए उवगूहणकारया चउरो ॥ ४५ ॥
उपगूहनं स्थितिकरणं वात्सल्यं प्रभावना गुणा भणिताः।
सम्यक्त्वविशुद्ध्यै उपगूहनकारकाः चत्वारः ॥ ४५ ॥

अर्थ—उपगूहन नाम आच्छादन करनेका है तातैं धर्ममै तथा धर्मात्मामै अज्ञान तातै तथा अशक्ततातै कदाचित् कोई दोष लाग्या होय तौ धर्मतै प्रीति करि दोषनिका आच्छादन करै सो उपगूहन गुणहै। वहुरि स्थिति नाम चिगतेकू थांभनेका है तातै आप तथा और कोई धर्मात्मा रोगकी पीड़ा करि तथा आहार पान का अभाव करि तथा दुष्टकृत ताडन मारण करि तथा असहायताकरि तथा दुर्भिक्ष आदि उपद्रवनिकरि पीड़ितहुवा धर्मतै चलायमान होताहोय ताकूं

धर्मका उपदेश देय करि थांभनां कि हे आत्मन् ! तथा हे साधो ! आप जिनेंद्रधर्म धारणकियो है सो कल्याणकारीहै तथापि वर्त्तमान मै कछु दुःख प्राचीन कर्मका उदय करि आवैहै, जो अब व्रतसूं चलायमान होहुगे तौ हू कर्म छांडनें का नांही , अर दृढ रहौगे तौ हू कर्म छांडनेका नांही , तातैं अब धर्मतैं चिगो मति, धर्ममै दृढ रहे वर्त्तमानकी वेदना तौ भोगोहीगे परंतु आगामी नवीन कर्मतो बंध नही करोगे , अर जो वर्त्तमानकी वेदनां सूं धर्मतैं चिगि जावोगे तौ भी उदय आया कर्म तौ रस दिये विनां छोडनेका नांही क्योंकि कर्म तौ अचेतन है सो ये तुमारा विलापादि रुदन सुननेका नांही तातें विषाद करना उद्यानमै रुदन करनेकै समान है तातैं रुदन विलाप करना वृथा है, यातैं भो धर्मके धारक ! सचेत होय धर्मधारण करो , अर और विचारो कि जो कायर होय धर्मत चलायमान होहूगे तौ धर्मकी निंदा होयगी अर मिथ्यादृष्टी कहैंगे कि जिनमतकेधारक असै ही शिथिलाचारीहै जो परीषह आए धर्मत चलायमान होय है , अर गुरु कुल लज्जायमान होयगा तातैं स्थिर रहो , अर जो या कहौ हौ कि हमारे क्षुधातृषा रोग शीत उष्ण आदि वेदनां बहुत है तातैं ठहऱ्याजाय नाही तौ हू तुम ज्ञानी हो विचारो कि तिर्यंचगतिमै तथा नरकगतिमै असी वेदना कौनसी है जो तुमनै अनंत वार नहीं भोगी अर इहा वर्त्तमानसमयकी वेदनां कितनोकहै जातैं तुम असे विह्वल होते हो, वा नरककी वेदनांतै असंख्यातवै भागभी नहीं है , या वेदनां अति अधिक होवैंगी तौ मरणही होवैगा मरणतै कछु अधिक नहीं होणा है अर एकवार एक देहमै मरण अवश्य होहीगा , अर मरणतै डरि धर्मतै चिगजावोगे तौ व ही तिर्यंचगतिके तथा नरकगतिके दुःख तथा निगोदमै अनंतकालपर्यंत एक सा-

सोप्मान (आमोन्मान) मैंअष्टादश जामण मरण करोगे , अर जो या समयमैं भर्यभारण आराधनाका शरणतै मरण भी करोगे तौ आगामी होणहार अनंते जामणमरणतै छूटि जावोगे तातै आराधनाका शरण ग्रहण करो , ऐसी असी वेदना अनंतवार भोगीइत्यादि उपदेश देय थिरतेकू थांभै । इहां काऊ कहै कि वर्त्तमानमै रोग दरिद्र आदिकी वेदना जिहि तिहि प्रकार योग्य अयोग्य उपाय करि मेट लेवै तौ आगामी कालमैं धर्म सेवन निर्विघ्न तातै होवै । याका उत्तर—सुख दु:खरूप वेदना जो है सो तौ साता असाता वेदनीय कर्मका उदयकै आधीनहै , अर औषधि आदि उपायहै सो बाह्य निमित्त कारण है , जासमय प्राणी कै असातावेदनीयका उदय होयहै ता समय प्रत्यक्ष देखियेहै कि नाना प्रकारके वैद्य यत्र मंत्र तंत्र औषधी अनेक विधानतैं करते करते रोग नाही मिटैहै उलटा वाही औषधितैं वधता देखियेहै , अर दरिद्रताके मेटनेकूं अनंते जीव अनंत उपाय निमित्त देसातरकू जाय है अर घर घर प्रति स्वान की नांई भटकते फिरैहै परंतु प्रवल असाताके उदय होतै पिताके वचनत पुत्रकै अर पुत्रके वचनतैं पिताकै अर स्त्रीके वचनतै भर्त्तारकै अर भर्त्तारके वचनतै स्त्रीकै अतरायही होयहै लाभ नहीं होयहै । अर प्रतिनारायणकै साताके उदय होतै तौ चक्ररत्न स्वयमेव उपजैहै ताका प्रभाव ऐसाहै कि त्रिखंडको राज्य करावै , अर असाताके उदय होत वोही चक्र वाको उरस्थल भेदै । अर जा नारायणकै तीन खंडको तौ राज्य अर एक कुलके छप्पनकोडि भाई हुते ते असाताके उदय आवत ही सर्व विलाय गये, अर जा समय साताको उदय होयहै ता समय विषभक्षणतै वा शस्त्रघाततै वा परवत पतनतै वा शत्रुकृत अनेक उपद्रव आदि अनिष्ट सबंधतै भी कछू बिगाड नाही होयहै । तातैं जा करि असाता आदि अशुभ कर्मकी निर्जरा होय

सो मुख्य उपाय करनां अर बाह्य निमित्तकारणरूप योग्य औषधि आदि योग्य उद्यम करनां, अर जा करि सम्यक्त्वका घात होय सो उपाय कदाचित् ही नही करनां इत्यादिक उपदेश देय तथा आहार पान देय वैयावृत्त्य करै तथा देहकी सेवा करै कि हस्त पादादिकका मर्दन करनां पूंछनां मलमूत्रकफादिक शरीरके मल उठाय दूरि प्रासुक भूमिमैं क्षेपनां तथा देहका संकोचनां पसारनां कलोट लिवावना उठावना बैठावनां शयन करावनां मलमूत्रादिककी बाधा मिटावनां निकट रहनां रात्रिमैं जागृत रहनां इत्यादि शरीरकी टहल करि जैसे रोगी आदि दुखियाका मन चलायमान नही होय अर धर्ममैं स्थिर होय तैसै सेवा करनां। बहुरि तैसै ही व्रती श्रावकनिमैं तथा अव्रत सम्यग्दृष्टीनिमैं कोऊ प्रकार दुःख आवै तौ तिनकूं धर्मोपदेश देय करि तथा शरीरमैं रोगादिक होय तौ शरीरकी सेवा करि तथा वस्त्र देने करि आहार पान औषध देने करि आजीवका देने करि धन देने करि रहनेको मकान देने करि धर्ममैं स्थिरकरना सो स्थिती करण अंग है बहुरि वात्सल्य नाम गौ वत्स समान प्रीति करनेका है तातै दर्शन ज्ञान चारित्र तप जे हैं तिनकै विषै तथा इनिके धारक धर्मात्मा पुरुष जे है तिनकै विषै प्रीति करनां सो वात्सल्य अंगहै, अर संसारी जीवनिकी स्त्री पुत्र मित्र कुटुंब धन शरीरादिकमैं अत्यंत प्रीति लगिरहीहै अर इनिके अर्थि धर्म विगाड़ि हिंसा असत्य परधनहरण कुशील परिग्रहहरण इनिमैं अत्यंत प्रीति करैहै, रात्रि दिन देहकूं धोवनां खान पान करावनां इंद्रियनिका विषय सेवनां इत्यादि शरीरका सेवनमैं काल वितीत करैहै, तथा स्त्री पुत्र मित्रादिकनिकै अर्थि धनके उपार्जननिमित्त विदेशमैं धर्मरहितदेशनिमैं गमन करैहै, वन, पर्वत समुद्रनिमैं परिभ्रमण करैहै, संग्राममैं जा-

थै है, तिनिकी सेवा करै है, अभक्ष्य भक्षण करै है, धर्मतैं द्रोह करै है, इत्यादिक नरक तिर्यंच गतिके कारणनिमैं वात्सल्य अंग रहित हुवा ऐसा करै है, तातैं धर्म मैं वात्सल्यभाव करना ही जीवका कल्याणकारी है। बहुरि प्रभावना नाम प्रभाव प्रकट करनेका है, तामैं निर्दोष निर्ग्रंथ गुरु दयागर्भधर्म युत अर्हतभाषित आगमका श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन तथा यथावत पदार्थका जाननरूप सम्यग्ज्ञान तथा पापाचारका त्यागरूप शीलसहित सम्यक्चारित्र तथा द्वादश प्रकार बाह्य आभ्यंतर भेदयुक्त तप अंगीकार करै तथा इनका सत्यार्थरूप उपदेश ऐसैं प्रकट करै कि अन्यमती भी अहिंसाव्रत सत्य शील निर्लोभता विनय ज्ञानाभ्यास आदिकी दृढता देखि प्रशंसा करि कहै कि मार्ग तो जैनीनिका ही सत्यार्थ है इत्यादि प्रभावना करनै सो सम्यक्त्वकी शुद्धताके अर्थि है। ऐसैं उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ए च्यार गुण सम्यक्त्वके वधावनवारे हैं तातैं सम्यग्दृष्टीनै बहुत आदरतै ग्रहण करने योग्य है ॥ ४५ ॥

गाथा—

अरहंतसिद्धचेइय सुदे य धम्मे य साहुवग्गे य ।
आयरियमुवज्झाए सुपवयणे दंसणे चावि ॥ ४६ ॥
भत्ती पूया वण्णजणणं च णासणमवण्णवादस्स ।
आसादणपरिहारो दंसणविणओ समासेण ॥ ४७ ॥
अर्हत्सिद्धचैत्येषु श्रुते च धर्मे च साधुवर्गे च ।
आचार्योपाध्याययोः सुप्रवचने दर्शने चापि ॥ ४६ ॥
भक्तिः पूजा वर्णजननं च नाशनं अवर्णवादस्य ।
आसादनपरिहारः दर्शनविनयः समासेन ॥ ४७ ॥युग्मं

अर्थ—अरहंत सिद्ध तथा चैत्य कहिये इनके प्रतिबिंब तथा श्रुत कहिये जिनागम तथा धर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षणरूप भाव तथा साधुसमूह तथा आचार्य उपाध्याय तथा प्रवचन कहिये जिनेंद्रकी दिव्यध्वनि तथा सम्यग्दर्शन इनिकै विषैं भक्ति कहिये गुणनिमैं अनुराग करि आनंदसहित उपासनां करनां तथा इनकी पूजा करनां, सो पूजा दोय प्रकार है एक द्रव्यपूजा दूसरी भावपूजा। तहां द्रव्यपूजा तौ अरहंतादिकै निकट जलगंधाक्षत पुष्पादिक करि अर्घदान करनां है, अर भावपूजा उठि खडा होना प्रदक्षिणा करना अंजुली करनां गुणस्मरण करनां गुणस्तवन करनां इत्यादि करनां है सो भावपूजा है। बहुरि वर्णजननं कहिये वर्ण जो यश ताका प्रकट करनां। बहुरि दुष्टजननि करि किया अवर्णवाद जो अपवाद ताका नाश करनां। बहुरि दर्शन की विराधनां का परिहार करनां इत्यादिक दर्शनविनय जानना ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ गाथा—

सद्दहया पत्तियया रोचय फासं तहा पवयणस्स ।
सयलस्स जे णरा ते सम्मत्ताराहया होंति ॥ ४८ ॥
श्रद्धया प्रतीत्या रुच्या स्पर्शं तथा प्रवचनस्य ।
सकलस्य ये नराः ते सम्यक्त्वाराधकाः भवंति ॥ ४८॥

अर्थ—जे पुरुष संपूर्ण प्रवचनकूं श्रद्धान करै प्रतीति करै रुचि करै स्पर्श करै कि अंगीकार करै ते सम्यक्त के आराधक होय है॥४८॥

एवं दंसणमाराहंतो मरणे असंजदो को वि ।
सुविसुद्धतिव्वलेसो परीतसंसारओ होई ॥४६॥
एवं दर्शनं आराधयन् मरणे असंयतः कः अपि ।
सुविशुद्धतीव्रलेश्यः परीतसंसारिकः भवति ॥४६॥

अर्थ—या प्रकार दर्शन आराधना करतो कोई असंयमी भी मरण समय मैं अत्यंत शुद्ध तीव्र लेश्यावान होय तौ अल्पससारी होय है। भावार्थ—कल्पवासी देवन मे तथा उत्तम मनुष्यनि मैं अल्प भव धारण करै है॥ ४९॥

तिविहा सम्मत्ताराहणा य उक्कस्समज्झिमजहण्णा।
उक्कस्सा ए सिज्झदि उक्कस्स स सुक्कलेस्साए॥५०॥
त्रिविधा सम्यक्त्वाराधना च उत्कृष्टमध्यमजघन्या
उत्कृष्टा यः सिध्यति उत्कृष्टः सःशुक्ललेश्यया॥५०॥

अर्थ—सम्यक्त आराधना उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार है। तिनिमै उत्कृष्ट शुक्ललेश्यासहित उत्कृष्ट आराधनाकरि तो तद्भव निर्वाणनै प्राप्त होय है॥ ५०॥

सेसा हुंति भवा सत्त मज्झमाए य सुक्कलेसाए।
संखेज्जा संखेज्जा भवा हु सेसा जहण्णाए॥५१॥
शेषाः भवंति भवाः सप्त मध्यमया च शुक्ललेश्यया।
संख्येयाऽसंख्येयाः भवाः स्फुटं शेषा जघन्या॥५१॥

अर्थ—बहुरि शेषा कहिये मध्यम शुक्ललेश्यासहित सम्यक्त आराधना करि उत्कृष्ट अपेक्षा सप्त भव धारण करि सिद्ध होय है। बहुरि शेषा कहिये जघन्य शुक्ललेश्यासहित सम्यक्त आराधना का धारक अविरत सम्यग्दृष्टी जे है ते संख्यात तथा असंख्यात भवधारी होय है॥ ५१॥

उक्कस्सा केवलिणो मज्झिमया सेससम्मदिट्ठीणं।
अविरदसम्मादिट्ठिस्स संकलिट्ठस्स हु जहण्णा॥५२॥
उत्कृष्टा केवलिनः मध्यमा शेषसम्यग्दृष्टीनां।
अविरतसम्यग्दृष्टेः संक्लिष्टस्य स्फुटं जघन्या॥५२॥

अर्थ—उत्कृष्ट सम्यक्त अराधना तौ भगवान केवली कै होय है, अर मध्यम सम्यक्त आराधना अवशेष महाव्रती देशव्रतीनिकै होय है, अर जघन्य सम्यक्तआराधना संक्लेशसहित अविरतसम्यग्दृष्टीकै होय है ॥ ५२॥

वेमाणिय णरलोए सत्तट्ठभवेसु सुक्खमणुभूय।
सम्मत्तमणुसरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा॥५३॥
वैमानिकेषु नरलोके सप्ताष्टभवेषु सौख्यमनुभूय।
सम्यक्त्वं अनुसरंतः कुर्वंति दुःखक्षयं धीराः॥ ५३॥

अथ—धैर्यवान सम्यक्त आराधनान अनुसरन करते जीव वैमानिक देवनिके तथा उत्तम मनुष्यनिके सात आठ भवकै विषै सुख अनुभव करि दुःखको क्षय करै है ॥ ५३॥

जे पुण सम्मत्ताओ पब्भट्ठा ते पमाददोसेण।
भामंति सुभव्वा वि हु संसारमहण्णवे भीमे॥५४॥
ये पुनः सम्यक्त्वात् प्रभ्रष्टाः ते प्रमाददोषेण।
भ्राम्यंति सुभव्याःअपि स्फुटंसंसारमहार्णवे भीमे।५४

अर्थ—बहुरि जे जीव सम्यक्तर्तें भ्रष्ट भयेहै अर भव्य है

तौ हू ते प्रमाद के दोष करि भयानीक संसाररूप महानसमुद्रमै भ्रमण करै ही है । भावार्थ—भव्य है तो हू असावधानीतै सम्यग्दर्शनतै चिगि जाय तौ बहुरि सम्यक्त्वका मिलना बहुत कठिन है। जो तीव्रमिथ्यात्व हो जाय तौ अर्ध पुद्गल परिवर्त्तनमात्र काल त्रस स्थावर योनि मै परिभ्रमण करै है। सो कैसा कहै अर्द्ध पुद्गलपरिवर्त्तनजामै काल अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी वितीत हो जाय है । तातै सम्यग्दर्शन पाय प्रमादी होय बिगाडनां वडा ही अनर्थ है ॥५४॥

संखिज्जमसंखिज्जगुणं वा संसारमणुसरित्तूणं ।
दुक्खक्खयं करंति हु जे सम्मत्तेण णुसरंति॥ ५५॥
संख्येयगुणमसंख्येयगुणं वा संसारमनुसृत्य ।
दुःखक्षयं कुर्वंति स्फुटं ये सम्यक्त्वे न अनुसरंति॥ ५५ ॥

अर्थ—जे जीव सम्यग्दर्शनकै विषै न अनुसरति कहिये नही गमन करहै कि नही प्रवर्त्तै है ते जीव संख्यात तथा असंख्यात भव संसारमै परिभ्रमण करि दुःखको क्षय प्रकट शीघ्रही करहै।

भावार्थ—सम्यक्त्व ग्रहण करि अर वाकै विषै नही प्रवर्त्तकि वातै चिगिजाय तौ संख्यात तथा असंख्यात भव धारि फेरि सम्यक्त्व पाय सिद्ध होय है ॥ ५५॥

लद्धूण य सम्मत्तं मुहुत्तकालमवि जे परिपडंति ।
तेसिमणंताणंतो ण भवदि संसारवासाद्धा॥ ५६ ॥
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं मुहूर्त्तकालमपि ये परिपतंति ।
तेषामनंतानंतो न भवति संसारवासाद्धा॥ ५६ ॥

अर्थ—बहुरि जे पुरुष अंतर्मुहूर्त्तकालमात्र भी सम्यक्त्वनै प्राप्त होय बहुरि सम्यक्ततै पडते है। तिन जीवनिकै भी अनंतानंतसंसारमैं वसने का काल नही होता है। भावार्थ—उत्कृष्ट संसार परिभ्रमण करै तौ अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनकाल मात्र करै, अर जघन्य संसारपरिभ्रमण करै तौ अंतर्मुहूर्त्तकालमात्र करै कि संसारका अभाव करै ॥ ५६ ॥

तथा चारित्रसारमैं,--

धारा—तत्र दर्शनिकः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः पंचगुरुचरणभक्तः सम्यग्दर्शनविशुद्धश्च भवति, जिनेन भगवताऽर्हता परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रंथलक्षणे मोक्षमार्गे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।

अर्थ—तिनि एकादश भेदनिमै दर्शन प्रतिमाको धारक जो है सो संसार शरीर भोगनितैं उदासीन है अर पंच परमगुरु का चरणको भक्तहै सो सम्यग्दर्शन करि विशुद्ध है, क्योंकि जिनेंद्र भगवान अर्हंत परमेष्ठी का उपदेश्या निर्ग्रंथलक्षणमोक्षमार्गकै विषै श्रद्धान है सो सम्यग्दर्शन है ॥

तथा रत्नकरंडश्रावकाचारमै;—

श्लोक—सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातंगदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारांतरौजसं ॥ २८ ॥

अर्थ—चांडालकी देहमै उत्पन्न भया भी सम्यग्दर्शनसंयुक्त जीवनै जिनेंद्रदेव देव कहै है कि जैसैं भस्ममै गूढ अंगाराका विषै तेज है तैसैं वाके अंतरंगके विषै सम्यग्दर्शनरूप तेज जाज्वल्यमान

है । यातैं;—

श्लोक—न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—शरीरधारीनिकै तीन जगतकै विषै तीनकालमै सम्यक्तसमान और कोई कल्याण नही है, अर मिथ्यात्वसमान और अकल्याण नही है ॥ ३४ ॥

आर्या छंद ।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः ३५

अर्थ—अव्रती भी सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध जे है ते नारकपणानै तिर्यंचपणानै, नपुंसकपणांनै, स्त्रीपणांनैं, नीचकुलपणांनै, विडरूपपणांनै, अल्प आयुपणानै, दरिद्रीपणांनै, नही प्राप्त होतहै । अर या श्लोकमै चकार शव्दतै जनावैहै कि भवनत्रिकमै भी नही उपजै है, अर कल्पवासीनिमै भी इद्र सामानिक, त्रायस्त्रिशत्, लोकपाल आदि महर्धिकनि मै ही उपजैहै ऐसा अन्यग्रंथनितै अर्थ पुष्ट होय है ॥ ३५ ॥

ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः ।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवंतिदर्शनपूताः ।३६।

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि पवित्र जीव जे है ते प्रताप, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, विजय, विभव, इनि करि सहित होयहै तथा महानकुलवान होयहै तथा महार्था कहिये महान प्रयोजनवान अथवा महान् है आश्चर्यकारिणी विभव सपदा जिनकै ऐसे मनुष्यनिमै तिलक समान होय है ॥ ३६ ॥

आर्या—

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः ।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमंते जिनेंद्रभक्ताःस्वर्गे३७

अर्थ—जिनेंद्रकी है भक्ति जिनकै अैसे पुरुष जे है ते सम्यक्तके अष्ट गुणनिकी पुष्टताकरि संतुष्ट अर सम्यग्दर्शनहीहै विशेषपण इष्ट जिनकै अर प्रकृष्ट शोभा जो सम्यग्ज्ञानीनि करि भी सराहने योग्य प्रशम, सवेग, अनुकपा, आस्तिक्यादि गुण तिन करि संयुक्त अैसे स्वर्गकै विष देव होय, देवनिकी सभामै तथा अप्सरानिकी सभामै चिरकाल रमै है ॥ ३७ ॥

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाःसर्वभूमिपतयश्चक्रं ।
वर्त्तयितुं प्रभवंति च स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः।

अर्थ—यथावत् सिद्ध भयो है श्रद्धान जिनकै अैसे जीव जे है ते क्षत्रियनि मै मुकुटसमान राजेंद्र जे है तिनके मुकुट कै विषै है चरण जिनके अैसे हाय है। भावार्थ—जिनके चरणनिमै राजेंद्र मस्तक नवावै है, बहुरिवनिधि चतुर्दशरत्ननिके अधिपति अैसे सर्वषट् खंड पृथ्वी के स्वामीनिका चक्रनै प्रवर्त्तायबेकू समर्थ चक्रवर्ति होय है ॥३८॥

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादांभोजाः
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवंति लोकशरण्याः

अर्थ—सम्यग्दर्शन करि भलै प्रकार निर्णय किये है पदार्थ जिननै अैसे पुरुष जेहैते अमरपति कहिये कल्पवासी देवनि के इंद्र अर असुरपति कहिये चमरेंद्र वैरोचन आदि भवनवासीनिके इंद्र अर नरपति कहिये चक्रवर्त्ति जे है तिन करि तथा सयमके धारक मुनि

जेहैं तिनके पति गणधर देव जे हैं तिनकरि नमस्कार करने योग्य है चरणकमल जिनके अैसे धर्मचक्रके धारक समस्त लोकनिकै शरणाधार योग्य तीर्थंकर आदि केवली भगवान होय है॥ ३९॥

शिवमजरमरुजमक्षयमव्यावाधं विशोकभयशंकं।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनशरणाः॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन ही है शरण जिनकै अैसे पुरुष जे हैं ते जरारहित, रोगरहित, नाशरहित, शोकरहित, भयरहित, शंका-रहित, अर निर्मल हदनै प्राप्त भयो है सुख जाविषै अैसो मोक्ष जो है ताहि भजै है कि भोगै हैं ॥ ४० ॥

देवेंद्रचक्रमहिमानममेयमान,
राजेंद्रचक्रमवनींद्रशिरोर्चनीयं।
धर्मेंद्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥४१॥

अर्थ—जिनेंद्रकी है भक्ति जाकै अैसो भव्य जो है सो अप्र-माण है मान जिनविषै अैसे देवेंद्रनिके चक्रकी महिमा जो है ताहि प्राप्त होय करि तथा पृथ्वी के इंद्र जे हैं तिनके मस्तकनि करि पूजनीक अैसो राजेंद्रचक्र जो है ताहि प्राप्त होय करि तथा नम्र कीयो है सर्व लोक जानै अैसो धर्मेंद्रचक्र जो है ताहि प्राप्त होय करि मोक्षनै प्राप्त होत है॥ ४१॥

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामै—

गाथा—**सम्मद्दंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं।**

संस्कृत—**सम्यग्दर्शनशुद्धः रहितः मद्यादिस्थूलदोषैः**

अर्थ—मदिरानै आदि देय मांस, सहत, ऊमरफल, कठूमर फल, वड़फल,पीपलकाफल, पाकरफल आदिके ग्रहणरूप स्थूल दोपनिद करि रहित होय सो सम्यग्दर्शन करि शुद्ध है। इहां स्थूल पदतैं ऐसा अभिप्राय भासै है कि जामैं आपका तथा परका घात होय सो सर्वदोष सम्यग्दृष्टी सर्वदा त्यागै ॥ तथा, गाथा,—

चउगदि भव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण पज्जत्तो ।
संसारतडे णियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३१२ ॥
चतुर्गति भव्यः संज्ञी सुविशुद्धः जागरमाणः पर्याप्तः
संसारतटे निकटः ज्ञानी प्राप्नोति सम्यक्त्वम् ॥३१२॥

अर्थ—च्यारूं गतिमे भव्य होय सैनी होय अर सुविसुद्ध कहिये जाकै सर्वघाती प्रकृतिनिके उदयका तौ अभाव होय अर देशघाती प्रकृतिनिका मंद उदय होय असो विशेषपणैं शुद्ध होय, जागृत होय, पर्याप्त होय, संसारके तटकै विषै निकटवर्त्ती होय ज्ञानोपयोगयुक्त होय सो जीव सम्यक्तनैं प्राप्त होय है ॥३१२॥

सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुस्सस्स ॥३१३॥
सप्तानां प्रकृतीनां उपशमतः भवति उपशमं सम्यक्त्वं
क्षयतः च भवति क्षायिकं केवलिमूले मनुष्यस्य॥ ३१३॥

अर्थ—च्यारि तौ अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभरूप कषाय अर एक मिथ्यात्व प्रकृति एक सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति एक सम्यक्प्रकृति ये सात प्रकृति जे हैं तिनके उपशमतै उपशमसम्यक्त होय है अर क्षयतै क्षायिक सम्यक्त जो है सो केवली श्रुतकेवलीनि

के घरगारविंदके निकटमैं पूर्वोक्त सातप्रकृतिनिके क्षयतैं मनुष्य हीकै होय है ॥ ३१३ ॥

अणउदयादो छण्हं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।
सम्मत्तकम्म उदए खयउवसमियं हवे सम्मं ॥३१४॥
अनुदयतः षण्णां स्वजातीयरूपेण उदयमानानां ।
सम्यक्त्वकर्मण उदयात् क्षयोपशमकं भवित सम्यक्त्वं।

अर्थ—अपनी जातिका स्वरूपकरि उदयमान जे छहूं प्रकृति तिनिका उपशमतैं अर सम्यक्त कर्मके उदयनैं होत सतैं क्षायोपशमिक सम्यक्त होय है । भावार्थ—अपना अपना स्वरूप करि प्रकट होती ऐसी जे च्यारूं तो अनतानुबन्धी कषाय अर मिथ्यात्व नामा एक अर सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वनामा एक ऐसैं छहू प्रकृतिनिका नहीं उदय होवातैं अर एक सम्यक्तप्रकृतिका उदय होतैं क्षायोपशमिक सम्यक्त होय है ॥ ३१४ ॥ गाथा—

गिण्हदि मुंचदि जीवो बे सम्मत्ते असंखवाराओ ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्कस्सं ॥३१५॥
गृह्णाति मुंचति जीवः द्वे सम्यक्त्वे असंख्यवारान् ।
प्रथमकषायविनाशं देशव्रतं करोति उत्कृष्टम् ॥३१५॥

अर्थ—यो जीव उपशम तथा क्षयोपशम ये दोय सम्यक्त कूं हैं तिननै असंख्यात वार ग्रहण करै है अर छोडै है, अर प्रथम कषाय जो अनतानुबंधी कषाय ताको विनाश कहिये विसंयोजन जो है ताहि असंख्यात वार करै है । इहां विसंयोजन नाम अनंतानुबंधीरूप कषायनैं अप्रत्याख्यान तथा प्रत्याख्यान तथा संज्वलन रूप

परिणमावनेका जानना। अर उत्कृष्टपणै देशव्रतनै असंख्यात वार ग्रहण करै है अर छोड़ै है ॥ ३१५॥ गाथा—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं।
लोयाण पण्हवशदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ ३१६ ॥
यः तत्वमनेकांतं नियमात् श्रद्धाति सप्तभंगैः।
लोकानां प्रश्नवशात् व्यवहारप्रवर्त्तनार्थं च ॥ ३१६॥

अर्थ—जो लोकनिके प्रश्नके वशतैअर व्यवहारके प्रवर्त्तनकै अर्थि सप्तभंगनि करि नियमतै अनेकातस्वरूप तत्वनै श्रद्धान करै है ॥ ३१६॥ गाथा—

जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादिणवविहं अत्थं ॥
सुदणाणेण णएहिं य सो सद्दिट्ठो हवे सुद्धो ॥ ३१७॥
यः आदरेण मन्यते जीवाजीवादिनवविधं अर्थं।
श्रुतज्ञानेन नयैः च सः सद्दृष्टिः भवेत् शुद्धः ॥ ३१७॥

अर्थ—अर जो आदर करि जीव अजीव आदि नव प्रकार पदार्थनिनै श्र तज्ञान करि तथा नयन करि मानै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ३१७॥ गाथा—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु।
उवसमभावे भावदि अप्पाणंमुणदि तिणमत्तं ॥ ३१८॥
यः न च करोति गर्वं पुत्रकलत्रादिसर्वार्थेषु।
उपशमभावे भावयति आत्मानं मनुते तृणमात्रं। ३१८॥

अर्थ—अर जो पुरुष पुत्र कलत्र आदि सर्व पदार्थनिकै विषै गर्व नहीं करै है अर उपशमभावमै अनुभव करै है अर आपनै तृण

समान मानै है ॥ ३१८ ॥ गाथा—

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥३१९॥
विषयासक्तः अपि सदा सर्वारंभेषु वर्त्तमानःअपि ।
मोहविलासः एषः इति सर्वं मन्यते हेयम् ॥ ३१९॥

अर्थ—अर विषयनिमै आशक्त है तो हू तथा सदा काल आरंभमै प्रवर्त्तै है तौ हू यो मोहको विलास है या प्रकार सर्व विषयनिनैं तथा आरंभरूप प्रवृत्तिनै त्यागिवे योग्य मानैं है ॥ ३१९ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मिए अणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३२०॥
उत्तमगुणग्रहणरतः उत्तमसाधूनां विनयसंयुक्तः ।
साधर्मिषु अनुरागी सः सद्दृष्टिः भवेत् परमः ॥३२०॥

अर्थ—अर जो उत्तम गुणनिके ग्रहणमैं प्रीतिवान् है तथा उत्तम साधूनिके विनयसंयुक्त है तथा साधर्मीनिके विषै अनुरागी है सो परम सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ३२० ॥ गाथा—

देहमिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण जो मुणदि भिण्णं।
जीवमिलियं पि देहं कंचुइसरिसं वियाणाई॥३२१॥
देहमिलितं अपि जीवं निजज्ञानगुणेन यः मनुते भिन्नं
जीवमिलितं अपि देहं कंचुकिसदृशं विजानाति ३२१

अर्थ—अर जो देह करि मिलि रह्या भी जीवनै निजज्ञान गुण करि देहतैं भिन्न मानैं है अर जीवकरि मिलि रह्या भी देहनैं कंचुकी समान भिन्न जानैं है ॥ ३२१ ॥ गाथा—

णिज्जियदोसं देवं सव्वजीवाण दयापरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ।३२२।
निर्जितदोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मं ।
वर्जितग्रंथं च गुरुं यः मन्यते सः खलु सद्दृष्टिः ।।३२२।

अर्थ—दूरि भये है दोष जाकै औसा देवनै तथा सवजीवनिकी दया है प्रधान जामै औसा धर्मनै तथा वर्जित कहिये त्यागे है सर्व परिग्रह जानै असा गुरुनै जो मानै है सो प्रकट सम्यग्दृष्टीहै ।।३२२।

दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुदिट्ठी ।। ३२३ ।।
दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादिसंयुतं धर्मं ।
ग्रंथासक्तं च गुरुं यः मन्यते सः खलु कुदृष्टिः ।। ३२३ ।।

अर्थ—दाषनि सहित हू देवनै, अर जीवहिंसासंयुक्त धर्म नै अर परिग्रहसै आसक्त औसा गुरुनै जो मानै है सो प्रकट कुदृष्टि कहिये मिथ्यादृष्टी है ।। ३२३ ।। गाथा—

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणइ उवयारं ।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ।। ३२४ ।
न च कः अपि ददाति लक्ष्मीं न कः अपि जीवस्य करोति उपकारं ।
उपकारं अपकारं कर्म अपि शुभाशुभं करोति ।।३२४।।

अर्थ—अर या जीवकूं कोई भी लक्ष्मी नही देनै है. अर कोई भी या जीवको उपकार नही करै है, अर उपकार तथा अपकार

शुभाशुभ कर्म ही करै है ॥ ३२४ ॥ गाथा--

भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥ ३२५॥

भक्त्यापूज्यमानःव्यंतरदेवःअपि ददाति यदि लक्ष्मीं।
ततः किं धर्मः क्रियते एवं चिंतयति सदृष्टिः ॥३२५।

अर्थ--जा भक्ति करि पूज्या थका व्यन्तरदेव ही लक्ष्मी देवै है तो धर्म काहेकू करिये या प्रकार सम्यग्दृष्टी चितवन करै है ॥३२५॥

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि ।
णाद जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा ॥३२६॥

यत् यस्य यस्मिन् देशे येन विधानेन यस्मिन् काले ।
ज्ञातं जिनेन नियतं जन्म वा अथवा मरण वा ।३२६।

तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि ।
को सक्कइ चालेउं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥३२७।

तत्तस्य तस्मिन् देशे तेन विधानेन तस्मिन् काले ।
कःशक्नोति चालयितुं इंद्रः वा अथ जिनेंद्रः वा।३२७।युग्मं

अर्थ--जो जाकै जा देशमै जा प्रकार करि जा कालमै जिनेंद्रदेवनै नियम करि जन्म अथवा मरण जान्या है सो ताकै ता देशमैं तिहि प्रकार करि ता कालमै होहि है, ताहि चलायमान करनेकूं इन्द्र अथवा जिनेन्द्र आदि कौन समर्थ है, भावार्थ--कोउ भी समर्थ नहीं है ॥ ३२६ ॥ ३२७ ॥ गाथा--

एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥३२८॥

एवं यः निश्चयतः जानाति द्रव्याणि सर्वपर्यायान् ।
सःसम्यग्दृष्टिःशुद्धःयःशंकते सः खलु कुदृष्टिः॥३२८॥

अर्थ—या प्रकार निश्चयतै द्रव्यनिनै तथा सर्व पर्यायनिनैं जो जानैं है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है अर जो शंका करै है सो प्रकट कुदृष्टी है ॥ ३२८ ॥ गाथा—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भणियं तं सव्वमहं समिच्छामि ३२९।
यः न अपि जानाति तत्त्वं सःजिनवचने करोतिश्रद्धानं
यत् जिनवरैःभणितं तत् सर्वमहं स्पृहयामि॥३२९॥

अर्थ—जो तत्त्वनं नही जानैं है सो जिनवचनकै विषै श्रद्धान करै है कि जो जिनेन्द्रनैं कह्या है सो मैं सर्व अंगीकार करूं हूं । अर्थात् तत्त्वनैं नही जानैं है तो हू जिनवचनमैं श्रद्धान करै है सो सम्यग्दृष्टी है ॥ ३२९ ॥ गाथा—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३३०॥
रत्नानां महारत्नं सर्वयोगानां उत्तमं योगं ।
ऋद्धीनां महाऋद्धिः सम्यक्त्वं सर्वसिद्धिकरं ॥ ३३० ॥

अर्थ—रत्ननिकै विषैं महारत्न है तथा सर्व योगनिकै विषै उत्तमयोग है तथा ऋद्धिनिकै विषै महाऋद्धि है, ऐसै सर्वसिद्धिको कर्त्ता सम्यग्दर्शन है ॥ ३३० ॥ गाथा—

सम्मत्तगुणपहाणो देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ।३३१।

सम्यक्तगुणप्रधानः देवेंद्रनरेंद्रवंदितः भवति ।
त्यक्तव्रतोऽपि च प्राप्नोति स्वर्गसुखं उत्तमं विविधं ।३३१

अर्थ—सम्यक्त गुण करि प्रधान पुरुष जो है सो देवेन्द्रनिकरि तथा नरेंद्रनि करि वंदनीक होय है, अर व्रतरहित भी सम्यग्दृष्टी जीव स्वर्गसवंधी नाना प्रकारके उत्तम सुख पावै है ॥ ३३१ ॥

सम्माइट्ठी जीवो दुग्गइहेदुं ण वंधदे कम्मं ।
जं बहुभवेसु वद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥ ३३२ ॥
सम्यग्दृष्टिः जीवः दुर्गतिहेतु न बध्नाति कर्म ।
यत् बहुभवेषु वद्धं दुष्कर्म तदपि नाशयति ॥३३२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव दुर्गतिको कारणभूत कर्म नही बांधै है, अर जो अनेक जन्मनिकै विषै बांध्यो हुवो कर्म है सो हू नाश करै है ॥ ३३२ ॥ गाथा—

बहुतससमण्णिदं जं मज्जं मंसादि णिंदिदं दव्वं ।
जो ण य सेवदि णियमा सो दंसणसावओ होदि ।३३३।
बहुत्रससमन्वितं यत् मद्यं मांसादि निंदितं द्रव्यं ।
यः न सेवते नियमात् सः दर्शनश्रावकः भवति ॥३३३॥

अर्थ—बहुतत्रस जीवनि करि संयुक्त मदिरा जो है ताहि तथा मांस आदि निंद्य वस्तु जो है ताहि जो नियमतै नही सेवै है सो सम्यग्दर्शन को धारक श्रावक होय है। भावार्थ—सप्त तत्त्वनैं तथा देव गुरु धर्मका स्वरूपनैं श्रद्धान करतो संतो अभक्ष्यको त्याग करै सो सम्यग्दृष्टी है ॥ ३३३ ॥ गाथा—

दिढचित्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो।
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ॥३३४॥
दृढचित्तः यः करोति एवं अपि व्रतं निदानपरिहीणः।
वैराग्यभावितमनाः सः अपि च दर्शनगुणः भवति३३४

अर्थ—जो दृढचित्तको धारक निदानरहित वैराग्यभावित मन हुवो संतो व्रत करै सो हू सम्यग्दर्शनका ही गुण है ॥ ३३४॥

तथा गोमट्टसारमै ,— गाथा—

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिणमगाढं तं णिच्च कम्मक्खवणहेदू ॥ २५ ॥
सम्यक्त्वदेशघातिकस्योदयात् वेदकं भवेत् सम्यक्त्वं।
चलं मलिनं अगाढं तत् नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥ २५॥

अर्थ—सम्यक्त्वके एकदेशकूं घात करनेवारी सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति जो है ताके उदयतैं वेदक सम्यक्त्व होय है सो चल मलिन अगाढ दोष सहित होय है सो भी निरतर कर्मके खिपावणेकूं कारणभूत है । इहां चल मलिन अगाढ शब्दका अभिप्राय टीकाकारनै असा लिखा है कि अपने कराये अरहंत प्रतिमादिककै विषै अपणेस की बुद्धिकरि कहै कि या प्रतिमा हमारी है, अर अन्यके कराये अरहंतप्रतिमादिककै विषै परकीयपणांकी बुद्धि करि कहै कि ये प्रतिमा फलाणे की है असै सेवने त चल कहिये है । तथा जैसे कीट कालिमादि मलसहित सुवर्ण उत्पन्न होय है तैसै शंकादिक सम्यक्त्वके मलहैं तिनमै कोई कदाचित् किंचित् सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतै मिलै है तातै अलब्ध माहात्म्य वेदकसम्यक्त्व नाम पावै है तातै मलसंग

करि मलिन उत्पन्न होय है ऐसा कह्या है। तथा सर्व अर्हत्परमेष्ठीनिकै अनंतशक्तिपणामै समान है तौ भी शांतिकर्मकै विषै शांतिक्रियाकै अर्थि शांतिनाथ देव ही समर्थ है, अर या विघ्नविनाशनादि कर्मकै विषै विघ्नविनाशनादि क्रियाकै अर्थि पार्श्वनाथदेव ही समर्थ है इत्यादि प्रकार करि श्रद्धानकी सिथलताका सद्भावतै जैसै वृद्धपुरुषका हाथमै प्राप्त भई लाठी सिथल संबंध करि अगाढ रहै तैसै ही वेदकसम्यक्तनै भी अगाढ रूपही जानना ॥ २५ ॥

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य।
विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य ॥२६॥
सप्तानां उपशमतः उपशमसम्यक्त्वं क्षयात्तु क्षायिकं च।
द्वितीयकषायोदयात् असंयतः भवति सम्यक्त्वं च।२६।

अर्थ—अनंतानुबंधी क्रोधमानमाया लोभरूप तौ च्यार कषाय अर मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति इन सप्त प्रकृतिनिका उपशमतै औपशम सम्यक्त होयहै, अर उनही सप्त प्रकृतिनिके क्षयतै क्षायिक सम्यक्त होय है, अर दूसरी कषाय जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ तिनमै किसी एकका उदयतै असंयतसम्यग्दृष्टी श्रावक होय है ॥ २६ ॥ गाथा—

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे चावि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥२९॥
नो इंद्रियेषु विरतः नो जीवे स्थावरे त्रसे चापि।
यः श्रद्दधाति जिनोक्तं सम्यग्दृष्टिः अविरतः सः।२९।

अर्थ—जो पाचूं इंद्रिय अर मन इनि छहूंनिके विषयनितैं

विरक्त नांहीं अर पांच थावर अर त्रस इनि छहूं कायके जीवनिकी हिंसामैं विरक्त नांही, अर केवल जिनेंद्रभाषित आगमनैं श्रद्धान करै है सो अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावक है ॥ २९ ॥

तथा गोमट्टसारका सम्यक्त्वमार्गणांमैं; गाथा—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ॥ ६४५ ॥
दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातः तु ।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापकः भवति सर्वत्र ॥६४५॥

अर्थ—दर्शनमोहकी क्षपणाका आरंभक तौ कर्मभूमिका उपज्या मनुष्य ही केवलीकै पादमूलविषैं ही होय है, अर निष्ठापक सर्वत्र च्यारूं गतिनि विषै ही होय है ॥ ६४५ ॥ गाथा—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तं खाइय सम्मत्तं णिच्चं कम्मखवणहेदू ॥ ६४६ ॥
क्षीणे दर्शनमोहे यत् श्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत् क्षायिकं सम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥ ६४६ ॥

अर्थ—दर्शन मोहनीयको क्षय होतै जो निर्मल श्रद्धान होय सो कर्मक्षय को कारण अविनश्वर क्षायिक सम्यक्त है ॥ ६४६ ॥

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदिय तुरियभवे ।
णदिकामदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं वा।१।
दर्शनमोहे क्षपिते सिध्यति एकस्मिन् वा तृतीये तुर्ये भवे
नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यक्त्वे इव।१।

अर्थ—दर्शनमोहको क्षय होतसंत तिसही भवमै सिद्ध होय है वा तीसरा भवमें सिद्ध होय है वा चतुर्थ भवमै सिद्ध होय है चतुर्थ-भवनें नहीं उल्लंघन करै है अर उपशमसम्यक्त क्षयोपशमसम्यक्तकी नांई उत्पन्न भये पीछे नाशकूं नहीं प्राप्त होय है ॥१॥ तथा—

पद्मनंदिपंचविंशतिकायां उपासकसंस्कारनिरूपणे,—

श्लोक—जीवपोतो भवांभोधौ मिथ्यात्वादिकरंध्रवान्।
आस्रवंति विनाशार्थं कर्मभिः सुचिरं भ्रमात् ॥५२॥

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत कषाय योगरूप छिद्रयुक्त जीवस्वरूप जिहाज जो है सो संसारसमुद्रकै विषै भ्रमात् कहिये संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप भ्रमतैं सुचिरं कहिये बहुत काल पर्यंत विनाशकै अर्थि कर्मरूप जलनैं आस्रवंति कहिये अंगीकार करै है तातै मिथ्या-त्वादिक सर्वथा त्याज्य है ॥ ५२ ॥

ऐसैं उमास्वामि१ पूज्यपादस्वामि२ कुंदकुंदस्वामि३ जिनसेनाचा-र्य४ समंतभद्रस्वामि५ शिवायनजी६ स्वामिकार्तिकेयजी७ नेमिचंद्र-सिद्धांतचक्रवर्ती८ पद्मनंदिस्वामि९ अमृतचंद्रस्वामि१० आदि आचार्य-निनैं सर्वग्रंथनिमे सर्वधर्मको मूल सम्यग्दर्शन कह्यो है ॥

प्रश्न—तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यक्तकै अर आपा परका श्रद्धान लक्षण सम्यक्तकै एकता कैसै रहैगी।

उत्तर—इहां नयविवक्षा है और कछु भेद नहीं है, सो ऐसै है—सप्ततत्वनिमें ज्ञेय, उपादेय, हेय, भेद करि तीन प्रकार है। तिनमै ज्ञेय रूप तौ सप्त ही तत्त्व है अर जीव, संवर, निर्जरा, ये तीन उपा-देय हैं अर मोक्ष सर्वथा उपादेय है क्योंकि ये निजरूप है यातै। अर अजीव, आश्रव, बंध ये तीन हेय है क्योंकि पररूप है यातै।

भावार्थ—निजरूप आदेय है पररूप अनादेय है ऐसैं तत्त्व दोय ही है यातैं दोय ही लक्षण एक अभिप्रायके सूचक हैं।

इनिकी तौ विवक्षा जानी परन्तु समयसारकी टीकामैं अमृतचंद्र-जी कलशरूप काव्य ऐसा कह्या है। काव्य—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः,
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यःपृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं।
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः॥६॥

अर्थ—शुद्धनयतैं एकत्वमैं निश्चल अर ज्ञानगुणकरि व्याप्त अर अन्य द्रव्यनितैं भिन्न अर पूर्णज्ञानघन ऐसा या आत्माको जो दर्शन है सो ही इहां सम्यग्दर्शन है, अर जो सम्यग्दर्शन है सो ही निश्चयतैं आत्मा है तातैं या नव तत्वनिकी संतति जो है ताहि छोडि हमारै एक यो आत्मा ही है॥ ६॥

प्रश्न—यामैं शुद्धात्मतत्वकी श्रद्धाहीनै सम्यक्त कह्या अर नव तत्वकी संततिनै त्यागी या वचनकी एकता कैसैं रहैगी।

उत्तर—इहां भी नयविवक्षातैं भेदकूं अत्यंत गौणकरि अभेदकूं मुख्यकरि कह्या है, सो ऐसैं है—सप्ततत्वमैं जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये च्यारि उपादेय हैसो च्यारू अभेदकी अपेक्षा एक आत्मा ही है सो ही आत्मा यामैं उपादेय कह्या है तातैं दोऊ लक्षण एक ही अभिप्रायके सूचक है॥

प्रश्न—ये भी विवक्षा जानी परंतु कार्त्तिकेयस्वामी देव, गुरु, धर्म-का श्रद्धानकूं ही सम्यक्त कह्या सो तत्वश्रद्धानलक्षणतैं कैसैं एक-ता पावैगा।

उत्तर—सप्त तत्वनिमें च्यार तौ उपादेय है अर तीन हेय है, अर तत्व नाम स्वभाव का है अर अर्थ नाम पदार्थ का है, अर स्वभाव सहित होय सो तत्वार्थ है अर तत्वार्थ मैं मुख्य मोक्ष है ताका स्वभाव सर्वज्ञवीतरागपणां है, ता स्वभावसहित अरहंत सिद्ध है सो ही निर्दोष देव हैं, तातैं जाकै मोक्षतत्वकी श्रद्धा है ताहीकै अरहंत सिद्धकी श्रद्धा है अर अरहंत सिद्धकी श्रद्धा है ताहीकै मोक्षतत्वकी श्रद्धा है, ऐसैं दोऊनिकी एकता है। अर तत्वार्थ मै प्रथम जीव है ताको स्वभाव रागादिघातरहित शुद्ध चैतन्य प्राणमय है, ता स्वभावसहित अहिंसा धर्म है सो ही धर्मकी श्रद्धा है, तातैं जाकै शुद्ध जीवकी श्रद्धा है ताहीकै अहिंसाधर्मकी श्रद्धा है, अर अहिंसा धर्मकी श्रद्धा है ताहीकै शुद्धजीवकी श्रद्धा है क्योंकि "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा" या वचनतैं रागादिभाव होत सो प्रमाद होय है, अर उस प्रमादतैं शुद्धचैतन्य प्राणका घात कहिये रागादिकका होना है सो ही हिंसा है तातैं अहिंसारूपही जीव तत्व है। अर उपादेयतत्वमै संवरनिर्जरा है तनिको स्वभाव रत्नत्रयरूप है, अर तातैं स्वभावसहित आचार्य उपाध्याय साधु है सो ही निर्ग्रंथ गुरु हैं तातैं जाकै संवर निर्जराकी श्रद्धा है ताहीकै निर्ग्रंथ गुरुकी श्रद्धा है अर निर्ग्रंथ गुरुकी श्रद्धा है ताहीकै संवर निर्जराकी श्रद्धा है ऐसैं दोऊनिकी एकता है। अर हेयतत्वमै अजीव, आश्रव, बंध हैं अर तिन सहित कुदेव, कुगुरु, कुधर्म है तातैं जाकै अजीव, आश्रव, बंधकी हेयरूप श्रद्धा है ताहीकै कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी हेयरूप श्रद्धा है, अर जाकै कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी हेयरूप श्रद्धा है ताहीकै अजीव, आश्रव, बंधकी हेयरूप श्रद्धा है। ऐसैं इनि तीननिकी एकता है। या प्रकार नयविवक्षातैं सूत्रकार उमास्वा-

मि के वचनकै अर कार्तिकेयस्वामीके वचनकै एकता ही जाननी।

प्रश्न—ये भी विवक्षा जानी परंतु आपा पर‹की श्रद्धालक्षणकै अर देव, गुरु, धर्मकी श्रद्धालक्षणकै एकता कैसैं है।

उत्तर—निजद्रव्य, निजभाव उपादेय है सोही निजद्रव्य निजभावके धारक अरहतादिक उपादेय है, अर परद्रव्य, परभाव हेय है सोही परद्रव्य, परभावके धारक कुगुरु, कुदेव, कुधर्म हेय है, तातैं जाकै अरहतादिककी श्रद्धा है ताहीकै आपाकी श्रद्धा है अर जाकै आपाकी श्रद्धा है ताहीकै अरहतादिककी श्रद्धा है।

सो ही प्रवचनसारमैं कह्या है, गाथा,—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।८०।
यः जानाति अर्हतं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः।
सः जानाति आत्मानं मोहः खलु याति तस्य लयं८०

अर्थ—जो पुरुष द्रव्यपणांकरि तथा गुणपणांकरि तथा पर्यायपणांकरि अरहतनै जाणै है सो आत्मानै जाणै है, अर आत्मानै जाणै है ताकै निश्चय करि मोह नाशनै प्राप्त होय है॥

टीका—**यो हि नामार्हतं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः परिच्छिनत्ति उभयोरपि निश्चयेनाविशेषात्। अर्हतोऽपि पाककाष्ठागतकार्त्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मस्वरूपं। ततस्तत्परिच्छेदः सर्वात्मपरिच्छेदः, तत्रान्वयो द्रव्यं अन्वयविशेषणं गुणः अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः। तत्र भगवत्यर्हति सर्वतो विशुद्धं त्रिभूमिकमपि स्वमनसा**

समयमनुपश्यति, यश्चेतनोऽयमित्यन्वयस्तत् द्रव्यं, यच्चान्वयाश्रितं चैतन्यमिति विशेषणं स गुणः, ये चैकसमयमात्रावधृतकालपरिमाणतया परस्परपरावृत्ता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्यायाश्चिद्विवर्त्तग्रंथय इति यावत्। अथैवमस्य त्रिकालमप्येककालमाकलयतो मुक्ताफलानीव प्रालंबे प्रालंबेचिद्विवर्त्तां श्चेतन एव संक्षिप्यविशेषणविशेष्यत्ववासनांतर्धानाद्धवलिमानमिव प्रालंबे चेतन एव चैतन्यमंतर्हितं विधाय केवलं प्रालंबमिव केवलमात्मानं परिच्छिंदतस्तदुत्तरोत्तरक्षणक्षीयमाणकर्त्तृकर्मक्रियाविभागतया निःक्रियं चिन्मात्रं भावमधिगतस्य जात्यस्य मणेरिवाकंपप्रवृत्तनिर्मलालोकस्यावश्यमेव निराश्रयतया मोहतमः प्रलीयते। यद्येवं लब्धो मयादौ मोहवाहिनीविजयोपाय इति।

अर्थ—जो पुरुष निश्चय करि अरहतनै द्रव्यपणा करि तथा गुणपणा करि तथा पर्यायपणा करि जानै है, सो निश्चय करि आत्मानै जानै है, क्योकि निश्चयनय करि दोऊनिकै अभेद है यातै, सो ऐसै है, अरहत भी सोलहा वानकूं प्राप्त भया कि तावको हदनै पहूंच्या सुवर्णकै समान अति प्रकट आत्मस्वरूप है। तातै अरहतकी पिछानि है, सो सर्व आत्माकी पिछानि है। तहां अन्वय नाम द्रव्यका है। अर अन्वयके विशेषण गुण है अन्वयतै भिन्न पर्याय है, तहां भ-

गवान अरहंतकै विषै जो सर्व तरफतै विशुद्ध भूत भविष्यत वर्त्तमानरूप पदार्थनै अपना मन करि देखै है सो यो चेतन है, अर यो चेतन है या प्रकार अन्वय है सो द्रव्य है, अर जो अन्वयकै आश्रय है सो चैतन्य है या प्रकार विशेषण है सो गुण है। अर जे एक समयमात्र धारण किया कालपरिमाणकरि परस्पर अणमिलते अन्वय व्यतिरेक रूप हैं ते पर्याय है, सो चैतन्यकी फैलती ग्रंथि है या प्रकार सिद्ध भई। अथानंतर या प्रकार याकै तीनकालनै ही एककाल प्रवर्त्तावतो संतो लूंबती मालाके विषै मुक्ताफलनिकै समान चेतनका फैलाव है सो चेतनही है। या प्रकार विशेषण विशेष्यपणाकी वासना अंतर्धानतै मालाकैविषैं धवलिमानकी नांई चेतनकै विषै ही चैतन्यनै अंतर्हित करि केवल मालाकी नांई केवल आत्मानै जाणता संता वा समयतै उत्तरोत्तरमैं क्षीण होता कर्त्ता कर्म क्रियाका विभागपणा करि निःक्रिय चिन्मात्र भावनै प्राप्त भया। जातिवान मणिकी नांई अकंप प्रवर्त्तता निर्मल आलोककै अवश्यही निराश्रयपणाकरि मोह अंधकार प्रलयनै प्राप्त होय है। जो अैसै है तौ मै प्रथम ही मोहसेनाका विजयको उपाय जान्यूं। इति॥ इत्यादिक वचनभेदतै भेद नहीं जानना। नय प्रमाणकै आधीन अनेक प्रकार दीखै है सो सर्व एक ही है। या प्रकरणकूं टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशमै बहुत विशद लिख्या है तहांतै समझना योग्य है॥

तथा भावपाहुड़मै गाथा—

पाखंडी तिण्णि सया तिसट्ठिभेदा उमग्ग मुत्तूणं
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा॥४२॥

पाषंडिनःत्रीणि शतानि त्रिषष्टि भेदान् उन्मार्गान् मुक्त्वा
रुंधि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना॥४२॥

अर्थ—पाखंडीनिके तीनसै तेरमठि ३६३ भेदरूप उन्मार्ग जे हैं तिननै छोड़ि जिनमार्गमैं मननै स्थिर कर, बहुत असत्य प्रलापकरि कहा ॥ ४२ ॥

प्रश्न—सामान्यपणैं सम्यग्दर्शनका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया, परंतु सम्यग्दर्शनके अंग कितने हैं तिनका नामसहित लक्षण भी भिन्न भिन्न कहौ।

उत्तर—अनुक्रमतैं कहैं हैं सो सुनौ। प्रथम अंग निःशंकित नामा है ताका लक्षण रत्नकरण्डमैं श्लोक—

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकंपायसांभोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥

अर्थ—भगवान् सर्वज्ञ भाषित यो ही तत्त्व है, अर इसो ही तत्त्व है, नहीं और है, नहीं और तरैं है या प्रकार जिनेंद्रका कह्या समीचीन मार्गकै विषैं लोहजनित खड्गकै समान अकंप संशय रहित रुचि कहिये श्रद्धान है सो निःशङ्कित गुण है॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमै श्लोक—

चलत्यचलमालेयं शीततां लभतेऽनलः।
दैवाज्ज्ञानादिजं तत्त्वं न च श्रीजिनभाषितं ॥३३॥

अर्थ—दैवयोगतै या पर्वतनिकी माला तौ चलायमान हो जाय अर अग्नि शीतलताने प्राप्त होजाय परन्तु श्रीजिनभाषित ज्ञानादिकतैं उत्पन्न भयो तत्त्व जो है सो चलायमान नहीं होय॥३३॥

तथा श्लोक—

सूक्ष्मतत्त्वेषु धर्मेषु जिनेषु सन्मुनौ शुभे।
ज्ञाने संत्यज्यते शंका या सा निःशंकिता मता॥३४॥

अर्थ—सूक्ष्मतत्त्वकै विषै धर्मके विषैं जिनदेवके विषैं समीचीन मुनिके विषै जो शंका त्यागिये सो निःशंकितता मानिये। भावार्थ—इनिका स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ देव कह्या तैसा ही है यामैं सन्देह नांही ऐसी दृढबुद्धिका नाम निःशंकित गुण है ॥३४॥

तथा समयसारमै गाथा—

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

संस्कृत

यश्चतुरः अपि पादान् छिनत्ति कर्मबंधमोहकरान्।
सः निःशंकश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥२३१॥

अर्थ—जो सर्व पदार्थनिको ज्ञाता द्रष्टा कर्मबंध मोहकारता मिथ्यात्वादिक च्यारूं चरण जे हैं तिननें छेदै है सो निःशंकित सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है ॥ २३१ ॥

टीका—**यतो हि सम्यग्दृष्टिटंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेनकर्मबंधशंकाकरमिथ्यात्वादिभावाभावान्निःशंकस्ततोऽस्य शंकाकृतो नास्ति बंधः किं तु निर्जरैव ॥ २३१ ॥**

अर्थ—यतः कहिये पूर्वोक्त कारणनितैं सम्यग्दृष्टि टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयीपणा करि कर्मबंधशंकाका कर्त्ता मिथ्यात्व अविरत योग कषाय आदि कुभावका अभावतै निःशंक है, तातैं या सम्यग्दृष्टीकै शंकाकृत बंध नाहीं है, अर निर्जराही है। भावार्थ—या संसारमैं केई मनुष्य देव, धर्म, गुरुका लक्षण विपरीत कहि संशय उपजावै हैं कि चक्र, गदा, त्रिशूल आदि शस्त्रकूं धारि जीनिके

साधि विहार करता क्रोधी, लोभी, मानी, मायावी अपनी कर्त्तव्यताकूं दिखावनेहारा सृष्टिका करता तथा पालक तथा संहारक आदि अनेक विकारवानकू देवता बताय अनेक कुतर्क करि सत्यार्थ रूप सर्वज्ञदेवका श्रद्धानमें संशय उपजावै है, अर हिंसामै, कामसेवनमें, मदिरापान आदि कुकर्ममें धर्म बताय सत्यार्थ दयामयी दशलक्षणरूप आत्मस्वभावमयी धर्मका श्रद्धानमै संशय उपजावै है, अर अनेक प्रकारके पाखण्डी, क्रोधी, लोभी, कामी, मायावी, अभिमानी, परिग्रहवान अनेक भेषधारीनिकूं गुरु बताय सत्यार्थ वीतरागी संयमी दिगम्बर गुरुका श्रद्धानमें संशय उपजावै है, अर केई एक ब्रह्मरूपही तत्त्व कहै हैं, अर केई प्रकृति पुरुष रूप दोय तत्त्व कहै हैं अर केई प्रकृति पुरुष जीवरूप तीनतत्त्व कहै हैं, अर केई पचीसतत्त्व कहै हैं। इत्यादि अनेक प्रकार तत्त्व बताय सत्यार्थ जीव, अजीवरूप दोय प्रकार तत्त्वमें संशय उपजावै है । तथा मोक्षमार्गके प्रकर्णमें इनिही दोयके विशेपरूप सात तत्त्व जे है तिनके श्रद्धानमै संशय उपजावै है। तातै परमगुरुके वचनरूप हस्तावलम्बन पाय पाषण्डीनिकै युक्तिरूप वचनके वेगतै चलायमान नाही होय, अर खोटे देवनिके किये उपद्रवतैं चलायमान नाही होय तथा मन्त्र जन्त्र तन्त्रकरि दिखाया कौतुककूं देखि चलायमान नाही होय, अर अपना निजस्वभावमैं तथा सत्यार्थ देव, गुरु, धर्मका श्रद्धानमै स्थिर अकम्प खड्गके जलकै समान रहै, सोही भव्य सप्त भय रहित निःशंकित गुणयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है ॥

सो ही समयसारमैं गाथा—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ।२३०।

संस्कृत

सम्यग्दृष्टयो जीवा निःशंकाः भवंति निर्भयाः तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ताः यस्मात्तस्मात तु निःशंकाः।२३०॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव निःशंक हैं, तातै सप्त भय रहित निर्भय हैं, तातै जिहि तिहि प्रकार निःशंक है ॥ २३० ॥

टीका—**येन नित्यमेव सम्यग्दृष्टयः सकलकर्मफलनिरभिलाषाः संतोऽत्यंतं कर्मनिरपेक्षतया वर्तंते तेन नूनमेतेऽत्यंतनिःशंकदारुणाध्यवसायाः संतोऽत्यंतनिर्भयाःसंभाव्यंते ॥ २३० ॥**

अर्थ—येन कहिये पूर्वोक्त कारण करि सम्यग्दृष्टी नित्यही सकल कर्म फलका अभिलाषरहित हुवो संतो अत्यंत कर्मकी अपेक्षा रहितपणा करि प्रवर्तै है, ता कारण करि निश्चय सम्यग्दृष्टी अत्यंत निःशंक दृढपरिणामी है तातै अत्यंत निर्भय संभावना करिये है ॥२३० ॥ भावार्थ—किया कर्मके फलकूं नहीं चाहता उदासीन हुवा संता पूर्वकर्मके दिये फलरूप विषयनिकूं भोगता संता अपनै जाननभावमै मग्न हुवा सर्व परभावकृत विकार अपनै आत्मातै भिन्न मानता निजभावनै अखंड अविनाशी एकरूप अनुभव करता सम्यग्दृष्टी सप्तभयरहित है ॥

प्रश्न—सप्त भय कौनसे हैं तिनका नाम कहौ।

उत्तररूप मूलाचारमैं गाथा—

इह परलोय त्ताणं अगुत्तिमरणं च वेइणा कस्स भया

संस्कृत—

इह परलोकौ अत्राणं अगुप्तिर्मरणं च वेदना अकस्माद्भयानि ॥

अर्थ—या लोकसंबंधी भय, परलोकसंबंधी भय , अनरक्षक भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, अकस्मात् भय, ए सात भय सम्यग्दृष्टीकै नाही है ।

प्रश्न—ये भय तौ प्रबल है सम्यग्दृष्टीकूं बाधा कैसे नाहीं करै है ।

उत्तर—जिनवचनकै अनुकूल भावनाके बलतै बाधा नहीं करै है ।

प्रश्न—ये भावना हमारै ताई भी कहौ ।

उत्तर—अनुक्रमतै सातूं ही भय निवारण होनेका उपायरूप सम्यक्ज्ञानीका चिंतवन कहै हैं सो सुनौ । प्रथम तौ इस लोकमै मिथ्यादृष्टी जिनवचनतै परान्मुख हैं ते पररूप चेतन अचेतन दृष्टिगोचर पुत्र मित्र कलत्र धन धान्य वाहन आसन गृह क्षेत्र स्वामी सेवक आदि पदार्थनिनै इष्ट मानि तिनिमै ऐसी बुद्धि दृढ अध्यवसायरूप करै है कि ये मेरे हैं मै इनका हूं, तिन मिथ्यादृष्टीनिकै पुत्र मित्रादिकके वियोग होनेका आजीविका बिगड़नेका तथा अन्य पांचूं इंद्रियनिके विषय बिगड़नेका भय रहै है, अर जे सम्यग्दृष्टी जिनवचनके श्रद्धानी है ते पुत्र मित्रादिकनिमै ऐसी पररूप दृढ बुद्धि राखै हें कि मै अन्य हू ये अन्य है मेरे इनकै संयोग संबंध है सो ऐसो संबध या पंचपरिवर्त्तनरूप संसारमैं भ्रमण करतो मै जो हूं ताकै अनेक जीवनितै अनेक बार भयो है, अर जितनै शुद्धात्मतत्त्वमै स्थिर बुद्धि नही होयगी तितनै ऐसा संबंध अनेक जीवनितै अनेक वार होयहीगा । या संसारमै जाका सबंध भया है ताका अवश्य वियोग होयहीगा । मै ज्ञाता द्रष्टा चैतन्यरूपहूं मेरा जाननभाव मोमै सदा स्थिर है तामै ही अन्य पदार्थनिका अवलोकन करू हूं, अर मोहनीयकर्मके जोरतै इष्ट अनिष्टरूप अनुभव करूं

हूं सो मिथ्या है, मेरा जाननभावके कोऊ पदार्थ इष्ट अनिष्टरूप नांही है, तातै इनिके बिगड़नेका मेरे कहा भय अर कहा शोक ये पुत्रादिक अपने अपने पुन्य प्रमाण सुख दुःख भोगै हैं अर अपनी अपनी आयुप्रमाण स्थिर रहैंगे मेरा किया कछु नहीं होयगा, तातैं मेरा हर्ष करना अर विषाद करना वृथा है। ऐसा दृढ़बुद्धि अपनी देहकाभी अवस्थान केवलीके ज्ञानमैं प्रतिभास्या तितनाही मानै है, वामैं न्यूनाधिक किसी निमित्ततै होना नहीं मानै है। इत्यादि जिन वचनकी भावनाके बलतैं सम्यग्दृष्टी इस लोकके भयतै रहित सदा निर्भय रहै है।

सो ही अमृतचंद्रस्वामी समयसारकी टीकामैं इसलोक परलोक भयरहित ज्ञानीका चितवन दिखावता संता कलशरूप काव्य कह्या है। काव्य।

लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-
श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यं लोकयत्येककः।
लोकोऽयं न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥४६

अर्थ—या भिन्नात्माकै यो शाश्वतो एक सकलजीवनिकै प्रकटज्ञानचेतनारूप आत्मा है सो लोक है, अर यो एक आत्मा स्वयमेव ही या केवलचेतनामय लोकनै अवलोकन करै है, अर आप आपकै सन्मुख होय चितवन करै है कि यो चैतन्यमय लोक है सो तिहारो है, अर या चैतन्य लोकतैं अन्य लोक है सो परलोक है तिहारो नाहीं है। या प्रकार चितवन करता सम्यग्दृष्टीकै इस लोक परलोक संबंधी भय काहेत होय; नांही होय। तातैं सम्यग्दृष्टी ज्ञानी पुरुष है सो निःशंक भया संता निरंतर आपनैं

स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप अनुभव करै है । भावार्थ—जगतके जीवनिकूं इस लोकमैं ऐसा भय रहै है कि कोई मेरा बिगाड करैगा तौ बडा ही अनर्थ होयगा सो ज्ञानी ऐसा जानै है कि मेरा धन तो मेरा ज्ञान है, अर मेरा लोक भी मेरा ज्ञान ही है, अर अन्य लोककूं भी मैं मेरा ज्ञानहीमैं देखूं हूं; क्योंकि जा समय मेरा ज्ञान ज्ञानावरणकर्मको उदयरूप तौ अंतरंगकारण अर वात पित्त कफका न्यूनाधिकता पणारूप तथा निद्रारूप वाह्यकारण मिलै तब मंद हो जाय है ता समय अन्य लोक सर्व विद्यमान होता संता भी अभावरूपही प्रतिभासै है, अर प्रतिभास मात्र भी ज्ञानका उदय नाही रहै तदि मेरे भावै सर्व लोकका अभाव ही है तातै मेरै म्हारा ज्ञानस्वभावकूं स्वच्छ आनंदरूप होतसंतै किसी अन्य पदार्थके विगाडमैं मेरा कछु विगाड़ नाहीं, मैं अविनाशी अचल ज्ञाता दृष्टा हूं; तातैं मेरै इसलोक सवंधी तथा परलोक सवंधी कछु भय नांही है । या प्रकार चितवन करता सम्यग्दृष्टी सदाकाल निर्भय है। बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही परलोकसम्बन्धी भय सदा काल ऐसा रहै है कि न जाणिए मैं किसी गति मैं किसी क्षेत्र मै जाय प्राप्त हूगा, तहां न जाणिये कहा कहा दु ख पाऊंगा, ऐसा अभिप्रायतै परलोकका भययुक्त रहै है । अर सम्यग्दृष्टीकै ऐसा श्रद्धान दृढ रहै है कि मैं जब तक जिनवचनका सांचा देवका सांचा गुरूका सांचा धर्मका साचा तत्त्वका श्रद्धान नाही किया था तब तक नरक तिर्यंच आदि नीच पर्यायनिमैं भ्रमण करै था, अब मैं शीघ्र ही संसारका अभाव करि शिवलोकनै प्राप्त हूंगा, अर जितनै काललब्धि नही आवैगी तितनैं स्वर्गलोकके जिनमन्दिरनिमैं पूजन उत्सव करता सुखरूप रहूंगा, तथा मध्यलोकमैं तीर्थकरनिके कल्याणका उत्सव देखता रहूंगा, तथा आर्यक्षेत्रकै विषै उत्तमकुलमैं जन्मधारण करि व्रत संयमका निरंतर पालन करूंगा । मेरै इस देहके वियोग होतैं कहा हाणि

है। यो देह विनाशीक है ही मैं अविनाशी चिरंजीव हूं। इत्यादिक भावनाके बलतैं परलोकसंबन्धी भय सम्यग्दृष्टीकूं बाधा नाही करै है बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अनरक्षक भय रहै है, क्योंकि मिथ्यादृष्टीकै आत्मतत्त्वकी तौ पिछाणि नाही अर देह आदि अन्य पदार्थनिमैं ही आपो मान है, अर इनिका कोऊ रक्षक दीखै नांही तदि आकुलता धारि विलाप करै है। अर सम्यग्दृष्टी आत्मस्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय द्रव्य मानै है अर नाश किसीतै नाही मानै है, अर जाका नाश नाही मानै ताका रक्षक काहेकूं चाहै, अर ऐसै ही पुत्रमित्रादिकनिका भी आत्माकूं तौ चिरंजीव मानै है अर पर्यायसंबन्धी सुख दुःख पुन्यपापके उदयाधीन मानै है। तातैं सम्यग्दृष्टी अनरक्षकभयरहित हुवा सता सदा काल निर्भय है॥

सो ही कलसरूप काव्य—

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्त्रातं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणमतो न किंचन भवे तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति २५

अर्थ—जो पदार्थ सत् स्वरूप है सो नाशनै नाहीं प्राप्त होत है या नियमपूर्वक पदार्थमात्रकी स्थिति प्रकट है, अर यो ज्ञान स्वरूप जीवपदार्थ जो है सो स्वयमेव सत्स्वरूप है, तातैं निश्चय करि याकी अन्य पदार्थनि करि कहा रक्षा करिये; या कारणतैं या ज्ञान स्वरूप आत्माकै अनरक्षक कोऊ नाही है तातै ज्ञानीकै अनरक्षकजनित भय कहा होय तातै सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर अपना स्वाभाविक ज्ञाननै अनुभव करैहै। भावार्थ—सत् का विनाश असत् का उत्पाद भूत भविष्यत वर्त्तमानकालमैं तो हुवा अर हो-

ञगा ऐसा निश्चय सम्यग्दृष्टीकै है। अर सत् स्वरूप ज्ञानमय अपना आत्माने जानै है, अर अपना दर्शन ज्ञान सिवाय अन्यद्रव्यमै आपा नाहीं मानै है, यातैं सम्यग्दृष्टीकै अनरक्षकभय बाधा नाही करै है। बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अगुप्त भय रहै है क्योकि मिथ्यादृष्टी ही देहाभिमानी है, तातैं धन धान्यादि राज्यवैभवतै आपनै बडो मानै है, अर शत्रु आदि चोरनितै धन धान्यादि राज्यवैभवका विगड़ना मानै है तातैं ही धनधान्यादिककौ छिपाया चाहै है, अर छिपता नाही दीखै तदि अपना विगाड़ जानि विषादवान होय विलाप करै है ताकै अगुप्तभय है। अर सम्यग्दृष्टी धन धान्यादि राज्यवैभवकूं अपना निज ज्ञानदर्शनरूप धनतै भिन्न पुन्य उदयजनित सयोगसंबध रूप मानै है तातैं परमार्थतैं आप निर्भय है अर व्यवहार अपेक्षा भी धन धान्यादिकका बिगड़ना पुन्य अस्त भयेतैं जानै है पुन्यकू विद्यमान होतैं किसीसै विगड़ना नाही मानै है, अर आप सन्मार्गमै सदा प्रवत्त है तातैं बाह्य द्रव्यरूप धन धान्यादिककै छिपावनेकी इच्छाही नाही राखै है। अर आप आपनै सदा अगुप्तरूप ध्यावता संता निर्भय रहै है। सो ही समयसारका कलसरूप

काव्य ।

स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न यत्
शक्तःकोऽपि परःप्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नु ।
अस्यागुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।१६

अर्थ—ज्ञानी चितवन करै है कि निश्चय करि जो वस्तुको निजरूप है सो परमगुप्ति है। क्योकि निजरूपमैं कोई भी परवस्तु प्रवेश करनेकू समर्थ नाही है, अर ज्ञान है सो मेरो निजरूप अकृत्रिम है, अर या-

कै अगुप्ति कछू नाहीं है तातैं ज्ञानीकै अगुप्तिजनित भय कहांतैं होय सो ज्ञानी निःशङ्कहुवो संतो निरन्तर स्वाभाविक अपना ज्ञानने सदाकाल अनुभव करै है। भावार्थ--गुप्तिनाम प्रच्छन्न छिप रहनेके मकान गढ आदिका है जहां प्राणी बसिकरि निर्भय होय सो ऐसो गुप्तिरूप स्थान आपकै आपको जाननभाव है, जामैं किसीको प्रवेश नाही किसीको बिगाड्यौ बिगड़े नाहीं। ऐसैं चितवन करतो सम्यग्दृष्टी निर्भय है ॥१६॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही मरणभय रहै है क्योंकि मिथ्यादृष्टी ही देहके वियोगमै अपना मरण मानै है, तातैं सदाकाल देहकी ही रक्षानिमित्त उद्यमी रहै है। अर सम्यग्दृष्टी देहके वियोगमै अपना मरण नाहीं मानै है, अपना ज्ञानस्वरूपकूं अखण्ड अविनाशी मानै है, तातैं सदाकाल देहतैं निर्ममत्व रहै है॥

प्रश्न--देहकी रक्षा तौ सम्यग्दृष्टी भी करै है।

उत्तर—रक्षा तौ करै है, परंतु मिथ्यादृष्टीके अर सम्यग्दृष्टीके करनेमै बडा अंतर है; क्योंकि मिथ्यादृष्टी तौ देहमै आपा मानता सन्ता योग्य अयोग्यका विचार रहित उपाय करै है। अर सम्यग्दृष्टी देहतैं निर्ममत्व हुवा संता योग्य उपाय करै है, अर उपाय करतां संतां भी मिथ्यादृष्टी तौ या देहतै भोग वांछै है, अर सम्यग्दृष्टी या देहतै जप तप संयम ज्ञान वैराग्य वांछै है, यातैं दोऊनिकै ही या देहतैं राग है तातैं दोऊही रक्षा तौ करै है, परंतु दोऊनिके रागमै बड़ा अंतर है। ताहि दृष्टांत करि पुरुषार्थसिद्ध्युपायमै दिखावै है, श्लोक—

हरिततृणांकुरचारिणि मंदा मृगशावके भवति मूर्च्छा।
उंदरनिकरोन्माथिनि मार्जारे सैव जायते तीव्रा॥१२०॥

अर्थ--हरित तृणनिके अंकुरनिकूं भक्षण करनैवारो मृगको ब-

षो जो है ताकै विषै तो मूर्च्छा मंद है, अर ऊंदरनिके समूहकूं मारनवारा मार्जारकै विषै वाही मूर्च्छा तीव्र उत्पन्न होय है। भावार्थ—हरिणका बच्चाकै हरित अंकुरके भक्षणमै राग है तथापि किसीका किंचित मात्र भी शब्द सुणि लेवै तौ वाही समय हरित तृणकूं छोड़ि भाजि जाय है। अर बिलावकै ऊंदराके भक्षणमै राग है ताकै कोई लाठीकी देवे तौ भी ऊंदरानै नाही छोड़ै है। तातै वाके रागमै अर याके रागमै बड़ाही अंतर जानना ॥१२०॥

तातै सम्यग्दृष्टीकै मरणभय नाही है सो ही कलसरूप काव्य है श्लोक—

प्राणोच्छेदमुदाहरंति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।२७।

अर्थ—ज्ञानी पुरुष चितवन करै है कि लौकिक जन बाह्य प्राणनिका विच्छेदनै मरण कहै है,अर या आत्माकै निश्चय ज्ञान प्राण है सो स्वयमेव शास्वता पणा करि कदाचित ही विच्छेदकूं नाही प्राप्त होय है,या कारणतै आत्माकै कछू मरण नाही है, यातै ज्ञानीकै मरणतै भय कहातै होय, तातै सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर स्वाभाविक अपना ज्ञान आप सदाकाल अनुभव करैहै।भावार्थ—इंद्रियादिक प्राणनिका विनाशकू मरण कहै है। सो इंद्रियादिक प्राण परमार्थतै आत्माकै नाही है। आत्माकै तौ चैतन्य ज्ञानप्राण है सो अविनाशी है ताका विनाश नाही है तातै आत्माकै मरण नाही है। यातै ज्ञानीकै मरणका भय नाही है तातै ज्ञानी अपना ज्ञानस्वरूपकूं निःशंक भया संता निरन्तर आप अनुभव करै है ॥२७॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही वेदनाका भय है क्योंकि वेदनीय कर्मका उदयजनित देहमै प्राप्त भया जो वात पित्त कफका सम विषम पणा ताकरि अनुभवमै आया जो सुख दुख ताकूं मोहका महात्म्यतै आपमै भया मानै है। तातै वेदनाका भय मिथ्यादृष्टीकै सदाकाल रहै है, अर सम्यग्दृष्टी वाही सुख दुःखकूं देहके संबंधतै भया जानता संता देहतै आपकूं भिन्न अनुभव करै है, क्योंकि वेदना नाम जाननेका है, अर जानन आत्माका निजस्वभाव है, अर निजस्वभावका अभाव त्रिकालमै होता नांही असा श्रद्धान सम्यग्दृष्टीकै है तातै सम्यग्दृष्टी वेदनाजनित भयसै रहित सदाकाल निर्भय रहैहै॥

सो ही कलसरूप काव्य—

एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदा नाकुलैः।
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति।२४।

अर्थ—जो अनाकुल होय करि अभेदरूप भया जो वेद्य वेदक भाव ताका बलतै एक अचल ज्ञाननै आप सदा वेदै है कि अनुभव करै है या एक ही वेदना है। इहां वेदना नाम जानने का है। क्योंकि "विद ज्ञाने" धातुका रूप व्याकरणमै वेदना वणता है तातैं अर अन्यतै आई वेदना आत्मामैं नाहीं है, तातै ज्ञानीकै अन्यकृत वेदनाका भय कहांतै होय सो ज्ञानी निःशंक हुवा संता निरंतर आप स्वाभाविक ज्ञाननै सदाकाल अनुभव करै है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुष अपना नित्य सच्चिदानन्द आनन्दघन रूपनैं वेदै है सो वेदना है, अर अन्य परकृत या आत्माकै

नाहीं है तातैं वेदनाका भय रहित सदाकाल सम्यग्दृष्टी रहै है ॥२४॥

बहुरि मिथ्यादृष्टीकै ही अकस्मात् भय जनित दुःख होनेका भय रहै है, क्योंकि अन्यपदार्थके योगतैं सुख दुःख होना मिथ्यादृष्टी ही मानै है, ताहीतैं रागी द्वेषी देवनिकूं सुख दुःखका दाता जानि पूजै है तथा अपना इष्टकै निमित्त मंत्र जन्त्र तंत्रके करनेमैं योग्य अयोग्य करता नाही डरै है। अर सम्यग्दृष्टीकै अकस्मात् भय दुःख उत्पन्न होनेका नाही रहै है, क्योंकि प्रथमतौ अपना रूपकं शुद्ध ज्ञाता द्रष्टा अचल अनादि अनन्त अखण्ड अलक्ष्य चैतन्य प्रकाशरूप सुखका स्थान मानै है, यामै अचानचक होना कछू भी नाहीं मानै है। ऐसा दृढभावयुक्त सम्यग्दृष्टी सदा निःशंक रहै है, तथा सम्यग्दृष्टी अपना रूपकूं सत्स्वरूप मानै है। अर उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तपणा सत्का लक्षण मानै है। तातैं द्रव्यार्थिकनयतैं अपना स्वरूपकूं समय समय प्रति अर्थपर्यायरूप परिणमता जानै है, अर व्यञ्जनपर्यायरूप परिणमना कर्मकै आधीन मानै है। अर कर्मका होना पूर्व कर्मके अनुसार मानै है। जैसै बीजतै अंकुर-अर अंकुरतै बीज अर बीजतैं फेर अंकुर उत्पन्न होय है तसै ही पूर्वकर्मकै अनुसार नवीन कर्म बंधै है, अर उत्तरकालमै वै ही कर्म पूर्वकर्मनाम पाय नवीन कर्म उत्पन्न करै है॥

प्रश्न—ऐसैं है तौ अन्योन्याश्रयपणातैं संसारका अभाव कैसै होय।

उत्तर—कर्मकै अन्यान्याश्रयपणा है तथापि आत्मा पुरुषार्थ करै तदि सर्वथा कर्मको अभाव करै है सो ऐसै है कि जा समय प्रबल पुन्य कर्मका उदय होय ता समय तौ स्वर्गमैं देवपर्याय सम्बंधी सुखमैं मग्न हुवो सतो कछू भी संयम ग्रहण नाही करि सकै है, अर जा समय प्रबल पाप कर्मको उदय होय ता समय नरकमैं नारकपर्या-

य सम्बंधी दुःखमै मग्न हुवो सतो कछू संयम ग्रहण नाही करि सकै है। अर जा समय कर्मका उदय मंद होय ता समय अवश्यंभावी निर्वाणका समयरूप काललब्धि आय प्राप्त होय तौ वा समय समीचीन गुरुका उपदेशतै तप सयम ग्रहण करि शुक्लध्यानके बलतै सर्व कर्मका नाश करै है। ऐसा निश्चय राखता सन्ता सम्यग्यदृष्टी अकस्मात् होना कछू भी नाही मानै है तातै सदा निःशङ्क है ।।

सो ही कलशारूप काव्य ——

एकं ज्ञानमनाद्यन तमचलं सिद्धं किलै तत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः।
तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति॥२८॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी चितवन करै है यो मेरो ज्ञान है सो एक है, अनादि अनतहै, अचलहै, स्वयंसिद्ध है, सो निश्चयकरि यो जेत है तेतै स्वतं स्वभाव सदाकाल सोही है, या विषै दूसरेका उदय नांही है, तातैं या विषै अकस्मात् कछू उपजने वाला नाहीं है। तातै ज्ञानी कै अकस्मात् जनित भय काहेतै होय यातै सोज्ञानी निःशङ्क हुवो सन्तो निरंतर स्वाभाविक अपनूंज्ञान जो है ताहि सदाकाल अनुभव करै है भावार्थ—जो कबहू अनुभवमै नाही आया ऐसा कछू अकस्मात् भयानक पदार्थ प्रकट होय तातै प्राणीकै भय उपजै सो आकस्मिक भय कहिये है, अर ज्ञानस्वरूप आत्मा है सो अविनाशी अनादि अनंत अचल एक है याकै विषै दूजेका प्रवेश नांही होसकै है, तातैं यामै कछू भी अकस्मात् नवीन होना नांही है, ज्ञानी ऐसा जानै है। तातै ज्ञानीकै अकस्मात् भय काहेत होय। ज्ञानीतौ अपना ज्ञानभावकूं निःशंक हुवो संतो निरन्तर अनुभव करै है॥२८॥

या प्रकार ज्ञानी श्रद्धानीकै सप्त भय बाधा नही करै है ॥

प्रश्न—तुमनै कह्या तैसा चितवन तौ वीतरागीनिकै बणै, अविरतसम्यग्दृष्टीकै तौ भय देखिये है सो कैसै है। उत्तर—अविरत सम्यग्दृष्टीकै अंतरायप्रकृतिका उदयहै तातै निर्बलहै, अर मोहनी कर्मकी भयप्रकृतिका उदयहै तातै भयवान है। यातै ही वर्त्तमानकी वेदनाका भय उपजै है तातै वर्त्तमानका इलाज भी करै है, परतु ऐसा भय सम्यग्दृष्टीकै नाही होय है जाकरि स्वरूपका श्रद्धानत बिगजाय। धायका बालकको नाई देहनै जानता सता योग्य उपाय करैहै तथा उत्पन्न भया भयका आप स्वामी नही बणै है, ज्ञाता ही रहै है, अर अपनै योग्य इलाज करै है सो भी अप्रत्याख्यानावरणी कर्मका उदयतै कर है;परंतु अनतानुबधी कर्मका अभाव होगया तातै अयोग्य इलाज कदाचित ही नही करै है, अर उदय आया कर्मकूं भोगता सता निर्जरा ही करै है नवीन कर्मबंध नाही करै है। या प्रकार सप्तभय रहित निःशक गुणकूं सम्यग्दृष्टी धारण करै है॥

तैसै ही निःकांक्षित नाम दूसरा अङ्गका लक्षण रत्नकरण्ड मै कह्या है;——

कर्मपरवशे सांते दुःखैरंतरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धाऽनाकांक्षणा स्मृता॥१२॥

अर्थ—कर्मकै पराधीन,अर अंतसहित,अर दुःखकरि व्याप्त है उदय जाको,अर आगामी कालमै पापको बीज एसो सुख जो है ताकै विषै अनास्था कहिये वाछा का अभाव रूप श्रद्धा जो है सो अनाकांक्षणा नामा दूसरा गुण कह्या है याहीका निःकांक्षित नाम है। भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै अपना किया कर्मका फलकै विषै तथा काच

कञ्चन आदि सर्वपदार्थनिकै विषै तथा निंदा प्रशंसारूप वचन भेदनिकै विषै तथा सर्व अन्यमतीनिकरि प्ररूप्या एकांतरूप व्यवहार धर्मके भेदनिकै विषै वांछा नाहीहै,तातै वांछा कृत बंध नाहीहै। अर वर्त्तमानकी पीड़ा नही सही जायहैताके मेटनेका इलाज कीया चाहै सो चारित्रमोहके उदयतै है वा, चाहरूप परिणाम आप स्वामी नाहींवणै है,अर तिन परिणामनिकूं भी कर्मजनित ही मानै है आप तौ ज्ञाता हीरहै है। तातै सम्यग्दृष्टीज्ञानीकै वाछाकृत बन्ध नहीं है॥

तथा समयसारमैं,—

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तध सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३२॥
यः तुन करोति कांक्षां कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु।
सः निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥२३२॥

अर्थ—जो जाननवारो कर्मफलकै विषै तथा सर्व धर्मकै विषै वांछा नाही करै है सो निःकांक्षित सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है ॥२३२॥

टीका;—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि कर्मफलेषुसर्वेषुवस्तुधर्मेषु च कांक्षाभावान्निष्कांक्षस्ततोऽस्य कांक्षाकृतो नास्ति बन्धः किं तु निर्जरैव ॥२३२॥

अर्थ—यातै ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभावमयपणा करि सर्व ही कर्मफलकै विषै तथा सर्व वस्तधर्मकै विषै वांछाक अभावतै निर्वांछक है, तातै सम्यग्दृष्टीकै वांछाकृत बन्धनाहीं है तौ

कहा है कि निर्जरा ही है ॥२३२॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें श्लोक;—

सौभाग्ये भोगसारे च स्वर्गे राज्यादिके धने ।
इच्छा संत्यज्यते धर्मे या सा निःकांक्षिता भवेत्॥३६॥

अर्थ—सौभाग्यकै विषै,भोगनिके सारभूत सुखकै विषै,स्वर्गकै विषै,राज्य आदि सुखके स्थाननिकै विषै, धनकै विषै, धर्मकै विषै जो इच्छा तजै सो निःकांक्षित नामा दूसरा गुण है ।

भावार्थ—धर्मका फल इन्द्रियजनित सुख नाही चाहै सो निःकांक्षित गुण है ॥ ३६ ॥ तथा श्लोक—

धर्मं कृत्वाऽपि यो मूढ इच्छते भोगमात्मनः ।
रत्नं दत्वा स गृह्णाति काचं स्वर्मोक्षसाधनं॥३७॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष स्वर्ग मोक्षको साधनरूपधर्म जो है ताहि करिकै भी आपकै भोग इच्छा करै है सो रत्न देय काच ग्रहण करै है ॥ ३७ ॥

प्रश्न—वांछाका अभाव साधुनिकै तथा त्यागीगृहस्थनिकै तौ बणै परंतु अविरत सम्यग्दृष्टी तौ भोगनिकी इच्छा तथा वाणिज्यमैं सेवामैं लाभकी इच्छा तथा कुटुंबकी वृद्धि धनकी वृद्धि सदा वांछै है । अर रोग होनेकी शंका तथा कुटुंबके वियोग होनेकी शंका तथा जीविका बिगडनेकी शंका तथा धन धान्य वस्त्र शस्त्र अश्व गज रथ गृह आदि पदार्थनिके बिगडनेकी शंका निरंतर रहै है तातैं निर्वांछकपणा तथा निःशंकपणा अविरतसम्यग्दृष्टीकै कैसैं सम्भवै? अर निर्वांछकपणा तथा निःशङ्कपणा नही होय तदि सम्यक्त्व हुवा कैस मान्या जाय?

उत्तर—सम्यक्त्व जो है सो विपरीतश्रद्धानका तथा अनन्ता-

नुबंधीक्रोध मान माया लोभका अभाव भये होय है,यातै अविरत स-म्यग्दृष्टी सत्यार्थ आत्मतत्त्वका अर परतत्त्वका तौ श्रद्धानी है,अर सर्वथा अयोग्यका भी त्यागी है तातै अपने आत्माकूं तौ अखंड अविनाशी टंकोत्कीर्ण ज्ञानदर्शनस्वभावरूप श्रद्धान करै है। अर इंद्रियजनित भोग चक्रीके तथा इंद्रके तथा अहमिंद्रनिके भी भोग दाहके उपजावनैवारे श्रद्धानकरै है,अर आत्माधीन निराकुल अविनाशी ज्ञानानन्दमय सास्वता मोक्षसुखकूं ही सुख मानै है, अर अपना देह आदि धनसंपदादिकनिकूं कर्मजनित पराधीन विनाशीक दुःखरूप जानता सता; ये हमारे है ऐसा विपरीत झूंठा संकल्पहू कदाचित् नहीं करै है। तातै ही इसलोक परलोक जनित आदि सप्तभयरहित निःशंक रहै है। अर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण,सज्वलन रूप द्वादश कषाय अर हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेदरूप नव ईषत्कषाय असै इकवीश कषायके तीव्र उदयतैं उत्पन्न भया रागका प्रभाव करि इंद्रियनिकी आतापका मारया त्याग करनेकं असमर्थ है परंतु अनंतानुबंधीकषायके अभावतै अर मिथ्याश्रद्धानके अभावतै विषयनिकूं दुःखरूप जाणै है,तथापि वर्त्तमानकालकी वेदना सहनेकं असमर्थ हुवा सता जैसै रोगी कडुवीऔषधिकूं पीवैहै तैसै विषयनिकूं सेवैहै, परंतु जैसे अन्तरङ्गमै रोगी औषधिका त्यागकी चाह राखैहै तसै ही सम्यक्त्वी भी विषयनिका त्यागकी चाह राखै है तथापि तिनविना निर्वाह होता नही दीखैहै,अपने परिणामनिकी दृढता नाही दीखै है, कषायनिकी प्रबलता दीखै है, इंद्रियनिकी चपलता दीखै है,अरसंहनन कच्चो, कषायनिका उदय करि शक्ति नष्ट होय रही, तातै जैसै वंदी गृहमै पडया पुरुष परवस महादुःख भोगता भी नीसरि नाही सकै है अर वाहीकूं धोवै है, बुहारै है,सुधारै है,तथापि वंदीगृहनै बुरा जानैहै,वात नीसरना भला

जानै है।तैसै ही सम्यग्दृष्टीभी बन्दीगृह समान देहकूं जानता संता क्षुधा तृषा शीत घाम आदि वेदना सहनेकूं असमर्थ होय देहकू पोखै है, देहकू अपना नाहीं जाणै है,वर्त्तमानका भयहै,अर वर्त्तमानकी वेदना मेटने मात्र ही वांछै है,कर्मके उदयका जालमैं फसि रह्या है निकल्या चाहैहै तथापि उदयकी दशा बलवान है, तातै देहका निर्वाहके अर्थि जीविका भोजन वस्त्र आदिकू वांछै है तथा अप्रत्याख्यानावरणी आदि इकवीसकपायके उदयत अपयश होनेका तिरस्कार होनेका भयकर है.विषयनिकू वांछैहै क्योंकि कपाय परिपूर्ण घटी नाही,रागभाव मिट्यो नाहीं, तातै वहुत दुःख उत्पन्न होता दीखै ताकूं निवारण किया चाहै है तथापि राज्यभोग संपदादिकनिकू आगामी दुखकारी जान वांछा नाहीं करै है।असा निःकांक्षित अंगका लक्षण जानना।

अब निर्विचिकित्सितनामा तीसरा अगको लक्षण रत्नकरंडमैं कह्यो है श्लोक—

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीति र्मता निर्विचिकित्सता॥१३॥

अर्थ—स्वभावतै ही अपवित्र अर रत्नत्रयकरि पवित्र असा व्रती तपस्वीनिका देहकै विषै ग्लानिका अभाव अर रत्नत्रय रूप गुणनिमैं प्रीति है सो निर्विचिकित्सता नामा तीसरो अंग कह्योहै॥१३॥

भावार्थ—प्रथम तौ या देहकी उत्पत्ति ही पिताका वीर्य माताका रुधिरतै है,अर सप्तधातुमयहै,अर मलमूत्र करि भरीहै,अर नव द्वारनितै मल श्रवैहै। तातै स्वभावहीतै अपवित्रहै,तथापि तपस्वीनिका देह रत्नत्रय गुण करि पवित्र भया सन्ता पूज्य है तातै तपस्वीनिका देहनें प्रस्वेद रज आदि सम्बन्धयुक्त क्षीण मलिन देखि ग्लानि नाहीं करै, अर रत्नयत्र आदि गुणनिमैं प्रीति करै तथा सम्यग्दृष्टी वस्तुका

सत्यार्थ रूपनै जाणै है तातै पुद्गलनिकी परिणति नानारूप होती मानै है कि मल मूत्र रुधिर मांसरूप भी वैही परमाणूं परिणमै है, अर वैही परमाणूं जल पुष्प तृण अन्नरूप परिणमै हैं तातै शुभ अशुभरूप देखि ग्लानि नही करै है। तथा दरिद्र रोग आदि युक्त पुरुषनिका तथा तिर्यंचनिका देहकी मलिनता दुर्गंधता देखि करि तथा श्रवण करि ग्लानि नही करै है। तथा प्राचीन अशुभ कर्म के उदय करि क्षुधा तृषादिक रोग अर दरिद्र आदि दुःख का होनां तथा पराधीन बंदि गृहादिक मै पडनां, नीच कुळ मै उत्पन्न होनां, अमनोग्य भोजन वस्त्रका मिलना, अङ्ग—उपांगादिक हीनाधिक होनां आदि इष्टका नाश अनिष्ट का समागम होतसंतै मनमै ग्लानि नही करै है, तथा अन्यकै देखि करुणा तौ करै है परन्तु ग्लानि नही करै है। तथा कषायनिकी प्रबलतातै निंद्य आचरण करते अन्य पुरुषनिकूं देखि तथा मलिन क्षेत्र ग्राम गृह आदिकूं देखि मन नही बिगाडै है तथा अंधकार, प्रकाश, वर्षा, ग्रीष्म, शीत, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कालमै ग्लानि नही करै है। अर जो ग्लानि नही करै है ताहीकै दया है वाहीतै वैयावृत्य होय है, वाही कै वात्सल्य स्थितीकरणादिक गुण प्रकट होय है ॥ १३ ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं; श्लोक—

सर्वांगमलसंलिप्ते मुनौ रोगादिपीडिते ।
घृणा न क्रियते या सा ज्ञेया निर्विचिकित्सिता॥३९॥

अर्थ—सर्व अङ्गके विषै मल है लिप्त जिनकै, अर रोग आदि करि पीडित अैसे मुनि जे है तिनकै विषै जो ग्लानि नहीं करिये सो निर्विचिकित्सता जानिये ॥३९॥

जिनमार्गे भवेद्भद्रं सर्वं नो चेत्परीषहाः ।
इति संकल्पसंत्यागे भावपूर्वा मता हि सा ॥ २३३ ॥

अर्थ—जिनमार्गकै विषै जो परीषह नहीं होय तौ और सव भद्ररूपहै, या प्रकार खोटा संकल्प जो है ताका त्यागनै होतां संता निश्चयकरि भावपूर्वक निर्विचिकित्सता मानिये है ॥ २३३ ॥

तथा समयसारमै,—

जो ण करेदि दुगंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥३९॥
यो न करोति जुगुप्सां चेतयिता सर्वेषामेव धर्माणां ।
सःखलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः॥३९॥

अर्थ—जो चेतनांवान जीव सर्व ही वस्तु धर्मनिकै विषै ग्लानि नही करै है सो निश्चयकरि निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टी है ॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन सर्वेष्वपि वस्तुधर्मेषु जुगुप्साभावान्निर्विचिकित्सस्ततोऽस्य विचिकित्साकृतो नास्ति बंधःकिंतु निर्जरैव ॥

अर्थ—यातै ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणांकरि सर्व ही वस्तुधर्मनिकै विषै निर्विचिकित्सत है तातै विचिकित्साकृत बध नही है, तौ कहा है कि निर्जरा ही है ॥ भावार्थ—सम्यग्दृष्टी अनन्त धर्मनिका धारक पदार्थमात्रनैं मानै है तातै उद-

यागत कर्म जनित क्षुधा तृषा शीत उष्णता आदि भावनिमैं तथा मल मूत्रादिक मलिन द्रव्यनिमै वस्तु का स्वभाव जानि ग्लानि नहीं करै है, तातैं जुगुप्सानामा कर्मप्रकृतिकू उदयमैं आवता संतांभी आप कर्त्ता नहीं बणै है तातै जुगुप्साकृत बंध याकै नहीं है, कर्मप्रकृति रस देय आप ही खिरि जाय है तातैं सम्यग्दृष्टीकै निर्जराही है ॥

अबै अमूढदृष्टिनामा चौथा अंगको लक्षण स्वरूप कहै,—

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—नरक तिर्यंच आदि गतिनिका जो घोर दुःख तिनको जो मार्ग सो ही भयो जो कुमार्ग कहिये मिथ्यामार्ग ताकै विषैं तथा कुमार्ग मै तिष्ठते जे मिथ्यादृष्टी तिनिकै विषै "असम्मतिः" कहिये मनकरि प्रशंसा नही करणी, अर "अनुत्कीर्तिः" कहिये वचन करि प्रशंसा नही करणी, अर "असंपृक्तिः" कहिये काय करि प्रशंसा नहीं करणी कि अंगुष्ठका तथा तर्जनी अंगुलीका नख मिलाय सराहनां रूप मुद्रा दिखावना सो तीनूं ही प्रकार अमूढदृष्टी नही करै ॥ १४ ॥

भावार्थ—मूढदृष्टी नाम मिथ्यादृष्टी का है, अर जाकी मूढदृष्टी नहीं होय सो अमूढदृष्टी कहिए। अर या लोकमै मिथ्यात्वके प्रभावतै मिथ्यादृष्टी पुरुष रागी द्वेषी देवनिका पूजन प्रभावना करि, दश प्रकार कुदान करि, अश्वमेधादि यज्ञ करि, तथा मारण मोहन उच्चाटनादि प्रयोगकरि, तथा कूप, वावड़ी, तलाब बनावनें करि तथा कंदमूल शाक पत्र तृण धान्य आदि के भक्षण करनें करि तथा पंचाग्नि तपनें करि, मृगछालादिक ओढने करि, भस्म

लगानें करि, ऊर्द्ध बाहु राखनें करि, ठाढ़े रहने करि, शिर नीचा करि, पग ऊंचे बाधि भूलनें करि, जटा राखनें करि, गेरूके रंगे वस्त्र तथा रक्त वस्त्र तथा स्वेत वस्त्रके पहरने करि, तथा तीर्थनिके स्नान करि तथा गयाश्राद्धतैं इकवीशपीढीका उद्धार मानने करि तथा देहली रोडी कूवा आदिके पूजने करि, अपनां भला मानै है। अर समुद्रमै तथा गंगामै डूबने करि तथा भैरूंझाप के लेने करि तथा कासी करोतके लेने करि, वांछित परलोकमै पावै है तथा श्राद्धतर्पणकेकरने करि माता पिता परलोकमै सुख पावै है तथा सती होने करि सत्यलोकमै पतिकै साथि सुख भोगे है असा श्रद्धान करि आत्महिंसा करै है तथा देवनिके निमित्त बकरा भैंसा आदिकी हिंसा करै है। इत्यादिक करनेवालेनिकी प्रशंसा करै है तथा पुत्र पौत्र धन ऐश्चर्यके होने की चाहकरि जिनेद्रतैं भी असी प्रार्थना करै है कि मेरै फलाना कार्य हो जायगा तौ आपकै छत्र चमर आदि चढाऊंगा, इत्यादि मिथ्या व्यवहार करनां है सो मूढदृष्टी पणां हैं। अर अमूढदृष्टी जो व्यवहार करै हैं सो देव कुदेवका धर्म अधर्मका, गुरु कुगुरुका, शास्त्र कुशास्त्रका, पाप पुन्यका, भक्ष्य अभक्ष्यका, दान कुदानका, पात्र कुपात्रका, देय अदेयका, हेय उपादेयका, आराध्य अनाराध्यका वाच्य अवाच्यका, युक्ति अयुक्तिका, कार्य अकार्यका गम्य अगम्यका, अनेकांतस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागका परमागमतै निश्चय करि पक्षपात छांडि व्यवहारमै तथा परमार्थमै विरोध नही आवै तैसै श्रद्धान करि प्रवर्त्तै है। असा अमूढदृष्टिनामा चौथा अंग जौ है ताहि सम्यग्दृष्टी धारै है ॥१४॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मै श्लोक,—

धर्मे देवे मुनौ पुण्ये दाने शास्त्रे विचारणं ।
दक्षैर्यत क्रियते तद्धि प्रामूढत्वगुणं भवेत् ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो चतुर पुरुषनिनै धर्ममै, देवमै, मुनीश्वरनिमैं, पुन्यमै, दानमै, शास्त्रमै विचार करिये सो अतिशय करि अमूढ-दृष्टि गुण है ॥ ४२ ॥

तथा समयसारमै गाथा,—

जो हवइ असंमूढो चेदा समदिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो ॥२२४॥

यो भवत्यसंमूढः चेतयिता सम्यग्दृष्टिः सर्वभावेषु।
सःखलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ २३४ ॥

अर्थ—जो चेतनावान सम्यग्दृष्टी सर्व भावनिकै विषै असंमूढ कहिये मूढ नाही है सो निश्चय करि अमूढदृष्टी सम्यग्दृष्टी जानवे योग्य है ॥ २३४ ॥

टीका:—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णज्ञायकभाव-मयत्वेन सर्वेष्वपि भावेषु मोहाभावादमूढदृष्टिस्त-तोऽस्य मूढदृष्टिकृतो वंधो नास्ति किंतु निर्ज-रैव ॥ २३४ ॥

अर्थ—यातै ही सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीण एक ज्ञायकभावमयपणां करि सर्व ही भावनिकै विषै मोहका अभावतै अमूढ दृष्टीहै तातै याकै मूढदृष्टिकृत वध नही है तो कहा है कि निर्जरा ही है ॥ २३४ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी सर्व पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानै हैं,

तातै तिनिविषै राग द्वेष मोहके अभावतै अयथार्थ दृष्टि नाही धारै है अर चारित्रमोहके उदयतै पदार्थनिमै इष्ट अनिष्ट भाव उपजै है ताकूं कर्मके उदयकी वरजोरीजनित जानि इष्ट अनिष्ट भावनिका करता नहीं वणै है। तातै मूढदृष्टिकृत वध सम्यग्दृष्टीकै नाही है, कर्म प्रकृति रस देय खिर जाय है सो निर्जराही है ॥२३४॥

अब उपगूहन नामां पांचमा अंगकालक्षणरूप रत्नकरंडमै,—

श्लोक।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जंति तद्वदंत्युपगूहनं ॥ १५ ॥

अर्थ—जो स्वयमेव शुद्ध ऐसा रत्नत्रयरूप जिनमार्गकै अज्ञानी जनके तथा असमर्थ जनके आश्रय निंद्यता प्रकट भई होय ताहि दूरि करै सो उपगूहन अंग कहै है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिनेंद्र भगवाननै धर्मका लक्षण वस्तुस्वभावरूप तथा दशलक्षणरूप तथा रत्नत्रयरूप तथा जीवदयारूप कह्या है। सो ये च्यार भेदभी शिष्यके समझायनेमात्र भिन्न जनाये हैं, धर्मतो एक वस्तुका स्वभाव ही है। तातै आत्मा जा समय निज तत्त्वका श्रद्धान करि यथावत गुणपर्याययुक्त जानि निजस्वभाव मैं स्थिर अंतर्मुहूर्त्तमात्र रहै है ताही समय घातिया कर्मका क्षयकरि केवल ज्ञानकूं पावै है असा उपदेशरूप जिनमार्ग अनादिनिधन है, अर जगतके जीवनिका उपकार करने वाला है किसीहीका या मार्गतै अकल्याण नहीं है, अरया मार्गकूं कोईही बाधा नहीं दे सकै है। यामै किसी अज्ञानी के चूकनेतै तथा किसी असमर्थके चूकनेतैं धर्मकी निन्दा होती होय ताहि अपनी सामर्थ्य प्रमाण दूरि करै तथा आच्छादन करै। ऐसा उपगूहन गुण सम्यग्दृष्टीकै स्वय-

मेव प्रकट होय है क्योंकि सम्यग्दृष्टीकै धर्मतै अतिप्रीति है, अर धर्म है सो धर्मात्माकै आश्रय है तातै जैसै पुत्रकै विषै माताकी प्रीति है तातै पुत्रका खोट अन्याय देखत प्रमाणही जिहितिहि प्रकार आच्छादन करै है तैसै धर्मात्मा पुरुषकै विषैं सम्यग्दृष्टीकी प्रीति है, तातै किसी धर्मात्माकै अज्ञानतातै तथा असमर्थतातै तथा प्रबल पूर्वकर्मके जोरतै शीलमै व्रतमै सयममै दोष आजाय तौ वाकूं आप जानत प्रमाणही जीती प्रकार आच्छादन करै है, क्योंकि सम्यग्दृष्टीका स्वभावही अैसाहै जो दोष अपवाद तो किसीका प्रकट करैही नाही अपनी उच्चता आप कहै ही नाही। कदाचित मिथ्यादृष्टीका भी दोष अन्याय व्यभिचार आदि देखि लेवै तौ आप अैसा चितवन करै कि या संसारमै अनादि कर्मके जोरतै जीवनकै पराधीनताहै, जा समय मोहका तथा मिथ्यात्वका तथा ज्ञानावरण दर्शनावरणका प्रबल उदय आवैहै तासमय दोषमै प्रवर्त्तने का व्रतादिकतै चिगनेका कहा आश्चर्यहै, जीवनिकूं निरन्तर काम क्रोध लोभ मोह प्रेरणां करि भ्रष्ट करैहै आपो भुलावैहै, हमहू राग द्वेष मोहकरि कहार अनर्थ नही किये हैं, अब कछुयक जिनागमका सेवनतै गुण दोषकी पिछाणि भई है, तौ हू कषायके जोरतै अनेक दोष लागै है तातै भोले जीवनिकी कहावार्त्ता ? जो जाकी क्षेत्र कालके निमित्ततै जैसी भावी है तैसी प्रवृत्ति है भावीके मेटनेकूं कौन समर्थ है तथापि हमारै तांई तौ सामर्थ्यप्रमाण जीवमात्रका दोष आच्छादन करनेकाही अभिप्राय राखनां योग्यहै। तातैं धर्मात्माका तौ दोष अवश्य ही आच्छादन किया चाहिये। कदाचित एक धर्मात्माकै असमर्थतातैं भया एक दोष भी प्रकट हो जायगा तौ धर्मकी निंदा होयगी, मिथ्यादृष्टी

कहैंगे कि ये जिनधर्मी ज्ञानी तपस्वी व्रती संयमी जितने हैं तितने पापंडी हैं गरमार्गी हैं । तातैं धर्मात्मा सम्यग्दृष्टी होय सो प्रथम तौ आप धर्ममैं दोष नहीं लगावैं, दूसरा किसी धर्मात्माकै दोष लाग्यो होय तौ वाहि दूरि करै आच्छादन करै ॥ १५ ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमै श्लोक;—

साधर्मिणां मुनीनां च दृष्ट्वा दोषं विवेकिभिः ।
छादनं क्रियते यच्च तद्भवेदुपगूहनं ॥ ४५ ॥

अर्थ—ज्ञानवान पुरुपनि करि मुनीश्वरनिका तथा साधर्मीनिका दोप देखि जो आच्छादन करै सो उपगूहन गुण होय है ॥ ४५ ॥

तथा समयसारमै गाथा,—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहगणो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३५॥

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहककस्तु सर्वधर्माणां ।
सः उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः ॥ २३५ ॥

अर्थ— जो सिद्ध भक्तियुक्त होय अर अन्य सर्व वस्तुनिका धर्मनिको उपगूहक होय सो उपगूहन करने वारो सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है ॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन समस्तात्मशक्तीनामुपबृंहणादुपबृंहकस्ततोऽस्य जीवशक्तिदौर्बल्यकृतो नास्ति बन्धःकिन्तु निर्ज-

रैव ॥ २३५ ॥

अर्थ—जात निश्चय करि सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभावमयी पणां करि समस्त आत्मशक्तिके वधावनेत उपबृंहकहोय है, तातै याकै जीवशक्तिका दुर्बलपणां करि कीया बंध नही है तौ कहा है कि निर्जरा ही होय है ॥

भावार्थ— पाचमां गुण का नाम उपगूहन है तथा उपबृंहण है तहां उपगूहन नाम छिपावनेका है सो अपना उपयोग सिद्धभक्तिमै लगावै तदि अन्य सर्व धर्मनिका उपगूहक होय है क्योंकि छद्मस्थका उपयोग एक ही विषयका ग्राहक है तातै जा समय सिद्ध गुण चितवन करै है ता समय अन्य पदार्थ चितवन मैं नहीं आवै है ऐसा उपगूहकगुणयुक्त सम्यग्दृष्टीकै नवीन कर्मबंध नहीं होय है प्राचीन कर्म की निर्जरा होय है, तैसै ही उपबृंहण नाम वधावनें का है सो अपनां उपयोग सिद्धभक्तिमै लगावै तदि आत्माके निज गुण दर्शनज्ञानादि जे है तिनकी वृद्धि होय तदि आत्मा समर्थ होय अर समर्थ होय तदि दुर्बलता करि बंध होय था सो नही होय, निर्जरा ही होय। अर जेतै जितनां अंशां अंतराय का उदय है तेतै तितनां अंशां निर्बलता है परन्तु उपगूहन तथा उपबृंहण गुण युक्त सम्यग्दृष्टी अपने अभिप्रायमै निर्बल नही है कर्मके उदयकूं जीतने प्रति महान् उद्यमी है तातै निर्जरा ही करै है ॥

अब स्थिति करण नाना छटॉ अङ्गका लक्षणरूप रत्नकरंड मैं श्लोक,——

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरण मुच्यते ॥१६॥

दर्शनतैं तथा चारित्रतैं हू चलायमान होतैं पुरुष जे हैं तिनकों प्रवीण धर्मात्मा पुरुष जे हैं तिननैं धर्ममें वात्सल्यभाव करि उपदेशा दिकरि देय फेरि दर्शन में तथा आचरण में स्थापन करिये सो स्थिती करण अङ्ग कहिये है ॥ १६ ॥

भावार्थ—कोउ धर्मात्मा अव्रत सम्यग्दृष्टी तथा अणुव्रती तथा महाव्रती का परिणाम पूर्व काल मे दृढ़ उत्साह रूप था फिरि कोऊ प्रबल कषायके उदय करि तथा खोटी संगति करि तथा क्षुधा तृषादि रोगकी तीव्र वेदना करि तथा इष्टके वियोग करि तथा अनिष्टके संयोग करि तथा मिथ्यात्वीनिका वैभव देखि लोभकी वृद्धि करि तथा दरिद्र करि तथा मिथ्यात्वीनिका उपदेश करि तथा मिथ्यात्वीनिका मंत्र जंत्र तंत्र का चमित्कार देखि करि तथा मिथ्यादृष्टीनिका स्नान तर्पण आदि क्रियाकांडका आडम्बर देखि करि श्रद्धानतैं तथा आचरणतै चलायमान होता होय ताहि देखि प्रवीण पुरुष धर्ममें वात्सल्यताके भावकरि विचार करै कि या संसार में आर्यक्षेत्र संबन्धी मनुष्यजन्म उच्चकुल परिपूर्ण अङ्ग नीरोगतादि पाया तथापि धर्मग्रहण होणां बडा दुर्लभ है, सो सर्व दैवयोगतैं याने पाया अर अब प्रबल कर्मके उदय करि श्रद्धान ज्ञान आचरणतैं चिगै है या बडाही अनर्थ है, छूटे पीछे फिर असंख्यात कालमें मिलनां कठिन है तातै याहि जो तो प्रकार धर्म में स्थिर करनां ऐसा चिंतवन करि धर्मोपदेश देय वस्तुका स्वभाव संसारका स्वभाव पुन्यपापकी परिणति दिखाय कषायके मिटावने करि तथा सत्सङ्गतिमें लगावने करि तथा आहार पान औषधि आदिके देने करि तथा समताके बंधावने करि तथा गृह वस्त्र आभरण आदिकं देने करि तथा सम्यक्त्वके वधावनवारी अनेक

युक्तिके सुनावने करि तथा तप संयम व्रत आदिके प्रभाव दिखावने करि तथा स्नानादिक मिथ्या क्रियाकाडमै हिंसादि महापापके दिखावने करि तथा सामायिकादि शुद्धक्रियाके उपदेश देनै करि तथा शरीरकी टहल करनै करि तथा उपदेश ऐसा देवै कि हे धर्मात्मा ! तुमनै बहुत काल व्रत संयम श्रद्धानका पालन करि वांछित अर्थको दाता कल्पवृक्षसमान जिनधर्म अंगीकार कियौ है, अर अब किंचित् असाताके उदयतै आया दरिद्रकूं तथा रोगकूं तथा इष्टवियोग अनिष्ट सयोगकूं देखि कायर होय धर्मतै चिगौ हौ, तुम तौ सब देश कालके जानने वारे हौ, यो दुःखमा नाम पञ्चम काल बडो कराल है यामै अल्प आयु अल्पवुद्धि अल्पलाभ बहुत रोग बहुत कषाय बहुत दरिद्र बहुत पराधीनता बहुतविषयनिकी गृद्धता ईर्षाकी वाहुल्यता होय ही है क्योकि सम्यक्त्वसहित मरण करै सो जीव तौ पंचमकाल मे इस क्षेत्र मै जन्मही नही लेवै है, तातै दुःख के निमित्त रोगादिक अनिष्टकी प्राप्ति होत संतै कायर होय आर्त्त परिणाम करनां योग्य नांही, क्योकि आर्त्तपरिणाम किये आगामी अनिष्टकर्मका बंध अधिक होयगा, अर उदयआया कर्म रस दिये विना छूटने का नांही, भोगमे रोग संयोगमै वियोग अवश्य भावी है जो अपनां आयु अधिक होयगा तौ अन्य इष्टजीवनिका वियोग क्रमतै होयगा ही, अर अपना आयु न्यून होयगा तो सर्वका वियोग एकै काल होयहीगा, जहाँ अपनी देहका वियोग होहिगा तहां अन्य के वियोगका कहा आश्चर्य है, जाका उत्पाद है ताका विनाश है ही तातै दुर्गतिका कारण कायरपणां छांडि धैर्य धारण करो। मनुष्यजन्मका फल धैर्य संतोष शीलव्रत धारि धर्मसेवन करि आत्मकल्याण करनां है। इत्यादि उपदेश देय श्रद्धान ज्ञान आचरण मै स्थिर करै ।

अर जो रोगी इत्यादि उपदेश देतां सता भी वातपित्त कफकी आधिक्यतातैं ज्ञान चलायमान होत संतैं व्रत भंग करने लगि जाय अकालमैं भोजन पान जाचने लगि जाय त्यागी हुई वस्तुकूं चाहने लगि जाय तौ वाकूं मधुर वचन करि वारम्वार उपदेश करै ग्लानि कदाचित् नहीं करैं, क्योंकि कर्मके जोरतैं वात पित्त कफके निमित्ततैं छद्मस्थ ज्ञानके बिगडनेका कहा आश्चर्य है। जा समय याका ज्ञान वणि रह्या था ता समय तौ ए ही अन्य पुरुषनिकूं उपदेश देता था अर धर्मात्मा कहाता था अनेक पुरुष याके निकट रहते थे अब याकै कर्मके जारतैं ज्ञान सिथल भया परन्तु मेरा ज्ञानवानपणा अर धर्मात्मापणा तौ वणि रह्या है, या समय याका त्याग करूं तौ मेरा ज्ञानवानपणां तथा धर्मात्मापणां कहा रहै? याकी तौ अनौपम्य रत्ननिकी भरी झाम्पि मोक्ष पुर जावती भवरमैं पडी है अर हम याहि त्यागि देवैं तौ हमारा धर्म डूबि जाय तातैं हमारे वणतैं तौ याहि धर्ममैं फिर स्थिर करै हीगे, ऐसा दृढ़ व्यवसाय राखि यत्न करै ही। तथा अपनां आत्मा हू काम क्रोध लोभ मद मोह आदिके वशतैं नीति धर्म-कू छाडि अन्याय विषय धन धान्य जमी जागिकी चाह करै तथा अयोग्य वचन कह्या चाहै तथा अभक्ष्यभक्षण किया चाहै तथा कुटम्बमैं राग वधि जाय, संतोषतैं चिगिजाय, अनेक परिग्र-हनिका लालसावान हो जाय तथा रोगतैं, शोकतैं, भयतैं, दरिद्रतैं, कायर होजाय तथा हर्षतैं मोहकी गहलमैं रक्त होजाय तौ द्वादश भावना का स्मरणतैं तथा अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्यायतैं आत्मानैं अजर अमर अच्छेद्य अभेद्य अखण्ड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा एकाकी चिरंजीव अलेय अन्य परभावतैं भिन्न चितवन करता

संतां ज्ञानावरणादि अष्टकर्मके उदयतैं भिन्न अपनां उपयोगरूप स्वभावकूं श्रद्धान ज्ञान आचरणमैं स्थित करै सो स्थितिकरण नामा अंग है ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं श्लोक,—

व्रतचारित्रधर्मादिचलतां धर्मदेशनैः ।
स्थिरत्वं क्रियते यत्र स्थितीकरण मुच्यते ॥४८॥

अर्थ—जहां व्रत चारित्ररूप धर्मतैं चलता पुरुषकै धर्मोपदेश करि स्थिर पणूं करै तहां स्थितीकरण कहिये है ॥ ४८ ॥

तथा समयसार मै गाथा;—

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सट्ठिदि करणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३६॥

संस्कृत—

उन्मार्गं गच्छंतं स्वकमपि मार्गे स्थापयति यःचेतयिता ।
सःस्थितिकरणयुक्तःसम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ २३६ ॥

अर्थ—जो चेतनावान उन्मार्गनै प्राप्त होता अपनां आत्मानैं मार्गकै विषै ही स्थापन करै सो स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है ॥ २३६ ॥

टीका—

यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन मार्गात्प्रच्युतस्यात्मनो ऽमार्गे एव स्थितिकरणात् स्थितिकारी ततोऽस्य मार्गच्यवनकृतो नास्ति

वंधःकिंतु निर्जरैव ॥२३६॥

अर्थ—जातै निश्चय करि सम्यग्दृष्टी टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकभावमयपणां करि रत्नत्रयरूप मार्गतै छूटता अपना आत्मानैं रत्नत्रयरूपमार्गकै विषै ही स्थापन करै सो स्थितिकारी है. तातै या सम्यग्दृष्टीकै मार्गतै छूटने कृत वंध नांहीं है तौ कहा है कि निर्जरा ही है ॥२३६॥

भावार्थ—जो अपनां आत्मा अपने स्वरूपरूप मोक्षमार्गतैं चिगता होय तिसकूं तिसही मार्गकै विषै स्थापन करै सो स्थितिकरगुणयुक्त सम्यग्दृष्टी है तातैं मार्गतै छूटनेकृत वध नाही होय है उदय आये कर्म रस देय खिरि जाय है तातै निर्जरा ही है ॥ २३६ ॥

अब वात्सल्यनामा सातमा अंगको लक्षणरूप रत्नकरंडमे,——

श्लोक—

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अर्थ—इहा यूथनाम समूहका है तातै धर्मात्माकै रत्नत्रयके धारक जे है ते स्वयूथ है कि अपने वर्गके है, तातैं कहै है कि अपने वर्गके जे है तिन प्रति सत्यार्थभावसहित कपट रहित यथायोग्य प्रतिपत्ति करै सो वात्सल्य अंग कहिये है ॥ १७ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रके धारक मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका जे है तिननै अपने वर्गके जानि सांची प्रीति करि कपट रहित होय यथायोग्य प्रतिपत्ति कहिये देखतप्रमाण उठिखडा होनां सन्मुख जावनां गुणस्तवनकरनां वंदना तथा इच्छामि करनां पूजा सत्कार करना अवसरमै आहार पान वस्तिका उपकरण आदि देनां शरीरका मर्दनादिक करना मनमै हर्ष ऐसा माननां कि मानूं

दरिद्रीकूं निधि प्राप्त भई। तथा अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग आदि महाव्रतनिमै तथा अणुव्रतादिकनिमै तथा रत्नत्रयमै तथा दशलक्षणधर्ममै तथा स्याद्वादरूप जिनागममै तथा जिनमंदिरमै तथा जिनबिंबमै अनुराग स्वर्गादिकका साधक पुन्यबंधका कारण तथा परंपराय मोक्षका कारण जानि करै है। अर विषयनिमै तथा कषायनिमै तथा मिथ्याधर्ममै तथा मिथ्यादृष्टीनिमै तथा परिग्रहादि पंचपापनिमै अनुराग नरक निगोदादिकका कारण जानि नहीं करै है, परन्तु द्वेष भाव तौ अज्ञानी मिथ्यादृष्टी धर्मके द्रोही पातकी जे है तिनमै हू कदाचित ही नहीं करै है॥

प्रश्न—और तौ तुमनै कहा सो सत्य है परन्तु धर्मके द्रोही जिनमंदिर जिनागम जिनबिंबके विध्वंस करने वारे परितौ द्वेषभाव उपजे विनां कैसै रहै वाकूं तौ तीव्र दंड देनेमै पुन्य ही होता होयगा, क्योंकि वाकूं दंड नहीं होय तौ और भी दुष्टजन धर्मका तथा धर्मात्माका विनाश करता कैसै रुकै, तातै दंड ऐसा दिया चाहिये कि ताहि देखि फेर कोई धर्मते द्रोह नहीं करै॥

उत्तर——तुम विचार तौ करो तुमारा धर्मका नाम वीतराग है, सो राग दोय प्रकार है; एक प्रीतिरूप एक वैररूप ताकूं द्वेष कहै है। ते दोऊ ही बंधनै कारणहै, परंतु प्रीतिके दोय भेद है, एक तौ अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु दया धर्मरूप शास्त्रकरि प्ररूपित व्रत संयम पूजन स्वाध्याय आदि मै प्रीति है सो तौ पुन्यबंधनै कारण है तातै कथंचित् ग्राह्य है। अर स्त्री पुत्र कुटंब धन धान्य ऐश्वर्य आदिमै प्रीतिहै सो पाप बंधनै कारणहै तातै अग्राह्य है, अर द्वेष सर्वथा पाप बंधनै कारण है तातै सर्वथा अग्राह्य है।

अर वीतरागधर्मका लक्षण स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामै ऐसा कह्या है—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दहविहो धम्मो ।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥ ४८२ ॥
धर्मःवस्तुस्वभावःक्षमादिभावः च दशविधःधर्मः ।
रत्नत्रयँ च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥४८२ ॥

अर्थ—वस्तुका स्वभावहै सो धर्म है, तथा दशप्रकार उत्तमक्षमादिक भाव है सो धर्म है, तथा रत्नत्रयहै सो धर्महै, तथा जीवनिका रक्षणहै सो धर्महै ॥ ४८२ ॥

यामै च्यार लक्षण कहेते सामान्यपणें एक आत्मस्वभावके इ पर्यायनामहै, अर आत्मा का स्वभाव केवलदर्शन ज्ञान स्वरूपहै कि केवल देखने जानने रूप है तामैं राग द्वेषका नाम नाही । अर राग द्वेषहै सो मोहजनितहै तातै विभावहै, स्वभाव नाही, अर स्वभाव नांही सो धर्म नांही, तातै अपनां दर्शन ज्ञान स्वभाव रूप धर्म छांडि द्वेषभाव करनांहै सो अधर्म है. अर विशेषपणै जीवनिका रक्षणकूं धर्म कह्या तौ जहाँ तीव्रदंड देनां विचारया तहाँ जीवरक्षा नही रही अर रक्षा नही तदि धर्म कहा रह्या तातै द्वेषभाव सर्वथा नही करनां ॥

प्रश्न—ये तौ कह्या सो सत्य है परन्तु धर्मद्रोहीकूं दंड नही देवै ताकै धर्मतै वात्सल्यता कैसै कहिये ?

उत्तर—जिनधर्मका लक्षण तौ सामान्यविशेषरूपपूर्वै कह्या सो ही है। जिनमंदिर,जिनप्रतिमा जिनागम भी वाही धर्मके जनावने वारे हैं तातै उपचारतै व्यवहारमैं इनिकूं भी धर्म कहिये है सो ऐसे है कि जिनमंदिर भी छहूकायके जीवनिकी रक्षाका निमित्त कारण है तातै धर्म है क्योंकि आरंभमैं हिंसाहै सो आरंभ प्रथम तौ गृहा-

स्थारंभतै जिनमंदिरमै बहुत अल्पहै. अर है तामैं भी समितिरूप प्रवर्त्त-नेंका हुकमहै तातै हिंसा नहीं है रचाहीहै, सो भी ऐसै जानूं कि एषणा समितिकृत कार्यका अर प्रतिष्टापनासमितिकृत कार्यका तौ जिनमं-दिरमै प्रयोजन ही नाहीं, अरईर्यासमितिरूप प्रवर्त्ततां संता गमनागम-नकृत हिंसा नहीं है, अर भाषासमितिरूप प्रवर्त्ततां सन्तां वचनाला-पकृत हिंसा नांही, क्योंकि जिनमंदिरमै राजकथा चोरकथा भोजन-कथा स्त्रीकथारूप च्यारूं तौ विकथा अर चुगली के निंदाके माया-चारीके मर्मच्छेदकं कलहके निर्लज्जताके लोभके क्रोधके मोहके मदके मत्सरताके व्यभिचार आदिकें वचन का निषेध है अर कोई बोलै नहीं है तातै वचनकृत हिंसा नहीं है, अर आदाननिक्षेपणा समिति रूप प्रवर्त्ततां सन्तां उठावना मेलनां कृत हिंसा नांहीं है, क्योंकि ज उपकरण वगैरै पूजनके द्रव्य उठावै हैमेले है सो दृष्टितै सोधि यत्नाचा-रतै उठावैहै मेलै है तातै उठावने मेलनेकृत हिंसा नहीं है। ऐसैं समितिरूप यत्नाचारतै प्रवर्त्ततां सन्तां जिनमंदिर छहू कायके जीवनिका हितकारीही है। तथा यामै तिष्ठते मनुष्यदेव संयमरूप प्रवर्त्तेतेहै तातै परमहितकारी है, क्योंकि जाके देखते ही वीतरागता प्रकट होय है। अर तैसैही जिनागम भी छहूं कायके जीवनिका हितकारी ही है क्योंकि निरन्तर दया का उपदेश करै है। तातै ही जिनमन्दिर जिनप्रतिमा जिनागमकूं धर्म कहैहै। तौ ऐसे धर्ममैं किसी जीवमात्रतै द्वेष मानितीव्र दंड देना कैसे सम्भवै ? तातै धर्मतै वात्सल्यता धारन करने वाले मनुष्यकूं जिनमन्दिर जिनप्रतिमा जिनागम निर्ग्रंथ आदि धर्मके तथा धर्मात्माके रक्षानिमित्त पूर्वकाल मैं ही प्रथम तो जीवमात्रतै आप वैर नहीं कर है, क्योंकि ऐसा न्याय है कि आप वैर नहीं करै ताके इष्टकूं अन्य भी नहीं विगाडै।

दूसरा जो विना कारण ही वैर करने वारे जीव हैं तिनतैं साम्य वचन कहि धर्म का स्वरूप मधुर वचनतैं दिखाय वाकेमनमैं उत्पन्न भया क्रोधकूं शांत करैहैं। तीसरा धन धान्य वाके वांछित अपनी शक्तिप्रमाण देवैंहैं तासिवाय कदाचित् शिक्षानिमित्त पुत्रकूं जैसे अन्तरङ्गमैं प्रीतिधारण करतो पिता भय ताडनां दिखाय मार्गमैं लगावैहैं तैसैं शिक्षानिमित्त दुष्टजनकूं अन्तरङ्गमैं दया धारण करतो धर्मात्मा भय ताडना दिखाय मार्गमैं लगावै, इत्यादि दयाकी प्राधान्यता वणा रहै तसा अनेक उपाय धर्मकी रक्षानिमित्त पूर्वकालमैंही करतो रहैं। ता उपरांतिभी प्रवल दुष्ट दुष्टता करै तहां भावी वलवांन जानि आप अनित्य भावनाका वलतैं अपन परिणाममैं साम्यभावही प्रकट करै क्रोधभाव कदाचित् नहीं होवादेवै, अर वा दुष्ट पर भी करुणा ही करै कि देखो यो अज्ञानतातैं प्रवल कर्मवन्ध करि नरक निगोद आदि मैं अनेक जन्म पर्यंत दुःख भोगसी इत्यादि भावतौ करै परन्तु वाहि तीव्र दंड देवा रूप द्वेषभाव कदाचित् ही नहीं करै। जिनागमका तौ जहा तहा जी तीं प्रकार अभिप्राय असा है॥

अव प्रभावना नामा आठमां अंगका लक्षणरूप रत्नकरडमैं;—

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथा यथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना॥१८॥

अर्थ—संसारी जीवनिकै हृदयमैं अज्ञान तिमिरकी व्याप्ति जो है ताहि सत्यार्थ स्वरूप वचनके प्रकाशतै जैसैं होय तैसैं दूरि करि जिनशासनको माहात्म्य प्रकाश करै, सो प्रभावना नामा आठमां अंग है॥ १८॥

भावार्थ—अनादि कालतैं संसारी जीव जिनधर्मकूं नहीं जानता सन्ता चतुर्गति मैं भ्रमण करै है, अर या नहीं

जाण है कि मै कौन हूं मेरा कहा स्वरूप है मैं इहा कहातें आया हूं अर कौन ल्याया है मेरा हित कहा है मेरे कौन आराध्य है देव गुरु धर्म का कहा स्वरूप है मेरै भक्ष्य अभक्ष्य कहा है जन्म मरण कहा है मेरा कौन है मैं कौनका हू मेरै ताई या पर्याय मै कहा कहा करनां है इहांतैं मरि कहा जाऊंगा मेरै इष्ट अनिष्ट कहा है। अैसैं नही जानता संता मोह कर्म के जोरतैं संशय विपर्यय अनध्यवसाय रूप हो रह्या है ताहि स्याद्वादरूप परमागमके उपदेशतै जागृत करैं सो प्रभावना है। तथा दान जप तप संयम शील संतोष निर्लोभता विनय प्रियवचन जिनपूजन जिनगुणप्रकाशन करि धर्मका प्रभाव प्रकट करै सो प्रभावनां है। तातैं जिनपूजनमैं प्रथम तौ द्रव्य हो अैसा मगावै कि जैसा नगर मै राजाकै योग्य सर्वोत्तम होय, दूसरां साधनां धोवना आदि अैसी स्वच्छतातै करैं कि जामै दयाका तौ घात नहीं होय अर द्रव्य उज्जल होजावै, तीसरां सन्मुख खडा होय विनयपूर्वक निर्वांछक हुवा संता अैसी तरह चढ़ावै कि ताहि देखि मिथ्यादृष्टी भी चकित होय रहै, अर शील संयममै परिणाम अैसा दृढ़ राखै कि देहका पतन होवै तौ हू व्रतके पालनेमै उत्साह नहीं घटावै कि ताहि देखि सर्व लोक प्रशंसा करै, अर दान अैसैं देवै कि पात्र मै तौ भक्ति अर द्रव्य मै निर्लोभता प्रकट होती रहै तथा प्राण जातैं हू जीवघातका संकल्प असत्य भाषण परधनहरण परस्त्रीसेवन प्रमाण सिवाय परिग्रहग्रहण अभक्षभक्षण अनीतिप्रवर्तन लोभतै रागतै भयतैं आशातैं कदाचित् हू नहीं करै। तथा ग्रीष्म ऋतुमैं आतापनयोग पर्वतके शिखर परि धरै, अर वर्षाऋतुमैं वृक्षकै तलैं ध्यान धरै, शीतऋतुमैं नदी के तीरमैं ध्या-

न धरै, इत्यादिक तीव्रतपके करने करि जिनधर्मका प्रभाव प्रकट करै सो प्रभावना है। तथा हमारे निमित्ततैं कदाचित् कोई तरह धर्मकी व्रतकी शीलकी कुलकी निंदा अपवाद मति होजावै ऐसा अंतरङ्गमैं भय राखता संता ऐसा प्रवर्तै कि जामैं प्रशंसा उज्ज्वलता दृढता प्रकट होती रहै सो प्रभावना नामा आठमां अंग है॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

ज्ञानोग्रतपसासक्तैर्दानपूजादिकारकैः।
जिनधर्मस्य माहात्म्यं क्रियते सा प्रभावना॥५४॥

अर्थ—ज्ञानमैं तथा उग्र तपमैं आशक्तता करि तथा दान पूजादिकका करना करि जिनधर्मको माहात्म्य प्रकट करै सो प्रभावना है॥ ५४॥

तथा समयसारमैं;—

विज्जारहमारूढो मणोहरपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपभावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥२३८॥

विद्यारथमारूढः मनोरथपथेषु भ्रमति यः चेता।
सः जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिः ज्ञातव्यः॥२३८॥

अर्थ—जो पुरुष विद्यारूपरथकै विषैं चढ्या हुवा मनरूप रथका मार्ग कै विषै भ्रमण करै है सो पुरुष जिनेश्वरका ज्ञानको प्रभाव प्रकट करनें वारो सम्यग्दृष्टी जानवो योग्य है॥ २३८॥

टीका—यतो हि सम्यग्दृष्टिष्टंकोत्कीर्णैकज्ञायकभावमयत्वेन ज्ञानस्य समस्तस्वशक्तिप्रबोधेन प्रभावजननात्प्रभावनाकरस्ततोऽस्य ज्ञानप्रभावना-

प्रकर्षकृतो नास्ति बंधः किंतु निर्जरैव ॥ २३८॥

अर्थ—यातै जो पुरुष निश्चय करि सम्यग्दृष्टी है सो टंकोत्कीर्ण एकज्ञायकभावमयीपणांकरि ज्ञानकी सम्यक्तशक्तिका जाग्रत होनें करि प्रभावके प्रकट करनेत प्रभावना का करता है, तातैं याकै ज्ञानकी प्रभावनाका अप्रकर्ष जो न्यूनपणां ता करि किया बंध नही है तो कहा है कि निर्जराही है ॥ २३८ ॥

भावार्थ—प्रभावना नाम प्रभाव प्रकट करनेका है तातैं अपना ज्ञानका प्रभाव निरन्तर श्रुताभ्यास करि प्रकट करै सो निश्चयप्रभावनानामा आठमा अंग है। अर जा पुरुषकै प्रभावना अंग प्रकट भया ता पुरुषकै अप्रभावनाकृत कर्मबंध पूर्वकालमै होता था सो नही होय है, अर संचित कर्म रस देय देय समय समय प्रति असंख्यातगुणे खिरै है तातै निर्जराही है। अर विद्यारथविषै आत्मा कूं थापि मनोरथ का मार्गविषै भ्रमण कराणा कह्या सो जैसै व्यवहार प्रभावनामे जिनविंबकूं रथमै स्थापन करि मन वाञ्छित स्थानमै भ्रमण कराइये है तसै निश्चय प्रभावनामै आत्माकूं विद्यारूपी रथमै स्थापन करि मनवाञ्छित निजतत्व निर्णयरूप स्थानमै भ्रमण कराना कह्या है ॥ २३८ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकै ये निःशंकितादिक अष्ट गुण निर्जरा के कारण कह्े तैसै ही और भी सम्यक्तके गुण निर्जराके कारण जाननें। इहां इतना और विशेष जाननां कि निश्चय नय तौ अपनां चेतना स्वरूप तै नही चिगै संदेहवान नहीं होय ताकै निःशंकित गुण कहै है, अर व्यवहारनय देव गुरु धर्मका स्वरूपतै तथा सप्ततत्त्व नव पदार्थ का स्वरूपतैं नही चिगै संदेहवान नही होय ताकै निःशंकित गुण कहै हैं। बहुरि निश्चय नय तौ कर्मफलकी

वांछा नहीं करै तथा अन्य वस्तुके धर्मकी वांछा नही करै ताकै निःकांक्षित गुण कहे है, अर व्यवहारनय संसार सबंधी सुखकी वांछा नहीं करै ताकै निःकांक्षित गुणहै । बहुरि निश्चय नय तौ वस्तुनिके धर्मनिकै विषैं ग्लानि नहीं करैं ताकै निर्विचिकित्सत गुण कहे है, अर व्यवहारनय देव गुरु धर्मके स्वरूपमै ग्लानि नहीं करै ताकै निर्विचिकित्सत गुण कहे है । वहुरि निश्चय नय तौ निजस्वरूपमै मूढ नहीं होय ताकै अमूढदृष्टि गुण कहेहै अर व्यवहार नय देव गुरु धर्मका तथा तत्वार्थश्रद्धानमै मूढ नहीं होय ताकै अमूढदृष्टि गुण कहेहै । वहुरि निश्चय नय तौ विभावभावकूं छिपाय निजशक्तिकूं वधावै ताकै उपगूहन तथा उपबृंहण गुण कहेहै, अर व्यवहार नय शुद्धमार्गकै बालकके तथा अशक्तके संवध तै निंद्यता प्रकट होती होय ताहि छिपाय शुद्धता प्रकट करै ताकै उपगूहन तथा उपबृंहण गुण कहेहै । वहुरि निश्चय नय तौ आपन तथा परनै निजस्वरूपतै चिगतानै फेर वाहीमै स्थापन करै ताकै स्थितीकरण गुण कहेहै, अर व्यवहारनय दर्शनज्ञान चारित्रतै तथा देव गुरु धर्मका स्वरूपतै चिगतानै फेर वाहीमै स्थापन करै ताकै स्थितीकरण गुण कहेहै । वहुरि निश्चय नय तौ अपनां स्वरूपमै अनुराग होय ताकै वात्सल्य गुण कहेहै, अर व्यवहार नय सत्यार्थधर्मकै धारकनिमै अनुराग होय ताकै वात्सल्य गुण कहेहै । वहुरि निश्चय नय तौ आत्मगुणका प्रभाव प्रकट करै ताकै प्रभावनां गुण कहेहै, अर व्यवहार नय अज्ञान अंधकारका फैलावनै दूरि करि जिनशासनका माहात्म्य प्रकट करै ताकै प्रभावनां गुण कहेहै । अरगुणनिके प्रतिपक्षी शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवत्सलता, अप्रभावना, ये आठ दोष जे है

तिनकरि वंध होय था सो आठ गुण प्रकट भये पीछै नही होय है, अर पूर्व सन्चित वंधका नाश होय है।

प्रश्न—इन आठूं गुणनिकूं होत संतैं भी चारित्रमोहके उदयतैं शङ्कादिक दोष प्रवर्त्तैं है तिन कृत बन्ध होनां सिद्धांतग्रन्थनिमैं कह्याहै, अर समयसार आदि अध्यात्मग्रन्थनिमैं सम्यक्त्वीकै वन्ध नहीं निर्जरा ही है ऐसैं कह्या सो कैसैं है।

उत्तर—वन्ध होने के निमित्तकारणनिमैं प्रधान कारण मिथ्यात्वहै क्योंकि मिथ्यात्वकृत वन्धकै ही अनन्तपणां कह्या है अर वाहीमै अनुरागको आधिक्यता है, अर मिथ्यात्वरहितकै भी चारित्रमोहजनित वन्ध होय है सो अल्पस्थिति अल्प अनुभाग सहित होय है तातैं अवन्ध कह्या है। याका अभिप्राय ऐसाहै कि पूर्वकालमैं जैसा वन्ध मिथ्यात्वतैं होयथा तैसाही वन्ध चारित्रमोहतैं होयहै तथापि वाकी स्थिति क्षीण होयगी ता पहिली ही याकी स्थिति क्षीण होय जायगी, तातैं वन्ध भया भी अवन्धकै समान है। अर यामै अनुभाग भी बहुत घाटि है तातै जैसा फल वै देवै था तैसा ये फल भी नहीं देवैगा तातै भी नही भयाकै ही समान है। ताका दृष्टांत असाहै कि एक पुरुष साठि वरष जीवैगा ताकै बीस वरषकी ऊमरिमैं पुत्र भया ताकी जन्मपत्री देखि ज्योतिषीन कहाकि ये पुत्र वीस वरष जीवैगा ऐसा वचन सुनि सर्वही कहते भये कि याकी चालीस वरषकी ऊमरिमै ही पुत्रका वियोग होयगा तातै याकै पुत्र भया भी नही भयाकै ही समान है, क्योंकि पुत्र होनेका आनन्द तौ वृद्ध अवस्थामैं चाकरी करनें की आस निमित्त था, तथा अपनां पिछला कुटम्बकी पाळनां निमित्त था सो दोऊही मनोरथ निष्फल है तातै भया जैसा ही

नहीं भया । तैसै ही चारित्रमोहजनित बन्ध होय है तौ हू नही भये के ही समान है । तथा दृष्टांत ऐसा भी है कि जा वृक्ष की जड़ कटि गई ता वृक्ष के रहने की कहा आसा रही, किंचित् काल पत्र हरे दीपै है तौ हू हरित नही रहैंगे । तैसैही संसारकी जडरूप मिथ्यात्व था ताके अभावमै नवीन बन्ध चारित्रमोहजनित होय है तौ हू अबन्ध ही है । तथा दृष्टात ऐसा भी है कि एक लीक दश अंगुल लम्बी थी वाकै निकट च्यार अंगुल लम्बी दूसरी लकीर खीची पीछै बड़ी लीकके मुजाननेके यत्नमै ही छोटी लीक भी मुजणि गई वाके निमित्त दूसरा यत्न नही करनां पड्या तैसैं ही दीर्घस्थितिवान मिथ्यात्वजनित कर्मके नाश होनेके सङ्ग ही अल्पस्थितिवान चारित्रमोहजनित कर्म भी नाशनै प्राप्त होय है अर अध्यात्मशास्त्रकै विपै सामान्यपणै सम्यग्ज्ञानी मिथ्याज्ञानी होनेरी प्रधानता लिये कथन है सो सम्यग्ज्ञानी भये पीछ अवशेष कर्म रहैहै ते अल्प प्रयासतै ही मिटि जायगे तातै अवन्ध कह्या है । ताका दृष्टात ऐसा जानना कि जा राजकुमारकूं युवराज पद हो गया सो अवश्य राजा होयगा तातै राजकुमारकू भी राजा कहियेहै, तैसै ही जा जीवकै सम्यक्त होगया सो अवश्य केवलज्ञानी होयगा, तातै सम्यक्तीकूं भी ज्ञानी कहियेहै । भावार्थ— सम्यक्त भये पीछ अनन्त संसारी नही रह्या तातै अवन्ध कह्या है ॥

अव सम्यग्दृष्टीका लक्षणस्वरूप कलसमयसारमै,—

छन्द मन्दाक्रांता ।

रुंधन्वंधं नवमिति निजैः संगतोऽष्टाभिरंगैः
प्राग्बद्धं तु क्षयमुपनयन् निजरोज्जृंभणेन ।

सम्यग्दृष्टिः स्वयमतिरसादादिमध्यांतमुक्तं
ज्ञानं भूत्वा नटति गगनाभोगरंगं विगाह्य ॥५६॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार अपनें स्वभावरूप अष्ट अङ्ग जे हैं तिन करि मिल्या हुवो अर नवीन कर्म बन्धतैं रोकतो सन्तो अर निर्जराका फैलाव करि पूर्व वद्ध कर्म जे हैं तिननैं क्षयनैं प्राप्त करतो सन्तो सम्यग्दृष्टी आप अपनां अति आनन्दका रसतैं आदि मध्य अन्त रहित ज्ञानस्वरूप होय करि आकाशका मध्यरूप रङ्ग भूमिनै अवगाहन करि नृत्य करै है ॥५६॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टा शङ्काश्रित वन्ध नहीं करता निःशङ्किता-दि गुण कृत निर्जराके होतैं अपनां ज्ञानानन्दमय हुवा सन्ता यावत् काललब्धि नही आवै है तावत्काल आकाश के मध्यमै ऊर्द्ध मध्य लोकरूप नृत्यके अखाडेमै उत्तम जन्मरूप नृत्य करै है ॥ ५६ ॥

प्रश्न—अष्ट अंगनिमै कोई अंगहीनभी सम्यक्त कार्य्यकारी है कि नही है।

उत्तर रूप रत्नकरंडमै श्लोक;—

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसंततिं।
न हि मंत्रोऽक्षरन्यूनो निहंति विषवेदनां ॥२१॥

अर्थ—अङ्गहीन सम्यक्त जो है सो विषवेदनानैं नही हणैहै।

भावार्थ—अष्ट अंग संयुक्तही सम्यक्त वाञ्छितकार्यकारी होय है अंगहीणतैं वाञ्छित काय वणैं नाही ॥ २१ ॥

प्रश्न—सम्यग्दर्शन का लक्षण अष्ट अंगनिसंयुक्त कह्या सो तौ श्रद्धानरूप किया परन्तु सम्यक्तके अतीचार तथा पंचविंश-

ति मलदूषण जे हैं तिनका भी लक्षण कहौ।

उत्तर—अनुक्रमत कहैंहै सो सुनं। प्रथम तौ सम्यक्त्वके पंच अतीचारका लक्षणरूप तत्वार्थ सूत्रमैं;——शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशसासंस्तवा सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥ अर्थ—शंका कहिये संशय, कांक्षा, कहिये वांछा, विचिकित्सा कहिये ग्लानि, अन्यदृष्टिप्रशंसा कहिये मिथ्यादृष्टीनिका मन करि सराहना, अन्यदृष्टिसस्तव कहिये मिथ्यादृष्टीनका वचन करि सराहना, ए पांच सम्यग्दृष्टीका अतीचार है।

प्रश्न—प्रशंसाकै विषैं अर सस्तवकै विषै कहा विशेष है।

उत्तररूप राजवार्तिक—वाङ्मनसविषयभेदात् प्रशंसासंस्तवयोर्भेदः ॥ १ ॥ अर्थ—वचनके अर मनके विषयभेदतैं प्रशंसाकै अर सस्तवकै भेदहै ॥ १ ॥ टीका—

मनसा मिथ्यादृष्टिज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा, भूताभूतगुणोद्भावनवचनं संस्तव इत्यनयोर्भेदः॥ १ ॥

अर्थ—मन करि मिथ्यादृष्टी का ज्ञान चारित्र गुणनिका प्रकट करनाहै सो प्रशंसा है, अर छते अणछते गुणनिको प्रकट करने वारो वचन है सो संस्तवहै या प्रकार इन दोऊनिके विषैं भेदहै ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;——

शंका कांक्षा भवेत्पापा विचिकित्सा तथापरा।
अन्यदृष्टिप्रशंसा च संस्तवोऽस्तु कुलिंगिनां ॥९८॥

अर्थ—शंका, कांक्षा, विचिकित्सारूप पाप, अर तैसैही और

अन्यदृष्टीनिकी प्रशंसा, अर कुलिंगीनिका संस्तव ए पांच सम्य ग्दृष्टीके अतीचार है ॥ ९८ ॥

तीर्थेशे सद्गुरौ शास्त्रे सप्ततत्वे वृषे च यः।
शंकां करोति मूढात्मा शंकादोषं लभेत सः ॥९९॥

अर्थ—तीर्थंकरकै विषै समीचीन गुरकै विषै शास्त्रकै विष सप्ततत्वकै विषै दशलक्षण आदि चतुर्विध धर्मकै विषै जो मूढ़ात्मा शंका करै है सो शंकानामा दोषनै प्राप्त होय है ॥ ९९ ॥

चरणादिवृषं कृत्वा भोगान्वांछति योऽशुभान् ।
इहामुत्र भवान्होऽधीराकांक्षादोषभाग्भवेत् ॥१००॥

अर्थ—जो पुरुष त्रयोदश प्रकार चारित्र आदि धर्मनै पालन करि या लोकमे तथा परलोकमे उपन्न भया अशुभ भोगनिनै वांछै है सो निर्बुद्धी आकांक्षानामा दोपको भागी होय है ॥ १०० ॥

दृष्ट्वा मुनीश्वरांगं यो मललिप्तं रुजान्वितं ।
घृणां धत्ते भजेत्सोऽपि नलं विचिकित्साभिधं ॥१०१॥

अर्थ—जो रोग संयुक्त तथा मलकरि लिप्त मुनीश्वरनिका अंगनै देखि ग्लानि धरै है सो ही विचिकित्सा नामा दोषनै भजै है कि पावै है ॥ १०१ ॥

कुदृष्टेः कुनयोज्ञानवृत्तजां यो करोति ना ।
प्रशंसां जायते तस्य सम्यक्त्वस्य मलोऽशुभः १०२

अर्थ—जोपुरुष कुदृष्टीका कुत्सिततपतै तथाकुत्सितज्ञानतै उपन्न भई प्रशंसानें करै है ताकै अशुभरूप सम्यक्त्वको कुदृष्टि प्रशंसा नामा दोष उपजै है ॥ १०२ ॥

करोति संस्तवं योऽधीः कुज्ञानकुव्रतादिजं।
पाखंडिनामतीचारं लभेत्सद्दर्शनस्य सः॥ १०३॥

अर्थ—जो निर्बुद्धी पाखंडीनिका कुज्ञान कुव्रततैं उत्पन्न भया संस्तवन करै है सो सम्यग्दर्शनका संस्तवनामा अतीचारकूं प्राप्त होय है॥ १०३॥

प्रश्न—अतीचार शब्दका अक्षरार्थभी कहो।

उत्तररूप वार्तिक—दर्शनमोहोदयादतिचरणमतीचारः ॥३॥

अर्थ—दर्शनमोहके उदयतैं अतिचरण कहिये मर्यादका उलंघन होय सो अतीचार है॥३॥

टीका—दर्शनमोहोदयात्तत्वार्थश्रद्धानादतिचरणमतीचारः अतिक्रमः इत्यनर्थांतरं। एते शंकादयः पंच सम्यग्दर्शनस्यातीचाराः॥ ३॥

अर्थ—दर्शनमोहके उदयतैं तत्वार्थश्रद्धानतैं चिगनां है सो अतीचार है, अतीचार है सो ही अतिक्रम कहिये मर्यादका उलंघना है, ये दोऊ शब्द एक ही अर्थके कहनेवारे हैं, अर्थांतरवाची नहीं है। ऐसें ए शंकादिक पांच सम्यग्दर्शनके अतीचार हैं।

प्रश्न—अतीचार का लक्षण भी श्रद्धान किया परंतु अनाचारके भी लक्षण कहो,

उत्तर—अबैं पचीश दोषनिके नाम प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमें कहे है।

श्लोक—

मूढत्रयं भवेच्चाष्टौ मदा जात्यादिजा बुधैः।
षडनायतनान्यष्टौ दोषाः शंकादयो मताः॥६॥

अर्थ—तीन मूढता, अर आठ जात्यादि मद, अर षट् अनायतन, अर आठ शंकादिक दोष ये पचीस सम्यक्त्वके मलदोष बुधजननिनै कहे है।

प्रश्न—इनिके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहौ।

उत्तर—प्रथम तो तीन मूढताके लक्षण कहेहै, तिनिमै भी प्रथम देवमूढता का लक्षणरूप रत्नकरंड मै—

श्लोक—

वरोपलिप्सयाऽऽशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—जो पुरुष वर की वांछा करि आशावान हुवो सतो रागद्वेष करि मलिन देवता जे है तिनकी उपासना करै, सो पुरुष देवतामूढ कहिये है॥ २३ ॥

भावार्थ—संसारी जीव अपनें इष्टरूप पिता पुत्र मित्र कलत्र धन धान्य आभरण वस्त्र शस्त्र वाहन राज्य ऐश्वर्य आदिकूं चाहता संता तथा इनिके वियोग होनेका भयवान हुवा संता तथा दरिद्र रोग कुपुत्र कुमित्र कुभार्या आदि आदि अनिष्ट सम्बन्धकूं नहीं चाहता संता अनादि मिथ्यात्वके वशतै एतौ नहो जानै है कि इष्टकी प्राप्ति दानांतराय लाभांतराय भोगांतराय वीर्यांतरायके दूरि भये होयगी, अर मोहके उदयते कुदेवमै तथा अदेवमै भक्तिपूर्वक अनुराग करै है सो देवमूढ है।

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमै, श्लोक—

वीतरागोऽस्ति निर्दोषः कृष्णब्रह्मादिकोऽथ वा।
सदोषः पूज्यते मूढैः पशुर्वा गतबुद्धिभिः ॥८॥

अर्थ—ज्ञानवाननि करि अति निर्दोष वीतराग जो है सो पूजिये है. अर कृष्ण ब्रह्मादिक सदोष है ते पशू समान निर्बुद्धी पुरुषनि करि पूजिये है। भावार्थ—निर्दोष वीतराग सर्वज्ञदेव अर सदोष हरिहर ब्रह्मादिक देव मूढबुद्धीनिके ज्ञानमै समान प्रतिभासै है ते देवमूढ है ॥ ८ ॥

यत्परीक्षां परित्यज्य मूढभावेन पूज्यते।
पुण्यहेतोर्बुधैस्तत्र देवमूढत्वमुच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ—जो पुरुष परीक्षानै त्यागि करि मूढभाव करि सदोषनै पुन्यकै निमित्त पूजै है तिनमै बुधजननिनै देवमूढपणूं कह्यो है ॥९॥

भावार्थ—रागद्वेषसहितपणांतै वस्त्र शस्त्र आभरण स्त्री वाहन आदिके धारक मनोग्य अमनोग्यरूप बणाय देवमानि पूजै सो तौ कुदेवपूजक देवमूढ कहिये। अर गौ अश्वगज आदि तौ पशू अर वड पीपल छाला खेजड़ा आदि वृक्ष अर मूसल कुखल देहली रोडी आदि जड द्रव्यनिनै देव मानि पूजै सो अदेवपूजक देवमूढ कहिये क्योंकि मूढ नाम मूर्ख अज्ञानी का है तातै कुदेव मै तथा अदेव मै देवबुद्धि जाकी होय सो देवमूढ कहिये है ॥ ९ ॥

बहुरि लोकमूढपणांका लक्षण रत्नकरंडमै कहै है;—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनां।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अर्थ—गंगादिक नदीनिमै स्नान, समुद्रमै स्नान, बालू के पुञ्ज, पाषाणके पुञ्ज, पर्वततै पतन, अग्निमै पतन इत्यादि करणां

है सो लोकमूढ कहिये है ॥ २२ ॥

भावार्थ—अन्यमतीनिकी संगतितैं तथा उपदेशतैं गङ्गादिक नदीनिमै स्नान करनैंतै, समुद्र का लहर लेनें तैं बालू रेतके पिंड करने तैं, माता पिताके दाहक्षेत्र मै पाषाणके पुंज करनतैं, भरू झंप आदि पर्वतके शिखिरतै पडनें तं, पतिके साथि अग्निमें बैठि सती कहानतं धर्म मांनैं है। तैसै ही तीर्थस्नान करनेतैं आपका पवित्र होनां मानें हैं। तथा ग्रहणके आदि अन्तमै स्नान करनेतैं पुन्य मांनै है। तैसैं ही संक्रांतिमै तथा नक्षत्रतिथिके योग मै दान देनेतै, तथा अपने माता पिता का नाना नांनीका पुत्र पौत्रादिकका तर्पण करनेतै तथा उनके निमित्त शय्या आदि के दान देनेतं पुन्य मानै है तथा कूंवा परिहंडा देहली रोडी छीक छाजला मूसल ऊंखल पालिकी घोडा हाथी रथ तरवारि धनुष बांण बरछी नगारा रुपया महोर बड पीपल खेजडा तुलछी आदिके पूजनतैं मङ्गल होनां मानैं है सो लोक मूढता है।

प्रश्न—भावार्थ में गङ्गादिकमैस्नान आदि का नाम लिखे सो मूल श्लोकतें सिवाय कहातैं लिखे।

उत्तर—मूल श्लोक में आपगासागर स्नान आदि शब्द है सो उपलक्षण शब्द है तातैं लिखे हैं।

उत्तर—असा उपलक्षण अर्थकी प्रतीत तुमारै कैसे हुई।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला आदि ग्रंथकार जहां तहां इनिका निषेध करे है ताकूं देखि हमनें लिख्या है। अर इहां येक येकके निषेधका श्लोक ग्रन्थवधनें के भयतैं नहीं लिखे हैं क्योंकि ये ग्रन्थ स्वमतनिर्णय को है अर स्वमतवाले सर्वही इनिकूं त्याज्य मानै है तातैं संक्षेप नाम मात्र लिखे हैं।

प्रश्न—तुमनैं हाथी घोडा तरवार आदिके पूजनें मैं लोक मूढता बताई तौ हाथी घोडा तरवारि कलम आदिका सुधारणां तथा नाई व्यास जंवाई भाई सेवक स्वामी आदिका सत्कार करनां तिलक करनां अक्षत चढाना तांबूल श्रीफल वस्त्र आदि देना भी योग्य है कि नांही ।

उत्तर— हाथी तरवार आदि का सुधारनां, अर नाई व्यास आदिका सत्कार करनां तौ लोकव्यवहार है क्योंकि अदेवमै देवबुद्धि करि पूजनां है सो लोकमूढता है ताका निषेध है । तथा अतिशयरूप जिनप्रतिमां के नामतैं तथा जिनक्षेत्र के नामतैं जडूला चोटी राखै है । तथा अपने इष्टकै उपद्रवकी शांतिकै अर्थि बोलारी बोलै है अर वा निमित्त पूजन करावै है तथा सजातीनिकूं जिमावै है सो सर्व लोकमूढता ही है, क्योंकि ऐसैं करनेका आगम का हुकम नांही, अर हुकम बिना करै सो सर्व धर्मपद्धतिमै लोकमूढता नाम पावै है ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं—

अहिंसालक्षणोयेतो जिनोक्तो धर्म एव सः ।
स्नानादिजश्च श्राद्धादिलोकाचारेण चागतः ॥ १२ ॥

अर्थ—अहिंसालक्षणसंयुक्त जिनेंद्र भाषित है सोही धर्म है अर स्नानादिकनैं उत्पन्न भया तथा श्राद्धतर्पण आदि है सो लोकाचार करि आयो व्यवहार है । भावार्थ—स्नान श्राद्धतर्पण आदिमैं धर्म माननां है सो लोकमूढता है ॥

आचर्यते शठैर्लोकैःपरित्यक्त्वा (ज्य) विचारणं ।
प्ररूपितं जिनैस्तद्धि लोकमूढत्वमेव भो ॥१३ ॥

अर्थ—भो भव्य जन हौ ! जो मूर्ख लोकनि करि विचारनै छोडि आचरण करिये है सो जिनेंद्रदेवनैं निश्चयकरि लोकमूढपणूं ही कह्यो है ॥ १३ ॥

परीक्षालोचनैस्त्वं सज्जैनं धर्मं परीक्ष्य च ।

मिथ्यात्वं च समादाय त्यज मूढत्रयं सुहृत् ॥१४॥

अर्थ—हे मित्र ! तू परिक्षारूप नेत्रनिकरि परीक्षा करि, समीचीन जिनेंद्रभाषित धर्मनैं ग्रहण करिकैं मिथ्यात्वरूप मूढत्रयनै त्यागि करि ॥ १४ ॥

मूढभावेन यो मूढो धर्मं गृह्णाति लोकजं ।

पुण्याय स विषं भुक्ते सुखाय प्राणनाशनं ॥ १५ ॥

अर्थ—जो मूर्खपुरुष मूढभावकरि लौकिकधर्मनै पुन्यकै अर्थि ग्रहण करै है सो प्राणनिका नाशकरणे वारा विषनै सुखकै अर्थि भक्षणकरै है ॥ १५ ॥ भावार्थ—जिनधर्म सिवाय अन्य सर्व लौकिक धर्म है ते संसारमै वारंवार जामण मरण करावनवारे है तातै विषसमान जानि त्यागवो योग्य है ॥ १५ ॥

बहुरि गुरुमूढताका लक्षण रत्नकरंडमै, श्लोक—

सग्रंथारंभहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनां ।

पाषंडिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषंडिमोहनं ॥२४॥

अर्थ—परिग्रहसहित तथा आरम्भ सहित तथा हिंसासहित अर संसाररूप भवणमै भ्रमण करावने वारे ऐसे पाषण्डी जेहै तिनको जो पुरस्कार कहिये आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्तन करनौ सो पाषण्डिमोहन है, याहीकूं गुरुमूढता कहैहै ॥ २४ ॥

भावार्थ —मुनि साधु आचार्य महन्त सन्त आदि पूज्य नाम कहाय गुरुपणांका अभिमानकरि लोकनितैं नमस्कार करावैहै अर आप हाथी पालिकी चमर मोरछल आदि राजचिह्न राखैहै, तथा कडा कुण्डलादि आभरण राखैहै, तथा म्हौर रुपया राखैहै, वौरगति करैहै, बाग लगावैहै, खेती करावैहै, केई जटा राखैहै, केई मूंड मुडावैहै, केई लौच करैहै, केई गेरूके रंगे वस्त्रधारै है, केई काथिया वस्त्र धारैहै, केई पीला वस्त्र धारैहै, केई लाल वस्त्र धारैहै, केई स्वेत वस्त्र धारैहै, केई नग्न रहैहै, केई कोपीन राखैहै, केई भस्म लगावैहै। तिनमै केई तौ अन्यधर्म धारैहै, केई जैनधर्म धारै है, अर केई सवारी पर चढैहै, केई पयादे फिरैहै इत्यादि अनेक भेष धारि अपना विषय पोषैहै ते सर्व पाषण्डी जानने। अर पाषण्डीनिका सत्कार करना, नमस्कार करना, विनय करना, गुरु मानि नवधाभक्तिकरि आहारपान देना, द्रव्य देना, वस्त्र देनां आदि भक्ति करनां है सो सर्व गुरुमूढपणा है ॥२४॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमै लोकमूढताके एवजमे समयमूढता लिखै है,—

जैनसिद्धांत सूत्रेषु उक्तो धर्मो जिनेश्वरैः।
पंचमिथ्यात्व संलग्नैर्मूढैर्वेदादिके च यः ॥१०॥
सद्विचारं परित्यज्य क्रियते स शठैर्जनैः।
कथ्यते तद्बुधैर्लोके मूढत्वं समयोद्भवं ॥११॥

अर्थ—जो जिनेश्वरदेवनै जैन सिद्धातसूत्रकेविषैं धर्म कह्यो है सो ही नाममात्र धर्म पञ्चप्रकारका मिथ्यात्वकरि मिले ऐसे मूर्ख मनुष्यनि करि वेदस्मृति पौराणकै विषैं कह्यो है ॥१०॥

सो धर्म मूर्खजन समीचीन विचारनैं त्यागि अर ग्रहण करै है सो लोककै विषैं बुधजननि करि समयोद्भव मूढपणूं कहिये है ॥ ११ ॥

भावार्थ—समय नाम सिद्धांतका है सो सर्वही धर्मवाले अपनें अपने सिद्धांतके अनुकूल धर्म मानि ग्रहण करै है, तातैं कहै है कि धर्मके लक्षणनिकी परीक्षा करि जामैं सत्यार्थ धर्म दीखै सो सिद्धांत ग्रहण करै सो तौ ज्ञानवान कहिये, अर विचार बिनांही नाममात्र धर्म सुनि सिद्धांतनैं ग्रहण करै सो समयमूढ कहिये है। इहां सिद्धांतमैं मूढता कही वहां सिद्धात के करता गुरु जे हैं तिनिमैं मूढता कहा तातैं दोऊनिका एकही अभिप्राय जाननां ॥

अब अष्टमदके नाम रत्नकरण्डमैं कहै हैं;—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥

अर्थ—गयो है मद जिनकै ऐसे जिनेश्वर जेहैं ते ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, मनोग्यशरीर, ए अष्ट जे हैं तिननैं पाय जो मानीपणूं होय ताहि मद कहै है ॥ २५ ॥

भावार्थ— ये आठ मद सम्यग्दृष्टीके नहीं होय है, क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा चितवन करता रहै है कि हे आत्मन्! तुमारै या भवमैं कछुयक पुन्य के उदयतैं अंगोपांग नाम कर्म के लाभतैं सैनी पंचेन्द्रियपणौ भयो है अर ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमतैं इंद्रियजनित ज्ञान कछुयक प्रकट भयो है, ताकी स्थिरता कछू भी मति समझो, क्योंकि प्रथमतो यो ज्ञान इंद्रिय जनित है सो इनिमैं विकार होनेतै बात पित्त कफके घटनें बधनेंतैं अति, हर्ष

क्रोध लोभ मोह मद शोक विषाद कलह भय मच्छरता के उपजनेंतैं नष्ट होजाय है वा विपरीति होजाय है उन्मत्तताकूं प्राप्त होजाय है, अर कदाचित् आजन्मपर्यंत स्थिर रह जायगा तौ पर्याय छूटनें के अवसर में तौ रहनां बड़ा मुसकिल है क्योंकि वा समय की वेदनाकूं सर्वज्ञ वीतराग देवही जानें है अर प्रबल वेदना के होतें उपयोग की स्थिरता उत्तम सहनन वारेकेंही रहै है। तातैं सर्वज्ञकी आज्ञाप्रमाण दृढव्यवसायतैं साम्यभावकूं ही जैसैं बणैं तैसैं ऐसा दृढ करो कि परलोकपर्यंत साथि रहै। अर या किंचित् ज्ञानका कहा मद करोहो, तुमनें या अनन्तसंसारमैं परिभ्रमण करता एक सम्यक्त सहित साम्यभाव विना केई वार अनेक कला चतुराई काव्य कोश व्याकरण न्याय छन्द अलकार साहित्य नायिका भेद सकुन ज्योतिष्क वैद्यक मंत्र जंत्र तंत्र शिल्प सिद्धांत आदि के ग्रंथ पढ़े हैं सुने हैं बनाये हैं। फिर ज्ञानावरण कर्म के उदय होतैं ऐसे भये हौ कि एक अक्षर कै अनन्तवैं भाग प्रमाण तुमारा ज्ञान केवली भगवान के ही गम्य रह्या। अर पृथ्वी अपतेज वायु वनस्पतीरूप होय जडजीव नाम कहाये। अर अब जैन धर्मकूं पाय करिभी मिथ्यात्वरूप मदनैं ही धारण करोहौ तौ फिर वे ही पर्याय पावोगे जामैं अक्षर कै अनन्तवै भाग ज्ञान रह जायगा। अर वर्त्तमानमैं भी तुमारा ज्ञान कितनां कहै तीर्थंकर तौ च्यार ज्ञानकूं धारण करते भी मुनिपदवी मैं छद्मस्थता मानि मौन व्रती ही रहै है। अर गणधर भी केई सूक्ष्म संदेह दूरि करनेकूं भगवान केवलीनैं प्रश्न करि निर्णय करैं है। और अंगधारीन आदि लेय आचार्य उपाध्याय साधु जे हैं ते उत्तरोत्तर गुरु शिष्यपणानैं धारैं हैं, अर निरंतर शिक्षा दीक्षा करते रहैं हैं वा प्रायश्चित्त देते लेते रहैं हैं। अर और विचारो कि वर्त्तमानमैं भी तुमतै अधिक अधिक समन्त

भट्टजी जिनसेनजी कुंदकुंदजी आदि ऋषीश्वर भये हैं तिनिके ग्रंथनि कूं देखो कि अपनी लघुताई कैसीक लिखै है अर मदकूं कैसाक बुरा लिखै है अर साम्यभावकूं कैसाक भला लिखै है। तातै किंचित् शास्त्रका ज्ञान भया तौ याकूं साम्यभाव मै लगावो, अर याका मद मति करो। ये ज्ञानका मद सर्व मदतै भी भौत बुरा है क्योकि और मद तौ ज्ञानतै मिटै अर ज्ञानका मद काहेतै मिटै। तातै शास्त्रज्ञानका मद कदाचित् ही मति करो। अर जैनधर्मकूं पाय व्यवहारज्ञानका भी मद मति करो, क्योंकि ये भी तुमारै मिथ्यात्वका ही सद्भाव प्रकट करै है। अर केई पुरुष जैनधर्मकूं धारता संतां भी प्रबल मिथ्यात्वके जोरतै मायाचार करि अपने वचनपक्ष पुष्ट करनें कूं भोलेजीवनिनै सूत्रविरुद्ध मार्गमै प्रवर्त्तन कराय आपकूं कृतार्थ मानै है। अर केई पुरुष मिथ्यामतके स्थापन वारे है, तिनिमैकेई तौजीव का सर्वथा अभाव स्थापन करै है, अर केई एक ब्रह्मरूपजीवकूं स्थापन करै है, केई क्षणस्थाई कहै है, केई पंचभूत जनित कहै है केई जगतकूं ब्रह्मरूप कहै है, केई जगतकूं स्वप्नरूप मिथ्या कहै है, इत्यादि मिथ्या श्रद्धानी जे है तिनकी संगति मति करो। अर केई पुरुष जलचर थलचर नभचर जीवनिके पकड़ने बांधने मारने के जंत्र पींजरा जाल फांसी आदि बनाने मै तथा खड्ग बंदूक तोप बाण बरछी आदि अनेक तरह तरह की पांण बनाने मैं प्रवीण है। अर केई पुरुष पराये धन पराई स्त्री हरने मै तथा कूटलेख करने मैं प्रवीण होय सांचेकूं झूंटे अर झूंटेको साचे करते हैं। अर केई पुरुष मारण मोहन उच्चाटन वशीकरण आकर्षण करनेमै प्रवीणता मानै है। अर केई पुरुष शृंगार हास्यके ग्रंथ बनाय बनाय लोकनिकूं मोह उपजावनेंमैं प्रवीण है। इत्यादि संसारके बधावने वारे कर्ममै ज्ञान

लगाय लगाय, आप नष्ट होय है अर अन्य जीवनिनै नष्ट करै है तिनकी संगति मति करो, क्योंकि इनिकी संगतितै सांचो ज्ञान आवरण तौ नष्ट होजाय लो अर कुमति कुश्रुत ज्ञान वृद्धि कूं पाय मदोन्मत्त करि देलो तौ बड़ोही अनर्थ होयलो, क्योंकि यो आर्य-क्षेत्रमै मनुष्यजन्म जिनधर्मसंयुक्त पायवो बड़ो दुर्लभ है। याकूं पाय मार्दव आर्जव भाव धारि मोक्षमार्ग ग्रहण करो। अर या पर्यायमै किंचित् शास्त्रज्ञान पाय मद कहा करो हौ, तुमारा स्वभाव तौ केवलज्ञानरूप है, यावत निजस्वरूप नही पावो तावत् तौ ज्ञानदरिद्रीही हौ, परमावधि सर्वावधि ज्ञानयुक्त ऋद्धिधारी मुनीश्वर है ते भी आत्मतत्वकूं परोक्षपणै ही जाणै है, अर अन्य तत्वकूं भी सर्वांगपणै नहीं जाणै है, जिनवचनका श्रद्धानपूर्वक ही अनुभव करते रहै है। तातै यथावत् वस्तुका स्वरूप अनन्त धर्मात्मक जानता संता सम्यग्दृष्टी जो है सो किंचित् इंद्रियजनित पराधीन ज्ञान पाय मद नही करै है॥

सोही प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं;—

किंचित् ज्ञानं परिज्ञाय मदो न क्रियते बुधैः।
अपेक्षया हि पूर्वस्य यतो न ज्ञायते लवः ॥२२॥

अर्थ—ज्ञानवान पुरुष जे है ते किंचित् ज्ञाननै जाणि करि मद नही करै है क्योंकि पूर्वकालमै ज्ञानवान भये तिनकी अपेक्षा करि लवमात्र भी नही जानै है यातैं—॥ २२ ॥

बहुरि पूज्यपणाका मद भी सम्यग्दृष्टीकै नही होय है, क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा मानै है कि जगत्के भोले जीव धनके लोभी वस्तुके स्वरूपकूं नही जानते सन्ते धनसंपदावानपणां तथा राज्यमान्य

पणां आदि देखि मोहि बड़ा मानि पूज्य कहै है सो ये पूज्यपणां आत्माका स्वरूप नांहीं। अर जो या पूज्यपणांकूं अपना मांनै है, सो मिथ्यात्वी है, क्योंकि ये सम्पदा कर्मके आधीन है, विनाशीक है, महा उपाधिरूप है, आत्माकूं क्लेशित करै है. निजस्वरूपकूं भुलावै है तातैं दुर्गतिका कारण है। अर मेरा पूज्यपणांतो निजस्वभाव प्रकट भये होयगा। अर या एश्वर्यपणूं भी धर्मात्मा सज्जन पुरुषनिका सन्मान करनेंतैं दुःखित पुरुषनिका उपकार करनेतैं दान शील संयम धारनेतैं सफल है याका मद कहा करनां, मदतौ महामिथ्यात्वका वधावनवारा है, मैं तौ ज्ञाता द्रष्टा हूं, ऐसा दृढश्रद्धान सम्यग्दृष्टी कै है तातैं पूज्यपणाका ऐश्वर्यवान पणांका मद सम्यक्त्वी नहीं करै है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

धनधान्यादिकं गेहं सर्वं राज्यादिकं बुध!।
अग्न्यादिभिश्चलं मत्वा चैश्वर्योत्थंमदं त्यज॥२०॥

अर्थ—भो बुधजन हो! धन धान्य आदि गृहनै, अर सर्व राज्य आदि ऐश्वर्यनैं अग्नि जल पवन आदि करि विनाशीक मानि ऐश्वर्यसंबंधी मदनै त्यजो॥ २०॥

बहुरि कुलका भी मद सम्यक्त्वी नहीं करै है, क्योंकि जगतमैं पिताका वंशका नाम कुल है सो प्रथम तौ सम्यक्त्वीके निजरूपकी पिछानि है तातैं पर्यायमैं आपो नहीं मानै है, अर जामैं आपो नहीं मानैं ताको मद काहेकूं होय। दूसरा ऐसी भी जानैं है कि मैं अनादि संसार मै परिभ्रमण करतो संतो अनंतवार उच्चकुल मैं, अनन्तवार नीचकुलमैं, अनन्तवार निगोदमैं, जन्म धारण किये है। अर या पर्यायमैं कितनांक काल रहना है मेरा स्वभाव तौ चैतन्य

है सो स्वयं सिद्ध है ताका उपजावनवारा कोऊ नांही । अर ये पिता का वंशरूप कुल है सो कर्मकृत पराधीन है याका गर्व करनां बड़ी अज्ञानता है । अर उच्चकुल पावनेंका फल तो ये है कि मोक्षमार्ग-मैं प्रवर्त्तन करै अर ऐसा विचार करै कि नींच कुलके मनुष्य जैसैं अभक्षभक्षण विसवाद मारण ताडण गाली भंडवचन द्यूतक्रीडन वेश्यासेवन परधनहरण करै है तैसा मैं करूंगा तो अर चुगलीके मर्मछेदके अयोग्य हास्यके छलकपटके असत्यताके वचन बोलै है तैसा बोलूंगा तो मेरा उच्चकुल लज्जित होयगा अर मैं धिक्कार पाऊंगा, दुर्गतिका पात्र हूंगा, ऐसा विचार करता सम्यग्दृष्टी अधम आचरणका तो त्याग करै है अर उच्चकुलका मद नहीं करै है ॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं—

पितृपक्षसमुद्भूतं चलं दर्भाग्र विंदुवत् ।
ज्ञात्वा स्वं स्वजनं दक्षः कुलनाममदं त्यजेत् ॥१९॥

अर्थ—चतुर पुरुष जो हैं सो आपने अर पितृपक्षतैं उत्पन्न भये स्वजन जो है तानैं डाभकी अणी पर पड़ी वोसकी बूंदके समान चल जानि कुलनामा मदनैं तजै ॥ १९ ॥

बहुरि तैसैं ही माताका कुल को नाम जातिहै सो सम्यग्दृष्टी जातितैं भी आपनैं भिन्न जाणै है , अर ऐसैं मानैं है कि मैं तिर्यंचनीके उदरमैं तथा म्लेच्छनी भीलनी दरिद्रिनी के उदरमै अनन्तानन्त जन्म धरे हैं तातैं नीच जातिके भी मेरे ही सजातीय हैं । अर वर्त्तमानका जन्म कोऊ पुन्यके उदयतैं उच्चजातिमैं भया है परन्तु याका मद करनां तो अनन्तसंसारका कारण है क्योंकि मिथ्यात्वरूप है यातैं । अर उच्च-जाति मै जन्म भया सो शील संयम क्षमा परोपकार आदि शुभा-

चरणतैं सफल होयगा। असें चितवन करता सम्यग्दृष्टीकै जातिका भी मद नही उपजै है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

सन्मातृपक्षसंजातं कुटुंबादिकदंबकं।
विनश्वरं परिज्ञाय जात्याख्यं त्वं मदं त्यज ॥ १७॥

अर्थ—उत्तम माताकी पक्षतै उत्पन्न भया कुटुंब आदि का समूहनैं विनाशीक जानि जाति नामा मदनैं तू तजि ॥ १७॥

सदंबानां त्वया मित्र पीतं दुग्धं भवार्णवे।
भिन्नभिन्नविजातीनां साधिकं सागरांबुधेः॥ १८॥

अर्थ—भो मित्र! संसार समुद्रकै विषैं तू जो है तानैं भिन्न भिन्न विजाती उत्तम मातानिको दुग्ध सागरका जलतै अधिक पान कियो है॥ १८॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी देहके बलका भी मद नही करै है, क्योंकि सम्यक्त्वी असा विचार करै है कि मैं अनन्तबलका धारक हूं, मेरी शक्तिकूं कर्म वैरीनै अत्यन्त नष्ट करि एकेंद्रियादिकनिमैं पटकि असा निर्बल किया कि फिर कछू भी करनें समर्थ नही रह्या। अब कोऊ पुन्य कं उदयतैं वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशमतै मनुष्यदेहमैं आहार पानके आश्रय किंचित् बल प्रकट भया है, सो भी वात पित्त कफकै तथा आयु कायकै आधीन है याका मद तौ मिथ्यात्वी करै है क्योंकि ये मद निजस्वभावतै बहिर्भूत है। अर या बलके लाभमैं व्रत उपवास शील संयम स्वाध्याय कायोत्सर्ग आदि तपश्चरण करि तथा परकृत उपसर्ग रोग दरिद्र आदिकूं सहि कायरता त्यागि निजस्वभावतैं पलायमान नही होय कर्मनिका नाश

करूं। तथा दीन दरिद्री असमर्थनिका दुर्वचन श्रवण करि क्षमा करूं तौ मेरा बल पावनां सफल होय। अर जो याका मद करि निर्बल जीवनिका घात करूंगा अथवा असमर्थनिकी धरती स्त्री धन आदिका हरण करि अपमान करूंगा तौ सिंह व्याघ्रादि दुष्ट तिर्यंचनिके दुःख भोगि निगोद मैं परिभ्रमण करूंगा। तातैं बलका मद मेरै नांही मैं तौ ज्ञाता द्रष्टा हूं। ऐसैं चितवन करता सम्यग्दृष्टीकै बलका मद नहीं होय है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

जनैर्मदो (मदं) न कर्त्तव्यं बलादिकसमुद्भवं।
विचित्रं दर्शनायैव त्वया वत्साशुभप्रदं॥ २४॥

अर्थ—हे वत्स! सज्जन पुरुष जे हैं तिन करि बल आदितैं उत्पन्न भयो नाना प्रकारको अशुभको दाता मद जो है सो सम्यग्दर्शन की प्राप्तिकै अर्थि ही नहीं करवो योग्य है॥

संप्राप्य सबलं देहं गर्वं त्याज्यं विवेकिभिः।
पुष्टमन्नादिभिस्तद्धि यतो याति क्षयं क्षणात्॥

अर्थ— ज्ञानवान पुरुष जे है तिननैं अन्नादिक करि पुष्ट भई ऐसी बलसहित देहनै पाय गर्व त्यागवे योग्य है, क्योंकि वाही बलसहित देह क्षणमात्रमै नाशनै प्राप्त होय यातैं॥

बहुरि ऋद्धि जो धन संपदा ताका मद भी सम्यक्त्वी नहीं करै है, क्योंकि सम्यक्त्वी तौ देह आदि सर्व परद्रव्यनिकूं हेय श्रद्धान करै है। अर ऐसी उत्कण्ठा राखै है कि वै शुभदिन कब होयगा कि जादिन समस्त परिग्रहकूं छाड़ि एकाकी वन मैं आत्मीक धन सिद्धि होनें की सामग्री रूप द्वादश भावनां आदिका संग्रह करूगा। अर या लौकिक धन

संपदाकूं रागद्वेष भय शोक संताप क्लेश वैर हानि वृद्धि आरंभ आदिका उपजावनवारा दुर्गति का बीज जानूं हूं परन्तु कफमैं पड़ी माखिका तथा कर्दममैं पड्या अशक्त हस्ती आप निकस्या चाहै है तथापि निकसि नहीं सकै है तैसैं मैं भी इस धन संपदा के फंदतैं निकस्या चाहूं हूं तथापि अशक्ततातैं रागादिककर्मका प्रबल उदयतैं अप्रत्याख्यानावरणी कषायके विद्यमान होनेतैं निर्वाहकी कठिनताके भयतैं अपमान भय आदिका स्थान पराधीन विनाशीक धनसंपदारूप गततैं नहीं निकसि सकूं हूं याकी मेरै बड़ी लज्जा है। अर ये निश्चय जानूं हूं कि याकूं त्यागैं बिना स्वाधीन अविनाशीक अनन्तचतुष्टयरूपलक्ष्मीकूं नहीं प्राप्त हूंगा। इत्यादिक चितवन करता सम्यग्दृष्टीकै स्वाकसमान इस लक्ष्मी का मद नहीं उपजै है। इहां समन्त भद्रस्वामी तौ लक्ष्मीका मद कह्या अर प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं शिल्पिमद कह्या है॥

शिल्पिगर्वं न कर्त्तव्यं लेखादिकसमुद्भवं।
विचित्रं दर्शनायैव त्वया वत्साशुभप्रदं॥२५॥

अर्थ—हे वत्स! सम्यग्दर्शनकी शुद्धताकै अर्थि ही लेखन आदितैं उत्पन्न भयो अशुभ को दाता नानाप्रकारको मद जो है सो तू जो है तानैं नहीं करवो योग्य है॥ २५॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी तपका भी मद नहीं करै है क्योंकि सम्यग्दृष्टी ऐसा चितवन करता रहै है कि तप तौ द्वादशभेदरूप जिनेंद्रनैं कह्यो है ताकी सिद्धिता भयें तौ निजरूपकूं प्राप्त होय है वहां तौ मदका कहा प्रयोजन है, वै तौ आनन्ददशा है। अर हाल वर्त्तमान मैं काम क्रोध लोभ मोह निद्रा आलस्य प्रमाद छलपना भय आदि साम्यभावकूं यावत् प्रकट नहीं होने देव तावत तप कहा है। अर

मिथ्याही मद करनां तौ यत्किंचित् पुन्यसंचय संयमजनित होय है ताका भी नष्ट करने वाला है अर वे पुरुष धन्य है जे समस्त कषायानकूं जीति शुद्धात्मदशामै लीन भये हैं। असैं चितवन करता सम्यग्दृष्टीकै तपका मद नहीं होय है॥

सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं,—

तपसा संभवो दक्षैर्मदो न क्रियते मनाक्।
इतश्चापेक्षया पूर्वं मुनेः कर्त्तुं न शक्यते॥ २३॥

अर्थ—चतुर पुरुष जे हैं ते तपतैं उत्पन्न भया मद किंचित् मात्रभी नहीं करै है, क्योंकि पूर्वकालके मुनीश्वरनिकी अपेक्षा वर्तमानकालमे किंचित् भी करनेकू नही समर्थ है॥२३॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी शरीरके रूपका भी मद नहीं करै है, क्योंकि सम्यग्दृष्टीकै, सांचास्वरूपका श्रद्धान है तातैं प्रथम तौ देहतैं भिन्न अपनां ज्ञानानन्दमय रूप जानैं है तामें सब लोक अलोक अनन्तानन्त पर्याय संयुक्त झलकि रह्या है, अर दूसरा यो देह बहुत रूपवान है सो भी निज रूपतैं तो भिन्नहै अर क्षण क्षणप्रति विनाशवान है अर नव द्वारनितैं निरन्तर मल श्रवै है तथा चन्दनादिक सुगंधद्रव्य तथा पुष्पमाला वस्त्र आभूषण आदि उत्तम वस्तु भी याके स्पर्शतैं मलिन होजाय है तीसरां जा समय रोग करि व्याप्त हो जाय ता समय असा पराधीन हो जाय जो कछु कायकारी ही नहीं रहैहै अर घिणावणां भी इसाही हो जायहै जो दूसरेकूं देखतैं स्पर्शतैं भी ग्लानि आवै, चौथे प्रबल कर्मका जोर आजाय तौ एक क्षणमैं नेत्र भुजा चरण आदि अङ्ग उपाङ्ग हीण हो जायहै, पांचवां अनन्तवार तिर्यंचनिका तथा मनुष्यनिका असा २ घिणावणां विकरूप भयंकर देह पाया

है तिनका वरनन सहस्र जिह्वातैं इंद्र-धरणेंद्रभी नही करि सकै हैं अर दरिद्रके होतैंभी या देहकी असी दशा हो जाय कि कोऊ निकटही नही बैठने देवै अर वृद्धपणांके होतैं आपकी ही आपनैं ग्लानि आवा लागिजाय मरण चाहवा लागि जाय, असा देहका रूपकूं देखता सन्तां मद नहीं करै है अर सर्वांगशुद्ध यौवनवान बलवान देहकूं पाय शील संयम आदि तपश्चरणकूं दिन दिन वधावै है अर रोगीदरिद्री अंगहीणकूं देखि करुणां करै है तथा अन्न वस्त्र औषधि दान देवै है असा सम्यग्दृष्टीकै देहसम्बन्धी रूपका मद नहीं उपजैहै या प्रकार चिंतवन करता सम्यग्दृष्टीकै ज्ञानजनित तथा पूजाजनित तथा कुलजनित तथा जातिजनित तथा बलजनित तथा ऋद्धिसंपदाजनित तथा तपजनित तथा शरीरकी सुन्दरताजनित तथा शिल्पकर्मजनित मद नहीं उपजै हैं।

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

सन्मार्दवं समादाय दुःखदुर्गतिकारकम् ।
मदाष्टकं त्यजेद्धीमान् दर्शनज्ञानप्राप्तये ॥२६॥

अर्थ— बुद्धिमान पुरुष जो है सो समीचीन मार्दव भावनैं ग्रहण करि दुःखके अर दुर्गतिके करनवारे अष्टमद जे हैं तिननैं सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञानकी प्राप्तिकै अर्थि तजैहै ॥ २६ ॥

अहंकारं हि यः कुर्यादष्टभेदं कुदुःखदम् ।
विनाश्य दर्शनं सोऽपि नीचो नीचगतिं व्रजेत् ॥२७॥

अर्थ—जो नीच पुरुष खोटा दुःखांका दाता अष्टप्रकार अहंकारनै करै है सो भी सम्यग्दर्शननै विनाशि नीचगतिनै प्राप्त होय है ॥ २७ ॥

प्रश्न—अष्टमदका स्वरूप तौ कह्या सो श्रद्धान किया परंतु अब षट् अनायतनकाभी स्वरूप कहो ।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचार मैं——

मिथ्यादर्शनकुज्ञानकुचारित्रत्रयात्मकः ।
तद्युक्तपुरुषाश्चैव षडनायतनं भवेत् ॥२८॥

अर्थ—आयतन नाम स्थान का है अर स्थान नही होय सो अनायतन कहिये, इहां धर्मका प्रकरण है तातैं धर्मका स्थान नहीं होय सो अनायतन कहिये सो मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र अर इनि तीनूंनिकरि युक्त पुरुष जे है ते तीन, ऐसैं छह अनायतन होय है॥ २८॥

प्रश्न—इनिके भिन्न २ स्वरूप कहो ।

उत्तररूप, श्लोक; ——

कुदेवे कुगुरौ मूढैः कुधर्मे पापदुःखदे ।
निश्चयःक्रियते योऽत्र तन्मिथ्यादर्शनं मतम् ॥२६॥

अर्थ— जो मूर्ख पुरुष पापका अर दुःखका दाता खोटा देवकैविषैं खोटागुरुकैविषै खोटा धर्मकैविषैं श्रद्धान करै सो मिथ्यादर्शन मानिये है ॥ २९॥

प्रणीतं वेदशास्त्रादौ स्मृत्यादौ वा कुदृष्टिभिः ।
श्रुतं पापाकरं दक्षैस्तन्मिथ्या ज्ञान मुच्यते॥३०॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टीनि करि वेदशास्त्र विषैं वा स्मृति पुराणके विषैं पापको करनवारो श्रुत कह्यो है सो चतुर पुरुषनिनैं मिथ्याज्ञानकह्यो है ॥ ३०॥

पंचाग्निसाधने योऽपि कायक्लेशो विधीयते ।
कुत्सितं तपसा मूढैस्तन्मिथ्याचरणं भवेत् ॥३१॥

अर्थ—मूर्ख पुरुषनि करि पंचाग्नि साधनकैविषैं भी तप करि जो कुत्सित कायक्लेश करिये सो मिथ्याचारित्र है ॥३१॥

मिथ्यासम्यक्त्वयुक्तो यो न सम्यक्त्वविचारकः।
जैनधर्मबहिर्भूतो मिथ्यादृष्टिर्बुधैर्मतः ॥३२॥

अर्थ—जो पुरुष मिथ्याश्रद्धानयुक्त अर सम्यक विचार करनवारो नहीं है अर जिनधर्मतैं बहिर्भूत है सो ज्ञानवाननिनैं मिथ्यादृष्टी कह्यो है ॥ ३२ ॥

जनो वेदादियुक्तो यः कुशास्त्रादिसमन्वितः।
त्यक्तसिद्धांतसारश्च मिथ्याज्ञानो स कीर्तितः ॥३३॥

अर्थ—जो पुरुष वेदस्मृति करि युक्त अर कुशास्त्र आदि लौकिक उक्तिकरि संयुक्त अर सिद्धांतका सारभूत ज्ञानरहित होय सो मिथ्याज्ञानी कह्या है ॥ ३३ ॥

पंचाग्निसाधको मिथ्यातपसाऽतिकृतोद्यमः ।
यः शठः सोऽत्र संप्रोक्तः कुतपस्वी मुनीश्वरैः॥३४॥

अर्थ—जो मूर्ख पुरुष पंचाग्निको साधक मिथ्यातपकरि अत्यन्त कियो है उद्यम जानैं सो यहां मुनिश्वरनिनैं कुतपस्वी कह्यो है ॥ ३४ ॥

षडनायतनं ज्ञेयं श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रदम् ।
अघाकरं बुधैर्निंद्यं दर्शनस्य विनाशकम् ॥३५॥

अर्थ—नरक तिर्यंचगति को दाता अर पापनिकी खांनि अर

सम्यग्दर्शन को विनाश करनेवारो अर ज्ञानी पुरुषनिकरि निन्दनीक षट् अनायतन जानवे योग्य है ॥ ३५ ॥

ऐसै अष्ट अंग संयुक्त पचीश मल दूषण करि रहित सम्यग्दर्शननैं शुद्ध करो ।

चौपई—अष्ट अङ्गयुत दर्शन धारि
मलपचीश तजि शुद्ध निहारि ॥
मोक्षसदनको प्रथम सिवान ।
कह्यो जिनेश्वर वचन प्रमान ॥

उत्तरपुराण सम्बन्धी महावीरपुराणमें रत्नत्रयको ""का श्लोक;—

मतिःश्रुतं तपः शांतिःसमाधिस्तत्त्ववीक्षणम् ।
सर्वं सम्यक्त्वशून्यस्य मरीचेरिव निष्फलम् ॥८४॥

अर्थ—सम्यक्त्व करि शून्य पुरुष जो है ताकै मतिज्ञान श्रुतज्ञान अर बाह्य तथा अन्तरङ्ग तप अर कषायकी मन्दतारूप शांति अर चित्तकी एकाग्रतारूप समाधि अर तत्वनिका विशेषपणैं ईक्षण कहिये देखना ये सर्व मृगतृष्णा के समान निष्फल है ॥ ८४ ॥

तथा जिनदत्तचरित्र गुणभद्रजीकृतका चतुर्थसर्गमें; श्लोक—

अदेवे देवताबुद्धिरगुरौ गुरुसम्मतिः ।
अतत्त्वे तत्त्वसंस्था च तथाऽवादि जिनेश्वरैः ॥ ८२ ॥

अर्थ—देवपणा करि रहित रागद्वेष करि सहित अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जे हैं तिनके विषैं देवपणां की बुद्धि अर मिथ्यादृष्टी इन्द्रियनिके विषयनिकूं चाहनेवारे परिग्रहवान पाषंडी अव्रती आरंभी मुनिपणांका तथा गृहस्थपणांका भेषरहित स्वइच्छाचारी उन्मार्गी

गुरुपणांका लक्षणनिकरि रहित अगुरु जे है तिनकै विषै गुरुपणांकी प्रतीति अर एक तथा दोय तीन तथा पच्चीश अतत्व जे है तिनकै विषै तत्व पणांकी आस्था जो हैं सो जिनेश्वरनि करि तैसैं ही कह्यो है कि मिथ्यात्वही कह्यो है ॥ ८२ ॥

निः शेषदोषनिर्मुक्तो मुक्तिकांतास्वयंवरः ।
लोकालोकोत्तमज्ञानो देवोऽस्तीह जिनेश्वरः ।८५।

अर्थ—समस्तक्षुधा तृषा आदि दोष जे हैं तिनकरि रहित अर मुक्तिकांताको स्वयंवर अर लोकालोकको उत्तमज्ञान असो जिनेश्वर इहां देव है ॥ ८५ ॥

अन्ये ततो विशालाक्षि ! रागद्वेषादिकल्मषैः।
दूषिता न भवंत्यासा कृतकृत्या विरागिणः ।८६।

अर्थ—१ हे विशालनेत्रनिकूं धारनेवाली ! वा जिनेंद्रतै अन्य रागद्वेष आदि पाप जेहै तिनकरि दूषित अकृतकृत्य विशेष रागवान जे है ते आप्त नहीं होय है ॥ ८६ ॥

अतस्त्रिधा प्रतीहि त्वं देवानामधिदैवतम् ।
चराचरजगज्जंतुकारुण्यं स्वामिनं जिनम्।८७।

अर्थ—यातै तू मन वचन कायकरि देवनको अधिदेव अर चराचर जगतके जीवनिकी करुणाको धारक स्वामी जिनेंद्र जो है ताहि प्रतीति करि ॥ ८७ ॥

धर्मस्तद्वदनांभोजनिर्गतः सुगतिप्रदः ।

१—इसका इस प्रकार अर्थ हो तो ठीक है—हे विशालनेत्रनिकं धारनेवाली! वा जिनेंद्रतैं अन्य रागद्वेष आदि पाप जे हैं तिनकरि दूषित ऐसे, कृतकृत्य अर वीतरागी आप्त नही होय हैं

यस्य मूलं [1]समस्तार्थसाधिका करुणा मता ॥८८॥

अर्थ--अर वा जिनेद्रका मुखकमलतैं निकस्यो अर सुन्दर गति को दातार जो है सो धर्म है, अर वा धर्मको मूल समस्त पदार्थनितैं अधिक करुणा मान्यूंहै ॥ ८८ ॥

कृतं किमपि [2]पूर्णेन्दुवचने ! दयया समम्।
विद्धं रसेन वा ताम्रं सर्वकल्याणकारकम् ॥८९॥

अर्थ-- कछुक दान पूजा व्रत तप आदि भी दयाकरि सहित किया संता पूर्णमासीके चन्द्रमा समान जिनवानीकै विषैं सर्वकल्याणका करनवारा पारदकरि वेध्या तामकै समान कह्यो है ॥ ८९ ॥

भवभोगशरीराणामसारत्वं विबुध्यये ।
संत्यज्य तृणवल्लक्ष्मीं नैर्ग्रंथव्रतमाश्रिताः ॥९६॥

अर्थ- ससार भोग शरीरकै विषै असार पणौ जो है ताहि विचारकरि तृणसमान लक्ष्मीनैं त्यागन करि निर्ग्रंथपणांनैं ज्यां आश्रय कियो ॥ ९६ ॥

---

(१)" समस्तार्थसाधिका" इस पद का अर्थ "समस्तपदार्थनितै अधिक" ऐसा लिखा है सो सुन्दर प्रतीत नहीं होता क्योंकि इस शब्दका ऐसा अर्थ है "समस्तअर्थनिको साधने वाली"
(२)"पूर्णेंदु वचने" इसके स्थानमे "पूर्णेंदुवदने" ऐसा पाठ होना चाहिये और जिनदत्त चरित्रकी प्रतिमे "पूर्णेंदुवदने" ऐसा ही पाठ है इसका अर्थ ऐसा होना चाहिये यह सम्बोधन पद है "हेपूर्णमासी के चन्द्रमा समान मुखवाली" ।

भुंजते पाणिपात्रेण शेरते भुवि वाऽऽसते ।
वनादौ विधिवद्ध्वंसध्यानेनाध्ययनेन च ॥ १००॥

अर्थ—अर पाणिपात्र करि भोजन करै है अर पृथ्वीकै विषैं सौवै है अर बन आदिकै विषैं अर ध्यान करि तथा अध्ययन करि कर्मको विध्वंस करै है सो गुरु है, ऐसो सम्बंध है ॥ १०० ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनाख्यानके प्रथमकांडे सर्वाङ्गशुद्धसम्यग्दर्शननिर्णयो-नाम तृतीयोल्लासः ॥



ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ सम्यग्दर्शनके विषयभूत देव गुरु शास्त्रको स्वरूप लिख्यते;—

दोहा—

देव परम अरहन्त है गुरु परम निर्ग्रंथ ।
शास्त्र परम जिनवरकथित नर्म हरन भवग्रंथि ॥१॥

प्रश्न—अष्ट अङ्ग संयुक्त सम्यग्दर्शनका लक्षण कहि तीन मूढता अष्ट शङ्कादिक दोष अष्ट मद षट अनायतन ऐसैं

(१) "वनादौ विधिवद्ध्वसध्यानेनाध्ययनेन च" ऐसा पाठ होना चाहिये तथा जिनदत्त चरित्रकी प्रतिमें ऐसा ही पाठ है जिससे ध्वंसध्यानेन" इसकी जगह "हंसध्यानेन" ऐसा होना चाहिये और इसका यह अर्थ है कि "हंस की भांति निश्चल ध्यान करि" ध्वंसध्यानेन पाठकी जो टीका लिखी है सो सुन्दर नहीं है और व्याकरणसे यह पाठ अशुद्ध व व्यर्थ है ।

पचीस सम्यक्तके मलदूषण कहे सो तो श्रद्धान किये, परंतु सम्यग्दर्शनके विषयभूत देव गुरु शास्त्र कहे तिनका भी लक्षण संक्षेपमात्र कहो।

उत्तर—अनुक्रमतें कहैहैं सो सुनो;—

प्रथम ही देवका लक्षण रत्नकरंडमें;—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥५॥

अर्थ- उच्छिन्नदोषेण कहिये दूरि भयेहैं दोष जाके अर सर्वज्ञेन कहिये सर्वको जाननहारा अर आगमेशिना कहिये द्वादशांगादि समस्त विद्यानको स्वामी अर आप्तेन कहिये सत्य अर्थको वक्ता जो है तातैं नियोगकरि आप्तपणो होने योग्यहै अर निश्चय करि और तरै आप्तता नहीं होय है॥ भावार्थ—धर्मका मूल भगवान आप्त है तातै धर्मके ग्राहक पुरुषनिकूं प्रथम ही आप्तका लक्षण समझ्यो चाहिये, सो परम उपकारी समन्तभद्रस्वामी आप्तके निश्चयकरावनेकूं तीन विशेषणयुक्त आप्तको लक्षण कह्यो है। तिनिमै प्रथम निर्दोष कह्यो सो क्षुधा तृषा आदि अष्टादश दोष जे हैं तिनकरि रहित होय सो आप्त है, क्योंकि जो आप दोष सहित होय सो अन्यकूं निर्दोष नहीं करै ऐसा न्याय है सो ऐसे है कि जाकै क्षुधा तृषा जरा रोग विद्यमान है सो आप महादुखी है ताकै ईश्वरपणां कैसैं संभवै अर जाकै ईश्वरपणां नहीं होय सो परायेका कहा उपकार करै, अर जाकै भय द्वेष चिन्ता स्वेद खेद आदि निरन्तर प्रवर्त्तै सो सुखी कैसैं कहिये अर सुखी नहीं होय सो पैलानैं सुखी कैसैं करै, अर काम तथा राग जाकै विद्यमान है ताकै स्वाधीनता

नांही अर जो स्वाधीन नांही सो निराकुल कैसैं करै, अर जो मदकै तथा निद्राकै वशीभूत होय सो यथार्थ कैसैं जानैं अर जो यथार्थ नही जानैं सो सत्यार्थ कैसैं कहै, अर जाकै जन्म मरण विद्यमानहै ताकै संसारका अभाव नांहीं अर जो संसारी होय सो अन्यकै ससारका अभावकैसैं करै; तातै निर्दोष होय सो ही सत्यार्थ वक्ता आप्त है, अर रागद्वेष आदि दोष के विद्यमान होतै सत्यार्थवक्तापणां कदाचित् नही संभवैहै क्योंकि रागी द्वेषी तौ अपना अभिप्राय पुष्ट करनेंका उपदेश करै अर अभिप्राय पुष्ट करै ताकै सत्यार्थवक्तापणां नही बणैं, तातै सत्यार्थ वक्ता तौ वीतराग निर्दोष ही होय है। बहुरि सर्वज्ञ होय सो ही आप्त नाम कहावै, क्योंकि सर्वज्ञ नही होय सो कालांतरमै भये जे राम रावणादिक तिनिका व्याख्यान कैसैं करै तथा क्षेत्रांतरमै वर्त्तते मेर, कुलाचल आदिका स्वरूप कैसे कहै तथा सूक्ष्म परमाणू आदिका स्वरूप कैसैं कहै क्योंकि इन्द्रिय जनित ज्ञान तौ विद्यमान सन्मुख तिष्ठता स्थूलपर्यायनैंहीं अनुक्रमतै स्थूलपणै जाणैहै अर क्षेत्रातरमै तिष्ठते अनंते जीव-पुद्गल आदि द्रव्य अनंत गुणवान जे है ते एकै काल अपनी अपनी भिन्न २ परिणतिरूप परिणमै हैं तिनकी एक समयवर्त्ती भिन्न भिन्न अनंती सूक्ष्म स्थूल पर्याय होय है तिनिनैं एकै काल कैसैं जानैं, तातैं अतींद्रियज्ञानवान सर्वज्ञकै ही आप्तपणां सभवैहै। बहुरि आगमको स्वामीकै ही आप्तपणूं बणैं है क्योंकि सत्यार्थ वक्ता होय सोही आप्त कहिये है अर सत्यार्थ वक्ता होय सो ही आगमको स्वामी कहियेहै, इनि दोऊ गुणनिकै अन्योन्याश्रय पणूंहै। यातैं निर्दोष सर्वज्ञ आगमका स्वामी जो है सो ही

आप्त है अर आप्त है सो ही देव है, क्योंकि आत्मगुणके घातक कर्म जे हैं तिनके अभाव होनेतै देहकी कांति तौ देवेंद्रनितै अधिक भई अर अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य प्रकट भये अर देवनकरि पूजित भये, तातैं केवली भगवान ही देव है।

प्रश्न—आप्तके तीन विशेषण क्यूं कहे, एक निर्दोष विशेषणही आप्तपणां प्रकट कर देता।

उत्तर— निर्दोषतौ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, काल द्रव्य भी हैं परन्तु सर्वज्ञ नाहीं तातै आप्त नाहीं।

प्रश्न—ऐसैं है तौ निर्दोष सर्वज्ञ ए दोय विशेषणही कहे होते तीसरा विशेषण क्यूं कह्या।

उत्तर—निर्दोष सर्वज्ञ तौ सिद्ध भी है तथापि वक्ता नांही तातैं आप्त नाही, तातै निर्दोष सर्वज्ञ वक्ता होय सोही आप्त है अर आप्त है सो ही देवहै।

प्रश्न—अष्टादशदोषरहित लक्षण आप्तका कह्या तौ अष्टादश दोषनिका नाम भी कहौ।

उत्तर—रत्नकरंडमैं;—

क्षुत्पिपासाजराऽऽतंकजन्मांतकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तःसः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद, राग, द्वेष, मोह, अर चकारतैं स्वेद, खेद, शोक, आर्ति, चिंता, निद्रा, विस्मय, ये अष्टादश दोष जाकै नही होय सो आप्त कहिये सत्यार्थ वक्ता देव है ॥ ६ ॥

प्रश्न—रागद्वेषरहितकै वक्तापणं कैसैं संभवै ?

उत्तर—रत्नकरंडमें;—

अनात्मार्थं विनारागैःशास्ताशास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजःकिमपेक्षते॥ ८ ॥

अर्थ—नहीं है अपनूं प्रयोजन जाकै ऐसो विना राग शास्ता कहिये शिक्षा को दाता आप्त जो है सो सत्पुरुषनिका हितनैं शिक्षा करै है, या अर्थकूं दृष्टांतकरि दृढ़ करहै कि शिल्पी जो मृदंग के बजावनेवारो ताके करके स्पर्शतैं शब्दकरतो मृदंग जो है सो कहा अपेक्षा करै है? कछू भी अपेक्षा नहीं करै है। भावार्थ— जैसें मृदङ्ग के कछु अपना भी प्रयोजन नांहीं अर श्रोतानितैं राग भी नांही तथापि मृदंग्याका हाथका स्पर्शतैं मृदङ्ग शब्द करै है तैसें आप्तके कछु अपना भी प्रयोजन नांहीं अर श्रोतानितैं राग भी नांही तथापि श्रोतानिके प्रश्नरूप शब्दपरमाणूके स्पर्शतैं आप्तके मुखतैं विना प्रयास ही शब्द निकसैहै॥ ८॥

प्रश्न—श्रोतानिका प्रश्नतैं निमित्त कह्या सो तौ श्रद्धान कियो परन्तु च्यार समय नित्य दिव्यध्वनि होयहै सो भी प्रश्न होतैं ही होयहै कि विना होतैं भी होयहै।

उत्तर—च्यार समय को तौ नियोग है सो भी गणधरनै होतसन्तैं होय है, अर च्यार समय सिवाय इन्द्र चक्रवर्ति गणधरका प्रश्न होतैं भी होय है ऐसा भी नियोग सिद्धान्त मैं लिखैं है।

प्रश्न—दिव्यध्वनिकूं केई तौ साक्षर कहै है केई निरक्षर कहै हैं सो कैसैं है।

उत्तर—आदि पुराणका तेईसमां पर्व में;—

दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाब्जान्मेघरवानुकृतिर्निरगच्छत्

भव्यमनोगतमोहतमो घ्नन्नयमुदेष यथैव तमोरिः॥६९॥

अर्थ—या भगवानका मुखकमलतें निकस्ती मेघका शब्दकी समानता करती भव्यजीवोका मनमैं प्राप्त भया मोहरूप अन्धकारनें विध्वंस करती या दिव्यमहाध्वनि उदय होत है सो रात्रिसंबंधी अन्धकारनैं विध्वंस करता सूर्यके समान उदय होत है ।

भावार्थ—मेघशब्दके समान कहनेतैं निरक्षर है ॥६९॥

तथा श्लोक—

देवकृतो ध्वनिरित्यसदेतद्देवगुणस्य तथा विहतिःस्यात्।
साक्षर एव च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात्॥

अर्थ—या देवनिको करी दिव्यध्वनि है या प्रकार कहनां है सो असत्य है क्योंकि देवकृत होनां सतां अरहन्तदेवका गुणको घात होय है। भावार्थ—छियालीस गुणांमैं देवकृत चौदह अतिशयमैं सर्व अर्थकुं कहनवारी अर्द्धमागधी भाषा लिखै है सो दिव्यध्वनितैं भिन्न है, क्योंकि दिव्यध्वनितौ अष्टप्रातिहार्यमै है अर अर्द्धमागधी भाषा चौदह देवकृत अतिशयमैं है, याही अर्थकूं स्पष्ट दिखावनेनिमित्त जिनसेनजीनैं पूर्वोक्त अर्थरूप स्तुति करी है। अर या दिव्यध्वनि साक्षरही है क्योंकि वर्णसमूहविना जगतके विषैं अर्थकी गति नहीं होय है। भावार्थ—जगतके जीव साक्षरशब्द विना अर्थकूं कैसे धारण करें, तातैं साक्षरही है॥७२॥

प्रश्न—प्रथम श्लोकमैं निरक्षर कही अर इहां साक्षर कही तातैं पूर्वापरविरुद्ध दीखै है सो कैसैं हैं?

उत्तर—दोऊ ही वचन सत्य है परन्तु विवक्षाभेद है, सो ऐसैं जाननां कि—गोमट्टसारमैं योगमार्गणाका अधिकारमैं सत्य अनुभयमनवचनयोगनिका कारण निरूपणकी गाथा—

'मणवयणाणणिमूलणिमित्तं' इत्यादिगाथाकी टीकामें—

धारा— केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः, अयोगकेवलिनि शरीरनाम कर्मोदयाभावेन योगाभावात्सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्तीति सुव्यक्तं । सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेत् । तन्न, तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेनश्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धेःतदनंतरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्वघटनात्, इति ।

अर्थ—केवलीकै विषैं सत्ययोग तथा अनुभययोगका व्यवहार है सो सर्वआवरणक्षयजनित है ऐसैं जाननां अर अयोगकेवलीके शरीरनामकर्मके उदयका अभावकरि योगनिका अभावतैं सत्यका तथा अनुभयका व्यवहारभी नही है या प्रकार स्पष्टपणै प्रकट है। इहां प्रश्न उपजै है कि केवलीकी दिव्यध्वनिकै सत्यवचनपणां अर अनुभयवचनपणां कैसैं सिद्ध होय हैं। ताका उत्तर—केवलीकी दिव्यध्वनिकै उत्पत्तिकालमैं अनक्षरात्मकपणां करि सुननेवालूंके कर्णप्रदेशसैं यावत् प्राप्त नहीं होय तावत्-

काल पर्यंत अनुभयभाषापणांकी सिद्धि है क्योंकि अनक्षरात्मक शब्दकै सत्य असत्य कहनां बनैं नांही अर तापीछे सुनने वालू के अभिप्रायरूप अर्थकै विषै संशयादिक निराकरण करि सम्यग्ज्ञानका उपजावनपणांकरि सत्यवचनयोगपणांकी सिद्धि है। ऐसैं वा दिव्यध्वनिके ही अनुभयवचनपणांकी अर सत्यवचनपणांकी सिद्धि है यातैं भावार्थ—उत्पत्तिकाल मैं तौ दिव्यध्वनि निरक्षर है अर श्रोतानिके कर्ण मैं प्राप्त होने के काल मै साक्षर होय परिणमैं है, यो महात्म्य केवली भगवान को है। या ही अभिप्रायतैं भगवत जिनसेनजी दिव्यध्वनिनैं निरक्षर भी वर्नन करी है अर साक्षर भी वर्नन करी है।

इहां प्रश्न—जो एक दिव्यध्वनि सर्वमनुष्यदेव तिर्यंचनिकी भाषारूप अनेक अभिप्रायकूं सूचती कैसैं परिणमैंहै ?

उत्तररूप श्लोक—आदिपुराणकी संधिमैं; ———

एकतयाऽपिच सर्वनृभाषाःसोंतरनेष्ट?बहूश्च कुभाषाः।
अप्रतिपत्तिमपास्यचतत्त्वं बोधयतिस्मजिनस्य महिम्ना ॥

अर्थ— सो दिव्यध्वनि एक है तौ हू सर्व मनुष्यनिकी भाषानैं अर बहू कुभाषा कहिये सर्व तिर्यंचनिकी भाषानैं अपने मध्यवर्त्ती अज्ञाननैं दूरि करि तत्वनै जनावै है, सो जिनेंद्रकी महिमा है ॥७०॥

एकतयापियथैव जलौघश्चित्ररसो भवति द्रुमभेदात्।
पात्रविशेषवशाच्च तथायं सर्वविदो ध्वनिरापबहुत्वम् ॥

अर्थ—जैसैं एक ही जलको समूह नानाप्रकार रसरूप वृक्ष भेदतैं होय ही है तैसैं यो सर्वज्ञ को दिव्यध्वनि, पात्रविशेषक

वशतैं बहुतपणांनै प्राप्त होय है ॥७१॥

एकतयापि तथास्फटिकाश्मा यद्यदुपाहितमस्यविभासम्
स्वच्छतया स्वयमप्यनुधत्तेविश्वबुधोऽपितथाध्वनिरुच्चैः

अर्थ—जैसैं एक ही स्फटिक पाषाण जा जा रङ्गका डांक निकट प्राप्त होय ता ता डांक की कांति कौं अपनां स्वच्छपणां करि ही आप धारण करै है तैसैं सर्वज्ञ की ध्वनि भी स्वच्छपणांकरि श्रोताका अभिप्रायनें भलै प्रकार धारण करैहै ॥ ७२ ॥

प्रश्न—देवका स्वरूप कह्या सो तौ श्रद्धान किया, अब गुरां को भी स्वरूप कहो।

उत्तर—सामान्यपणैं गुरांका लक्षणको रत्नकरंडमैं;—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सःप्रशस्यते ॥ १० ॥

अर्थ—विषयनिकी आशाका वशनैं रहित अर आरंभ करि रहित अर परिग्रहकरि रहित अर ज्ञानकै विषै ध्यानकै विषैं तपकै विषै आसक्तहै सो तपस्वी सराहिये है ॥ १० ॥

प्रश्न—सामान्य लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया परन्तु विशेष लक्षणभी कहो ।

उत्तररूप तत्वार्थ सूत्रमैं;—सूत्र—पुलाकवकुशकुशील निर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥

अर्थ—पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातक, ए पांचू ही निर्ग्रंथ हैं ॥ ४६ ॥

तथा परमात्मप्रकाश मैं;——

जे जिणलिंगु धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति।
छद्दि करेविणु ते जि जिय सा पुण छद्दि गिलंति ।१।
ये जिनलिंगं धृत्वा मुनयः इष्टपरिग्रहान् लांति।
छर्दिं कृत्वा ते एव हि जीव! तां पुनः छर्दिं गिलंति ॥

अर्थ—हेजीव! जे मुनीश्वर जिनलिंगनैं धारणकरि इष्ट परिग्रहनैं ग्रहण करैहै ते मुनीश्वर छर्दिकरि फेर वाही छर्दिनै भक्षण करैहै ॥ १ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामै,—

दुर्ध्यानार्थमवद्यकारणमहो निर्ग्रंथताहानये,
शय्याहेतुतृणाद्यपि प्रशमिनां लज्जाकरं स्वीकृतम्।
यत्तत्किं न गृहस्थयोग्यमपरं स्वर्णादिकं सांप्रतं,
निर्ग्रंथेष्वपि चेत्तदस्ति नितरां प्रायः प्रविष्टःकलिः।

अर्थ—जो प्रशमभावके धारी संयमीनिकै शय्याकै हेतु अंगीकार किया तृण भी दुर्ध्यानकै अर्थिहै पापको कारणहै लज्जाको कारण है तातें गृहस्थनिकै योग्य और स्वर्णादिक द्रव्य अंगीकार कियो लज्जाकै अर्थि कहा नही हैं, अर जो सुवर्णादिक प्रत्यक्ष बाहुल्यतातैं निर्ग्रंथनिकै विषै भी है तौ जानिये है कि अत्यंत कलिकाल प्रवेश कियो ॥ ५३ ॥

इत्यादि वचनतैं पांचूंही भेदनिमैं कोई ही सग्रंथ नहीहै, तथा इनि पांचूंही भेदनिके भिन्न २ लक्षण जनावनेकूं पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धिनाम टीकामै ऐसैं लिखैहै;—

टीका—उत्तरगुणभावनापेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतः अविशुद्धपुलाकसादृश्यात् पुलाका इत्युच्यंते अप्रक्षालिततंदुलवत् इति। नैर्ग्रंथ्यं प्रतिस्थिताः अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनः अविविक्तपरिवारानुमोदछेदशबलयुक्ता बकुशाः शबलपर्यायवाची बकुश शब्द इति। कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः कषायकुशीलाः अविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीला इति। उदकदंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणः ऊर्ध्वं मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रंथा इति। प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनः द्विविधाः स्नातका इति। ते एते पंचापि निर्ग्रंथाः। चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षापकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रंथा इति उच्यंते।

अर्थ—उत्तरगुणकी भावनारहित है मन जिनका अर व्रतनिके विषै हूं कोई क्षेत्रकालकै विषै कदाचित् परिपूर्णतानैं नहीं पावते संते अविशुद्ध तंदुलका समानपणातैं पुलाक ऐसा नाम कहिये है, तातैं विना धुप्या तदुलसमान पुलाक है। अब बकुशका लक्षण कहै है;—कि "नैर्ग्रंथ्यं प्रति स्थिताः" कहिये

निर्ग्रंथपणा जो सर्वथा बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका अभावपणांरूप चतुर्थभेद ता प्रति उद्यमी है, अर "अखंडितव्रताः" कहिये अखंडित है पंच महाव्रत जिनकै, अर "शरीरापकरणविभूषानुवर्तिनः" कहिये शरीर अर उपकरण इनिकी जो विभूषा कहिये सुंदरता ताका अनुकरण करनेवारे हैं। भावार्थ--विषयानुरागनिमित्त शरीर संस्कार आदि विभूषाका तौ संयमग्रहणसमयमै ही त्याग भया सो ही "अखडितव्रताः" इस विशेषणतै पुष्ट किया, परंतु इनकै वर्त्तमान अवस्थामैं सरागसंयम है तातैं ऐसा भाव प्रवर्त्तै है कि हमारै संयमादिकका संस्कारतै शरीरसंयमरूप शोभा करि ऐसा होवै कि जाके देखतै ही देवनिकै तौ सम्यक्त प्रकट होय अर मनुष्यनिकै संयममै रुचि प्रकट होय, ऐसी शरीरकी विभूषा धर्मकी प्रभावनानिमित्त चाहै है, अर संयमका उपकारी होय सो उपकरण कहिये है सो उपकरणकी भी विभूषा, ऐसी चाहै है कि जाके देखते ही वीतरागता प्रकट होवे, तातैं ज्ञानका उपकरण जो पुस्तक सो तौ ताडपत्र आदिका राखै है अर शौचका उपकरण जो कमंडल सो काष्ठका राखै है अर दयाका उपकरण जो पीछी सो मयूर पुच्छकी राखै है, ऐसै तीनूं ही उपकरण रागी पुरुषनिकै अयोग्य वीतरागीनिकै योग्य राखै है ताके देखतै ही वीतरागता प्रकट होय, ऐसी तीनू ही उपकरणकी विभूषा चाहै है अर इन सिवाय अन्य उपकरण इनकै है ही नही; "अभिव्यक्तपरिवारानुमोदच्छेदशबलयुक्ताः" कहिये प्रकट भयो जो परिवारको अनुमोद सोई भयो जो छेद तातै शबलयुक्ताः कहिये चित्रवर्ण युक्त हैं। भावार्थ—गृहस्थीनिकै पिता पुत्र आदि परवार है तैसें मुनीश्वरनिकै गुरुशिष्य आदि संघ है सो परिवार है तामै इनकै

अनुराग है तातैं चित्रवर्णयुक्त कहै है, क्योंकि परमनिर्ग्रंथ अपेक्षा वीतरागता भी है अर संघमैं रागभाव भी है तातैं चित्रवर्ण कहै है, ऐसें बकुश है, इहां शवलशब्दका पर्यायवाची वकुशशब्द जाननां। अब कुशीलका लक्षण कहै हैं,—कि कुशील दोय प्रकार है, एक प्रतिसेवनाकुशील, दूसरा कषायकुशील; तिनिमैं प्रकट है परिग्रह कहिये शिष्यशाखा जिनकै, अर "परिपूर्णोभयाः" कहिये परिपूर्ण है मूलगुण, उत्तरगुण जिनकै, अर "कथंचित उत्तरगुणविरोधिनः" कहिये कथंचित् उत्तरगुणकी विराधना करणवारेहैं सो प्रतिसेवना कुशील है अर "वशीकृतान्यकषायोदयाः सज्वलनमात्रतंत्राः" कहिये वशि कियेहैं अन्य कषायका उदय जिनिनै अर सज्वलन कषायमात्रकै ही जे अधीन है ते कषायकुशील है। अर निर्ग्रंथ है ते "उदकदंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणः" कहिये जलमै दंडकी लीक समान नहीं प्रकट है कर्मको उदयजिनकै, भावार्थ—इहां मोहनी कर्मका तौ अभाव भया अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अर अन्तराय विद्यमान है तथापि मोहकी सहायता विना निर्मूल समान है तातैं उपयोगका मंद मंद चलन होय है ताकूं जलमे दंडकी लीक समान नहीं प्रकट होता कह्या है, अर "ऊर्द्ध्व मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजः" कहिये अंतर्मुहूर्तकै उपरांत उदय होता केवलज्ञान केवलदर्शनका भजनेवालाहै सो निर्ग्रंथ है। अर क्षीण भये हैं घातिया कर्म जिनकै ऐसे सयोगकेवली अयोगकेवली भेदकरि स्नातक दोय प्रकार है। या प्रकार कहे ते पांचूं ही निर्ग्रंथ हैं, अर इनिकै चारित्रपरिणामका अधिकन्यून भेदनै होता संता भी नैगम संग्रह आदि नयकी अपेक्षा करि सर्व ही ये निर्ग्रंथ हैं, ऐसे कहिये है, इति।

सो ही अकलंकदेव राजवार्तिकमैं कह्या है—

वार्त्तिक—अपरिपूर्णव्रता उत्तरगुणहीनाः पुलाकाः।१

अर्थ—नहीं परिपूर्ण भये हैं पंच महाव्रत जिनकै अर उत्तर गुणकरि हीन जे हैं ते पुलाक हैं ॥ १ ॥

टीका—उत्तर गुणेष्वनपेतमनसः व्रतेष्वपि कचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतः अविशुद्ध-पुलाकसादृश्यात्पुलाकव्यपदेशमर्हंति ॥ १ ॥

अर्थ—उत्तर गुणनिकै विषै नही युक्त भयो है मन जिनको अर पंच महाव्रतनिकै विषै हू कोऊ क्षेत्रमै कदाचित् परिपूर्णतानैं नहीं प्राप्त हुवा ऐसा मुनीश्वर विना धुप्या तंदुलकी समानतातैं पुलाक नाम पावै है। भावार्थ—जिनको मन उत्तरगुणनिमै तौ लग्यो नही अर कदाचित् कोई क्षेत्रकालमै पंच महाव्रतनिमै भी जिनकै यत्किंचित् दूषण लागै है, ऐसे मुनीश्वर विना धुप्या तंदुलकै समान किंचित् कदाचित् मलयुक्त हैं ते पुलाक नाम पावै हैं।

वार्त्तिक—अखंडितव्रताः शरीरसंस्कारर्द्धिसुखयशोविभूतिप्रवणा बकुशाः,[1] नैर्ग्रंथ्यं प्रस्थिताः।२।

अर्थ—अखंडित है पंच महाव्रत जिनकै अर शरीरका संस्कार ऋद्धि सुख यश विभूतिमै है प्रवीणता जिनकै अर "नैर्ग्रंथ्यं प्रस्थिताः" कहिये निर्ग्रंथपणां जो चतुर्थभेद ताप्रति है उद्यम जिनकैं ऐसे बकुशजातिके मुनीश्वर हैं ॥ २ ॥

---

१ "नैर्ग्रंथ्यं प्रस्थिताः" यह पाठ वार्त्तिककी टीकामें है यहां वार्त्तिकमे ही यह पाठ लिखा है सो ठीक नही प्रतीत होता, और चाहिये भी वार्त्तिकमें ही ।

टीका—अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषानुवर्त्तिनः ऋद्धिसुखयशस्कामाः शातगौरवाश्रिताः अविविक्तपरिवाराः छेदशबलयुक्ता बकुशाः, शबलपर्यायवाची बकुशशब्द इति ॥ २ ॥

अर्थ—अखंडित हैं पंच महाव्रत जिनकै अर शरीरकी तथा उपकरणकी विभूषाके चाहवान अर ऋद्धि सुख यशका वांछक अर शातगौरव को है आश्रय जिनकै अर प्रकट है शिष्यशाखारूप परिवार जिनकै अर छेदरूप चित्रला चरणयुक्तहै ते बकुश जातिके मुनीश्वर है, इहां शबलनाम चित्रवर्णका है अर शबलका पर्यायवाची बकुशशब्द है। भावार्थ—पंच महाव्रत तौ अखंड पाल है अर शरीर की अर उपकरणकी शोभा ऐसी चाहै हैं कि जाकूं देखते ही परिणामनिकी वीतरागतारूप विशुद्धता प्रकट होय, अर ऋद्धि जो आत्मशक्ति अर सुख निराकुलतारूप स्वाधीन अर पापक्रियारहित आचार्यनिके मान्य प्रवृत्तिरूप यश इनिकी है कामना जिनिकै, अथवा यश ऐसा चाहै है कि हमारे निमित्ततै या दिगंबररूप की प्रशंसा रहै, अर साताको गौरव ऐसो आश्रय करै है कि कोई असाताकर्म हमारै ऐसो उदय नहीं आवै कि जाकरि या दिगंबरपणांमै विच्छेद होय, अर प्रकट है परिवार जिनकै ऐसे कहनेतै ऐसा जनावै है कि गुरु शिष्यके संयोगमै रहैहैं एका बिहारी नही रहै है, अर छेदरूप चित्रला चरणयुक्तकहनेतैं वीतरागता अर पठनपाठनमै तथा धर्मोपदेशमै तथा वीर्याचारादिकनिमै सरागता दोऊ मिले हुये है, ऐसा भाव प्रकट करै है ॥ २ ॥

वार्त्तिक—कुशीलाः द्विविधाः, प्रतिसेवनाकषायोदयभेदात् ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रतिसेवना अर कषायका उदयरूप भेदतैं कुशील दोय प्रकार हैं॥ ३॥

टीका—कुशीला द्विविधा भवंति, कुतः? प्रतिसेवनाकषायोदयभेदात्। अविविक्तपरिगृहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः प्रतिसेवनाकुशीलाः। ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनात्, वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्रत्वात्कषायकुशीला इति॥ ३॥

अर्थ—कुशील दोय प्रकार है। प्रश्न—काहेतें हैं। उत्तर—प्रतिसेवनाका अर कषायका उदयरूप भेदतें है। तिनिमें "अविविक्तपरिग्रहाः" कहिये प्रकट है शिष्य शास्त्ररूप परिग्रह जिनिकै अर "परिपूर्णोभयाः" कहिये परिपूर्ण है मूलगुण उत्तरगुण जिनकै अर "कथञ्चिदुत्तरगुणविराधिनः" कहिये कदाचित् उत्तरगुणकी है विराधना जिनकै, इनि तीनि विशेषणनिकरि युक्त हैं ते प्रतिसेवना कुशील हैं, क्योंकि "ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनात्" कहिये ग्रीष्मकालमैंगोडा पर्यंत जंघाप्रक्षालनादिका सेवन है यातैं। अर "वशीकृतान्यकषायोदयाः" कहिये वशि कीयो है अन्य कषायको उदय जिननैं ऐसैं संज्वलनकषायमात्रका आधीन पणांतैं-कषायकुशील है॥३॥

प्रश्न—इहां "अविविक्तपरिग्रहाः" विशेषण जो है सो इनिकै प्रच्छन्न धनधान्यादिपरिग्रहवानपणां जनावैहै, अर तुम निर्ग्रंथ ही कहो हौ सो कैसैं है।

उत्तर—"परिपूर्णोभयाः" विशेषण जो है सो निर्ग्रंथपणां प्रकट करै है, क्योंकि जिनिकै मूलगुण उत्तरगुण परिपूर्ण होय तिनिकै गुरुशिष्य सिवाय अन्यपरिग्रहवानपणां कैसें संभवै, तातैं निर्ग्रंथ ही हैं।

वार्तिक—उदके दंडराजिवदनभिव्यक्तोदयकर्माणोऽन्तर्मुहूर्ते केवलदर्शनप्रापिणो निर्ग्रंथाः॥४॥

अर्थ—जलकै विषै दंडकी लीकसमान भलै प्रकार निरस्त भये हैं कर्म जिनिकै अर अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान केवलदर्शन कूं प्राप्त होहिंगे ते निर्ग्रंथ हैं॥ ४॥

टीका—उदके दंडराजिर्यथा आश्वेव विलयमुपयाति तथाऽनभिव्यक्तोदयकर्माणः ऊर्ध्वं मुहूर्त्तादुद्भिद्यमानदर्शनकेवलज्ञानभाजो निर्ग्रंथाः॥४॥

अर्थ—जैसें जलकै विषै दंडकी लीक शीघ्र ही विलयन प्राप्त होय है तैसें नहीं प्रकट होय है कर्मको उदय जिनिकै अर अंतरमुहूर्त्तकै उपरांति उदय होतो जो केवलदर्शन केवलज्ञान तिनिका भजबेवाले हैं ते निर्ग्रंथ हैं॥ ४॥

वार्त्तिक—प्रक्षीणघातिकर्माणः केवलिनः स्नातकाः॥ ५॥

अर्थ—अत्यंतपणैं क्षीण भये हैं घातियाकर्म जिनिकै ऐसे केवली भगवान स्नातक हैं॥ ५॥

टीका—ज्ञानावरणादिघातिकर्मक्षयादाविर्भूतकेवलज्ञानाद्यतिशयविभूतयः सयोगशैलेशिनो लब्धास्पदाः केवलिनः स्नातकाः। "स्नात वेदसमा-

सा" विति स्वार्थिके के निष्पन्नः शब्दः। त एते पंच निर्ग्रंथाः।

अर्थ—ज्ञानावरणादि घातिया कर्मकै क्षयतैं प्रगट भई है केवलज्ञान आदि अतिशयकारी विभूति जिनिकै अर सयोगरूप शैलका स्वामी अर पायो है निजस्थान जिननैं ऐसे केवली भगवान स्नातक हैं। इहां स्नातक शब्द जो है सो "स्नात वेद समाप्तौ" धातुका ज्ञानकी परिपूर्णताका वाचक है ताकै स्वार्थकै विषै "क" प्रत्यय होतसंतैं स्नातकशब्द निष्पन्न भया है। अर ये पूर्वैं कहे ते पांचूंही भेद निर्ग्रंथ है ॥ ५ ॥

प्रश्नरूप वार्त्तिक—कश्चिदाह;—प्रकृष्टाप्रकृष्ट-मध्यानां निर्ग्रंथाभावश्चारित्रभेदात् गृहस्थवत्॥६॥

अर्थ—उत्तम जघन्य मध्यम जे हैं तिनिकै चारित्रभेदतैं गृहस्थकी नांई निर्ग्रंथपणांको अभाव है॥

टीका—यथा गृहस्थश्चारित्रभेदात् निर्ग्रंथव्यप-देशभाग् न भवति तथा पुलाकादीनामपि प्रकष्टाप्र-कृष्टमध्यमचारित्रभेदात् निर्ग्रंथत्वं नोपपद्यते॥६॥

अर्थ—जैसैं गृहस्थ चारित्रभेदतै निर्ग्रंथनामको भजवा वालो नहीं होय है तैसैं पुलाकादिकनिकै भी उत्कृष्ट जघन्य मध्यमचारित्रभेदतैं निर्ग्रंथपणौ नहीं उपजै है ॥ ६ ॥

उत्तररूप वार्त्तिक—न वा दृष्टत्वाद्ब्राह्मणशब्द वत् ॥ ७ ॥

अर्थ—तुमनैं कहा सो दोष नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणशब्दकी नाई प्रत्यक्ष देखिये है यातैं।

टीका—नैवैष दोषः, कुतो । दृष्टत्वात् ब्राह्मण शब्दवत्, यथा जात्याचाराध्ययनादिभेदेन भिन्नेषु ब्राह्मणशब्दो वर्त्तते तथा निर्ग्रंथशब्दोऽपीति ॥ ७ ॥

अर्थ—यो तुमनै कह्यो सो दोष नहीं है। प्रश्न–काहेतैं। उत्तर—ब्राह्मणशब्दवत्। देखवापणातैं, जैसै जाति आचार अध्ययन आदि भेदकरि भिन्न जे हैं तिनिकै विषै ब्राह्मणशब्द प्रवर्तै है तैसै उत्कृष्ट जघन्य मध्यम चारित्रयुक्त पुलकादि मुनि जे है तिनिकै विषै भी निर्ग्रंथ शब्द ही प्रवर्तै है ॥ ७ ॥

वार्तिक—किं च, संग्रहव्यवहारापेक्षत्वात ॥८॥

अर्थ—और सुनो कि, संग्रह व्यवहारनयकी अपेक्षापणांतैं निर्ग्रंथपणौ पांचूंही भेदनिमैं संभवै है ॥ ८ ॥

टीका—यद्यपि निश्चयनयापेक्षया गुणहीनेषु न प्रवर्त्तते, तथापि संग्रहव्यवहारनयविवक्षावशात् सकलविशेषसंग्रहो भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—जो निश्चयनयकी अपेक्षाकरि गुणहीननिकै विषैं निर्ग्रंथशब्द नहीं प्रवर्तै है तौ भी संग्रह व्यवहारनयकी विवक्षाका वशातैं सकलभेद जे है तिनिको निर्ग्रंथशब्दकै विषैं संग्रह होय है। भावार्थ—सर्वथा परभाव परद्रव्यका अभावको वाचक निर्ग्रंथ शब्द तौ निश्चयनयतैं बारमां गुणस्थानमैं क्षीणमोह होत संतै संभवै है तथापि संग्रह व्यवहारनयतैं षष्ठगुणस्थानतै ही निर्ग्रंथ कहिये है ॥ ८ ॥

वार्त्तिक—रूपसामान्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ—पुलाकादिक— सम्यग्दर्शन अर निर्ग्रंथरूपको सा-

मान्यपणों है यातैं ॥ ९ ॥

टीका— सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेषायुधविरहितं तत्सामान्ययोगात् सर्वेषु हि पुलाकादिषु निर्ग्रंथशब्दो युक्तः ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन अर निर्ग्रंथरूप अर वस्त्र आभूषण आयुधरहित यो सामान्ययोगहै यातैं निश्चयकरि सर्व ही पुलाकादिक जे हैं तिनिकै विषैं निर्ग्रंथशब्द युक्त है ॥ ९ ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्तिक—भग्नव्रते वृत्तावतिप्रसंग इति चेन्न रूपाभावात् ॥ १० ॥

अर्थ— प्रश्न—ऐसै है तौ भग्नव्रतकै विषै भी निर्ग्रंथशब्दकी प्रवृत्ति होतसतैं अतिप्रसङ्गनामा दोष होय है। उत्तर—ऐसै नहीं है, क्योंकि रूपाभावात् कहिये निर्ग्रंथरूपको अभावहै यातैं ॥ १० ॥

टीका—यदि भग्नव्रतेऽपिनिर्ग्रंथशब्दो वर्त्तते श्रावकेऽपिस्यादिति अतिप्रसंगः। नैष दोषः। कुतः? रूपाभावान्निर्ग्रंथरूपमत्र नः प्रमाणं, न च श्रावके तदस्तीति नाति प्रसंगः ॥ १० ॥

अर्थ—जो भग्नव्रतकै विषैं भी निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै तौ श्रावकनिकै विषैं भी निर्ग्रंथशब्द प्रवर्त्तै तदि अति प्रसंगनामा दोष होय। उत्तर—यो दोष नहीं है। प्रश्न—काहेतैं। उत्तर—"रूपाभावात्" कहिये निर्ग्रंथरूपका अभावतैं, क्योंकि हमारै इह

निर्ग्रंथरूप प्रमाण है सो निर्ग्रंथरूप श्रावकनिमै नही है, तातै अतिप्रसंग दोष नहीं है ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्त्तिक—अन्यस्मिन्स्वरूपेऽतिप्रसंग इति चेन्न दृष्ट्यभावात् ॥ ११ ॥

अर्थ—प्रश्न—अन्य परमहंस आदि भेषीनिमैं निर्ग्रंथरूप होतां अतिप्रसंगदूषण आवैगा कि वै भी निर्ग्रंथ नाम पावैंगे। उत्तर—सो नही है, क्योंकि परमहंसादिकनिमै "दृष्ट्यभावात्" कहिये सम्यग्दर्शनको अभाव है यातै ॥ ११ ॥

टीका—स्यादेतद्यदि रूपं प्रमाणमन्यस्मिन्नपि स्वरूपे निर्ग्रंथव्यपदेशः प्राप्नोतीति। तन्न। किं कारणं? दृष्ट्यभावात् दृष्ट्या सह यत्र रूपं तत्र निर्ग्रन्थव्यपदेशः न रूपमात्र इति ॥ ११ ॥

अर्थ—नग्नरूप प्रमाण है जो ऐसै ठहरै तौ परमहंसादिकनिका भी स्वरूपकै विषै निर्ग्रंथनाम प्राप्त होय। उत्तर—सो नही है। प्रश्न—कहा कारण। उत्तर—दृष्ट्यभावात् कहिये सम्यग्दर्शनका अभावतै। क्योंकि जहां सम्यग्दर्शनकै साथि जो अतिशयरूप दिगंबररूपहै ताकै विषैं निर्ग्रंथ नामकी प्रवृत्ति है, "न रूपमात्रः" कहिये नग्नरूपमात्रमै ही निर्ग्रंथ नाम नहीं है ॥ ११ ॥

प्रश्नोत्तररूप वार्त्तिक—अथ[1] किमर्थः पुलाकाद्य-

१ राजवार्त्तिककी प्रतिमें यह वार्तिक अलग नहीं है, किंतु "अन्यस्मिन्स्वरूपेऽतिप्रसंग इति चेन्न दृष्ट्यभावात्" इस वार्त्तिककी टीकाहीमें पाठ है ।

पदेशः, चारित्रगुणस्योत्तरप्रकर्षवृत्तिविशेषख्यापनार्थः पुलाकाद्युपदेशः क्रियते ।

अर्थ—प्रश्न—पुलाक आदि नाम भेदरूप उपदेश कहा निमित्त करिये है। उत्तर—चारित्रगुणकी उत्तरोत्तर प्रकर्षताकै विषै प्रवृत्तिविशेषके जनावने निमित्त पुलाकआदि नामभेदरूप उपदेश करियेहै।

या प्रकारके प्रश्नोत्तर सुननेतै पांचूंही मुनीश्वरनिकै विषयानुरागता अर परिग्रहवानता कदाचित् ही नहीं सम्भवैहै ।

प्रश्न—पुलाक आदि भेदनिके जाननेका उपाय येही है कि और भी है ।

उत्तर—तेषां पुलाकादीनां भूयो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते।

अर्थ—तिनि पुलाकादिकनिका बाहुल्यताकरि विशेष जणायवे अर्थि उमास्वामी यो सूत्र कहै हैं;—

सूत्र—संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

अर्थ—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद, स्थान इनि आठ अनुयोगनितै पुलाक आदि भेद जे हैं ते साधनैं योग्य है ॥ ४७ ॥

या सूत्रकी व्याख्यामै शब्दसिद्धि करनें निमित्त शब्दशास्त्रके अनुकूल च्यारि वार्त्तिक कीये हैं सो या वचनिकारूपग्रन्थमैं निष्प्रयोजन जानि नहीं लिख्या है। अर आगै धारारूप टीका ऐसैं लिखै है,—

टीका—एते पुलाकादयः पंचनिर्ग्रंथविशेषाः

संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैः साध्या व्याख्येया इत्यर्थः।

अर्थ—ये पुलाकादि पंच भेद कहे ते निर्ग्रंथनिके विशेष हैं ते संयमादिक आठ अनुयोग हैं तिनकरि साधने योग्य हैं कि व्याख्यान करिबे योग्य है ऐसा सूत्रका अर्थ है।

"तद्यथा" कहिये सोही दिखाइये है।

प्रश्नोत्तरस्रूप टीका—कः कस्मिन्संयमे भवति।

अर्थ—पुलाकादिक कौन कौनसे संयममें हैं।

टीका—पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीलाः द्वयोः संयमयोः सामायिकछेदोपस्थापनयोर्भवंति। कषायकुशीलाः द्वयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययोः पूर्वयोश्च। निर्ग्रंथस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे।

अर्थ—पुलाक, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, ये तीनूं ऋषीश्वर सामायिकसंयम अर छेदोपस्थापना संयम ये दोय संयम जे है तिनिकै विषै है। अर कषायकुशील ऋषीश्वर जे हैं ते परिहारविशुद्धिसंयम अर सूक्ष्म सांपराय संयम ये दोय संयम जे हैं तिनिकै विषैहैं, अर पूर्वं कहे जे सामायिकसंयम अर छेदोपस्थापनासयम तिनिकै विषै भी है। अर निर्ग्रंथ अर स्नातक मुनीश्वर जे हैं ते एक ही यथाख्यातसंयमके विषै है। ऐसे तौ संयम अपेक्षा पुलाकादिकनिमें विशेष जाननां, वहुरि श्रुत अपेक्षा कहिये है;

टीका—पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीलाः उ-

त्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः । कषायकुशीला निर्ग्रन्था श्चतुर्दशपूर्वधराः । जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु । बकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः । स्नातकाः अपगतश्रुताः केवलिनः ।

अर्थ—पुलाक बकुश प्रतिसेवनाकुशील ये तीनूं ऋषीश्वर उत्कृष्टता करि अभिन्नाक्षर दशपूर्वके धारी है। अर कषायकुशील अर निर्ग्रन्थ ये दोय ऋषीश्वर उत्कृष्टताकरि चतुर्दशपूर्वके धारी है। अर जघन्यकरि पुलाककै आचारांगमैं आचारवस्तुका ज्ञान होय है। अर बकुश कुशील निर्ग्रन्थकै अष्ट प्रवचन मातृकाका ज्ञान होय है। स्नातक ऋषीश्वर केवली जे हैं ते श्रुतज्ञानकरि रहित हैं।

बहुरि प्रतिसेवनाअपेक्षा कहिये है,—

टीका—प्रतिसेवना,—पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । बकुशो द्विविधः, उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति; तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहुविशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति, शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः । प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगुणेषु कांचिद्विराधनां प्रतिसेवते । कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति।

अर्थ—इहां प्रतिसेवना नाम विराधनाका है अर इनिकै पंच महाव्रतनिका तथा मूलगुणनिके पालवेका अर रात्रिभोजनवर्जनका नियम है तथापि पराए वशतै जोरीतैं इन पापनिमैं कोई एकका यत्किंचित् सेवनवारा पुलाक है। वकुश दोय प्रकार हैं, एक उपकरणवकुश दूसरा शरीरवकुश; तिनिमैं उपकरणकै विषैं है आशक्तचित्त जिनको अर त्रिविध कहिये नाना प्रकारको मुनि गृहस्थ आदि अर विचित्र कहिये केई तौ अध्यात्मविद्याके ग्राहक केई आचारांगके ग्राहक केई ज्योतिष्क मंत्र गणित आदि विद्याके ग्राहक ऐसे विविधविचित्र शिष्यनिकी मंडलीरूप परिग्रहयुक्त अर वहुविशेषयुक्त कहिये अनेकभेदयुक्त उपकरण जे हैं तिनिके वांछक अर तिन उपकरणनिका संस्कार कहिये बिगडेकूं सुधारनां अर प्रतीकार कहिये आगामी कालमें नहीं बिगडै ऐसा इलाजका करणवारा भिक्षु जो है सो उपकरणवकुश है, अर शरीरका संस्कार जो रज प्रस्वेदका दूर करना तथा अंगमर्दनादिकका कराना इत्यादि करनवारा भिक्षुक जो है सो शरीरवकुश है।

प्रश्न—"विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः" पदका अर्थ प्रकट नाना प्रकारका वस्त्र वाहन धन धान्यादि परिग्रहवानपणां भासै है अर तुम अनेक शिष्यमंडली संयुक्तही कहौ हौ सो कैसे है।

उत्तर—शब्द तौ कल्पवृक्षरूप है कि नाना अर्थकूं प्रकाशै है तथापि पूर्वापरविरुद्ध अनेक आगमकै सम्मत अर्थ होय सो प्रमाणभूत मानिये है, अर याही राजवार्त्तिकमै वकुशका लक्षण "अखंडितव्रताः" कह्या है तातैं पंच महाव्रतनिकूं विद्यमान होत संतैं वस्त्र वाहन धन धान्यादि परिग्रह तौ वकुशकै सर्वथा ही होजे नाहीं तातैं गुरुशिष्य पुस्तक आदि उपकरण मात्र ही परिग्रह

मानना योग्य है ।

प्रतिसेवनाकुशील जो हैं सो मूलगुणनिनैं नही विराधना करतो संतो उत्तरगुणनिकै विषैं काई गुणकी विराधनाकूं सेवै है । कषायकुशील अर निर्ग्रंथ अर स्नातक जे हैं तिनकै प्रतिसेवना नहीं है ॥

बहुरि तीर्थअपेक्षा कहिये है—

टीका—तीर्थमिति;—सर्वेषां तीर्थंकराणां[1] तीर्थेषु भवंति ।

अर्थ —सर्व ही तीर्थंकरनिके समयकै विषै पुलाक आदि पाचूं ही भेद प्रवर्त्तैं हैं ।

बहुरि लिंग अपेक्षा कहिये है,—

टीका—लिंगं द्विविधं, द्रव्यलिंगं भावलिंगं च । भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंचनिर्ग्रंथा लिंगिनो भवंतीति द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः ।

अर्थ—लिंग दोय प्रकार है, तिनिमै एक द्रव्यलिंग है दूसरा भावलिंग है । तिनिमें भावलिंगनै प्रतीति करि विचारिये तौ सर्व ही पुलाकादि पाचू ही भेद निर्ग्रंथलिंगी हैं, अर द्रव्यलिंगनै प्रतीतिकरि विचारिये तौ पांचूं ही भेद भाज्य हैं कि भेद

१—राजवार्तिकमें "तीर्थंकराणा" इसके स्थानमे "तीर्थकराणाम्" ऐसा पाठ है ।

करने योग्य है। भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित संयम पालनेमै तौ सबेही महान् उद्यमी हैं तातैं भावलिंग तौ, पांचोंकै समान कह्या है, अर द्रव्यलिंग अपेक्षा काऊ नित्य आहार करै है, कोऊ एकांतर कोऊ वेलांतर कोऊ पक्षोपवास कोऊ मासोपवास कोऊ षटमासोपवास करै है। कोऊ उपदेश करै है, कोऊ श्रवण करै है। काऊ अध्ययन करावै है, कोऊ अध्ययन करै है। कोऊ तीर्थविहार करैहै, काऊ प्रायश्चित्त लेवे है। कोऊ आचार्य है, कोऊ उपाध्याय है, कोऊ प्रवर्त्तक है, कोऊ निर्यापक है, कोऊ वैयावृत्य करै है। कोऊ ध्यानकरि श्रणी चढ़ै है, काऊ केवलज्ञान उपजावैहै, इत्यादि भेदकरि प्रवृत्तिमै भेद है तातैं द्रव्यलिंग अपेक्षा भेद कह्या है, अर नग्न दिगम्बरपणामै भेद नहीं है।

अब लेश्या अपेक्षा कहै है,—

टीका—लेश्या;—पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवंति। बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि। कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धेश्चतस्र उत्तराः। सूक्ष्मसांपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति। अयोगशैले प्रतिपन्ना अलेश्याः।

अर्थ—पुलाककै पीत पद्म शुक्ल ए उत्तरकी तीन लेश्या हैं, अर बकुशकै अर प्रतिसेवनाकुशीलकै छहू ही लेश्या हैं, अर कषाय कुशीलकै अर परिहारविशुद्धिसंयमीकै कापोत पीत पद्म शुक्ल ए च्यार उत्तरकी लेश्या है, अर सूक्ष्मसांपरायिककै अर निग्रंथस्नातककै एक केवल शुक्ल लेश्या ही है, अर अयोगरूप पर्वतकै विषैं प्राप्त भये जे अयोग केवली ते लेश्यारहित है।

प्रश्न—मुनीश्वरनिकै कृष्ण आदि अशुभलेश्या कैसैं हैं।

उत्तर—चारित्रसारमैं धारा;—

तयोरुपकरणासक्तिसंभवात् आर्त्तध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्त्तध्यानेन कृष्णलेश्यादित्रयं भवतीति।

अर्थ—तयोः कहिये वकुशकै अर प्रतिसेवनाकुशीलकै उपकरणमैं आसक्तता संभवै है तातैं कदाचित् आर्तध्यान संभवै है, अर आर्त्तध्यानकरि कृष्ण आदि तीनूं लेश्या संभवै हैं, यातैं छहूं लेश्या कही हैं। अब उपपाद अपेक्षा कहैं है;—

टीका—उपपादः—पुलाकस्योत्कृष्ट उपपादः उत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे। वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयोः। कषायकुशीलनिर्ग्रंथयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ। सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु। स्नातकस्य निर्वाणमिति।

अर्थ—उत्कृष्ट अपेक्षा पुलाकको उपपाद सहस्रारनामा बारमा स्वर्गपर्यन्त उत्कृष्टस्थितिके धारक देवनिमै है, अर वकुशका तथा प्रतिसेवनाकुशीलको उपपाद आरण अच्युत नामा सोलमा स्वर्गमै बाईससागरोपम स्थितिवान देवनिमै है, अर कषायकुशील तथा निर्ग्रन्थको उपपाद सर्वार्थसिद्धिकै विषै तेतीससागरोपम स्थितिमान देवनिमै है, अर सब कोही जघन्य अपेक्षा सौधर्मे

ईशान स्वर्गकै विषै दोय सागरोपमस्थितिमान देवनिमै है, अर स्नातकका निर्वाण ही है।

अब स्थान अपेक्षा कहिये है,—

टीका—स्थानं;—असंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवंति, तत्र सर्वत्र जघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोः तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतस्ततः पुलाको व्युच्छिद्यते, कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलवकुशाः युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छंति ततो वकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वं अकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते, सोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वमेकं स्थानं गत्वा स्नातकोनिर्वाणं प्राप्नोत्येषां संयमलब्धिरनंतगुणा भवतीति।

अर्थ—कषायनिको क्षयोपशम है निमित्त जिनकूं ऐसे संयमके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं तिनि असंख्यातलोक प्रमाण संयमस्थाननिविषैं सर्वत्र जघन्य संयमलब्धिस्थान पुलाकके अर कषायकुशीलकै होय है ते दोऊ ही युगपत् असंख्यात संयम-

लब्धिस्थाननिकूं प्राप्त होय हैं ता पीछे पुलाक विच्छित्तिकूं प्राप्त होय हैं, अर कषायकुशील तथा प्रतिसेवनाकुशील अर बकुश ये तीन जे है ते युगपत् असंख्यातलोकप्रमाण स्थाननिकूं प्राप्त होय हैं तापीछे बकुश व्युच्छित्तिकौ प्राप्त होय है, ता पीछे भी असंख्यात लोकप्रमाण स्थाननिकूं जाय कषाय कुशील व्युच्छित्तिकूं प्राप्त होय है, या उपरांति अकषायस्थाननिनै निग्रन्थ प्राप्त होय है सो भी असंख्यात स्थाननिनै प्राप्त होय व्युच्छित्ति पावै है, या उपराति एक स्थानर्नै प्राप्त होय स्नातक निर्वाणनै प्राप्त होय है । ऐसै इन पांचूं भेदरूप मुनीश्वरनिकै संयमकी लब्धि उत्तरोत्तर अनन्तगुणी है ।

ऐसैं पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रन्थ स्नातक भेदरूप पंच प्रकारके. मुनीश्वरनि के लक्षणतत्त्वार्थसूत्रमै तथा टीकासर्वार्थसिद्धिमैंतथा राजवार्त्तिकमै किये है, तातैं संग्रह व्यवहारनय अपेक्षा तौ पांचू ही निर्ग्रन्थ है अर निश्चयनयअपेक्षा बारहै गुणस्थानवर्त्ती निग्रन्थ है ते अर तेरवां चौदवां गुणस्थानवर्त्ती स्नातक जे है ते निग्रन्थ हैं । अर केई मंदज्ञानी मिथ्यात्वी पक्षपातीनिके कहनेतैं मुनीश्वरनिकै धन धान्य वस्त्र आदि परिग्रह बताय सग्रन्थकूं भी पूज्य मानैहैं ते मिथ्यात्वी हैं ।

प्रश्न—इनि पंचभेदनिका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया परंतु केई पुरुष कहैहैं कि उत्सर्ग अर अपवाद भेदरूप दोय लिंग हैं तिनिमैं अपवादलिंगीनिकै वस्त्र धन धान्य आदि परिग्रह है सो कैसैं है ।

उत्तर—अन्य परिग्रहका ग्रहण तौ दूरि ही रहौ मोक्षकी चाहि मात्रका ही निषेध पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं लिखे हैं,—

मोक्षेऽपि मोहादभिलाषदोषो विशेषतोमोक्षनिषेधकारी
यतस्ततोऽध्यात्मरतोमुमुक्षुर्भवेत्किमन्येषुकृताभिलाषः ॥

अर्थ—जातैं मोहका उदयतैं मोक्षकै विषहू अभिलाषरूप दोष जो है सो विशेषपणांतैं मोक्षको निषेध करणवारो है, तातं मोक्षको इच्छुक आत्मध्यान विषै लीन हुवो संतो साधु–और परिग्रहके विषै अभिलाषावान कैसैं होय। भावार्थ—मुनीश्वर तौ अन्य पदार्थको अभिलाषवान कदाचित् ही नहीं होय ॥ ५५ ॥

तथा प्रवचनसारमैं चरणानुयोगचूलिकाकै विषै,—

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कथमप्पाणं पसाधयदि ॥२०॥
कथं तस्मिन् नास्तिमूर्च्छा आरंभो वा असंयमस्तस्य
तथा परद्रव्यरतः कथमात्मानं प्रसाधयति ॥ २० ॥

अर्थ—या मुनीश्वरकै तिस परिग्रहकै होतसंतैं मूर्च्छा अर आरंभ अर असंयम कैसैं नही होय तथा परद्रव्यमैं रागी हुवो संतो आत्मानैं कैसैं साधै कि कदाचित् ही नहीं साधै ॥ २० ॥

टीका—उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणायाः मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्यारंभस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य चावश्यं भावित्वातथोपधिद्वितीयस्य परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च, ऐकांतिकांतरंगछेदत्वमुपधेरवधार्यत एव। इदमत्र तात्प-

यमेवं विधत्वमुपधेरवधार्य सर्वथा संन्यस्तव्यः॥२०॥

अर्थ — उपधि जो परिग्रह ताको सद्भाव होत संतै ही ममत्वपरिणाम है लक्षण जाको ऐसो मूर्च्छाका अवश्यंभावापणो है, अर मूर्च्छाकू होत संत मूर्च्छाका विषयरूप कर्मका प्रक्रमरूपपरिणाम है लक्षण जाका ऐसा आरंभको अवश्यंभावीपणो है, अर आरंभकै शुद्धात्मस्वरूपका हिंसनपरिणाम लक्षणअसंयमको अवश्यंभावीपणो है यातैं; तथा उपधिद्वितीयस्य कहिए बाह्य अभ्यंतर परिग्रहवानकै परद्रव्यमैं रागीपणाकरि शुद्धात्मद्रव्यका प्रसाधकपणांको अभाव है यातै; परिग्रहकै एकांततताकरि अंतरंगको छेदरूपणौं अवधारिये है कि निश्चय करिये है। इहां यो तात्पर्य है कि परिग्रहकै सर्व दोषनिको आधारभूतपणौं निश्चय करिये है सो परिग्रह सर्वथा त्यागवो योग्य है। भावार्थ—जाकै परिग्रह होय ताकै अवश्य ममत्वभाव होय, अर जामैं ममत्वभाव होय ताकै निमित्त आरंभ भी होय, अर ममत्वभाव अर आरंभ दोऊ होय तहां शुद्धोपयोगरूप आत्मीकपरिणामनिकी तथा परजीवनिकी हिंसा होय, तहां अवश्य असंयम होय, तहां मुनिपणांको अभाव होय। क्योंकि परद्रव्यमैं रक्तता होत संतैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन कदाचित् ही नहीं बणै है अर मुनिपणौं धारण करनेको मुख्य प्रयोजन शुद्धात्मतत्त्वको सिद्ध करनौ है। तातैं जाकै परिग्रह है ताकै मुनिपणूं नहीं है। यातै इस कथनका तात्पर्य ये है कि शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत मुनिपणां चाहै सो परिग्रहको सर्वथा परिहार करै ॥२०॥

अब अपवादमार्गकूं कहै है कि,—

धारा—अथ कस्यचित क्वचित् कदाचित्कथं-

चित् कश्चिदुपधिरप्रतिषिद्धोऽप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति।

अर्थ—या उपरांति कोईकै कोई क्षेत्रमैं कोई कालमैं कदाचित् कैसै हूं कोई परिग्रह जो है सो नहीं निषेधरूप भी है या कारण अपवादनै उपदेश करै हैं। गाथा—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥२१॥
छेदो येन न विद्यते गृहणविसर्गेषु सेवमानस्य।
श्रमणस्तेनेह वर्त्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय ॥ २१ ॥

अर्थ—जा परिग्रहका सेवनवारा मुनीश्वरकै जापरिग्रहका ग्रहण त्यागनै होतां संतां जाकरि मुनिपणांकौ छेद नहीं होय ताकरि या वर्त्तमानकालमैं कालक्षेत्रनैं जाणि प्रवर्त्तन करौ ॥ २१ ॥

टीका—अथ आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व एवोपधिः प्रतिषिद्ध इत्युत्सर्गः। अयंतु विशिष्टकालक्षेत्रवशात्कचिदप्रतिषिद्धइत्यपवादः। यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोऽपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावच्छन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते, तदापकृष्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्बहिरंगसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते, सतु तथाऽऽस्थीयमानो न खलूप-

धित्वाच्छेदः, प्रत्युतः छेदप्रतिषेध एव, यः किलाशुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः, अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताऽऽहारनिर्हारादिग्रहणविसर्जनविषयच्छेदप्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात्॥ २१ ॥

अर्थ—अथानंतर आत्मद्रव्यकै दूसरा पुद्गलद्रव्यका अभावतै सर्वही परिग्रह निषेधरूप है या प्रकार तौ उत्सर्ग मार्ग है, अर यो विशेष काल क्षेत्रका वशतै कदाचित् नहीं निषेधरूप अपवादमार्ग है, अर निश्चयकरि जा समय सर्व परिग्रहका निषेधनै अंगीकार करि परम वीतराग संयमनै प्राप्त होबाको इच्छुक भी विशेष काल क्षेत्रका वशतै नहीं प्रकट भई है शक्ति जाकी अैसो हुवो संतो परम वीतराग संयमनै प्राप्त होनेकूं नही समर्थ होय है ता समय वीतराग संयमके इच्छुक परिणामनिकूं संकोच करि सरागसंयमनै प्राप्त होतो संतो वा सरागसंयमको बाह्यसाधन मात्र परिग्रह जो है ताहि "आतिष्ठते" कहिए अंगीकार करै है सो मुनीश्वर अपवादमार्गमैं तिष्ठैहै, अर निश्चयकरि वा संयमका साधनमात्र परिग्रहवानपणांनै मुनिपणांको छेद नही है, उलटो छेदको निषेध ही है, अर निश्चयकरि जो अशुद्धोपयोगतैं अविनाभावी सो छेद है, अर यो अपवादरूप परिग्रह तौ मुनिपर्यायको सहकारी कारण जो शरीर ताकी प्रवृत्तिका हेतुभूत जो आहार निहार कमंडल पिच्छिकादिक तिनका ग्रहणत्याग विषयस्वरूप परिग्रह है सो छेदका प्रतिषेधके अर्थि ग्रहण कियो संतो सर्वथा

शुद्धोपयोगतैं अविनाभावी पणांतैं छेदका निषेधक ही है ॥ १२ ॥ भावार्थ—सर्वथासर्व परिग्रहका त्यागरूप तौ उत्सर्गमार्ग है क्योंकि आत्माकै निज भाव सिवाय परद्रव्यरूप पुद्गलद्रव्य आदि कोऊ भी भाव अपना नहीं है तातैं उत्सगमार्गी तौ सवथा परिग्रहरहित है। अर कदाचित् विशेषरूप काळ क्षेत्रकै वशतैं कोई परिग्रह-का ग्रहणरूप अपवादमार्ग है क्योंकि ,जो मुनीश्वर जा समय सर्व परिग्रहकूं त्यागि परम वीतराग संयमनै प्राप्त हुवो चाहै है सो ही मुनीश्वर विशेषरूप कालक्षेत्रके वशतैं हीनशक्ति हुवो सता तिस वीतराग संयमनै नहीं धारण करि सकै है ता समय सरागसंयमनैं धारण करै हैं सो परिग्रह तिस मुनिपणांका बाधक नहीहै उलटा साधकहै क्योंकि मुनिपणांका बाधक तौ अशुद्धो-पयोग है अर ये परिग्रह अशुद्धोपयोगके बाधक है तातै मुनिपणां-के साधक हैं, सो अैसैं है कि मुनिपणांको सहकारी कारण शरीरहै अर शरीरकी प्रवृत्तिको कारण आहार नीहारको ग्रहण त्याग है तातै अंगीकार करिये है सो अशुद्धोपयोगरूप नहींहै, क्योंकि आहार नीहार कमंडल पिच्छिका पुस्तक गुरु शिष्य संघ आदि मुनिपणांका सहकारी कारणरूप परिग्रहकूं नहीं ग्रहण करै तौ आयुपर्यन्त मुनिपणौं निभै नाहीं, तातैं जा परिग्रहतै मुनिपणं नहीं बिगड़ै सो अपवादमार्गमैं ग्रहण करनूं कह्यो है क्योंकि मुनिपणांको साधक है यातै ॥ २१ ॥

धारा— अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति ।

अर्थ—अथानंतर नहीं निषेधरूप परिग्रह जो है ताका स्वरूपनै उपदेश करै है; गाथा—

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो यदि वि अप्पं ।२२

अप्रतिकुष्ठमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः ।
मूर्च्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम् ।२२।

अर्थ—जो असंयमी मनुष्यनि करि नहीं प्रार्थनां करिवे योग्य अर मूर्च्छा जो ममता आरंभ हिंसादिक भाव तिनिका उपजावनरहित ऐसा नहीं निषेधरूप अल्प ही परिग्रहनै अपवादलिंगी मुनीश्वर ग्रहण करौ ॥ २२ ॥

टीका—यः किलोपधिः सः सर्वथा बंधासाधकत्वादप्रतिकुष्टः संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतजनाप्रार्थनीयो रागादिपरिणाममंतरेण धार्यमाणत्वान्मूर्च्छादिजननरहितश्च भवति स खल्वप्रतिषिद्धः । अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो न पुनरल्पोऽपि यथोदितविपर्यस्तस्वरूपः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो निश्चयकरि सर्वथा बंधका नहीं साधकपणांतैं नहीं निषेधरूप अर संयमतैं अन्यप्रसंगमैं अनुचितपणांतैं असंयमी मनुष्यनिकै नहीं प्रार्थना करिवे योग्य अर रागादिपरिणामविना धारण करवातैं ममता आरंभ हिंसा आदिभावका उपजावनरहित है सो निश्चयसेती नहीं निषेधरूप परिग्रह है, यातैं पूर्वोक्त स्वरूप हीपरिग्रह ग्रहण करने योग्य है; अर पूर्वोक्ततैं विपरीत स्व-

रूप अल्प भी परिग्रह नहीं ग्रहण करने योग्य है ॥ २२ ॥ भावार्थ— असंयमी मनुष्यनिकरि नहीं प्रार्थना करने योग्य परिग्रहका विशेषण कहनेतैं सर्वथा गृहस्थनिकै अयोग्यपणा जनाया है अर मूर्च्छादिकका उपजावनरहित विशेषण कहनेंतैं जा द्रव्यके ग्रहण कियें ममता आरंभ हिंसा आदि दोष उत्पन्न होय सो धन धान्य आदि सर्व ही द्रव्य नहीं ग्रहण करनें योग्य जनाया है, अर कमंडलपिच्छिका शास्त्र गुरु शिष्य आहार निहार विहार आदि मुनियोग्य द्रव्यके ग्रहण त्याग करनेतैं मुनिपदवीका तौ निर्वाह होय है अर आरंभहिंसादिक नहीं होय है तातैं बंधका कारण नहीं है यातैं अपवादमार्गमैं ये निषेधरूप नहीं है ॥ २२ ॥

उत्थानिका—अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवाद इत्युपदिशन्ति ।

अर्थ—अथ नंतर उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है अर अपवाद वस्तुधर्म नाहीं है या प्रकार उपदेश करैं हैं—

किं किंचणत्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहे वि ।
संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २३॥

किं किंचनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोऽथ देहेऽपि ।
संग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमदिष्टवंतः॥२३॥

अर्थ—इहां तर्क करैं हैं कि मुनीश्वरकै कछू है कहा, याका उत्तर ग्रंथकार कहै हैं कि अथानंतर अपुनर्भवकी है कामना

जाकै ऐसा मुनीश्वरकै देह होतसंतें देह परिग्रह है या प्रकार जिनवरेंद्र सर्वज्ञ वीतराग देव जे हैं ते अप्रतिकर्मत्वपणूं जो ममत्वभावसहित शरीरसंस्कारको त्याग सो उपदेश करत भये ॥ २३ ॥

टीका—यत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेत्यंतमुपात्तदेहेऽपि परद्रव्यत्वात्परिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किं तूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवंतो भगवंतोऽर्हद्देवाः । अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलंभसंभावनरसिकपुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः कि नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः, अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवादः । इदमत्र तात्पर्यं वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रंथ्यमेवावलंब्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ—जहां मुनिपर्यायका सहकारी कारणपणां करि नहीं निषेधमान देहनै अत्यन्तपणै ग्रहणरूप होतसंतै भी परद्रव्यपण तैं परिग्रहहै तातै यो शरीरनाममात्र भी अनुग्रहकै योग्य नांहीहै उलटो उपेक्षायोग्य है कि त्यागवे योग्य है। या प्रकार अप्रतिकर्मपणानैं भगवान अर्हंतदेव उपदेश करते भये। इहां अप्रतिकर्मनाम परम वीतरागताका जाननां, अर मुनिपणामैं शुद्धात्मतत्वकी जो प्राप्ति ताकी संभावनाका रसिक मुनीश्वर जे है तिनकै शुद्धात्मतत्व सिवाय कछू भी अन्य नहीं ग्रहण करनें योग्य है तो धन धान्य आदि अनंत संसारका कारण वराक परिग्रह कहा नाम है, या प्रकार

भगवान अरहंतको निश्चयकरि प्रकट ही हुकम है याते निश्चय करिये है कि, उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है अर अपवाद वस्तुधर्म नहीं है। इहां यो तात्पर्य है कि वस्तुधर्मपणांतैं परम निर्ग्रंथपणूं ही धारण करवो योग्य है ॥ २३ ॥

उत्थानिका—अथ केऽपवादविशेषा इत्युपदिशति।

अर्थ—इहां शिष्य प्रश्न करै है कि अपवादके भेद कौनसे है, याका उत्तररूप उपदेश करै है,—

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जह जादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं ॥ २४ ॥

उपकरणं जिनमार्गे लिंगं यथाजातरूपमिति भणितम्
गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च प्रज्ञप्तम् ॥ २४॥

अर्थ—सर्वज्ञ जिनभाषित निर्ग्रंथ मोक्षमार्गके विषै यथाजातरूप लिंग जो है ताहि उपकरण कह्यो है अर गुरुवचननै तथा विनयनै तथा सूत्रका अध्ययननै भी उपकरण कह्यो है ॥ २४ ॥

टीका—यो हि नामाप्रतिषिद्धोऽस्मिन्नुपधिरपवादः सः खलु निखिलोऽपि श्रामण्यपर्यायसहकारिणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव न पुनरन्यः, तस्य तु विशेषाः सर्वाहार्यवर्जितसहजरूपापेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरंगलिंगभूताः कायपुद्गलाः, श्रूयमाणतत्कालबोधकगुरुगीर्यमाणात्मतत्त्वद्योत

कसिद्धोपदेशवचनपुद्गलास्तथाऽधीयमानं नित्यबोधकानादिनिधनशुद्धात्मतत्त्वोद्योतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मकसूत्रपुद्गलाश्च शुद्धात्मतत्त्वव्यंजकदर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीततारभिप्रायप्रवर्त्तकचित्तपुद्गलाश्च भवंति । इदमत्र तात्पर्यं,—कायवद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो या मुनिपर्यायके विषैं नहीं निषेधरूप परिग्रह है सो अपवाद है सो निश्चयकरि सर्वही मुनिपर्यायका सहकारी कारणपणांकरि उपकारकपणातैं उपकरणस्वरूप ही है अर और जो मुनिपर्यायका सहकारी नही है सो उपकरणस्वरूप नही है । अर वा अपवादरूप परिग्रहके भेद ये है कि संपूर्ण आभूषणवर्जित स्वाभाविकरूप अपेक्षित यथाजातरूपपणां करि बाह्यलिंगभूत कायपुद्गल है सो भी परद्रव्यपणातैं परिग्रह है, अर श्रवण करत प्रमाण तत्काल ज्ञानका उपजावनवारा गुरूका कह्या आत्मतत्त्वका द्योतक सिद्ध उपदेशरूप वचनपुद्गल है सो भी परद्रव्यपणांतैं परिग्रह है, तैसैं ही अध्ययन किया संता नित्यज्ञानका उपजावनवारा अनादिनिधन शुद्धात्मतत्त्वका उद्योतनमैं समर्थ श्रुतज्ञानका साधनीभूत शब्दात्मक सूत्र पुद्गल है सो भी परद्रव्यपणातैं परिग्रह है, अर शुद्धात्मतत्त्वका व्यंजक जो सम्यग्दर्शनादिपर्याय ता स्वरूप परिणम्या पुरुषका विनयपणाका अभिप्रायरूप प्रवर्त्तनवारा चित्त पुद्गल है सो भी परद्रव्यपणातैं परिग्रह है । यहां यो तात्पर्य है कि कायकी नाईं वचन अर मन भी वस्तुधर्म नही है । भावार्थ—जीवका स्वभाव काय वचन मन भी नही है अर।स्वभाव नही है सो सर्व परिग्रह है

अर परिग्रहका मुनीश्वरकै निषेध है, तथापि जो मुनिपणांका सहकारी [illegible] सो उपकरण नाम पावे है तातैं अपवादमार्गमैं उपकरण ग्राह्य है निषेधरूप नहीं है। अर सहकारी परिग्रहके भेद ये हैं कि प्रथम तौ यथाजात दिगंबर देहरूप पुद्गल, दूसरा गुरुवचनरूप पुद्गल, तीसरा सूत्रको अध्ययनरूपो पुद्गल, चौथा विनयरूप चित्त-पुद्गल, इनि सिवाय अन्य परिग्रह मुनिपणांका सहकारी नहीं है। इहां ऐसा कह्या है। और उपकरणसंज्ञा कमंडल पीछी है सो शौचका अर संयमका उपकार करै है तातैं ग्राह्य है अर नहीं निषेधरूप शरीरमात्र परिग्रह जो है ताका पालनको उपाय योग्य आहार नीहार विहार है ताको विधान पंचसमितिका उपदेशमै मूलाचार आदि सर्व ग्रंथनिमैं लिखै है तहांतै जाननां। अर य [illegible] आहार विहार है सो अनाहार कहिये नहीं आहार करने समान ही है अर अविहार कहिये नहीं विहार करणे समान ही है ऐसा हुकम प्रवचनसारमैं याही प्रकरणमैं लिखै है तहांतै जाननां। तथा उत्सर्ग मार्गकै अर अपवादमार्गकै मैत्रीभाव है॥

उत्थानिका—अथोत्सर्गापवादमैत्री सौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति।

अर्थ—अथानंतर उत्सर्गकै अर अपवादमार्गकै मैत्रीभाव है सो आचरणके सुस्थितपणूं उपदेश करै है—

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण हवदि॥३६॥
बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा।
चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति॥३६॥

अर्थ—बालक तथा वृद्ध तथा तपस्याकरि खेदखिन्न तथा रोगकरि पीडित होय सो अपने योग्य चर्याने आचरण, करो परन्तु जैसैं मूल संयमका घात नहीं होय तैसैं शक्तिमाफिक आचरण करो ॥ ३९ ॥

टीका—बालवृद्धश्रांतग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः, बालवृद्धश्रांतग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः । बालवृद्धश्रांतग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमाचरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः, बालवृद्धश्रांतग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रांतग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन

मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमप्याचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोऽपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गापवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—बालक तथा वृद्ध तथा तपकरि खेदखिन्न तथा रोगकरि पीड़ित जो है ताकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनपणांकरि मूलभूत संयम जो है ताकौ जैसै छेद नहीं होय तैसै संयमी आपकै योग्य अतिकर्कश ही आचरण आचरण करवे योग्य है या प्रकार उत्सर्ग मार्ग है, बहुरि बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगयुक्त जो है ताकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत संयम जो है ताको साधनपणांकरि मूलभूत शरीर जो है ताकौ जैसैं छेद नहीं होय तैसै बालवृद्ध खेदखिन्न रोगयुक्त आपकै योग्य कोमल ही आचरण आचरणनैं योग्य है या प्रकार अपवादमार्ग है। बहुरि बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जे है तिनकरि शुद्धात्मतत्त्वका साधनपणाकरि मूलभूत संयम जो है ताका छेद जैसे नहीं होय तैसै संयमी अपने योग्य अतिकर्कश आचरण जो है ताहि आचरता शुद्धात्मतत्त्वका साधनभूत संयमका साधनपणाकरि मूलभूत शरीरका छेद जैसै नहीं होय तैसै बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जो है ताकू अपने योग्य कोमल आचरण आचरण करवे योग्य है, या प्रकार अपवादसापेक्ष उत्सर्गमार्ग है। बहुरि बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीड़ित जे हैं तिनिकरि शुद्धात्मतत्त्वको साधनभूत संयमका साधनपणाकरि मूलभूत शरीरको छेद जैसैं नहीं होय तैसै बालक वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडित जे हैं तिनि-करि अपने योग्य कोमल आचरण आचरता शुद्धात्मतत्त्वका साधन-

पणां करि मूलभूत संयमको छेद जैसै नही होय तैसै संयमीकूं अपनें योग्य अतिकर्कश भी आचरण आचरण करवे योग्य है या प्रकार उत्सर्गसापेक्ष अपवादमार्ग है। यातै सर्वथा उत्सर्ग अर अपवाद कै मित्रताकरि आचरणकै स्वस्थितपणौ करिवेयोग्य है। भावार्थ-- उत्सर्ग अर अपवाद ये दोऊ ही मार्ग शुद्धात्मतत्त्वका साधन है, तथापि इतना भेद है कि साक्षात् कारण तौ उत्सर्ग है अर उत्सर्गका निर्वाहका कारण अपवाद है तातै दोऊनिकै मैत्रीभाव है, अर संयमीकै काहू कालमैं तौ शक्तिकी आधिक्यता होतसंतै उत्सर्गसापेक्ष अपवाद होय है अर काहू कालमैं शक्ति की हीनता होतसंतै अपवादसापेक्ष उत्सर्ग होय है। इहां तात्पर्य ये हैकि शुद्धात्मतत्त्वको साधनभूत संयम अर संयमको साधनभूत शरीर ये दोऊ जैसै नही बिगड़ै तैसै उत्सर्ग तथ अपवादनें आचरण करो।

उत्थानिका—अथोत्सर्गापवादविरोधःदौःस्थ्यमाचरणस्योपदिशन्ति।

अर्थ—अथानंतर उत्सर्गकै अर अपवादकै विरोध है सो आचरणकै दुस्थितपणानैं उपदेश करै है,—

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो॥३०॥
आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिं।
ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्त्तते यदि अल्पलेपी सः॥३०॥

अर्थ--सो अपवादमार्गी अथवा उत्सर्गमार्गी मुनीश्वर जो अल्पकर्मलेपवान होय कि जा कार्यमै कर्मलेप तौ अल्प होय

अर संयमकी हानि नहीं होय तौ वा देशनै कालनै खेद नैत्तमानै उपधिनै जाणि आहारकै विषै तथा विहारकै विषै प्रवर्त्तै ॥ ३० ॥

टीका—अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरुपवासः बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः ततो बालवृद्धश्रांतग्लाना एवान्वाकृष्यंते। अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्त्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव तद्वरमुत्सर्गः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाऽऽहारविहारयोःप्रवर्त्तमानस्यमृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्प एव लेपो भवति तद्वरमपवादः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपभयेनाप्रवर्त्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांतसमस्तसंयमामृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्यप्रतीकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयानपवादनिरपेक्षःउत्सर्गः, देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रांतग्लानत्वानुरोधेनाऽऽहारविहारयोरल्पलेपत्वं विगणय्ययथेष्टं प्रवर्त्तमानस्यमृद्वाचरणीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाऽशक्यप्रतीकारो महान् लेपो भवति तन्न

थानुत्सर्गनिरपेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौःस्थित्यमाचरणस्य प्रतिषेध्यं तदर्थमेव सर्वथानुगम्यश्च परस्परसापेक्षोत्सर्गापवादविजृंभितवृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

अथ—या प्रकरणमैं क्षमापणाको अर ग्लानिपणाको कारण उपवास है अर बालकपणांको तथा वृद्धपणांको आधार शरीर है सो उपाध है, तातैं बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडित ही "अन्वाकृष्यंते" कहिये अंगीकार करिये है। अथानतर देशकालको ज्ञाता अर बाल-वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणांका अनुरोधकरि आहार विहारकै विषै प्रवर्त्तमान जो है ताकै भी कोमल आचरणरूप प्रवृत्तिपणातैं अल्पलेप है ही, सो उत्कृष्ट उत्सर्गमार्ग है। बहुरि देशकालको ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणाका अनुरोधकरि आहार विहारकैविषै प्रवर्त्तमान जो है ताकै भी कोमल आचरणपणांतैं अल्प ही लेप है सो उत्कृष्ट अपवादमार्ग है। बहुरि देशकालको ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेदखिन्न रोगपीडितपणाका अवरोधकरि आहार विहारकै विषै अल्पलपका भयकरि नहीं प्रवर्त्तती संतो अतिकर्कश आचरणको धारी होय अक्रमकरि शरीरनै पटकि सुरलोकनै प्राप्त होय वम्यूं है समस्तसंयमरूप अमृतको भार जानै ऐसो जो है ताकै भी तपका अनवकाशकरि नाइलाज महान् कर्मलेप होय है सो अपवादनिरपेक्ष उत्सर्गमार्ग कल्याणकारी नही है। बहुरि देशकालको ज्ञाता अर बाल वृद्ध खेद-खिन्न रोगपीडितपणांका अनुरोधकरि आहार विहारकै विषै अल्पलेपपणांनै नहीं गिणि यथेष्ट प्रवर्त्तती संतो कोमल आचर

को धारी होय संयमनैं विराधि असंयमी जनकै समान जो है ताकै भी वाही समयमैं तपका अनवकाश करि नाइलाज महान लेप है सो उत्सर्गनिरपेक्ष अपवादमार्ग कल्याणकारी नही है। यातैं आचरणकै सर्वथा उत्सर्गको अर अपवादको दुस्थितपणूं जो है सो निषेध करिवो योग्य है या प्रयोजन निमित्त ही सर्वथा उत्सर्गनैं अर अपवादनैं जाणि परस्परसापेक्ष उत्सर्ग तथा अपवादकरि फैलती प्रवृत्ति जो है सो स्याद्वाद है। भावार्थ—जा उत्सर्गकै अपवादतै विरोध होय सो अकल्याणरूप है अर जा अपवादकै उत्सर्गतै विरोध होय सो अपवाद अकल्याणरूप है। इहां तात्पर्य ऐसा जाननां कि जा उत्सर्गतैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन संयम जो है ताको सहकारी कारण शरीर जो है सो नाशनैं प्राप्त होय सो उत्सर्ग अकल्याणरूप है क्योंकि जातैं शरीरको नाश भयो तब संयमको भी नाश भयो अर संयमको नाश भयो तब शुद्धात्मतत्त्वको लाभ कहां रह्यो अर शुद्धात्मतत्त्वको लाभ नही रह्या तब सर्व परिश्रम निष्फल भयो तातैं अपवादनिरपेक्ष उत्सर्ग भी अकल्याणरूप है। अर जा अपवादतैं संयमको नाश होय सो अपवाद अकल्याणरूप है क्योंकि जातैं शुद्धात्मतत्त्वको साधन संयम जो है ताको ही नाश भयो तब शुद्धात्मतत्त्वको लाभ कहा रह्यो अर शुद्धात्मतत्त्वको लाभ नहीं रह्यो तब सर्व परिश्रम निष्फल भयो तातैं उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद भी अकल्याणरूप ही है। तातैं दोऊ सापेक्ष ही स्याद्वादरूप कल्याणकारी है ॥ ३० ॥

अब या प्रकरणको कलशरूप काव्य कहै है; काव्य—

इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैः जुष्टं विशिष्टादरै-

कृतसर्गादपवादतश्च विचरद्वह्वीः पृथग्भूमिकाः ।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिं ॥

अर्थ—पूर्वोक्त या प्रकार तीर्थंकरादि पुराण पुरुषनिन विशिष्ट आदर करि अंगीकार कियो ऐसो आचरण जो है ताहि यतीश्वर उत्सर्गतैं तथा अपवादतैं धारतो महान् जगततैं भिन्न ऐसी वीतराग दशानैं अंगीकार करि अनुक्रमतैं अतुलनिवृत्तिनैं धारणकरि सर्व तरैं चैतन्य सामान्यविशेषरूप निजद्रव्यकै विषै स्थिति करो ॥

इत्यादि लक्षण उत्सर्गमार्गका तथा अपवादमार्गका श्रद्धान करि मुनीश्वरनिमैं कोऊ भेदकै ही धन धान्य वस्त्र शस्त्र आभरण आदि परिग्रहवानपणा नही श्रद्धान करणां योग्य है ।

आत्मानुशासनमैं, छंद शिखरिणी,—

कलौ दंडो नीतिः स च नृपतिभिस्ते नृपतयो
नयंत्यर्थार्थं त न च धनमदोऽस्त्याश्रमवताम् ।
नतानामाचार्या न हि नतिरताः साधुचरिता-
स्तपःस्तेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः ॥१५१॥

अर्थ—कलिकालविषै नीति तौ दंड है दंड दीए न्याय-मार्ग चालैं, बहुरि सो दंड राजानिनकरि हो है राजाविनां और दंड देनेकौं समर्थ नाहीं, बहुरि ते राजा धनकै अर्थि न्याय करै है जामैं धन आवनेका प्रयोजन न सधै ऐसा न्याय राजा करते नाहीं बहुरि यह धन है सो आश्रमी जे मुनि तिनिकै पाइए नांही तिनिका भेष ही धनादिक

रहित है; असै तौ भ्रष्ट भए मुनिकौं राजा न्यायमार्गवि चलावते नाहीं। बहुरि आचार्य है ते आपकूं विनय नमस्कारादिक करावनेके लोभी भए ते नम्रीभूत भए जे मुनिपं तिनिकौं नांही न्यायविषै प्रवर्त्तावै है, असै इस कालविषै तपस्वी जे मुनि तिनिविषै मुनिआचरन जिनिकै पाइए असै मुनि ते जैसैं सोभायमान उत्कृष्टरत्न थोरे पाइए तैसैं थोरे विरले पाइए है। भावार्थ—इस पंचमकालविषै जीव जड वक्र उपजै है ते दंडका भय विना न्यायविषै प्रवर्त्तै नाहीं, बहुरि दंड देनेवाले लोकपद्धतिविषै तौ राजा है अर धर्मपद्धतिविषै आचार्य है, तहां राजा तौ धनका जहां प्रयोजन सधै तहां न्याय करै मुनिकै धन नांहीं तातै राजा मुनिनकौं न्यायविषै चलावै नांही जैसैं प्रवर्त्तै तैसैं प्रवर्त्तो। बहुरि आचार्य है ते विनयके लोभी सो दंड दै नांहीं। असैं भय विना मुनि स्वच्छंद भए है कोई विरले मुनि यथार्थधर्मके साधनहारे रहे है॥

आगै जे मुनि आचार्यनिकौं नांहीं नमै है उनकी आज्ञामै नांहीं रहै है अर स्वच्छंद प्रवर्त्तै है तिनसहित संगति करनी योग्य नाहीं असा कहै है;—

शार्दूलविक्रीडित छंद

एते ते मुनिमानिनः कवलिताः कांताकटाक्षेक्षणै-
रंगालग्नशरावसन्नहरिणप्रख्या भ्रमंन्त्याकुलाः।
संधर्त्तु विषयाटवीस्थलतले स्वान् क्वाप्यहो न क्षमा
मा व्राजीन्मरुदाहताभ्रचपलैःसंसर्गमेभिर्भवान्॥१५२

अर्थ—ते ए प्रत्यक्ष मुनि नाहीं अर आपकौं मुनि मानैं ते स्त्रीनिके जो कटाक्ष लोग अवलोकन तिनि करि सा ग्रस्तभूत भए कि उनकरि ग्रहे हुये अंगविषै लागे हुवे वाणनिकरि पीडित जे हरिण तिनकै सदृश व्याकुल होत संते भ्रमण करै हैं सो बडा आश्चर्य है कि विषयरूपी वनका जो स्थल भाग ता विषै कहीं भी आपनिकौं स्थिर राखनेकौं समर्थ न हो है, सो पवनकरि खण्डित कीए बादले जैसैं चपल होइ तैसैं चंचल जे ए भ्रष्ट मुनि तिनि सहित हे भव्य तू संगतिकौं मी मति प्राप्त होहु। भावार्थ—जैसैं हिरणकै अंगविषै वाण लागा होइ उसकी पीडातैं व्याकुल हुवा कूदता फिरै कहीं वनभूमिका विषैं स्थिर रहनेकौं समर्थ न होइ तैसैं ए भ्रष्ट मुनि वृथा आपकौं मुनि मानै तिनिकै अंतरंगविषै स्त्रीनिका कटाक्षरूप अवलोकन सोई कामका वाण लागा है सो ए उसकी पीड़ाते व्याकुल हुए भ्रमरूप होइ रहे है कहीं विषयनिविषै मन लगावनेकौं समर्थ न हो है कामकी तीव्रता करि धर्मसाधन तौ दूर ही रहो परतु देखना सूंघना सुनना इत्यादि विषयनिविषै भी मनकौं स्थिर नाही करि सकै है सो जैसैं पवन करि विघटाए हुए बादले चंचल हो है तैसै विकारभाव करि भ्रष्ट कीए हुए ए भ्रष्ट मुनि चंचल हो है सो उनका तौ होणहार ऐसा ही है परतु हे भव्य! तेरै किछू धर्मबुद्धि है तातै तोकौं शिक्षा देवै है ऐसे भ्रष्टनिकी संगति तू मति करै। जो संगति करैगा तौ तू भी उनका साथी होइ दुर्गतिकौ प्राप्त होगा। इहा भाव यहु जो भ्रष्ट मुनि संगति योग्य भी नाहीं है।

आगै इनि सहित संगतिकौ न प्राप्त होता जो तू सो ऐसी सामग्री पाइ याचनारहित हूवा तिष्ठि, ऐसी सीख देता सता

सूत्र कहै है, आत्मानुशासनमैं; वसंततिलका छंद ।

गेहं गुहा परिदधासि दिशो विहायः,
संयानमिष्टमशनं तपसोऽभिवृद्धिः ।
प्राप्तागमार्थ ! तव संति गुणाः कलत्र-
मप्रार्थ्यवृत्तिरसि यासि वृथैव याञ्चाम् ॥१५३॥

अर्थ—पाया है आगमका अर्थ जिहि ऐसे जीवकौ संबाधैं है, हे प्राप्तागमार्थ ! तेरै गुफा तौ मंदिर है, अर दिशानिकौ तू पहरै है, आकाश असवारी है, तपकी बधवारी सो इष्ट भोजन है. गुण हैं ते स्त्री है, ऐसैं नांही पाइए है काहू पासि जाचनें योग्य वृत्ति जाकी ऐसा तू भया है अब तू वृथा ही याचनांकौ प्राप्त हो है तोकौ दीन होना योग्य नांही । भावार्थ—लोकविषै इतनी वस्तुकी चाहि भए याचनां करिए है;—प्रथम तौ धनकौ याचै सो तैं आगमका अर्थ सोई अटूट सर्व मनोरथका साधनहारा धन पाया, बहुरि मंदिरकौ जाचै सो गुफा आदि स्वयमेव बनि रहे तेरै मंदिर पाइए है, बहुरि वस्त्रकौ जाचै सो तू दिशारूपी वस्त्रकौ पहरै है दिगंबर भया है, बहुरि असवारी जाचै सौ आकाशरूपी असवारी तेरै पाइए है जहां इच्छा होय तहां गमन करि , बहुरि भोजनकौ जाचै सो तपका वधनां सोई तेरैं तृप्तिका उपजावनहारा इष्ट भोजन है, बहुरि स्त्रीकौ जाचै सो क्षमा आदि गुण तेई तौकौ रमावनहारी स्त्री है । ऐसी तेरे सामग्री पाइए है सो अब तोकौ कहा चाहिए जो तू याचना करैं तेरै तौ दीनतारहित सर्वोत्कृष्टवृत्ति भई है, यातै तू याचना रहित तिष्ठि, ऐसी शिक्षा तोकौ दई है ।

प्रश्न—देवका अर गुरुका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया परंतु शास्त्रका भी लक्षण कहौ ।

उत्तररूप रत्नकरंडमैं,—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥

अर्थ—"आप्तोपज्ञं" कहिये सर्वज्ञ वीतराग केवली जो आप्त ताकरि कह्या होय अर "अनुल्लंघ्यं" कहिये वादी प्रतिवादीनिकरि अबाधित होय अर "अदृष्टेष्टविरोधकं" कहिये नहीं प्रत्यक्षप्रमाणतै अर अनुमानप्रमाणतैं विरोध जा विषै अर "तत्त्वोपदेशकृत्" कहिये सारभूतउपदेशको करता होय अर "सार्वं" कहिये सर्व प्राणीनिको हितकारी होय अर "कापथघट्टनं" कहिये अन्यमतीनिकरि कल्पित कुत्सितमार्गको खंडन करनेंवारो होय सो शास्त्र है ॥

तथा उत्तरपुराणसंबंधी शीतलनाथपुराणमैं;—

पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसादिनाशनम् ।
प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—पूर्वापरविरोध आदि दूषणनिकरि दूरवर्त्ती होय अर हिंसादिक पंच पापनिको नाश करता होय अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण द्वयको कहनें वारो होय अर सर्वज्ञभाषित होय सो शास्त्र है ॥ ६८ ॥

प्रश्न—जैनीनिकै तौ सर्वही शास्त्र सर्वज्ञभाषित है कि नाही ।

उत्तर—बाहुल्यता करि तौ जो वचन है सो सर्वज्ञकी आज्ञा-प्रमाण ही है अर या पंचमकालके प्रभावतै केई तौ मंदज्ञानी कविपणांका अभिमानतैं ग्रंथ रचे है तिनिमै ज्ञानकी मंदतातैं

कहूं २ स्खलित भये है अर केई रागद्वेषके वशतै अपने अभिप्राय-के पोषनेकूं शिथिलाचाररूप उपदेश किया है तथा केई जैनाभास श्वेतांबर पीतांबर रक्तांबर टाटांबर आदि भये है तिननै केई स्थलमै विपरीत उपदेश किया है सो इहां लिखनेतै ग्रंथ बधि जावै। तातै वर्त्तमान देशकालमै आर्ष ग्रंथ मिलै है तिनके नाम लिखिये है। तिनके वचनतै जो वचन मिलै सो तौ सर्वहीको कह्या श्रद्धान करवे योग्य है अर इन ग्रंथनिमै जाको निषेध होय सो किसीहीको कह्यो श्रद्धान करवे योग्य नाही है तैसै ही इनि ग्रंथनिमै जाकी विधि होय सो किसीहीके कहनेसै निषेधरूप श्रद्धान करवो योग्य नाही है अर इनि ग्रंथनिमै जाको निषेध भी नही होय अर विधि भी नही होय सो वचन युक्तितै अबाधित होय अर अनुभवमै योग्य भासै तौ अन्य ग्रंथनिको भी वचन श्रद्धान करो परंतु वाको निषेधरूप आर्ष वचन नही सुनूं तावत तौ श्रद्धान करो अर निषेधवचन सुनूं वाही समय वा श्रद्धानको परिहार करो अर आर्ष वचन सुने पीछै भी जो नही परिहार करोगे तौ मिथ्यात्वी नाम पावोगे।

सो गोमट्टसारको वचन, गाथा—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहई।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरुवएसा ॥१॥
सुत्तादुत्तं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥२॥
सम्यग्दृष्टिः जीवः उपदिष्टं प्रवचनंतु श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं अजानमानः (अज्ञायमानः)
गुरूपदेशात् ॥ १ ॥

सूत्रोक्तं सम्यक् दर्शितं तं यदा न श्रद्दधाति।
सः च एव भवति मिथ्यादृष्टिःजीवःततःप्रभृति॥२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश कीया प्रवचननै श्रद्धान करैहै अर आप अजाणमान हुवो सतो गुरुका उपदेशतै असत्यार्थनै भी श्रद्धान करै है ॥ १ ॥ बहुरि जो सूत्रोक्त सम्यक् दिखाया तत्त्वनै नहीं श्रद्धान करै तौ वोही सम्यग्दृष्टी जीव वाही समयतै मिथ्यादृष्टी है ॥ २ ॥

याहीतैं आर्षग्रंथनिके नाम लिखिए है,—

उमास्वामीकृत एक तत्त्वार्थसूत्र है। कुंदकुंदस्वामीकृत तेरा है,- पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड, नियमसार, रयणसार। नेमिचंद्र सिद्धांतीकृत पांच है,- त्रिलोकसार, गोमट्ट सार, लब्धिसार, क्षपणासार, द्रव्यसंग्रह। वट्टकेरिस्वामीकृत एक मूलाचार है। समंतभद्रस्वामीकृत च्यार है,-देवागम, रत्नकरंड, स्वयंभू, युक्त्यनुशासन। पूज्यपादस्वामीकृत च्यार है,-थोसामित्यादि-स्तोत्र, सर्वार्थसिद्धि, जैनेंद्रव्याकरण, समाधिशतक। कार्त्तिकेयस्वामी-कृत एक अनुप्रेक्षा है। अकलंकदेवकृत आठ है,-बृहत्त्रयी, लघुत्त्रयी, अष्टशती, राजवार्त्तिक। माणिक्यनंदिकृत एक परीक्षामुख सूत्रहै। प्रभाचंद्रकृत दोय है,- प्रमेयकमलमार्त्तंड, न्यायकुमुदचन्द्रोदय। जिनसेनाचार्यकृत एक बृहत् आदिपुराण है। गुणभद्राचार्यकृत तीन हैं, उत्तरपुराण, आत्मानुशासन, जिनदत्तचरित्र। योगींद्रदेवकृत दोय है,—परमात्माप्रकाश, योगसार। वीरनंदिकृत दोय है,— आचारसार, चंद्रप्रभकाव्य। शुभचंद्रकृत एक ज्ञानार्णव है। पद्मनंदिकृत एक पंचविंशतिका है। शिवायनकृत एक भगवती

आराधना है। विद्यानंदिकृत पांच हैं;--अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, श्लोकवार्त्तिक। अमृतचंद्रकृत पांच हैं;-पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार, नाटकत्रयकी टीका। अनतवीर्यकृत एक प्रमेयचद्रिका है। माघनंदिकृत एक "वंदेतादि" जयमाल है। वादिराजकृत एक एकीभाव है। मानतुङ्गकृत एक भक्तामर है। कुमुदचंद्रकृत कल्याणमंदिर है। अभयनंदिकृत दोय हैं;-गोमट्टसारकी टीका, बृहज्जैनेद्रव्याकरण। केशववर्णीकृत गोमट्टसारकी एक लघुटीका है। चामुंडरायकृत एक चारित्रसार है। धर्मभूषणकृत एक न्यायदीपिका है। ऐसै अट्ठाईश तौ ऋषि दिगंबर आचार्य अर इनके किये सर्वकै मान्य ग्रंथ सत्तरि हैं, इनि सिवाय और ग्रन्थ इनि आचार्यनिके किये बतावै तौ इनि ग्रंथनितै कथनीका भाव मिलाय श्रद्धान करनौ योग्य हैं भावार्थ--नाममात्र सुनिकरि ही श्रद्धान करनौ योग्य नहीं है क्यो कि नाम तौ अनेकमैं प्रवर्त्तै है॥

चौपई।

दोषरहित जिन कहे सुदेव।
वीतराग गुरु परम कहेव॥
जिनवरभाषित शास्त्र पुनीत।
देहु सुमति मम हरहु कुनीत॥ ११॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनद्योतकनाम्नि प्रथमकाडे सम्यग्दर्शनविषयभूत देवगुरुशास्त्रस्वरूपनिर्णयो नाम चतुर्थोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ सम्यग्दृष्टिके करनें योग्य कार्यनिके नाम तथा पूज्य अपूज्यका निर्णय लिख्यते,—

दोहा—

आदि दिगंबर आदि गुरु, आदि धर्मकरतार ।
ऋषभ नाम आदीश जिन देहु सुमति अरतार॥१॥

प्रश्न—सम्यक्तीकू देवगुरु शास्त्रका श्रद्धान ही कर्त्तव्य है कि और भी कर्त्तव्य है ।

उत्तररूप पद्मनंदि पंचविंशतिकामैं,—

देवपूजागुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने॥१॥

अर्थ—अरहंत देवकी पूजा, गुरांकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये षट् कर्म गृहस्थनिके निति प्रति करवे योग्य है ॥१॥

प्रश्न—या श्लोकमै सामान्य देव पद है तुम अरहंतका ही पूजन कैसैं कहो हौ ।

उत्तर—देवशब्दका निर्णयमै पूजने योग्य वीतरागदेव अरहंत ही है ऐसैं सम्यक्तके प्रकरणमै स्थापन किया है ताहि अनुभव करि श्रद्धान करो ।

तथा श्लोक—

समता सर्वभूतेषु संयमे शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्॥१२॥

अर्थ—सर्व जीवनिकै विषै साम्यभाव अर संयमके विषैं शुभभावना अर आर्तध्यान अर रौद्रध्यानको परित्याग जो है सो

निश्चय करि सामायिक व्रत है ॥ १२ ॥

सामायिकं न जायेत व्यसन म्लानचेतसः ।
श्रावकेन ततःसाक्षात्त्याज्य व्यसनसप्तकम्॥१३॥

अर्थ--व्यसन करि मलिन है चित्त जिनको असे पुरुषनिकै सामायिक नही उपजै है तातै श्रावकनि करि व्यसनसप्तक साक्षात् त्याज्य है ॥ १३ ॥

द्वादशापि सदा चिंत्या अनुप्रेक्षा महात्मभिः ।
तद्भावना भवत्येव कर्मणः क्षयकारणम्॥४४॥

अर्थ—महान पुरुषनि करि द्वादश अनुप्रेक्षा भी सदाकाल चिन्तवन करने योग्य है क्योकि वा द्वादश अनुप्रेक्षाकी भावना कर्मनिका क्षयनैं कारण ही है ॥ ४४ ॥

आद्योत्तमक्षमा यत्र यो धर्मो दशभेदभाक् ।
श्रावकैरपि सेव्योऽसौ यथाशक्ति यथागमम्॥५८॥

अर्थ--उत्तमक्षमा है आदि विषैं जाकै औसो दशभेदनिको धारन करनेवारो धर्म जो है सो यो श्रावकनि करि भी यथा-शक्ति जैसैं आगममैं कह्यो है तैसै सेवन करवो योग्य है ॥ ५८ ॥

अंतस्तत्त्वं विशुद्धात्मा बहिस्तत्त्वं दयांगिषु ।
द्वयोःसम्मेलने मोक्षस्तस्माद्द्वितयमाश्रयेत् ॥५९॥

अर्थ—अंतरंग तत्त्व तौ विशुद्ध आत्मतत्त्व है अर बाह्यतत्त्व प्राणीनिकै विषै दया है तातै दोऊनिकू भलै प्रकार मिलतेसतें मोक्ष है तातैं दोऊ ही अंगीकार करै ॥ ५९ ॥

कर्मभ्यः कर्मकार्येभ्यः पृथग्भूत चिदात्मकम् ।
आत्मानं भावयेन्नित्यं नित्यानंदपदप्रदम् ॥

अर्थ—कर्मनितैं अर कर्मके कार्यरूप फलतैं पृथग्भूत निरंतर आनंदपदको दाता चैतन्यात्मक आत्मा जो है तानै नित्य चितवन करै।

इतनै कार्य सम्यग्दर्शनके धारक पुरुषनिकरि करवो योग्यहै, तातैं इनका स्वरूप भिन्न भिन्न अनुक्रमतैं लिखै है, तिनिमै प्रथम देवपूजन वरननका अवसर है तातैं श्रीजिनदेवपूजनका विधान लिखैगे।

प्रश्न—देवपूजन सामान्यपणै कह्या है तुम श्रीजिनदेवका ही पूजन कहो हौ सो कैसैं है।

उत्तर—मोक्षमार्गकी पद्धतिमै अन्य रागी द्वेषी देवनिके पूजनेका निषेध है तातैं श्रीजिनदेवका ही पूजन योग्य है।

प्रश्न—जिनप्रतिष्ठादिक पूजनमै तौ शांतिनिमित्त तथा लौकिक कार्यमे हानिवृद्धिनिमित्त जिनशासन क्षेत्रपाल दिक्पाल यक्ष ग्रह आदि तौ देव अर चक्रेश्वरी पद्मावती सरस्वती लक्ष्मी जया विजया आदि देवी जे है तिनका भी स्थापन नमस्कार पूजन करना योग्य है कि नाहीं।

उत्तर—आह्वानन स्थापन तौ इनके योग्य कार्यमै करनां अर इनको नियोग सधाय विसर्जन करनां इतना तौ योग्य है अर पूजन नमस्कार करना योग्य नाही, क्योकि त्रिलोकसारमै इनकी स्थापना तौ ऐसै लिखै हैं, गाथा—

सिरिदेवी सुददेवी सव्वह्ह सणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणि य जिनपासे अट्ठविहामंगला हुंति॥ ६८४॥
श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्हसनत्कुमारयक्षाणां।

रूपाणि च जिनपार्श्वे १ मंगलं अष्टविधं अपि भवति ९८४

अर्थ—जिनप्रतिमाके पार्श्वमै श्रीदेवी श्रुतदेवी अर सर्वाल्हसनत्कुमार यक्षनिके रूप हैं अर अष्टविध मंगलद्रव्य भी हैं ॥ ९८४ ॥

तथा राजवार्त्तिकके विषै तृतीय अध्यायमै सुमेरसंबंधी चैत्यालयनिके वरननमै,—

धारा—**प्रगृहीतसितविमलवरचामराग्रहस्तोभयपार्श्वस्थविविधमणिकनकविकृतभरणालंकृतयक्षनागमिथुनाः ।**

अर्थ—जा चैत्यालयकै विषै भलै प्रकार ग्रहण कियेहैं श्वेत निर्मल उत्कृष्ट चामर हस्तके अग्रविषै जिननै अर जिनप्रतिमाके दोऊ पार्श्वमै तिष्ठते अर नाना प्रकारकी मणि अर सुवर्णकरि रचित जे आभरण तिनिकरि अलंकृत ऐसे यक्षनिके अर नागकुमारनिके युगलहै ।

तथा आदिपुराणका चौतीसमा पर्वमै,—

तवामी चामरव्राता यक्षैरुत्क्षिप्य वीजिताः ।
निर्धुनंतीव निर्व्याजमागो मक्षिका नृणाम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! तिहारै यक्षनिकरि उठाये अर हलाये ऐसे चमरनिके समूह जे है ते मनुष्यनिकै पापरूप मक्षिकानैं निष्कपट जैसै होय तैसै उडावैहीहै कहा मानूं ॥ ४७ ॥

तथा बाईसमा पर्वमै,—

---

१ "अष्टविधानि मंगलानि भवंति" इस प्रकार संस्कृतच्छाया होनी चाहिये ।

तां पीठिकामलंचक्रुरष्टमंगलसंपदः।
धर्मचक्राणि वोढानि प्रांशुभिर्यक्षमूर्द्धभिः॥ २९१॥

अर्थ—ता प्रथम पीठिकानैं उन्नत यक्षनिके मस्तककरि धारण किये ऐसे धर्मचक्र जे है ते अर अष्टमंगलद्रव्यनिकी संपदा जे है ते सोभायमान करै है॥ २९१॥

प्रश्न—ये यक्षजाति व्यंतरनिमै लिखेहै सोही है कि और है।

उत्तर—यहाँ तथा अन्यस्थलमै ऐसा निर्णयभेदरूप वचन कहू देख्या नही तथापि अनुमानतै जानियेहै कि ये व्यंतरजाति नही है यक्ष नाम कुबेरका है सो है, क्योकि आदिपुराणका बाईसमा पर्वमै,—

गदादिपाणयस्तेषु गोपरेष्वभवन्सुराः।
क्रमाच्छालत्रये द्वाःस्था भौमभावनकल्पजाः॥ २७४॥

अर्थ—तीनूं कोटनिके दरवाजेनिकै विषै अनुक्रमतै व्यंतर भवनवासी कल्पवासी देव गदादिक शस्त्र है हाथविषै जिनकै ऐसे द्वारपाल होत भये॥ २७४॥

इत्यादि वचननितै जानियेहै कि व्यंतरनिका अधिकार द्वारपालनिमै भी बाह्यकोटिमै है तौ यहा अतिनिकट कैसै सभवै तातै व्यंतर नही है कुबेर ही हैं। अर जिनमंदिरमै तथा प्रतिष्ठामै यथास्थान देवनिका प्रतिबिंब स्थापन करना तौ योग्यहै परंतु जैसा क्षेत्रपालका रूप विलक्षण बनातेहै जाकै सिंदूर तेलका तौ लेपन अर स्वानका वाहन अर रुंडमाला गलेमै इत्यादि विपरीतरूपयुक्त स्थापन करना तौ मिथ्यात्व ही है क्योकि सिद्धांतमै क्षेत्रपालका रूप ऐसा नही कह्या हैं, अर नमस्कारादि करना सर्वथा योग्य नाही अर उनतै शांति आदि वरकी वांछा भी करना योग्य नाही।

प्रश्न—उन देवनिके बिंब तौ जिनबिंबनिके पार्श्वमैं अर साक्षात समवशरणमैं तिष्ठते लिखे तिनकौ नमस्कारादि कैसै योग्य नाहीं।

उत्तर—योग्यता अर अयोग्यता आगमकै अनुकूल हैं सो स्थापनको तौ विधि देखी सो विधि कही अर नमस्कारादिकका निषेध देख्या सो निषेध कह्या, ता सिवाय और विचारनेकी वार्त्ता है कि उन देवनिका वरनन किया सो देव भवनत्रिकमै हैं अर पूजकनिमै प्रधान सौधर्मेंद्रादिक देव है ते भवनत्रिकतै पदस्थमै ज्ञानमै वैभवमैं शक्तिमैं प्रतापमैं तेजमै विक्रियामै अत्यन्त अधिक हैं तातै जैसै उच्चकुलमै उत्पन्न भया अर उच्च ही पदमैं तिष्ठता पुरुष जो है सो नीचकुलमै उत्पन्न भया अर नीचा ही पदमैं तिष्ठता पुरुषनै नमस्कारादि नही करै, तथा कल्पवासी दिक्‌पाल कुवेरादि जे हैं तिननै भी नमस्कारादि नही करै क्योंकि इनिकै भी इंद्र सेवनीय है, अर तैसै ही मनुष्य भी प्रतिष्ठादिक पूजनके समयमै प्रतिमानै साक्षात् अर्हंत मानै है अर आप इंद्र होय पूजै है यातै जहां जहां जिस जिस देवका नियोग है तहां तहा तिस तिस देवका आह्वानन करि वाको नियोग सधाय विसर्जन करै है अर नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—प्रथम तौ सामान्य मनुष्य भी आपनै इंद्र मानै ऐसा अभिमानरूप अभिप्राय करना बुरी बात है, दूसरां आह्वानन करना अर नमस्कारादि नही करना बहुत ही बुरी बात है।

उत्तर—पूजकनिमैं मुख्यता सौधर्मेंद्रकी है यातैं प्रतिष्ठामै प्रथमही पूजकका इंद्र प्रतिष्ठा विधान करते हैं तातैं अभिमान नहीं है वा समयके योग्य संभावना है तातै नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—पूजक तौ इंद्रही बन्या परन्तु प्रतिष्ठा करावनेवारा तौ सर्व ही देव प्रतिष्ठामै आवैगे तिनकूं नमस्कारादि करैगा।

उत्तर—प्रतिष्ठा करावनेवाराकूं भगवानका पितापणाकी संज्ञा है तातैं वे भी नमस्कार नहीं करैगा उनकूं तौ सौधर्मेंद्र आप नमस्कार करै है। सो ही आदिपुराणका द्वादशमा पर्वमैं—

ज्ञात्वा तदा स्वचिह्नेन सर्वेऽप्यागुः सुरेश्वराः।
पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य तद्गुरूं च ववंदिरे ॥ १६६ ॥

अर्थ—तदा कहिये गर्भावतार समयमैं सब ही सुरेश्वर अपने चिह्ननिकरि भगवानको गर्भकल्याण जानि आवत भये अर पुरीनै प्रदक्षिणा देय भगवानके माता पिता जे है तिननै वंदत भये।

तथा चतुर्दशम पर्वमै;—

ततस्तौ जगतां पूज्यौ पूजयामास वासवः।
विचित्रैर्भूषणैः स्रग्भिरंशुकैश्च महार्घकैः ॥ १ ॥

अर्थ—तदनंतर जगतमै पूज्य अैसे भगवानके माता पिता जे है तिननै सौधर्मेंद्र विचित्र आभूषणनिकरि माल्यानिकरि वस्त्रनिकरि महान अर्घनिकरि पूजत भयो ॥ १ ॥

प्रश्न—माता पिता भी नमस्कारादि नहीं करै तौ उनके कुटुंबके तथा अन्य राजादिक तौ करैगे।

उत्तर—पांचूं ही कल्याणकमै सौधर्मेंद्रादिकनिका आवना अर अपना अपना नियोग करना तौ लिख्या परन्तु किसी ही मनुष्यकरि देवनिकूं नमस्कारादि किया नहीं लिख्या। समवशरणमैं भरतचक्री आया तदि समस्त जिनबिंबनिकूं पूजता पूजता स्वयंभूके निकट गया वहां धर्मचक्रन तथा ध्वजानैं तौ पूजना लिख्या अर यक्षनिकूं

तथा द्वादशसभामै तिष्ठते सौधर्मेंद्रादिकनिकूं नमस्कारादि करना नही लिख्या। तथा यावत् भगवान् दीक्षा नही ग्रहण करी तावत् सौधर्मेंद्र नितिप्रति भोगसामग्री लेय पिताके गृहमै आया तहांहू किसी मनुष्यकरि नमस्कारादि करना नही लिख्या। तथा पुर नगर ग्राम देश आदिका विभाग किया अर पुरंदर नाम पाया तहां हू किसी मनुष्यकरि नमस्कारादि करना नही लिख्या। तातैं नमस्कारादिक तौ सम्यग्दृष्टी होय सो वीतराग देव सिवाय अन्य देवादिकनिनैं नहीं करै।

प्रश्न—देवनिका आह्वानन तौ करोगे अर नमस्कारादि नहीं करोगे तौ वे शाप देंगे।

उत्तर—किंचित् हृदयके कपाट खोलिकरि तौ देखो कि कौन तौ आह्वानन करै है अर कौनका करै है अर कहां करै है अर किस वास्तै करै है। इहां आह्वानन करनेवारा तौ सौधर्मेंद्र है अर जिनका करै है सो सर्व याकी आज्ञाप्रमाण करनेवारे है अर जहां करै है सो त्रिलोकनाथकी प्रतिष्ठा है अर जिस वास्तै करै है सो इनिका नियोग है तातै शाप देनेका अवकाश कहा है, इहां तौ जो आवैगे सो अपनूं नियोग साधि प्रसन्न होय पंचाश्चर्य करैगे। ऐसा श्रद्धान राखि निःशंकगुणयुक्त सम्यक्तनै दृढ राखो। अर सम्यक्तोकै ग्राह्य अग्राह्यदेवका स्वरूपरूप हुकम जिनसेनजी अड़तीसमां पर्वमै लिखै है—

तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ ७ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वकरि दूषित ऐसो भव्य जो है सो ही समीचीनमार्गका ग्रहण करवाकै सन्मुख भया ताकै अर्थि दीक्षा-

न्वयक्रिया है अर तिन क्रियानिकै मध्य प्रथम अवतारनामा क्रिया है । भावार्थ—जा जीवकै होणहार माता पिता ज्ञानवान होय ता जीवकै तौ गर्भान्वयक्रिया होय है अर जो जीव आप ही धर्मश्रवण करि व्रत ग्रहण कियो चाहै ताकै दीक्षान्वयक्रिया होय है, तिन क्रियानिकै मध्य प्रथम क्रियाका नाम अवतार क्रिया है ॥ ७ ॥

तामैं सम्यक्त ग्रहण करावनेकूं आप्तका अर आगमका लक्षण कहि करि कह्या है कि वेद पुराण स्मृति चारित्र क्रियाविधि मंत्र देवता लिंग आहारपानशुद्धि ये दश पदार्थ जहां ऋषीश्वरनिकरि कहे हैं सो धर्म है अर सो ही सन्मार्ग है अर अन्यथा कहे है सो तदाभास हैं । भावार्थ—धर्मका नाममात्र है धर्म नहीं है । ऐसै कहि अनुक्रमतैं वेद आदिका स्वरूप निश्चय कराय देवका स्वरूप निश्चय करावनें निमित्त कह्या है सो सुनू (नो)—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवः ।
क्रूरास्तु देवता हेया यासांस्याद्वृत्तिरामिषैः ॥२७॥

अर्थ—विश्वेश्वर तौ अरहंत अर आदि शब्दतै सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांच देव शांतिके कारण है अर जिनकी आमिष करि वृत्ति है ते क्रूरदेव त्याज्य है ॥२७ ॥ या वचनतैं दिक्पाल क्षेत्रपाल आदि रागी द्वेषी देवनिकूं नमस्कारादि मति करो ॥

प्रश्न— या श्लोकका अर्थ तुमनै किया सो वै नाहीं करै हैं वै अर्थ ऐसा करै है कि विश्वेश्वरानामा देवीनै आदि लेय जिनशासनदेवी शांतिके निमित्त है अर जिन देवीनिकी वृत्ति मांस करि है ते क्रूरदेवी त्याज्य हैं, या वचनतै जिनशासनदेव

सब ही शांतिनिमित्त नमस्कारादि करने योग्य हैं।

उत्तर—ऐसा विपरीत अर्थ संभवै नाहीं क्योंकि जिनागममैं पूर्वापरविरुद्धता तथा परस्परविरुद्धता नहीं है, तुम देखो कि नवमपर्वमैं सम्यक्त्व ग्रहण करानेकूं कैसा लिखै है—

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं परया मुदा।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं तन्मूले ज्ञानचेष्टिते ॥१२२॥
तत्त्वं जैनेश्वरीमाज्ञामस्मद्वाक्यात्प्रमाणयन्।
अनन्यशरणो भूत्वा प्रतिपद्य स्वदर्शनम् ॥ १३९ ॥

अर्थ—आप्तका तथा आगमका तथा पदार्थनिका जो परम हर्षकरि श्रद्धान करना है सो सम्यग्दर्शन है अर सम्यग्दर्शन है मूल जिनको ऐसे ज्ञान अर चारित्र है। भावार्थ—आप्त तो अरहंत ही है अर आगम आप्तप्रणीत ही है अर पदार्थ नव ही हैं ऐसा श्रद्धान करै सो सम्यग्दर्शन है अर ज्ञान चारित्रकै सम्यक्पणों सम्यग्दर्शन भये होय है॥ १२२ ॥ ऐसैं तत्त्वरूप जिनेश्वरकी आज्ञा हमारे वचनतैं प्रमाण करता संता अनन्यशरण होय वा सम्यग्दर्शननै तू प्राप्त होहु। भावार्थ—जिनेंद्रसिवाय अन्य देवका शरणा मिथ्यादृष्टी चाहै है तातैं कह्या है कि अन्य देवका शरणा त्यागि जिनेंद्रदेवकाही शरणा ग्रहण किये सम्यग्दर्शन होयगा अर जा पुरुषनै शांतिनिमित्त क्षेत्रपाल आदि रागी द्वेषी देवनिकूं नमस्कारादि किया ताकै अनन्यशरणपणां कहां रह्या, क्योंकि वानै तौ सहायता उनतैं चाही तातैं मिथ्यादृष्टी ही है सम्यग्दृष्टी नहीं है॥ १३९॥ सो प्रथम तौ ऐसा लिखै अर पीछैं 'विश्वेश्वरादिक देवीनिकूं शांतिनिमित्त कहै तौ पूर्वापरविरुद्धता पावै सो आर्षग्रंथनिमैं होवे नाहीं, तातैं विश्वेश्वर तौ अरहंत ही हैं अर आदि-

शब्दतैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु हैं, अर इनहीक पूजनादिकरूप क्रिया है सो सम्यक्त्तक्रिया है। ऐसैं राजवार्त्तिकमैं षष्ठ अध्यायकै विषैं पच्चीस क्रियाका वरननमैं धारारूप लिख्या है.—

धारा—तत्र चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववर्द्धिनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया, अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुका प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया॥

अर्थ—तत्र कहिये तिनि क्रियानिमैं जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनागम इनिकी पूजा स्तवन वंदना है लक्षण जाको ऐसी सम्यक्त्तकी वधावनेवारी क्रिया है सो सम्यक्त्तक्रिया है, अर चैत्य गुरु जिनागम सिवाय और देवताका स्तवन पूजन वंदनारूप मिथ्यात्वकी कारणभूत प्रवृत्ति जो है सो मिथ्यात्वक्रिया है। या वचनमै अरहंतदेव निर्ग्रंथगुरु जिनवचन सिवाय अन्यदेवका पूजना नमस्कार करना योग्य नाही।

प्रश्न—यामै अन्य देवका निषेध है अर अन्य देव वै हैं कि जिनकै मांस मदिरा चढै है, जिनशासनदेवनिका निषेध नहीं है।

उत्तर—यामै तौ जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनवचन सिवाय और देवमात्रका निषेध है मध्यमै जिनशासनदेवनिका वाचक कोऊ शब्द है नहीं। तुम स्थापन किया चाहो तौ और वचन बतावो।

प्रश्न—याही श्लोकमै ऐसा कह्या है कि आमिषकरि वृत्ति है ते क्रूरदेव त्याज्य हैं तातैं जिनकै मासग्रहण है ते देव त्याज्य हैं, जिनशासनदेव त्याज्य नहीं हैं।

उत्तर—प्रथम तौ तुम वारंवार जिनशासनदेव कहो हौ तौ फलाणे फलाणे तौ जिनशासन हैं अर फलाणे फलाणे विष्णु-शासन हैं कि शिवशासन है कि खुदाशासन है असा नियम कहूं जिनआगममैं लिख्या होय सो बतावौ, हमारे ज्ञानमै तौ जिनागम अपेक्षा चतुरनिकायके सर्व ही देव जिनशासन है। अलबत्त असा तौ है कि च्यारूं ही निकायमै केईनिकै तौ सम्यक्त्त होय है अर केई मिथ्याती ही रहै हैं, अर असा भी भेद होय सो बतावो कि फलाणे फलाणे तौ मांसग्राही हैं अर फलाणे फलाणे मांसत्यागी है। हमारे ज्ञानमै तौ जिनागम अपेक्षा सर्व ही मांसत्यागी है। जिनागममै तौ देवनिकै मांसग्रहण बताना देवनिका अवर्णवाद करना है, असै राजवार्तिकमै लिखै हैं;—

वार्त्तिक—सुरामांसोपसेवाद्याघोषणं देवावर्णवादः॥१२॥

अर्थ—मदिरा मांसका सेवन आदि देवनि कै कहना है सो देवनिका अवर्णवाद है अर देवनिका अवर्णवाद दर्शनमोहनै कारण है। सो तत्त्वार्थसूत्रमै कह्या है;—

सूत्र—केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य १३

अर्थ—केवली श्रुत संघ धर्म देव इनिका अवर्णवाद है सो दर्शन मोहनै कारण है तातैं जिनागम अपेक्षा तौ देवनिकै मांसवृत्ति कहना ही नहीं बनैं, परंतु स्मार्त्तनिके मतमै सर्व ही देव यज्ञमैं हवन किया पशूका मांस भक्षण करै हैं असा कहैं है तिनकी अपेक्षा कह्या है तातै अरहंत देव सिवाय सर्व ही देव नमस्कारादि करने योग्य नहीं असा दृढ़ करावने निमित्त आमिषवृत्ति विशेषण दिखाया है सो जैसैं मंगलका नाम भौम है क्षितिज है सो

भी परमत अपेक्षा है तथापि जिनागममै भी भौम क्षितिज कहे है। अर दूसरा विशेषण क्रूर कहि जिताया है कि राग-द्वेषसहित है ते देव त्याज्य हैं क्योंकि क्रूर शब्द द्वेषशब्दका पर्याय नाम है अर औसा ही अर्थ आर्ष ग्रंथनितै मिलै है।

प्रश्न—या श्लोक मै देवताशब्द है सो स्त्रीलिंग है तातै स्त्रीरूप देवीनिका ही वाचक है अरहंत आदिकनिका वाचक नाही है, तातै शांतिकै अर्थि विश्वेश्वरादिक देवी ही पूज्य है।

उत्तर—देवता शब्दकूं स्त्रीलिंग बताय देवाधिदेव अरहंत देवका वाचकपणाको निषेध कियो सो योग्य नाही क्योंकि कोश-मै देवताशब्द देवनिके नाममै पर्यायशब्द लिख्यो है तातै देवनिको ही वाचक है देवीनिको वाचक नही है।

प्रश्न—औसै है तौ देवताशब्दकूं स्त्रीलिंगमै कैसै लिखे है।

उत्तर—देवशब्दकै स्वार्थमै "तल्" प्रत्यय होय है तथा समूह अर्थमैं "त" प्रत्यय होय है अर "त" प्रत्यय होय तहा "आप्" प्रत्यय स्त्रीलिंगमै होय है तातै स्त्रीलिंग लिखै है। जैसै "जनता" शब्द भी स्त्रीलिंग है सो जन जे मनुष्य तिनका समूहको वाचक है स्त्रीनिको वाचक नही है। तथा जैसै "व्योमयान" शब्द तौ नपुंसकलिंग है अर "विमान" शब्द स्त्रीलिंगरहित है तौ हू दोऊ नाम एक विमानका वाचक है। तथा जैसै "द्यो" शब्द अर "दिवस्" शब्द तौ नित्य स्त्रीलिंग है, अर "आकाश" शब्द अर "विहायस्" शब्द नपुंसकलिंग भी है अर पुंलिंग भी है दोऊ विकल्परूप है, अर अभ्र व्योम पुष्कर अंबर नभ अंतरिक्ष गगन अनंत सुरवर्त्म ख वियत् विष्णुपद ये द्वादशशब्द नपुंसकलिंग है तथापि ये षोडश ही शब्द एक आकाशके वाचक हैं। तथा देव शब्द जो है सो "दिवु क्रीडाविजीगीषाद्युतिमोदमदस्वप्नकांतिगतिषु"

या धातुका रूप है तातैं अष्ट अर्थनि विषै प्रवर्तै है, तिनमैं क्रीड़ा विजिगीषा द्युति कांति गति ये पांच शव्द तौ स्त्रीलिंग हैं अर मोद मद स्वप्न ये तीन शव्द पुंलिंग हैं, तातैं लिंगनिर्देशकै समान ही वाच्यपदार्थके लिंगको नियम नहीं जानना। अर देव शव्दके आठ अर्थ कहे ते परमार्थतैं पंच परमेष्ठीके ही वाचक हैं अन्यके वाचक नहीं हैं, सो ऐसैं हैं;—जो स्वाधीन निराकुल अविनाशी सुखकै विषै क्रीडा करै सो देव है ऐसे अरहंत सिद्धही हैं, अन्य नहीं हैं; अर जो कर्मशत्रुका जीतवाको इच्छुक होय सो देव है ऐसे आचार्य उपाध्याय साधुही हैं और नहीं हैं, अर जो द्युतिमान होय सो देव है ऐसे कोटिसूर्यतै अधिक देहकी द्युतिकरि मंडित अरहंत ही है और नहीं है, अर जो मोद कहिये परम आनन्द करि युक्त होय सो देव हैं ऐसे भी अरहंत सिद्ध ही है और नहीं है; अर जो मद कहिये परमहर्ष करि युक्त होय सो देव है ऐसे पांचूंही परमेष्ठो है और नही है;अर जो स्वप्न कहिये सोवै सो देव है ऐसे पाचूंही परमेष्ठी है औरहै नहीं क्योंकि लोकव्यवहारसम्बन्धी समस्त कार्यनिमै सूते हैं, याहीतै परमात्माप्रकाशमे लिख्या है—

जा णिसि सयलहं देहियह जोगिउ तहं जग्गेहि।
जहिंपुणजग्गहि सयलजगु सा णिसि मणिविसुएइ१७२
या निशा सकलानांदेहिनां योगी तस्यां जागर्त्ति।
यत्र पुनः जागर्ति सकलं जगत्तां निशां भणित्वास्वपिति

अर्थ—जो समस्त प्राणीनिकै रात्रि है ता विषै तौ योगीश्वर जाग्रत हैं बहुरि जहां समस्त जगत जाग्रत है ताहि रात्रि कहि योगीश्वर सोवै है। भावार्थ—जा व्यवहारमैं संसारी जीव जाग्रत है

ता व्यवहारमैं योगीश्वर सदा सोवै है अर जा परमार्थमैं जगत सोवै है ता परमार्थमैं योगीश्वर सदा जाग्रत है ॥ १७३ ॥

अर जो काति कहिये मनोऽभिलषितकरि परिपूर्ण होय सो देव है क्योकि कांतिशब्द "कमु कांतौ" धातुका रूप है अर याकी निरुक्ति ऐसी है कि "काम्यते स्म इति कांतिः" याका अर्थ ऐसा है कि वाञ्छितकरि परिपूर्ण होत भयो, ऐसे भी अरहंत सिद्ध ही हैं और नही हैं; अर गति कहिये समस्त लोकालोकवर्त्ती छहूं द्रव्यनिके भूतभविष्यतवर्त्तमानकालसम्बन्धी गुणपर्यायनिनै एकै काल जानै सो देव है क्योकि गति शब्द "गम्लृ गतौ" धातु का रूप है अर जे जे धातु गति अर्थ मैं हैं ते ते धातु ज्ञान अर्थमैं है तातैं ऐसे सबके ज्ञाता अरहंत सिद्ध ही देव है और नही है। इत्यादि वचननितै नमस्कारादि करने योग्य तौ पंच परमेष्ठी ही हैं अर और देवपर्यायके धारक देव जे हैं ते नमस्कारादि करने योग्य नही है, क्योकि रागद्वेषयुक्त हैं यातै।

प्रश्न—परमार्थतैं तौ पंच परमेष्ठी ही नमस्कारयोग्य हैं तथापि गृहस्थनिकै शांतिनिमित्त भवनत्रिक जिनशासन भी मान्य है।

उत्तर—सिद्धातसारमै, विदेहक्षेत्रके वरननमै—

विवाहजातकर्मादौ मंगलेष्वखिलेषु च।
परमेष्ठिन एवाहो न क्षेत्रपालकादयः ॥ १ ॥

अर्थ—"अहो इति आश्चर्य" कहिये जा क्षेत्रमै बड़ो आश्चर्यकारी धर्मको श्रद्धान है कि विवाह जातकर्म आदि समस्त मंगलकै विषै परमेष्ठी ही मान्य है और क्षेत्रपाल आदि रागीद्वेषी देव मान्य नही हैं।

प्रश्न—ये वरनन तौ विदेहक्षेत्रका है वहांकी कथनी इहां कहने योग्य नहीं।

उत्तर—धर्मका लक्षण तौ भिन्न नही है। ता सिवाय उत्तर-पुराणसम्बन्धी महावीरपुराणमै अयोध्याका वरननमै सुनो—

वर्त्तते जिनपूजाद्यां दिनं प्रति गृहे गृहे।
सर्वमंगलकार्याणां तत्पूर्वत्वाद्गृहेशिनाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जा अयोध्याकै विषै गृहस्थनिकै सर्वमंगलकार्य-निकै विषै जिनपूजनपूर्वकपणौ है यातै घर घरकै विषै जिनपूजन-मैं ही दिन प्रतिदिन वितीत होय है ॥ ३६ ॥

प्रश्न—जाकै क्षेत्रमै रहौगे अर ताकूं नमस्कारादि नहीं करोगे तौ वै रक्षा नही करैगा क्रोधित होय शाप देवैगा।

उत्तर—जैसै पंचमकालमै राजके अधिकारी रिसपतके देनेवा-रेकी रक्षा करै अर नहीं देनेवारेकी रक्षा नहीं करै तैसै अनादिसिद्ध व्यवहारमै नहीं जानना, क्योंकि वहां व्यवहार सत्यरूप है जाको जो नियोग है सो अपनूं नियोग अवश्य करै है अर अयोग्य कार्य करने-वारेकूं दंड देवैहै यो ही क्षेत्रपालनिको नियोग है तातै अपने कल्याणके वांछक पुरुषनिकूं कुदेवादिकनि प्रति नमस्कारादि करनेका आगममै निषेध सुनि कदाचित नहीं करबो योग्य है।

सोही बोधपाहुड़मै कुंदकुंदस्वामी देवको स्वरूप कह्यो है,—

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च।
सो देइ जस्स अत्थि तु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥२४॥
धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।

देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाण ॥२५॥
सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च।
सः ददाति यस्य अस्ति तु धर्मः अर्थः च प्रव्रज्या॥२४॥
धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥२५॥

अर्थ—जो धर्म अर्थ काम अर ज्ञान कहिये मोक्ष ये च्यारूं पुरुषार्थ देवै सो देव है अर जाकै धर्म अर्थ प्रव्रज्या कहिये दीक्षा अर चकारतै ज्ञान कहिये मोक्ष होय सो देव है। भावार्थ—च्यारूं पुरुषार्थ देवै सो देव अर जाकै होवै सो देवै ऐसे अरहंत सिद्ध ही देव है ॥२४॥ अर दयाकरिविशुद्ध तौ धर्म अर सर्व संग का त्यागरूप प्रव्रज्या अर गया है मोह जाको ऐसो देव सो भव्यजीवनिको उदय करनवारो है ॥२५॥

या वचनतै मोहरहित तेरम गुणस्थानवर्त्ती अरहंत है सो ही देव है अर सो ही धर्म अर्थ काम मोक्षरूप च्यारूं पुरुषार्थ देवै है, अर भव्यजीवनको उदय करै है ऐसो श्रद्धान करवो योग्य है। तथा मोक्षपाहुड़मै—

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणे हवइ सम्मत्तं ॥८६॥
हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धाने भवति सम्यक्त्वम् ॥८६॥

अर्थ—हिंसारहित धर्ममै अर अष्टादश दोषरहित देवमै अर निर्ग्रंथ गुरुमै अर जिनप्रणीत आगममै श्रद्धा होता संता

सम्यक्त होय है ॥८९॥

या वचनतैं अष्टादशदोषरहित देवमै ही श्रद्धा करवो योग्य है। तथा;—

स परावेक्खं लिंगं राईदेवं असंजद वंदं ।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥९२॥
स्वपरापेक्षं लिंगं रागिनं देवं असंयतं वंद्यं ।
मन्यते मिथ्यादृष्टिर्न खलु मन्यते शुद्धसम्यक्त्वी॥९२॥

अर्थ—स्वपरकी अपेक्षा सहित लिगनै अर रागी देवनै अर असंयमीनै वंद्य मानै सो मिथ्यादृष्टी है, अर प्रकट शुद्धसम्यक्की है सो वद्य नही मानै है ॥ ९२ ॥

या वचनतैं रागद्वेषसहित देव जे है ते वंदबे मानवे योग्य नही है। तथा स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामै—

णिज्जियदोसं देवं सव्वे जीवे दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णइ सोहु सद्दिट्ठी ॥३२२॥
दोससहियं पि देवं जीवे हिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णइ सोहु कुदिट्ठी ॥३२३॥
निर्जितदोषं देवं सर्वजीवानां दयापरं धर्मम् ।
वर्जितग्रंथं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं सद्दृष्टिः॥३२२॥
दोषसहितं अपि देवं जीवहिंसादिसंयुक्तं धर्मं ।
ग्रंथासक्तं च गुरुं यः मन्यते सः स्फुटं कुदृष्टिः ॥३२३॥

अर्थ—दूरि भये है दोष जाके ऐसो तो देव अर सर्व जीवनिकी दयामैं तत्पर ऐसो धर्म अर वर्जित है ग्रंथ कहिये परिग्रह

जाकै असो गुरु जो मानैं है सो प्रकट सम्यग्दृष्टी है ॥ ३२२ ॥ अर दोषसहित तौ देव अर जीवहिंसादिसहित धर्म अर परिग्रहसहित गुरु जो मानैं है सो प्रकट कुदृष्टी है ॥ ३२३ ॥

या वचनतैं रागद्वेष आदि दोषनिसहित देव जे हैं ते मानवे योग्य नाहीं हैं । तथा दूसरा पद्मनंदिजी भी श्रावकाचारमैं लिखे है;—

जिनदेवो भवेद्देवस्तत्त्वं तेनोक्तमेव च ।
यस्येति निश्चयः सः स्यान्निःशंकितशिरोमणिः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनदेव ही देव है अर जिनभाषित ही तत्त्व है या प्रकार जाकै निश्चय है सो निःशंकित पुरुषनिमैं शिरोमणि हैं ॥ ३३ ॥

या वचनतैं भी जिनेंद्रदेव सिवाय और देव मानवे योग्य नाहीं हैं । तैसैं ही और सुणो कि रागी द्वेषी देवनिके पूजनका विधान कहनेवारो श्रुतसागर जो है तानैं भी सम्यग्दर्शनकी शुद्धता वौ षोडशकारणव्रतका विधानमैं असैं लिखी है ;—

अधिष्ठानं प्रसादस्य मूलं सद्व्रतलस्य च ।
तत्रार्हन् देवता धर्मस्त्वहिंसा निःस्पृहो गुरुः ॥ ३८ ॥

अर्थ—जैसैं महलकै नींम है तैसैं व्रतको मूल सम्यग्दर्शन है, तहां अर्हंत तो देवता है अर अहिंसा धर्म है अर निर्वांछक गुरु है ॥ ३८ ॥

इहां भी अरहंतकौं देवता शब्दकरि कह्यो है तातैं मिथ्यापक्ष छांडि अनन्यशरण हो । तथा चरचासागरमैं भी, उक्तं च;—

देव जगत्त्रयीनेत्रं व्यंतराद्याश्च देवताः ।
समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥ १ ॥

अर्थ—तीन जगत्का नेत्र तौ अरहंतदेव अर व्यंतरादिक देवता

इनि दोऊनिकूं पूजाका विधानकै विषैं समान देखता संता प्राणी दूरवर्त्ती अधोलोक जो है ता प्रति गमन करै है ॥

या वचनतै जिनबिंबकै बरोबर और देवतानिका बिंबस्थापन भी नहीं करना अर समान नहीं देखना, क्योंकि समान देखै सो नरकगामी होय यातै। तैसै ही काष्ठासंघी अमितगतिजी भी श्रावकाचारका दूसरा परिच्छेदमै कहै है;—

तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसाप्रपंचे देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते साधौसर्वग्रंथसंदर्भहीने संवेगोऽसौनिश्चलोयोऽनुरागः॥

अर्थ—दूर भयो है हिंसाको प्रपंच जातै ऐसा सत्यधर्मकै विषैं तथा राग द्वेष मोह आदि दोषनिकरि रहित देवकै विषै अर सर्व परिग्रहकी रचना करि रहित साधुकै विषैं जो निश्चल अनुराग है सो संवेगनामा अंग है॥ ७४॥

या वचनतै भी रागद्वेषरहित देवमै ही प्रीति करना योग्य है। इत्यादि सर्व ही वीतराग दिगंबर आचार्यनिनैं तौ निर्दोष ही देव कह्या है अर रागी द्वेषी देवके मानने वंदनेका निषेध किया है, अर रागद्वेषीकूं नमस्कार करनेकी आज्ञा कहूं भी लिखी नाहीं तातै विश्वेश्वरादिक देवीनिकूं मानना नमस्कार करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—ये सर्व श्लोक मोक्षमार्गके है सो तौ सत्य है परंतु शांति अर्थि विश्वेश्वरादिक देवी ही मान्य हैं।

उत्तर—शांतिनिमित्त भी क्षेत्रपाल आदिका निषेध तौ ऊपरि सुनाया ही है, यह अर श्लोक दीक्षान्वयक्रियाका है अर दीक्षा सम्यग्दर्शनपूर्वक होय है तातै सर्व आचार्यूका अभिप्राय जीवनिकूं मोक्षमार्गमें लगानेका है, यातै ही हमनैं भी तिनका उपकारनिमित्त ये वचनिकारूप ग्रंथ संग्रह किया है, अर या श्लोकतैं तौ शांति-

निमित्त भी विश्वेश्वर आदि पच परमेष्ठी ही मान्य हैं।

प्रश्न—शातिके अर्थि परमेष्ठी नही ग्रहण करिये है तातैं विश्वेश्वरादिक देवी ही ग्रहण करना कह्या हैं।

उत्तर—ऐसा कहना भी योग्य नाहीं, क्योकि प्रथम तौ नित्यपूजनकी आदिमै "विघ्नौघाः प्रलयं यांति" इत्यादि, अर मध्यमै मगल उत्तमशरणरूप अपराजितमत्र, अर अंतमै "शांतिजिनंशशिनिर्मलवक्त्रं" इत्यादि नित्य पढिये है। तथा "शांतिदः शातिकृच्छांतिः कांतिमान् कामितप्रदः" इनको अर्थ ऐसो है कि शातिको देनेवारो है सो "शातिद." कहिये अर शांतिको करनेवारो है सो "शांतिकृत्" कहिये अर शांतिरूप है सो "शांति" कहिये अर कांतिको धारक है सो "कातिमान्" कहिये अर कामको देनेवारो है सो "कामितप्रदः" कहिये, इत्यादि नाम सहस्रनाममै अर्हतके प्रसिद्ध है। फिर शांति कर्मकै अर्थि अर्हतका निषेध कैसै करो हौ।

तथा गोमट्टसारकी टीकामै;—

नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः॥

अर्थ—शुभ भावनिकरि नष्ट भई है रसकी प्रकर्षता जाकी ऐसो अंतरायनामा कर्म इष्टके नाश करनेकूं समर्थ नहीं होय है, तातै इष्टप्राप्तिकी इच्छा करि अर्हतादिक पचपरमेष्ठीके गुणनिमै अनुरागतैं नमस्कारादिक जे है ते इष्टकी प्राप्तिके कर्त्ता है।

या वचनतै इष्ट प्राप्ति अर अनिष्टविनाश भी अरहंतादि पंच परमेष्ठीके नमस्कारादिकतै ही होना मानि करबो योग्य है। अर जो विघ्नकर्मके पुष्ट भयें शातिका होना मानो हौ तौ कर्मबंधके कारण सूत्रकार कहै हैं, सो करो;—

सूत्र—मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवः।

अर्थ—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग जे हैं ते बंधके कारण हैं।

अर जिनप्रतिमा निर्ग्रंथगुरु जिनागम सिवाय अन्य देवताका स्तवन पूजन नमस्काररूप क्रिया है सो मिथ्यात्वक्रिया है, ऐसैं राजवार्तिकमैं अकलंकदेव कह्याही है; सो अकलंकदेव कैसेक हैं जिनकूं जिनसेनाचार्यजी भी ग्रंथकी आदिमैं मंगलनिमित्त ऐसे लिखे है;—

भट्टाकलंकश्रीपालपात्रकेसरिणां गुणाः।
विदुषां हृदयारूढा हारायंतेऽतिनिर्मलाः ॥५३॥

अर्थ—भट्ट अकलंक अर श्रीपाळ अर पात्रकेसरी नामा आचार्य जे है तिनके अतिनिर्मल गुण पंडितनिके हृदयमै आरूढ हुवा सता हार समान आचरण करै है॥

तातै मिथ्यात्वकर्मबंधका कारण सर्व ही कुदेवनिका पूजन स्तवन नमस्कारादिककूं शांतिके कारण मानि मति करो।

प्रश्न— ऐसैं है तौ अनेक राजा विद्यासिद्धि करैं है तहां तौ विद्यादेवतानैं नमस्कार करते होहिंगे।

उत्तर—विद्यासिद्धि करनेके समय नमस्कार करनेका निश्चय तुमारे कैसैं भया, वा समय नमस्कार करनेका विधान तौ आचारके ग्रंथनिमैं नही सुन्या अर कियेकी कथा प्रथमानुयोगमै नहीं सुनी तातै जानिये है कि पंचपरमेष्ठीका वाचक मंत्रनितै ही विद्यासिद्धि होय है।

प्रश्न—ऐसा नियम तुमारे कहनेसै ही कैसैं मान्याजाय?

उत्तर—ये हमारे मनसैं ही नहीं कह्या है, समंतभद्र स्वामीनै रत्नकरंडमैं कह्या है;—

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न संत्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अर्थ—विद्याका आचरणकी उत्पत्ति* स्थिति, वृद्धि, अर फलको उदय सम्यक्त्वके नहीं होतैं नहीं होय है कि जैसैं बीजके अभाव होतैं वृक्षकी उत्पत्ति आदि नहीं होय है ॥३२॥ या वचनतै सम्यक्त्व होतै ही विद्याकी सिद्धि होय है।

प्रश्न—ऐसा नियम कहो हो तौ मिथ्यात्वीनिकै विद्यासिद्धि कैसैं होय है।

उत्तर—मिथ्यात्वीनिकी क्रियाको कहा निर्णय करो हौ मिथ्यात्वीनिकी क्रिया तौ उन्मत्त समान है वैसैं भी करै वैसै भी करै, परंतु हमारे ज्ञानमै तौ ऐसा तुलै है कि विद्यासिद्धि होनेकी अनेक रीति है, तहा जाकै विशेष पुन्यका उदय होता है ताकै स्वयमेव विद्यासिद्धि होती है सो जैसैं चक्रीकै बत्तीशहजार देव स्वयमेव सिद्ध होय है; अर जाकै अष्टांग शुद्ध सम्यक्त्व होता है ताकै आकांक्षाका अभावतै विद्यासिद्धि करनेका प्रयोजन ही नहीं रह्या; अर जाकै एकोदेश सर्व अंगहीण क्षायोपशमिक चल मलिन अगाढरूप सम्यक्त्व होयहै ताकै परमेष्ठीवाचक मत्रका जप ध्यान करनेंतैंही इच्छाप्रमाण विद्यासिद्धि होय है, अर मिथ्यात्वीकै विद्यादेवका नामकीर्त्तन गुणस्मरण करनेतै भी विद्यासिद्धि होय है परंतु मुख्य हेतु लाभांतरायकी निर्जरा होता ही है अर निर्जरा मिथ्यात्वीनितै अव्रत सम्यग्दृष्टीनिकै असंख्यातगुणी होनी कही है तातैं जैसी विद्या

---

* हमारी समझमें 'विद्यावृत्तस्य' का अर्थ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। यहाँ विद्याका और उसके सिद्ध होनेका कोई सम्बन्ध नहीं है। —प्रकाशक।

सम्यक्त्वीकै होय है तैसी मिथ्यात्वीकै नहीं होय है अर उनकै भी वा विद्यासिद्धिका मंत्रविधानमात्र उपदेशमै तौ श्रद्धान भये ही सिद्धि होय है, तातै मिथ्यात्वी तौ अपने योग्य करै अर सम्यक्त्वी अपने योग्य करै। तथा अंजन चोरकी कथामें लिख्या है कि एक माली तीक्ष्ण शस्त्र खडे करि वाके ऊपरि वृक्षकी पूर्व शाखाकै छींका बांधि वा छींकामें वैठि तौ गया परंतु जो गुरूनै कह्या था कि पंचणमोकार मंत्र पढ़ि पढ़ि या छींकाकी लड़ छेदियो जिस बखत सर्व लड़ छिदैंगी उस ही बखत आकाश गामिनी विद्यासिद्ध होयगी, सो वा मालीकै तौ गुरुवचनका श्रद्धान नहीं भया तातैं लड़छेदन नहीं करि सक्या अर श्रद्धानपूर्वक परिपूर्ण विधि भया विना विद्या सिद्ध नहीं भई; अर अंजन चोरकै ऐसा निःशंकित श्रद्धान भया कि एक समयमै ही मंत्र पढ़ि सर्व लड़को छेदन कियो अर छेदन करतां ही विद्या सिद्ध भई, या वचनतैं विद्या सिद्ध होनेमै श्रद्धानका अर परमेष्ठीवाचक मंत्रका नियमसिद्ध भया।

प्रश्न—ऐसे है तौ भी कांक्षानामा दोष तौ रहैगा कि नहीं।

उत्तर—अनंतानुबंधी तौ च्यार कषाय अर मिथ्यात्व आदि तीन ऐसे सात प्रकृति संबंधी आकांक्षा तौ नहीं है अर द्वादश कषाय विद्यमान हैं तिन संबंधी कांक्षा है तिननै ही विद्यासिद्धिनिमित्त प्रयोग करै है। तथापि शुद्ध सम्यक्त्वीकै ऐसा श्रद्धान रहै है सो स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखै है;—

ण य को वि देदि लच्छी ण कोइजीवस्स कुणइ उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि॥३२४॥
भत्तीए पुज्जमाणो विंतरदेवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मं कीरइ एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी॥ ३२५॥

न च कः अपि ददाति लक्ष्मीं न कः अपि जीवस्य करोति
उपकारं ।
उपकारं अपकारं कर्म अपि शुभाशुभं करोति॥३२४॥
भक्त्या पूज्यमानः व्यंतरदेवः अपि यदि ददाति लक्ष्मीम्
तर्हि किं धर्मः करोति एवं चिंतयति सद्दृष्टिः ॥३२५॥

अर्थ—या जगतमै लक्ष्मी कोई भी नहीं देवै है अर नहीं कोई जीवको उपकार करै है, उपकार अपकार शुभाशुभ कर्म ही करै है ॥३२४॥ अर जो भक्ति करि पूज्या थका विंतर देव ही लक्ष्मी देवै तौ धर्म काहेकूं करिये, या प्रकार सम्यग्दृष्टी चितवन करै है ॥३२५॥

तथा गाथा;--

जं जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा ॥३२६॥

तं तस्स तम्हि देसे तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि ।
को सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥ ३२७ ॥

एवं जो णिच्छयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥३२८॥

यत् यस्य यस्मिन् देशे येन विधानेन यस्मिन् काले ।
ज्ञातं जिनेन नियतं जन्म वा अथ वा मरणं वा॥३२६॥
तत् तस्य तस्मिन् देशे तेन विधानेन तस्मिन् काले ।
कः शक्नोति चालयितुं इंद्रः वा अथ जिनेंद्रः वा॥३२७॥

एवं यः निश्चयतः जानाति द्रव्याणि सर्वपर्यायान्।
सः सदृष्टिः शुद्धः यः शंकते सःखलु कुदृष्टिः ॥३२८॥

अर्थ—जाको जा देशमैं जा विधिकरि जा कालमैं जन्म तथा मरण जिनेंद्रनैं निश्चय करि जाण्यूं है ॥३२६॥ ताको ता देशमैं ता विधि करि ता कालमैं जन्म तथा मरण होहीगो ताकूं चलायमान करबेकूं कौन समर्थ है इंद्र अथवा जिनेद्र भी नहीं समर्थ है ॥३२७॥ या प्रकार द्रव्यनै तथा पर्यायनै निश्चय करि जानैं है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है अर शंका करै है सो कुदृष्टी है ॥३२८॥

सो ही समयसारमै कह्या है;—

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥२३०॥

सम्यग्दृष्टयः जीवाः निःशंकाः भवंति निर्भयास्तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ताः यस्मात्तस्मात्तु निःशंकाः ॥२३०॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव निःशंक है ता कारण करि निर्भय है, जौं तौं प्रकार सप्तभयरहित निःशंक है ॥ २३० ॥

अर वर्त्तमान उपद्रवका इलाज करनेका हुकम आत्मानुशासनमैं कह्या है;—

यावदस्ति प्रतीकारस्तावत्कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।
तथाप्यनुपशांतानामनुद्वेगः प्रतिक्रिया ॥ २०८ ॥

अर्थ—जितनै इलाज बनैं तितनैं इलाज करै अर इलाज करतां भी नहीं शांत होय तिन उपद्रवनिका उद्वेग छोड़ना ही इलाज है ॥ २०८ ॥

तथा—

जानामयः प्रतिविधाय तनौ वसेद्वा
नो चेत्तनुं त्यजतु वा द्वितयी गतिः स्यात्।
लग्नाग्निमावसति बह्निमपोह्य गेहं
निर्याय वा व्रजति तत्र सुधीः किमास्ते॥ २०६॥

अर्थ—उत्पन्न भया जो रोग ताका इलाज करि शरीरमैं वास करै अर जो इलाज नहीं बणै तौ शरीरनैं तजै, ये ही दोय उपाय है। जैसै लगी हुई अग्निनैं बुझाय गृहमैं वास करै अर जो नहीं बुझै तौ गृहनैं छांडि बाहिर गमन करै, वा जलता गृहमै सुबुद्धी कहा वास करै? कदाचित् ही नही करै। भावार्थ—योग्य उपायतै शातता होती दीखै तौ करै नहीं समता धरै, अर जातै सम्यग्दर्शनादिकको घात होय सो कदाचित् ही नहीं करै॥ २०६॥

सो ही पद्मनंदिपचविंशतिकामैं,—

तं देशं तं नरं तत्स्वं तत्कर्माणि च नाश्रयेत्।
मलिनं दर्शनं येन येन च व्रतखंडनम्॥ २९॥

अर्थ—जाकरि सम्यग्दर्शन मलिन होय तथा जाकरि व्रत खंडन होय ता देशनै ता मनुष्यनै ता द्रव्यनै तथा तिनि कर्मनिनैं सम्यग्दृष्टी नही आश्रय करै॥ २९॥

प्रश्न—ऐसैं है तौ गृहस्थी माता पितादिक कुटुंबकेकूं तथा राजादिकनिकूं भी नमस्कारादि निजरि भेट देवै कि नही?

उत्तर—नमस्कार तौ असंयमीकूं योग्य ही नहीं, अर प्रीतिकी भ गृहस्थाश्रममैं सम्यक्त्वी धर्मात्माकै दोय रीत हैं। येक गृहस्थाचार-

की है तामैं तौ जा पुरुषसूं गृहस्थाश्रमका कार्य सिद्ध होय तासूं वाकै योग्य प्रीति होती ही है यामै तौ जाति तथा धर्मका देखना है ही नही, दूसरी परमार्थकी है सो सम्यक्त्वीकूं साधर्मीसै ही करनौ योग्य है यामै मिथ्यात्वीका संबंध हो जाय तौ परमार्थ बिगड़ि जाय। अर्थात्—तिनि दोऊनिमै ही पूर्वोक्त पद्मनंदिजीका वचननै तौ स्मरण राखै कि जाकरि सम्यग्दर्शनको तथा व्रतको घात होय सो तौ सर्वथा ही नही करै अर और कार्य देश कुलकी रीति माफिक करै क्योकि जहां तहां कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कुदेव कुगुरु कुधर्मके धारक ये षट् धर्मके आयतन नही हैं अनायतन संज्ञाके धारक है, अर षट् अनायतन सम्यक्त्वके पचीस मलदूषणमै कहे हैं तातै अनायतनरूप माता पिता राजा आदि कोई हो नमस्कारआदि जा क्रियामैं सम्यक्त्वको घात होय सो नै ही करै। अर गुणाधिकमै प्रमोद राखनेकी आज्ञा तत्त्वार्थसूत्रमै भी लिखै है,—

सूत्र—**मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु।**

अर्थ—प्राणी मात्रमै मैत्रीभाव राखै कि जैसै कोऊ तरैं भी मित्रका बिगाड़ नही चाहै तैसै प्राणीमात्रका बिगाड़ नहीं चाहै अर वणै जितनौ उपकार करै, अर गुणाधिकमै प्रमोदभाव राखै कि अपनी वर्त्तमानकी व्यवस्थातै अधिक गुणवान होय तामै प्रमोद राखै कि आप सम्यक्त्वी है अर दूसरो देशव्रती है तौ वानै देखतप्रमाण ऐसो हर्ष धारै कि जैसै दरिद्री निधिनैं पाय प्रमोद धारै, अर रोगादि करि क्लेशित जीवमात्रमैं करुणाभाव धारै कि

जैसै पुत्रकूं क्लेशित देखि माता करुणा करि उपकार बुद्धि धारै तैसै धारै, अर अविनयी मिथ्यादृष्टी क्रूरपरिणामी धर्मद्रोही आदिकै विषै मध्यस्थभाव राखै कि नही तौ प्रीति राखै नहीं द्वेष राखै कि जैसै वीतरागी द्रव्यमात्रमैं उदासीन भाव राखै है तैसै राखै। या व्याख्यानमैं भी गुणाधिकमै प्रमोदभाव करना ही तौ कह्या अर नमस्कार करना नही कह्या, तातै आप सम्यक्त्वी होय तौ मिथ्यात्वी माता पिता राजादिकनै नमस्कार नही करै, अर सम्यक्त्वी होय सो पंचपरमेष्ठी और जिनागम सिवाय नमस्कार करना तौ दूर ही रहौ सत्कार भी नहीं करै।

प्रश्न—चक्रीकै चक्रका पूजना कैसै लिखै है।

उत्तर—इहां पूजन नाम सत्कारका जानना सो सत्कार यथायोग्य चेतन अचेतन वस्तुमात्रका ही करिये है।

प्रश्न—ऐसै है तौ जिनशासनदेवनिमै गुणाधिकपणा भी है क्योंकि सम्यग्दर्शनके धारक हैं तथा धर्मात्माकै मोक्षमार्गमैं प्रीति है अर मोक्षमार्गमै प्रधान सम्यग्दर्शन है सो उनकै पाइये है तातै उनकूं नमस्कारादि करनेमै कहा दोष है।

उत्तर—प्रथम तौ इनिकू नमस्कारादिकका निषेध है, ता सवाय तुम जिनि देवनिका पूजन कराया चाहो हौ सो भुवनत्रिकमैं हैं अर भुवनत्रिकमै सम्यक्त्वीका उत्पाद नही ऐसा तौ नियम है। सो ही त्रिलोकसारमै,—

उम्मग्गचारि सणिदाणणलादिमदा अकामणिज्जरिणो।
कुदवा सवलचरित्ता भवणतियं जांति ते जीवा॥४०८॥

उन्मार्गचारिणः सनिदाना अनलादिमृता अकाम-
निर्जरिणः ।
कुतपसः सबलचरित्रा भवनत्रिके यांति ते जीवाः ४४८

अर्थ—"उन्मार्गचारिणः" कहिये जिनमतसै विपरीतधर्मकूं आचरनेवारे, बहुरि "सनिदानाः" कहिये निदान जिननैं किया होय, बहुरि "अनिलादिभिर्मृताः" कहिये अग्नि जल झंपापात आदि करि मरे होय, बहुरि "अकामनिर्जरिणः" कहिये विना अभिलाष बंधादिकके निमित्ततै परीषहसहनादिक करि जिनकै निर्जरा भई होय, बहुरि "कुत्सिततपाः (कुत्सिततपसः)" कहिये खोटे तपके करनवारे होय, बहुरि "सबलचरित्राः" कहिये सदोष चारित्रके धारनेवारे होय ते जीव "भवनत्रिके यांति" कहिये भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव जे हैं तिनकै विषै उत्पन्न होयहै ॥ ४४८ ॥

अर ऐसा भी नियम नही है कि फलाणे फलाणेकै तौ सम्यक्त उपजै ही है, तीसरा ऐसा हू नियम नहीं है कि फलाणे फलाणे तौ जिनशासन हैं अर फलाणे फलाणे अन्यशासन है । च्यारूं ही निकायके देव जिनशासन हैं परंतु किसीकै सम्यक्त होय है किसीकै नही होय है, तातै जिन देवनिकूं तुम जिनशासन कहो हो तिनिकै सम्यक्त्वका नियम नाही, अर सम्यक्ती मात्रकूं नमस्कार करो ऐसा हू हुकम नाहीं अर असंयमीनैं नमस्कार मति करो ऐसा हुकम है, अर देवमात्रकै असंयम गुणस्थान है ऐसा हुकम है । वा सिवाय सम्यक्ती जानि करि ही नमस्कारादि करो हो तौ च्यारूं ही गतिमैं सम्यक्त तो उपजै है तातै देव मनुष्य तिर्यंच नारकीनिकूं भी नमस्कारादि किया चाहिये;—

याका उत्तर कहै है कि मनुष्य तौ प्रत्यक्ष आवैं ही हैं तिनका सत्कार करिये ही है अर नारकी तिर्यंच हीन हैं, अर ये प्रतिष्ठादिकका काम महान है तातैं देवनिका ही किया चाहिये।

उत्तर—प्रथम तौ जैसैं सम्यक्ती मनुष्य प्रत्यक्ष आवैं हैं तिनकूं भी नमस्कारादि नहीं करो हो तैसै ही सम्यक्ती देव प्रत्यक्ष आवं तौ तिनकूं भी नमस्कारादि तौ मति करो अर और सत्कार यथायोग्य करो। अर देवनिकूं महान जानि करि ही नमस्कारादि करो हो तौ सर्वमै महान सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्र हैं तिनकूं ही करो औरनिकूं काहेकूं करो हो (यह वचन उन प्रति कटाक्षरूप है हुकम नही है)

प्रश्न—अहमिंद्रनिकू भी करते हैं परंतु वै तौ आते नाही अर भवनत्रिक ही आते है अर उपसर्ग दूर करते है तातै इनकूं भी करते है।

उत्तर—प्रथम तौ पूजनकी अपेक्षा राखि प्रतिष्ठादिकमै उपसर्ग मेटैं है तौ सम्यक्तीपणां तौ दूरि ही रहौ जैनीनाम ही नहीं पावैंगे। तथा उपसर्ग दूर करनेकी कथा जहा तहां शीलव्रतादिक धर्ममै स्थिर रहनेतै भये जे शुभपरिणाम तिनकरि उदय भया जो सातावेदनी आदि प्रशस्त प्रकृतिनिका रस ताके प्रभावतैं देवनिकै आसनकंपनादि चिह्न होहि तब देव आप आय उपसर्ग मेटै है ऐसे संबधरूप सुनी है। सो ही सुलोचनाकी कथा आदिपुराणका पैंतालीसमां पर्वमै, श्लोक,—

ससंभ्रमं सहायेतुर्हृदं हेमांगदादयः।
सुलोचनाऽपितान् वीक्ष्य कृतपंचनमस्कृतिः।५४४।

मंत्रमूर्त्तीन् समाधाय हृदये भक्तितोऽर्हतः ।
उपसर्गापसर्गांतं त्यक्ताहारशरीरिका ॥ ५४५ ॥
प्राविशद्बहुभिः सार्द्धं गंगां गंगेव देवता ।
गंगापालप्रतिष्ठाने गंगाकूटाधिदेवता ॥ ५४६ ॥
विबुद्ध्याऽऽसनकंपेन कृतज्ञागत्य सत्वरम् ।
तानानयत्तटं सर्वान् संतर्ज्य खलकालिकाम् ।५४७।
स्वयमागत्य के नात्र रक्षंति कृतपुण्यकान् ।
गंगातटे विकृत्याऽऽशु भवनं सर्वसंपदा ॥५४८॥
मणिपीठे समास्थाप्य पूजयित्वा सुलोचनाम् ।
तव दत्तनमस्काराज्जज्ञे गंगाधिदेवता ॥५४९॥
त्वत्प्रसादादिदं सर्वमवरुद्धामरेशिनः ।
तयेत्युक्ते जयोऽप्येतत्किमित्याह सुलोचनाम् ।५५०।

अर्थ—जयकुमार सुलोचना हाथी सवार होय गंगामैं प्रवेश कियो वा समय काली देवी हाथीनै आय पकड्यो ता समयकी कथा है कि—हेमांगदादिक गंगाके तटमें तिष्ठता व्याकुलचित्त भया संता सन्मुख आया अर सुलोचना भी हेमांगदादिकनिनै व्याकुल देखि पंचनमस्काररूप मंत्रमूर्ति अरहंतकूं हृदयमैं धारणकरि उपसर्गका अंतपर्यंत त्याग्यो है आहार अर शरीर जानैं ऐसी बहुतनिकै साथि गंगा देवता की नांई गंगाकै विषैं प्रवेश करत भई, वाही समय गंगाके पडनेके स्थानमैं रहनवारी गंगाकूटकी अधिदेवता जो है सो आसनकंपन करि सुलोचनाका उपसर्गनै जाणि वाका 'किया

उपकारकूं जाननवारी शीघ्र आय दुष्टकालिका देवीनैं तर्जना करिवे सुलोचनादिक सर्व जे हैं तिननैं तीरपरि ल्यावत भई ॥५४४॥ ॥५४५॥ ५४६॥५४७॥ यहां ग्रंथकार कहै है कि—या लोकमै पुन्यवाननिनैं कौन आप आय नहीं रक्षा करै। भावार्थ—पुन्यवानकी सर्व ही रक्षा करैं, तदनन्तर शीघ्र ही सर्व संपदासयुक्त भवन रचि ॥ ५४८॥ मणिपीठके विषै सुलोचनानै स्थापन करि पूजनकरि कही कि तेरा दीया नमस्कार मंत्रतैं गंगाकी अधिदेवता मै उत्पन्न भई ॥ ५४९ ॥ अर तिहारा प्रसादतै यो सर्व परिकर देवनिको स्वामीपणूं है, या प्रकार वा गंगादेवीनै कहतां संता जयकुमार भी सुलोचनाकू या प्रकार कहतो भयो ॥५५०॥

इत्यादिक कथा जहां तहा व्रतमै दृढ रहनेतै अर अरहंतवाचक मंत्रके स्मरणतैं देवकृत सहाय होनेकी है। तैसै ही पंचमकालके अंतमै कलकीकृत उपसर्ग मुनीश्वरपरि होय तब मुनीश्वरके संयम दृढ परिणामके प्रभावतैं देवका आसन कंपित होय तब अवधिबलतै कलकीकृत उपसर्ग भया जानि कलकीकूं दंड देवे है। इत्यादिक कथा सुनि व्रत शील संयम पूजन आदि शुभोपयोगमै दृढपरिणाम तुम भी राखो अर पूजा प्रतिष्ठादिकमै यत्नाचारपूवक मंदकषायरूप प्रवर्त्तो, तातै सहज ही पुन्यकी वृद्धि होतै सतै उपसर्ग नहीं आवैगा। अर देवनितै उपसर्ग दूरि करने आदि वरकी वाञ्छा राखोगे तौ देवमूढ होगे। सो ही रत्नकरंडमे,—

वरोपलिप्सयाऽऽशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—वरकी वांछाकरि जो आशावान् पुरुष राग द्वेषकरि मलिन देवता जे हैं तिननैं उपासना करै सो देवतामूढ कहिये है।

॥२३॥ या वचनतें रागीद्वेषी देवनितें वरकी चाह राखना योग्य नाही।

प्रश्न—तुमनै कह्या सो तौ सत्य है परन्तु अह्वानन किये विना देवनिकूं खबरि कैसैं होय अर खबर हुये विना अन्य मिथ्यादृष्टी देवनिकृत उपसर्ग कैसैं मिटै।

उत्तर—जब या जीवकै पुन्य उदय होय तब तौ सहज ही बिना आह्वानन किये ही हजारां देव आय सेवा करै हैं, सो ही देखो कि पुन्यप्रकृतिके पूर्ण उदयतैं तौ तीर्थंकरकूं गर्भमैं आवनेके छ महीने पहलीसैं ही देव रत्नवर्षादिक मंगल करै हैं तब तौ कौन आह्वानन करै है अर जब उनकै भी कछू पुन्यकी न्यूनता अर असाताका उदय होय तब क्षुद्र देव भी उपसर्ग करै हैं, तब इंद्रादिकनिनैं आवतां अर उपसर्ग मेटतां कौन मनैं करै है। अर चक्रवर्त्तीकै बत्तीसहजार देव सेवक होय हैं तिनमैं एकको भी आह्वानन करै नही अर वाको भी पुन्य मंद होय। तब ब्रह्मदत्त सुभूमिकी नाई एक देव ही मार लेवै है। अर प्रतिनारायण रावणकै पुन्य अस्त भया तदि विद्यादेवता ऐसै कह्यो;—सो उत्तरपुराणसंबंधी मुनिसुव्रतपुराणमैं;—

नभश्चरकुमारेषु तदा रामाज्ञया गिरिं।
संप्राप्य युध्यमानेषु रावणस्याग्रसूनुना ॥४२२॥
संभूयेंद्रजिता यूयं युध्यध्वमिति सक्रुधा।
प्रेषिताःखचराधीशाः प्राच्याः सर्वाश्च देवताः ॥४२३॥
इयंतं कालमस्माभिर्वर्तं पुण्यबलोदयात्।
त्वयाभिलषितं कार्यं साधितं पुण्यसंक्षये ॥४२४॥

समर्था नेत्यसावुक्तो व्यक्तं ताभिर्दशाननः।
भवतीभिर्वराकीभिर्यात किं मम साध्यते ॥ ४२५ ॥

अथ —तदि रामकी आज्ञाकरि विद्याधरनिके कुमारनिमैंसूं कितनेंक कुमार आदित्यपाद गिरिनै प्राप्त होय रावणको बड़ो पुत्र इंद्रजीत जो है ताकै साथि युद्ध करता संता रावण और विद्याधरनिनै अर पूर्व कालमै सिद्ध किये देवनिनै भेजत भयो कि थे इंद्रजीतकै सामिल होय क्रोधसहित युद्ध करो, तदि वै सर्व विद्यादेवता बोल्या कि तिहारा पुन्यबलका उदयतें इतना काल हमनै तिहारो वांछित कार्य सिद्ध कियो अबै पुण्यका क्षयनै होता संता तिहारो कार्य सिद्ध करनैकूं हम समथ नहीं है ऐसैं उनकरि प्रकट उत्तर कह्यो सतो रावण बोल्यो कि तुम बराकीनि करि मेरै कहा सिद्ध करनौ है, भला ही जावो।

अर नारायणकै भी पुन्यको उदय होत सतैं विना आह्वानन किये ही एक हजार देव जाकी सेवा करैं ऐसा चक्ररत्न प्रदक्षिणा देय हाथमै प्राप्त होय वाही समय आठ हजार देव सेवक होय है, ते सर्व पुन्यके अस्त होत संत छोडि करि चले जाय हैं जैसैं कृष्ण एकाकी वनमै प्राणत्याग कियो अर अरविंदराजानै चिरकालकी सेवक विद्या भी छोडि गई तथा पुत्रकी विद्या भी उपकार करवा समथ नहीं भई तौ और सामान्य मनुष्यनिकी कहा कथा। तातैं सुखको कारन पुन्य ही है, अर शुद्धोपयोगनै कारणभूत जो शुभोपयोग वातैं पुन्य उत्पन्न होय है तातैं शुभोपयोगरूप परिणामनिकी प्रवृत्ति राखवो योग्य है।

प्रश्न—जैस प्रतिष्ठादि महान विधानमैं साधर्मी पुरुषनिनै पत्र लिखि देशांतरतै बुलाइये है अर उनका सत्कार करिये है वैस ही

जिनशासन देवनिका भी आह्वानन करि नमस्कारादि करना योग्य है।

उत्तर--साधर्मीपणाकी बुद्धितैं प्रतिष्ठादिकमैं भलां ही आह्वानन करो अर आवैं तौ उनका साधर्मीनिके समान सत्कार करो यामैं कुछ दूषण नाही, अर वै तौ आवैं ही नही अर तुम पुष्पादिकनिमैं संभावना करि भक्तिरूप परिणामनितैं नमस्कारादि करो हौ सो योग्य नाही।

प्रश्न—अर्हंतादि परमेष्ठीका आवना सर्वथा नही संभवै तिनकी ही संभावना पुष्पादिकनिमैं करते हौ तौ उनका तौ आवना भी संभवै है तातैं संभावना करि नमस्कारादि करनेमैं कहा दोष है।

उत्तर—अर्हंतादि परमेष्ठी तौ शुद्ध चैतन्य रूप है अर अपने हितके वांछक पुरुषनिकूं शुद्ध चैतन्यरूपकी पिछानि करनी है तातैं उपचारमात्र संभावना करि अपना उपयोग शुद्धोपयोगतैं जुडने निमित्त अर्हंतादिकनिका गुणस्मरण करता संता नमस्कारादि करि पुन्यबंध करते है अर परमार्थतैं आवना बैठना भी नही है अर लेना देना भी नही है।

प्रश्न—ऐसैं है तौ उनका हू उपचारमात्रसैं ही करो।

उत्तर—अरहंतादि परमेष्ठी तौ सर्वोत्तम गुणाधिक हैं तातैं उनके गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि संभावना करि नमस्कारादि करना योग्य है, अर भवनत्रिक तौ दूरि ही रहौ सम्यक्ती पुरुष आगामी कालमैं कल्पेन्द्रपणाकी ही वांछा नही करै है।

प्रश्न—आगामी चाह नही हैं तौ हू वरतमान उपद्रवका इलाज तौ करै है, अर ये भवनत्रिक वरतमान उपद्रवकी शांति करैं हैं तातैं संभावना करि भी नमस्कारादि करना योग्य है।

उत्तर—सम्यक्ती वर्त्तमान उपद्रवका योग्य इलाज करै है अर ये इलाज अयोग्य है तातैं करने योग्य नाही, क्योंकि इनतैं विघ्न-निवारण आदि वरकी वांछा करनेकूं समंतभद्रस्वामी देवमूढपणा कह्या है, तातैं प्रत्यक्षमैं तथा परोक्षमैं नमस्कारादि करना अर वरकी वांछा करना तौ योग्य ही नाहीं।

प्रश्न—जिनशासन देवनिकूं नमस्कारादि करनेमैं ऐसा कहा दोष है जो सर्वथा निषेध करो हो।

उत्तर—याका उत्तर तौ प्रथम ही कह्या है कि विधि अर निषेध तौ आगमकै अनुकूल है, अर आप कुंदकुंदाचार्यजीकी आम्नायमें हैं अर कुंदकुंदाचार्यजीके आगममैं हुक्म स्पष्टतर निःसंदेह रागी द्वेषी देवनिकूं तथा परिग्रहवान गुरूनिकूं तथा दयारहित आगमकूं नहीं माननेका नहीं नमस्कारादि करनेका ऐसा तरह लिखे हैं कि जाका दूसरा अर्थ ही नहीं बनै है तातैं सर्वथा निषेध करै है, अर आगमकै अनुकूल युक्त भी ऐसो ही उपजै है कि जैसैं कुलांगना पतिव्रता होय सो पतिसैं भी अपने योग्य पदार्थ नहीं वाछै है अर केवल प्रारब्धके दिये भोगनिनैं भोगै है अर पतिकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्त्ते है अर सर्व मनुष्यनिमैं पिता पुत्र भ्रातापणाका भाव राखै है तैसैं सम्यग्दृष्टी भी त्रिलोकनाथसैं भी अपने भोग्य पदार्थ नहीं वाछै है अर केवल प्रारब्धके दिये भोग भोगै है अर त्रिलोकनाथकी आज्ञा-प्रमाण प्रवर्त्ते है अर सब जीवनिमैं मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थभाव राखै है, अर जो या मार्गकूं उल्लंघन करि प्रवर्त्ते तौ स्त्री तौ विभचारिणी नाम पावै अर पुरुष मिथ्यादृष्टी नाम पावै। तातैं सम्यग्दृष्टी जीव परमेष्ठी सिवाय अन्य देवनैं नमस्कारादि नहीं करै है।

प्रश्न—ऐसें है तौ यावत् सम्यग्दर्शन प्रकट नही होय तावत् तौ करै ।

उत्तर—यावत सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं होय तावत मिथ्यादृष्टी है अर मिथ्यादृष्टीके करने न करनेका कहा कहना है, मिथ्यादृष्टी तौ अनादिकालतै नमस्कारादि करि पूजै ही है; परंतु जाकै सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेकी इच्छा होय ताकूं तो समझ्या चाहिये कि मिथ्यात्वका नाश कियां बिना सम्यग्दर्शन उदय ही कैसैं होयगा कदाचित ही नही होयगा । ऐसा आदिपुराणका नवमपर्वमै कह्या है;—

अनिर्धूय तमो नैशं यथा नोदीयतेंऽशुमान् ।
तथाऽनुद्भिद्य मिथ्यात्वतमो नोदेति दर्शनं ॥११६॥

अर्थ—जैसें रात्रिसंबंधी अंधकारनै उडायां विनां सूर्य नही उदय होयहै तैसें मिथ्यात्वरूप अंधकारन उडायां विना सम्यग्दशन नही उदय होय है ॥ या वचनतै सम्यग्दर्शनका इच्छुक पुरुषकै भी मिथ्यात्वके कारणभूत कुदेव कुगुरु कुधर्म तौ नमस्कारादि करने योग्य नही है ताहीतैं षट् अनायतन त्याज्य कहे हैं ।

प्रश्न—उन देवनिके गुणकी इच्छा नही अर उनसैं और कछू वरकी भी चाह नही परंतु जिनपूजा प्रतिष्ठामै कोई तरैहको उपद्रव नहीं होय सर्व तरै शांति रहै इस प्रयोजननिमित्त जिनशासनदेवनिकूं नमस्कारादि करिये है ।

उत्तर—याका भी उत्तर तौ ऊपरि ही लिख्या है, ता सिवाय और सुनो कि जा जीवनैं धर्मकार्यविषै भी पहली अपनी पूजा चाही सो काहेका जिनशासन है जिनशासन होगा सो तौ धर्मानुरागतैं सहज ही विघ्न दूर करैगा, ता उपरांति ऐसी भूलि मति राखो कि

जहा जिनबिंब विराजमान है तहा भी अमंगल होय है अर रागी देवनिका आगमन होय है तहां मगल होय है, ऐसी तुमारी श्रद्धातैं तौ पर्वतकै ही आछी श्रद्धा भई कि यज्ञके निर्विघ्न होने निमित्त यज्ञके च्यहूं तरफ जिनप्रतिमा स्थापन करी या कथा उत्तरपुराणका मुनिसुव्रतपुराणमैं प्रसिद्ध है । तातैं ऐसी श्रद्धा करो कि जा जिनबिंबके प्रसादतैं पर्वतका यज्ञ ही (भी) निर्विघ्न भया तौ जिनयज्ञ प्रतिष्ठा निर्विघ्न कैसै नहीं होयगी तातैं हितके वाछक सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकूं तौ सर्व कार्यकी आदिमैं मगलनिमित्त जिनपूजन ही करना योग्य है । सो ही ज्ञानी पुरुषकी प्रवृत्ति उत्तरपुराणसंबंधी चंद्रप्रभपुराणमैं लिखी है;—

तत्रोत्सवे जनाः पूजां मंगलार्थं प्रकुर्वते ।
शोके तदपनोदार्थमेते जैनीं विवेकिनः ॥ ३३ ॥

अर्थ—वा श्रीपुर नामा नगरकै विषै ये विवेकीजन उत्सवकै विषै तौ मंगलकै अर्थि अर शोककै विषै शोकके नाशकै अर्थि जिनपूजा करै हैं ॥ ३३ ॥ या वचनतै शोकमै तथा हर्षमै जिनपूजा ही करना योग्य है ।

प्रश्न—तुमनै तौ जिनेंद्रदेव सिवाय और समस्तरागी देवनिके पूजनेका निषेध किया अर उत्तरपुराणसंबंधी पार्श्वनाथपुराणमे धरणेंद्र पद्मावतीकूं पूज्य कहे है सो कैसैं है ।

पश्यैतौ कृतवेदिनौ हि धरणौ धर्म्यौवितीर्डा गतौ
तावेवोपकृतिर्न ते त्रिभुवनक्षेमैकभूमे ! स्तुतः ।
भूभृत्पातनिषेधनं न तु कृतं चेत्प्राकृतोपद्रवाः
कैर्नासन्निति सारसंस्तुतिकृतः पार्श्वो जिनः पातु नः॥

अर्थ—हे प्रभू ! निश्चयकरि ये धरणेन्द्र पद्मावती पूर्वजन्ममैं किया उपकारका जाननवारा है अर धर्मात्मा है तातैं सराहनानैं प्राप्त भये हैं तिननै देखो, अर हे भगवन् ! तीन भुवनकै क्षेमकी एक भूमि ऐसो तू जो है ताकै जो ये धरणेन्द्र पद्मावती उपकारी नही है अर पर्वतनिका पतनको निषेध नही कियो है तौ कमठनामा नीचदेवकृत उपद्रव कहा निमित्त करि नही निकट रह्यो; या प्रकार सारभूत स्तुतिरूप कियो पार्श्वजिनेंद्र जो हैं सो हम जे हैं तिनकी रक्षा करो ॥ ६६ ॥

उत्तर—या श्लोकमै तौ ऐसा भाव है कि पूर्वजन्मका उपकारनैं यादि राखि इहां उपसर्ग दूरि किया तातै सर्व जगतकै सराहना करने योग्य भये सो योग्य ही है, उत्तम कार्य करै सो सराहना पावै यातै। यो श्लोक तौ सम्यक्तका लक्षणकै अनुकूल ही है, क्योंकि सम्यक्त नाम सांचापणाका है अर मिथ्यात्वनाम झूंठापणाका है अर या श्लोकमै सत्याथरूप अर्थ है तातै सम्यक्तरूप ही हैं।

प्रश्न—या श्लोकमै "ईडां गतौ" ऐसा पद है तातै स्तुतिरूप भये ऐसा अर्थ है सो ही पूज्यपणा स्थापन करै है, क्योंकि स्तुतिका लक्षण मूलाचारमै नमस्कार करि पूजनकरि सत्यार्थ गुणानुवाद करना है सो स्तवन है ऐसा लिख्या है, तातै नमस्कार पूजन भी स्तुति प्रशंसाकै ही मध्यवर्त्ती है।

उत्तर—ऐसे प्रशंसारूप वचन तो केई पुरुषनि प्रति लिखै है। सो आदिपुराणका तीसरा पर्वमै,—

ततस्तमृषयो दीप्ततपोलक्ष्मीविभूषणाः ।
प्रशशंसुरिति प्रोता धार्मिकं मगधेश्वरं ॥२२७॥

अर्थ—तदनंतर दीप्ततप ऋद्धिरूप लक्ष्मी है बिभूषा जिनकै

ऐसे गौतम ऋषि गणधर देव जे हैं ते प्रसन्न भये सते मगधेश्वरनै पूर्वोक्त प्रकार सराहते भये ॥ २२७ ॥ तातै विचारनेकी वार्त्ता है कि वा श्लोकमै धरणेद्र पद्मावतीकी देवेद्रनि करि करी सराहनानै देखि धरणेद्र पद्मावतीकू सम्यग्दृष्टीनिकरि पूज्य मानोगे तौ या श्लोकमैं अव्रत सम्यग्दृष्टी राजाकी गणधरनि करि करी सराहनानै देखि संयमीनिकरि असंयमीनिका भी पूजना मानना पडैगा सो योग्य नाहीं । तातै ऐसा मानो कि दोऊ ही श्लोकनिमै उत्तम चेष्टा देखि सराहना करी है सो योग्य ही है, कछू सराहना करनेतै पूज्य नहीं होय है । ता सिवाय और सुनो कि क्रूरदेवतानै तौ तुम भी त्याज्य कहो हौ अर इनिकू क्रूरसंज्ञा है तातै सर्वथा अपूज्य हीं है ।

प्रश्न—इनकू क्रूरसंज्ञा कहा कही है ।

उत्तर—या ही स्थलमै कही है,—

अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ संस्मरतुः कृतम् ।
नोपकारं परे कस्माद्विस्मरंत्यार्द्रचेतसः ॥ १५ ॥

अर्थ—ये प्रकृति करि ही क्रूर नागकुमार जे है ते किया उपकारनै स्मरण करै है तौ आर्द्रचित्तके धारक परकृत उपकारनै कैसै भूलै कदाचित ही नहीं भूलै ॥ १५ ॥ या श्लोकमै उपकारनै स्मरण करता सता भी प्रकृति करि ही क्रूर कहे है, तातै निःसंदेह क्रूर है अर क्रूर है ते अपूज्य है ।

प्रश्न—और तौ तुमनै कह्या सो सर्व जान्या परंतु आदिपुराणमैं पीठिका मंत्रनिमैं लिखै है । मंत्र,—"सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नीद्राय स्वाहा ।" अर निस्तारक मंत्रनिमैं ऐसा लिख्या है कि—"सम्यग्दृष्टिनिधिपतिवैश्रवणाय स्वाहा ।" अर ऋषिमंत्रनिमै ऐसा लिखै है कि—"सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रमणाय

स्वाहा ।" अर सुरेंद्रमंत्रनिमैं ऐसा लिखैं हैं कि—"सौधर्माय स्वाहा, कल्पाधिपतये स्वाहा, अनुचराय स्वाहा, परंपरेंद्राय स्वाहा, अहमिंद्राय स्वाहा, सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनाभाय स्वाहा ।" अर परमराजादि मंत्रनिमैं ऐसा लिखैं हैं कि—"सम्यग्दृष्टेऽनुमतेजः दिशांविजय स्वाहा ।" अर परमेष्ठी मंत्रनिमैं ऐसै लिखैं है कि—"सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजयधर्ममूर्त्ते स्वाहा ।" इन मंत्रनिके अक्षरार्थकूं समझि करि तौ सम्यग्दृष्टीकूं जिनशासनदेवनि प्रति नमस्कारादि करना योग्य मानोगे ?

उत्तर—इन मंत्रनिका अक्षरार्थ जिन पुरुषनितै तुमनैं सुन्या है तिनके कुलमै परंपरातै ऐसा ही उपदेश चल्या आवै है, अर या ही उपदेशके अनेक ग्रंथ बडे बडे आचार्यनिके नामतै बनाय राखे हैं क्योंकि चरणानुयोगमै प्रधानता आगम प्रमाणकी है, तातै भोले जीवनिकूं आगम दिखाय अपनी वचनपक्षकै सामिल करि लेते हैं, परंतु ज्ञानवाननिकै आगमकी प्रमाणता वक्ताकी प्रमाणतातै है अर वक्ताका निश्चय अर्थकूं संप्रदायकै योग्य पूर्वापरविरुद्धतादि दूषणरहित प्रत्यक्ष अनुमानतै अविरुद्ध होत संतै होय है सो उन कत्त्रिम (कृत्रिम) ग्रंथनिमै तौ अनेक दूषण दीखैं हैं ते या ग्रंथके अंतमै दिखावैंगे । अर महापुराण जिनसेनाचार्यजीकृत सर्वदूषणरहित प्रमाणीक सर्व आगमनैं अविरुद्ध निःसंदेह अर्थ देवै है तातैं इनि मंत्रनितै तौ रागी देवनिका नमस्कारादि करना सिद्ध नहीं होयगा, क्योंकि इनि मन्त्रनिकी आदिमैं तौ ऐसैं लिखैं हैं;—

मध्यवेदि जिनेंद्रार्चाः स्थापयेच्च यथाविधि ।
मंत्रकल्पोऽयमाम्नातस्तत्र तत्पूजनाविधौ ॥

अर्थ—वेदीकै मध्य जिनेंद्रकी प्रतिमा यथाविधि स्थापन करै

अर तहां क्रियानिकै मध्य जिनेंद्रकी प्रतिमाका पूजनकी विधिकै विषै यो मंत्रनिको कल्प कह्यो है॥ ४॥

अर मंत्रनिके अंतमें ऐसै लिखै हैं;—

एतेऽनु पीठिकामंत्राः सप्त ज्ञेया द्विजोत्तमैः।
एतैःसिद्धार्चनं कुर्यादाधानादिक्रियाविधौ॥७७॥

अर्थ—ये सातभेदरूप पीठिकामंत्र जे हैं ते द्विजोत्तमनिकरि जानवे योग्य हैं अर इन मंत्रनिकरि आधान आदि क्रियाविधिकै विषैं सिद्धप्रतिमाको पूजन करै॥ ७७॥

तथा;—

सिद्धार्चासंनिधौ मंत्रान् जपेदष्टोत्तरं शतं।
गंधपुष्पाक्षताघांदिनिवेदनपुरःसरम्॥ ८०॥

अर्थ—सिद्धप्रतिमाका निकटमें गंध पुष्प अक्षत आदि अर्घका निवेदन पुरःसर इनि मंत्रनिनै अष्टोत्तरशतप्रमाण जप॥ ८०॥ इनि वचननितैं ये सर्व मंत्र अर्हत सिद्ध परमेष्ठीके पूजनके हैं, इनि मंत्रनितैं और देवनिके पूजनेका काम नाही, ऐसा निःसंदेह श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न—हमारै तौ संदेह नाही रह्या परंतु जिन पुरुषनिकै रागी-देवनिकूं पूजानेका पक्षपात है तिनकूं अक्षरार्थ भी कह्या चाहिये।

उत्तर—सर्व ही मंत्रनिका अक्षरार्थ तौ प्रकट ही है, परंतु इनि मंत्रनिका अक्षरार्थ जैसै पूर्वापरविचाररहित उनूनै तुमै सुनाया है तैसै तौ हम लिखैं नाही अर इन परि प्रमाणीक टीका नाहीं तथा कोऊ अन्य ग्रंथमै इनिका वरनन नाहीं ताहि देखि करि लिखे, अर स्वयमेव ऐसा हमारा तीक्ष्ण ज्ञान नाही जो कुंद कुंदाम्नायतैं अविरुद्ध अर्थ वक्ताका अभिप्राय माफिक लिखैं। तातैं

हमारै तौ जिनसेनजी इनि मंत्रनितैं अरहंत सिद्ध प्रतिमाका पूजन करनेका हुकम लिख्या है तातैं ये सर्व मंत्र परमेष्ठीवाचक हैं, ऐसा निश्चय है।

प्रश्न—उनका किया अर्थका निषेध लिखनेकूं तौ तुमारा ज्ञान तीक्ष्ण होय गया अर मंत्रनिका अक्षरार्थ लिखनेमैं मंद होय गया।

उत्तर—हमारा ज्ञान तौ मंद ही है परंतु आर्ष ग्रंथनिमै निषेध देख्या सो निषेध लिख्या अर मंत्रनिका अक्षरार्थ कहूं नहीं देख्या तिसके लिखनेका इनकार लिख्या, परंतु हमारै ऐसा निश्चय है कि कोऊ पंडित ग्रंथांतरतैं शब्दार्थका निश्चय करै तौ सर्व मंत्रनिका सत्यार्थ आम्नायशुद्ध अर्थ लिखै। जैसैं एक मंत्रका अर्थ हमनै सुन्या है सो लिखैं हैं;—

मंत्र—सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाणपूजार्ह अग्नींद्राय स्वाहा।

अर्थ—परम क्षायिक सम्यग्दृष्टी अर परम निकटभव्य ऐसो निर्वाणकल्याण समयका पूजनकै योग्य पावकरूप अग्नींद्र कहिये जिनेंद्र जो है ताकै अर्थि स्वाहा।

प्रश्न—अग्नींद्रकूं जिनेंद्र कैसैं कहौ हौ।

उत्तर—जन्मकल्याणसमय इंद्रकृत स्तवनमै लिखै है,—

श्लोक—**कर्मेन्धनदहे तुभ्यं नमः पावकमूर्त्तये।**

अर्थ—कर्मरूप ईंधनको दहनवारो पावकमूर्त्ति तू जो है ताकै अर्थि नमस्कार होहु। तथा ज्ञानकल्याणकसमय इंद्रकृत सहस्रनाममै,—

श्लोक—**वायमूर्त्तिरसंगात्मा वह्निमूर्त्तिरधर्मधक्।**

अर्थ—हे भगवन् ! आप पवनमूर्त्ति हौ अर असंगात्मा हौ अर अग्निमूर्त्ति हौ अर अधर्मका दहन करनवारा हौ । इत्यादि वचननैं अग्निरूप जिन है अर जिनका इंद्र है सो जिनेंद्र है । यातैं इहां अग्नींद्रपद जिनेंद्रका ही वाचक है ।

प्रश्न—पीठिकामंत्रनिका निर्वाह किया सो जान्या परंतु विशेष क्रियाविधानमैं सुप्रीतिक्रियाकै विषै अग्निदेवतानै साक्षी करना कैसैं कह्या है।

उत्तर—अग्निकुमारदेवकूं साक्षी करना कह्या सो वा समय वाका नियोग है यातैं साक्षी करनेमैं कुछ दोष नाही ।

प्रश्न—मोदक्रियामै रक्षासूत्र कैसैं कह्या है ।

उत्तर—वर्त्तमानका इलाज करनेका हुकम आत्मानुशासन आदि ग्रंथनिमै है ही तातैं परमेष्ठीवाचक मंत्रनितै रक्षाबंधन करना योग्य ही है।

प्रश्न—प्रियोद्भवक्रियामै ऐसै लिख्या है कि "सम्यग्दृष्टे सर्वमातः वसुंधरे स्वाहा" याका प्रकट अर्थ ऐसा दीखै है कि—सम्यग्दृष्टी सर्वकी माता पृथ्वी जो है ताकै अर्थि स्वाहा । सो कैसैं है ।

उत्तर—जिनागममै पृथ्वीके च्यार भेद ऐसैं लिखे हैं कि—पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक, पृथ्वीजीव । इनिमैं प्रथम भेद तौ सामान्य नाम है अर दूसरा भेद पुद्गल अचेतन है, अर बाकीके दोय भेदरूप जीव हैं तिनकूं सम्यग्दृष्टी कहनां संभवै नाही, क्योंकि प्रथम तौ तिनिमैं सम्यक्तीका उत्पाद नाही; क्योंकि समंतभद्रस्वामी ऐसा लिखैं हैं;—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि ।

दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः।

अर्थ—व्रतरहित भी सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध जीव जे हैं ते नारकपणानैं तिर्यंचपणानैं नपुंसकपणानैं स्त्रीपणानैं अर खोटा कुलवानपणानै खोटी आकृतिवानपणानैं अल्प आयुवानपणानैं दरिद्रीपणानैं नहीं प्राप्त होय हैं ॥ या वचनतैं सम्यक्तीका उत्पाद पृथ्वीमै नहीं है ।

प्रश्न—या श्लोकमैं पृथ्वीका नाम मात्र हू नाहीं या श्लोकतैं निषेध कैसे करो हौ।

उत्तर—प्रथम तौ यामैं नपुंसकपणाका निषेध है अर एकेंद्रीकै वेदमार्गणामै नपुंसकवेद कह्या है, दूसरां दुष्कुलका निषेध है सो ये दुष्कुल है, तीसरा विकृतिका निषेध है सो ये विकृति है चौथा दरिद्रीका निषेध है सो ये परम दरिद्री हैं, तातैं या श्लोकतैं ही निषेध है । बहुरि पृथ्वीपणानैं प्राप्त भया जीवकै सम्यक्त उत्पन्न होनेकी योग्यता भी नहीं है, क्याकि स्वामिकार्त्तिकेयजी असै लिखैं है कि;—

चदुगदिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण पज्जत्तो ।
संसारतडे णियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥३१२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी सुविशुद्धः जागरमाणः पर्याप्तः ।
संसारतटे निकटः ज्ञानी प्राप्नोति सम्यक्त्वं॥ ३१२ ॥

अर्थ—च्यारूं गतिमै भव्य होय कि च्यारूं ही गति वारै धातुचतुष्कमै तथा निगोदमै नहीं होय अर भव्य होय कि अभव्य नहीं होय, अर सैनी होय कि असैनी नहीं होय, अर सुविशुद्ध कहिये जाकै सर्व घाती प्रकृतिनिके उदयका तौ अभाव होय अर देशघाती प्रकृतिनिका मंद उदय होय असो विशेषपणे शुद्ध हुयो ए

लक्षणतैं विपरीत अशुद्ध नहीं होय, अर जाग्रत नहीं होय कि सुतो नहीं होय, अर पर्याप्त होय कि अपर्याप्त नहीं होय, अर संसारके तटके विषै निकटवर्त्ती होय कि अनंत संसारी नहीं होय, अर ज्ञानोपयोगयुक्त होय कि दर्शनोपयोगयुक्त नहीं होय; सो जीव सम्यक्तनैं प्राप्त होय है ॥ ३१२ ॥ यातैं पृथ्वीकायिककै तथा पृथ्वीजीवकै सम्यक्त होनेकी योग्यता भी नहीं है। बहुरि सर्वकी माता भी कहना बनै नाहीं, क्योंकि जाकूं किसीकी माता कहिये ताकै पतिहू बताया चाहिये, सो है नहीं। तातैं उनका किया अर्थ प्रमाणभूत नहीं जानना।

प्रश्न—ऐसैं है तौ प्रमाणभूत अर्थ होय सो तुम कहौ ।

उत्तर— हम तौ प्रथम ही मंत्रनिके अर्थ लिखनेका इनकार लिख्या है परंतु इहां तौ ऐसा अर्थ मालूम होय है कि "हे सम्यग्दृष्टे" कहिये हे सम्यग्दर्शनरूप, अर "हे सर्वमातः" कहिये अर हे सर्वकी माता, अर "हे वसुंधरे" कहिये वसु जे द्रव्य तिननैं धारनेवारी तू जो है ताकै अर्थि स्वाहा। भावार्थ—हे सम्यग्दर्शनरूप जगतकी माता छहू द्रव्यनिक स्वरूपकूं धारनेवारी दिव्यध्वनि तिहारै अर्थि स्वाहा।

प्रश्न—वसुंधरा नाम पृथ्वीका प्रसिद्ध है ताकूं त्यागि वसुंधरारूप अर्हंतकी वानी कैसैं कहौ हौ।

उत्तर—पृथ्वीकै तौ पूज्यपणौ संभवै ही नहीं, अर जिनवानीमैं यो अक्षरार्थ भी संभवै है अर पूज्यपणौ भी संभवै है तातैं ऐसा ही अर्थ उचित है। अर वसुंधरा नाम पृथ्वीका ही मानो हौ तौ जन्मकल्याणसमय इंद्रकृत स्तवनमैं लिख्या है। श्लोक,—"क्षमाग्रहणप्रधानाय नमस्ते क्षितिमूर्त्तये।" अर्थ—क्षमागुणकी है प्रधानता

ता विषैं ऐसो क्षितिमूर्त्ति तू जो है ताकै अर्थि नमस्कार होहू। तथा इंद्रकृत सहस्रनाममैं लिख्या है;—श्लोक—"क्षातिभाक् पृथ्वी-मूर्त्तिः" ।अर्थ—हे भगवन् तू क्षमाको भजवावारो पृथ्वीमूर्ति है। इत्यादि वचननितै वसुंधरारूप अरहंत भगवानकै अर्थि स्वाहा मानौ। और इहां इतनी और जाननी कि मंत्रशास्त्रकी एही रीति है कि भगवानके अनत गुण अर अनंत नाम है तिनमैंसूं जहां जैसो प्रयोजन होय वहां वैसो ही नाम चितवन करै। जैस भक्तामरसै सर्पभयनिवारणनिमित्त "त्वं नामनागदमनी०" ऐसै वरनन कियो, अर अग्नि भयनिवारणनिमित्त "त्वं नाम कीर्त्तनजलं०" ऐसैं वरनन कियो, अर रोगभयनिवारण-निमित्त "त्वत्पादपंकजरजोमृत०" ऐसै वरनन कियो, तैसैं ही इहां क्षमागुणयुक्त पुत्रका वाछा है तातै पृथ्वीरूपचितवन कियो है।

प्रश्न—नामकर्म क्रियामै मुहूर्त्तका देखना कैसै कह्या है ?

उत्तर—मुहूर्त्त देखनेकी आगममै आज्ञा है ही सो स्पष्टतर आगै लिखेंगे।

प्रश्न—याही क्रियामै द्विजोत्तमका पूजन कैसैं लिख्या है ?

उत्तर—इनिकै योग्य इनिका सत्कार है सो ही इनिका पूजन है।

प्रश्न—ये कौन है अर इनिकै योग्य सत्कारका कहा विधान है सो कहौ।

उत्तर—प्रथम तो इनिका लक्षण कहै है पीछै इनिके पूजने-का विधान कहैंगे,—

विशुद्धस्तेन वृत्तेन ततोऽभ्येति गृहीशितां।
वृत्ताध्ययनसंपत्त्या परानुग्रहणात्क्षमः ॥ ७५ ॥

प्रायश्चित्तविधानज्ञः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् ।
गृहस्थाचार्यतां प्राप्तस्तदा धत्ते गृहीशितां ॥७६॥

अर्थ—त्या पूर्वोक्त आचरण करि विशेषपणै शुद्ध होय ता पीछै "गृहीशिता अभ्येति" कहिये गृहस्थनिका स्वामीपणानै प्राप्त होय है ॥७५॥ अर वृत्तकी अर अध्ययनकी संपत्तिकरि पर जीवनि प्रति अनुग्रह करवामैं समर्थ होय है अर प्रायश्चित्तकी विधिको ज्ञाता होय अर श्रुतिस्मृतिपुराणको वेत्ता होय सो गृहस्थाचार्यपणानैं प्राप्त होय है तदि गृहस्थनिका स्वामीपणानैं धारण करै है ॥ ७६ ॥

तथा गुणतालीसमा पर्वमैं,—

वर्णांतः पातिनो नैते मंतव्याः द्विजसत्तमाः ।
व्रतमंत्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः ॥ ३० ॥
वर्णोत्तमानिमान् विद्मः क्षांतिशौचपरायणान् ।
संतुष्टान्प्राप्तवैशिष्ट्यानक्लिष्टाचारभूषणान् ॥ ३१ ॥

अर्थ—ए द्विजसत्तम जे है ते तीन वर्णके अंतमैं प्राप्त भये नहीं मानवे योग्य है, क्योंकि व्रत अर मंत्र अर संस्कारका धारण करवातै गौरव है कि वर्णोत्तम है ॥ ३० ॥ अर क्षमामैं अर शौचमै परायण अर संतुष्ट अर सर्व गृहस्थनिमै पायो है विशेषपणू जिननै अर पुन्यरूप आचरण ही है आभूषण जिनकै ऐसे ये वर्णोत्तम जे है तिननैं जाणबो योग्य है ॥ ३१ ॥ भावार्थ—पूर्वैं कहे जे सम्यक्त्वपूर्वक गृहस्थनिके योग्य अणुव्रत तिन करि विशेषपणैं शुद्ध होय सो गृहस्थनिमै श्रेष्ठ है, अर व्रतकी अर अध्ययनकी सपत्ति करि परजीवका उपकार करवामै समर्थ होय, अर प्रायश्चित्तकी विधिनं श्रुतिनैं स्मृतिनैं पुराणनैं जाणतो होय सो गृहस्थाचार्यपणानें पावै

है सो ही गृहस्थीनिको स्वामी है। अर तीन वर्ण तौ आदिनाथस्वामी स्थापन किये अर ब्राह्मणनिकूं भरतजी स्थापन किये तातैं पीछैं भये हैं तौ हू इनिकूं पीछै होनेतैं न्यून नही जानना अर व्रत मंत्र संस्कारका संयोगतैं वर्णोत्तम जानना, क्योकि ये क्षमा शौच संतोष पापरहित आचरण करि विशेषरूप है।

इहां प्रश्नरूप श्लोक कहै हैं, सो;—

स्याद्दारेका च षट्कर्मजीविनां गृहमेधिनां।
हिंसादोषोऽनुषंगी स्याज्जैनानां च द्विजन्मनां ॥४३॥

अर्थ—इहां कथंचित प्रश्न है कि जैनी द्विजन्मा षट्कर्मकरि जीवनवारे गृहस्थ जे हैं तिनकै भी हिंसादोष तौ सहगामीहै।

उत्तररूप;—

इत्यत्र ब्रूमहे सत्यमल्पसावद्यसंगतिः।
तत्रास्त्येव तथाऽप्येषां स्याच्छुद्धिः शास्त्रदर्शिता ॥४४॥
अपि चैषां विशुद्ध्यंगं पक्षचर्या च शोधनम्।
इति त्रितयमस्त्येव तदिदानीं विवृण्महे ॥ ४५ ॥

अर्थ—उत्तर;—इहा या प्रकार कहिये है कि तिन गृहस्थनिकै विषै अल्पहिंसाकी संगति सत्यपणै है ही तथापि इनिकै प्रथम तौ आगममै दिखाई शुद्धि है ॥ ४४ ॥ अर और भी इनिकै पक्ष अर चर्याको सोधन है सो शुद्धिताको अङ्ग है, या प्रकार तीनूं ही शुद्धि हैं सो अब बरनन करिये है ॥ ४५ ॥

तत्र पक्षो हि जैनानां कृत्स्नहिंसाविवर्जनम्।
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यैरुपबृंहितम् ॥ ४६॥

अर्थ—तिनमैं निश्चयकरि जैनीनिकै समस्त हिंसाको विशेषपणै वर्जन है यो तो पक्ष है, अर सर्व जीवमात्रमै मैत्रीभाव अर गुणाधिकमैं प्रमोदभाव अर दुःखितमै भुःखितमै कारुण्यभाव अर विपरीतमार्गीमैं माध्यस्थभाव जे हैं तिनकरि वा पक्ष वर्धित है ॥ ४६ ॥

चर्या तु देवतार्थं वा मंत्रसिद्ध्यर्थमेव वा ।
औषधाऽऽहारकृत्यै वा न हिंसामेति चेष्टितम ॥ ४७ ॥

अर्थ—चर्या ऐसी है कि देवताकै अर्थि अथवा मत्रसिद्धिकै अर्थि अथवा औषधिकी अर आहारकी सिद्धिकै अर्थि हिंसानै नहीं प्राप्त होय ऐसी चेष्टा करै है ॥ ४७ ॥

तत्राकामकृते शुद्धिः प्रायश्चित्तैर्विधीयते ।
पश्चाचात्मान्वयं सूनौ व्यवस्थाप्य गृहोज्झनम् ।४८।

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार पक्षकूं धारण करता अर च्यारूं भावनानैं भावता अर यत्नाचारतैं चर्या करतां प्रमदाकृत दोष होवता संतां प्रायश्चित्तनिकरि शुद्धि करै है, ऐसै कालनै वितीत करि पीछ अपना वशनैं पुत्रकै विषै समस्तपणै स्थापन करि गृहको त्याग करै है तातैं हिंसालेप नहीं है ॥ ४८

प्रश्न—इनका लक्षण तौ जान्या परंतु इनके पूजनका विधान भी कहौ।

उत्तर—जा समय भरतचक्री दिग्विजयकरि अयोध्यामे आय जिनेन्द्रको महामहनामा पूजनको बिधान करनू विचार्‌यो ता समय विचार करै है। सो अड़तीसमां पर्वमै,—

नानगारा वसून्यस्यात् प्रतिगृह्णंति निःस्पृहाः ।
सागारः कतमः पूज्यो धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ—निर्वांछक मुनीश्वर तौ हमतैं द्रव्य नहीं ग्रहण करैं, अर कौन सो गृहस्थी हमतैं धन धान्य आदि समृद्धिकरि पूज्य है ॥ ७ ॥

येऽणुव्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम् ।
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वस्तुवाहनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो गृहस्थनिकै मध्य अग्रगामी धीर्यवान अणुतव्रके धारक है ते हम जे है तिनकरि वांछित वस्तु वाहननि करि तृप्त करिबे योग्य हैं ॥ ८ ॥ भावार्थ—इहां विचार कीया तहां तौ धन धान्य समृद्धि वस्तु वाहन आदि वांछित देने करि तृप्ति करि पूज्य कहे, ता पीछै देशांतरतै सर्व लोकनिकूं बुलाये अर वै आये तिनकी परीक्षानिमित्त चक्री मार्गनै हरित अंकुरनि करि व्याप्त करायो तदि जो व्रती थे ते तौ दूरि ही तिष्ठे अर जे व्रती नहीं थे ते अंकुरनिकूं खूंदते आये, पीछै चक्री दूसरे मार्ग होय व्रतीनिकूं बुलाये अर उनकूं दूर तिष्ठनेका कारण पूछ्या तदि वा कह्यो कि हरित अंकुरनिमै भगवान सर्वज्ञ देव निगोतराशि कहीहै तिनका घात होनेके भयतै हम वहां ही तिष्ठे थे।

इति तद्वचनात्सर्वान् सोऽभिनंद्य दृढव्रतान् ।
पूजयामास लक्ष्मीवान् दानमानादिसत्कृतैः ॥ २० ॥

अर्थ—या प्रकार वा धर्मरूप वचनका सुनवातैं वो लक्ष्मीवान चक्री जो है सो सर्व ही दृढव्रतीनिनैं सराह करि दान मान आदि सत्कार करि पूजत भयो ॥ २० ॥ भावार्थ—इहां भी दान मान सत्कार करि ही पूजे लिखे तातैं सम्यग्दृष्टी देशव्रती जे हैं ते ही तो वर्णोत्तम गृहस्थाचार्य हैं अर ते ही धन धान्य वाहन वस्त्राभरण करि पूजने योग्य हैं।

अर समानदत्तीका लक्षणमैं;—

समानायात्मनाऽन्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥ ३८ ॥
समानदत्तिरेषा स्यात्पात्रे मध्यमतामिते ।
समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्त्या श्रद्धयाऽन्विता ॥ ३९ ॥

अर्थ—इहां समानदत्तीकै विषै क्रिया मत्र व्रतादिकनि करि आपकै समान और निस्तारक उत्तम जे है तिनकै अर्थि पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना है ॥ ३८ ॥ अर समान प्रतिपत्तिरूप प्रवृत्तिकरि श्रद्धाकरि संयुक्त या समानदत्ती मध्यमपणानै प्राप्त भये असे पात्र जे हैं तिनकै अर्थि है ॥ ३९ ॥ भावार्थ—जो गृहस्थनिमैं उत्तम क्रिया मत्र व्रत आदि करि आपकै समान है ताहि वैभवमैं समान करनेके अर्थि समानपणाकी रीति करि श्रद्धा विनय संयुक्त पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना है सो समानदत्ती है, सो समानदत्ती सम्यग्दर्शनसंयुक्त गृहस्थ योग्य व्रतके धारक पुरुषनिकै अर्थि योग्य है ।

तथा चालीसमा पर्वमै,—

परिहार्यं यथा देवगुरुद्रव्यं हितार्थिभिः ।
ब्रह्मस्वंभी तथा भूतं न दंडार्हस्ततो द्विजः ॥२००॥

अर्थ—जैसै देवद्रव्य अर गुरुद्रव्य जो है सो हितका अर्थीनिकरि त्याग करवे योग्य है, तैसैं ही ब्रम्हस्वंभी त्याग करवे योग्य है, तातै आगमप्रमाण आचरण करतो द्विज जो है सो दंडकै योग्य नहीं है ॥ २०० ॥

तथा चालीसमा पर्वमैं;—

सर्वः प्राणी न हंतव्यो ब्राह्मणस्तु विशेषतः ।
गुणोत्कर्षापकर्षाभ्यां वधेऽपि द्व्यात्ममतता ॥१९४॥

अर्थ—सर्व प्राणी नही मारबे योग्य है अर ब्राह्मण विशेषपणै नही मारबे योग्य है क्योकि गुणका अधिक न्यूनपणा करि हिंसाकै विषै भी द्विविधपणू मान्य है ॥ १९४ ॥ भावार्थ—सम्यग्दर्शनपूर्वक क्रिया कहिये विधान अर मंत्र कहिये परमेष्ठीके नाम गुण वाचक शब्द अर व्रत कहिये आचरण अर प्रायश्चित्तादिक विद्या अर परिणामनिमैं उदासीनता इत्यादि गुणनि करि संयुक्त गृहस्थ जो है सो द्विजोत्तम गृहस्थाचार्य है, अर सो ही मध्यमपात्र है, ताहि देखत प्रमाण खड़ा होना उच्च आसन देना पृथ्वी धन धान्य गृह वस्त्र आभूषण वाहन आहार औषधि पुस्तक अभय आदि उनकै वांछित पदार्थ अपनी सामर्थ्यपूर्वक विनय करि देना है सो ही इनका पूजनविधान है, अर ये दानपात्र है तातै इनका द्रव्य ग्रहण करनेका निषेध किया है, अर क्रिया मंत्र व्रत विद्यायुक्त है तातै अवध्य अदंड्य कह्या है; इत्यादि इनका वरनन बहुत बहुत लिख्या है परन्तु नमस्कार करना नही लिख्या तातै नमस्कार नही करै; क्योकि कुंदकुंदाचार्यजीका वचन दर्शनपाहुडमै अैसाहै;—

असंजदं ण वंदे वत्थविहीणोवि सो ण वंदिव्वो ।
दुण्णि वि हुंति समाणा एगोवि ण संजदो होदि । २६
असंयतं न वंदेत वस्त्रविहीनोऽपि सः न वंद्येत ।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकोऽपि न संयतः भवति ।२६।

अर्थ—असंयमीकूं नही वंदिये, वहुरि भावसंयम नहीं होय अर वस्त्ररहित होय सो भी वंदिवे योग्य नही है, क्योकि ये दोऊ ही

संयमरहित हैं उनिमें एक भी संयमी नहीं है । भावार्थ—भावसंयमरहित तथा द्रव्यलिंगी मुनि है सो भी वंदवे योग्य नहीं है ॥ २६ ॥

प्रश्न—बाह्य भेष दिगम्बर शुद्धचर्या दीखै अर अंतरंग संयमहीन होय मिथ्यात्वी होय तिनका देखत प्रमाण द्रव्यलिंगीपणाका अर भावलिंगीपणाका निश्चय कैसैं होय अर निश्चय हुआ विना नमस्कार करै कि नहीं करै ।

उत्तर—गृहस्थनिकूं व्यवहार ही सरण कह्या है तातै बाह्य चर्या शुद्धि देखि वंदना करो, परंतु इहां अभिप्राय ऐसा जानो कि उनकी बाह्य क्रियातैं अंतरंग असंयम जानो ता पीछै वंदना मति करो। अर वस्त्ररहित परमहंसादिकनिकूं भी वंदना मति करो।

प्रश्न—इनिकै तौ देशसंयम है यातै असंयमी नहीं है तातैं नमस्कार योग्य हैं ।

उत्तर—सूत्रपाहुडमैं वंदवे योग्यको लक्षणरूप;—

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरदो वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११ ॥
यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि ।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥ ११ ॥

अर्थ—जो दिगंबर मुद्राका धारक मुनि इंद्रिय मनका तौ वसि करना अर छह कायके जीवनिकी दया करना ऐसे संयम करि तौ सहित होय, समस्त गृहस्थनिके समस्त आरंभनिकै विषै तथा बाह्य अभ्यंतर परिग्रहकै विषै विरक्त होय कि तिनमैं नहीं प्रवर्त्तै अर "अपि" शब्दतैं दशलक्षणधर्मकरि युक्त होय सो देवदानवनिकरि सहित मनुष्य लोककै विषैं वंदवे योग्य है । भावार्थ—अन्यभेषी

आरंभपरिग्रहादि करि संयुक्त पाखंडी है ते वंदिवे योग्य नहीं हैं ॥११॥

सो ही उत्तरपुराणसंबंधी वर्द्धमानपुराणमैं;—

इति तद्भाषितं श्रुत्वा वरिष्ठःश्रावकेष्वहं ।
नान्यलिंगिनमस्कारं कुर्वे केनापि हेतुना ॥ २७८ ॥
स्याद्वैमनस्यं तेऽवश्यं तदभावे भिमानिनः ।
इति श्रेष्ठ्याह तच्छ्रुत्वा तं (?) सद्भावमब्रवीत् ॥२७९॥

अर्थ—या प्रकार तापसीको वचन सुनि सेठ कहत भयो कि मैं श्रावकनिमैं श्रेष्ठ हूं यातैं कोऊ हेतु करि भी अन्यलिंगीनै नमस्कार नही करूं । अर नमस्कारका अभावमैं अभिमानी तुम जो हौ तिनकै विमनस्कपणौ होय या प्रकार सेठ कहत भयो तानैं सुणि वा सेठ प्रति तापसी सांचो भाव कहत भयो ॥ २७८–२७९ ॥ या वचनतैं उत्तमपुरुषनिकी प्रवृत्ति ऐसी ही जाननी ।

तथा संयतीका लक्षणरूप;—

पंचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तीहि जो स संजदो होदि ।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ।२०।

पंचमहाव्रतयुक्तः त्रिभिः गुप्तिभिःयःसःसंयतःभवति।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गःसः भवति खलु वंदनीयः च ॥२०॥

अर्थ—जो मुनि पंचमहाव्रत करि युक्त होय अर तीन गुप्ति करि संयुक्त होय सो संयत है कि संयमवान है, सो ही निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है, सो ही प्रकटपणैं निश्चयकरि वंदवे योग्य है । भावार्थ—और कोऊ वंदवे योग्य नहीं है ॥ २० ॥

इत्यादि लक्षण वंदवे योग्य अर नही वंदवे योग्यका अष्टपा-

दूरिकरि यथार्थग्रंथनितैं सदाकाल अनुभवकरि श्रद्धान शुद्ध करो।

प्रश्न—ऐसैं है तौ प्रत्यक्ष मिलापमैं जैसैं वर्त्तमान देश कालमैं मुजरो जुहार सलाम नमस्कार धोक आदि अनेक शब्द प्रवर्तें हैं तैसैं इन मार्गीनिके मिलापमैं कहा योग्य है।

उत्तर,—

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया [1] इच्छणिज्जाय।१३।
अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ताः।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छनीयाः च।१३।

अर्थ—जे दिगम्बर मुद्रा सिवाय अवशेष लिंगी कहिये उत्कृष्ट श्रावकका तथा आर्यिकाका लिंगयुक्त हैं अर सम्यग्दर्शनज्ञानकरि संयुक्त हैं ते इच्छाकार करने योग्य कहे हैं। भावार्थ—सम्यक्ती व्रती जे हैं तिनकूं "इच्छामि" कहो अर इनके ही नाम गुणनिकी न्यूनाधिकतातैं गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ हैं तिन सबनिकूं "इच्छामि" ही करना योग्य है ॥१३॥

प्रश्न— या ही क्रियामैं घटपत्रविधान लिख्या है सो कहा है।

उत्तर— भगवानके एक हजार आठ नाम जे हैं तिननैं भिन्न भिन्न पत्रनिमैं लिखि पत्रनिनै समेटि सर्व पत्र एक घटमैं स्थापन करै अर एक हजार सात तौ कोरा पत्र समेटि लेवै अर एक पत्रमैं "कुमार" इतना ही अक्षर लिखि समेटि लेवै पीछैं कुमारका नाम युक्त पत्रनैं कोरा पत्रकै सामिल करि एक घटमैं स्थापन करै पीछैं

1 षट्प्राभृतादिसंग्रह नामक मुद्रित ग्रंथमें "इच्छणिज्जा य" इसकी संस्कृत छाया "इच्छाकारयोग्याः" इस प्रकार है।

अज्ञात बालकके हाथतैं दोऊ घटनिमैंतै पत्र साथि साथि निकसावै तिनमैं जो कोरा पत्रकै साथि नाम निकसै सो सो तौ भिन्न मेलतो जावै अर "कुमार" का पत्रकै साथि जो नाम निकसै सो कुमारको नाम स्थापन करै याको नाम घटपत्रविधान है।

प्रश्न—विवाह क्रियामैं अग्नित्रयका पूजना कह्या है सो कैसै है।

उत्तर—या प्रश्नका उत्तररूप वचन जिनसेनजीनै ही गुणतालीसमा पर्वमें लिख्या है;—

न स्वतोऽग्नेः पवित्रत्वं देवतारूपमेव वा।
किं त्वर्हद्दिव्यमूर्त्तित्वसंश्रयात्पावनोऽनलः ॥८७॥
ततः पूजांगतामस्य मत्वाऽर्चंति द्विजोत्तमाः।
निर्वाणक्षेत्रपूजावत्तत्पूजातो न दुष्यति ॥८८॥

अर्थ—अग्निकै स्वतै पवित्रपणू भी नही है अर देवतारूप भी नहीं है तौ कहा है ? उत्तर—अर्हन्तकी दिव्यमूर्त्तिका आश्रयतै अग्नि पवित्र है ॥८७॥ तातै या अग्निकै पूजाको अंगपणूमानि द्विजोत्तम पूजै है यातै निर्वाणक्षेत्र पूजाकी नाईं अग्निकी पूजा दूषित नहीं है, या वचनतै जैसै सिद्धक्षेत्रमै सिद्ध भयेनिकूं पूजिये है तैसैं अग्निमै परमेष्ठीवाचक मंत्रनिकरि आहुति करना योग्य है।

प्रश्न—चक्रलाभ क्रियामैं तौ निधिनिनैं अर रत्ननिनैं पूजना कह्या है, अर साम्राज्यक्रियामैं दिव्यास्त्र देवता विधानतै आराध्य कह्या सो कैसै है।

उत्तर—प्रथम तौ इनिका स्वरूप समझ्या चाहिये सो सुनो कि दिव्य अस्त्रनिके अधिष्ठाता देव तौ भवनत्रिकमैंरा गद्वेषयुक्त हैं अर चक्रीके सेवक हैं। अर रत्न जीव अजीव भेद करि दोय प्रकार हैं तिनके नामका,—

चक्रातपत्रदंडासिमणयश्चर्मकाकिणी ।
चमूगृहपती भारवयोषित्तत्पुरोधसः ॥ ८४ ॥

अर्थ—चक्र १ छत्र २ दंड ३ खड्ग ४ मणि ५ चर्म ६ काकिणी ७ सेनापति ८ श्रेष्ठी ९ हस्ती १० अश्व ११ स्त्री १२ सिलावट १३ पुरोहित १४। इनिमें सात तौ अचेतन पुद्गल द्रव्य है अर दोय तिर्यंच हैं अर पुरुष हैं ते सेवक हैं अर येक स्त्री, है इनिमैं पूज्य पदस्थ लायक कौन है मिथ्यादृष्टीनिकै भी कहू पूज्य संभवै नाही ।

अर निधिनिके नामका;—

कालाख्यश्च महाकालो नैसर्पः पांडुकाह्वयः ।
पद्ममाणवपिंगाब्जसर्वरत्नप्रदादिकाः ॥ ७३ ॥

अर्थ—काल १ महाकाल २ नैसर्प ३ पाडुक ४ पद्म ५ माणव ६ पिंग ७ अब्ज ८ (अब्जकूं ही शंख कहे हैं) सर्वरत्नप्रद ॥ ७३

निधयो नव तस्यासन्प्रतीतैरिति नामभिः ।
यैरयं गृहवार्त्तायां निश्चितोऽभून्निधीश्वरः ॥ ८४॥

अर्थ—या चक्रीकै नवनिधि होत भई ते इनि नामनिकरि प्रतीत में आई तिनकरि यो निधीश्वर गृहवार्त्ताकै विषै निश्चित होत भयो ॥ ७४ ॥

या वचनतै गृहसंवधी कार्यके करनेवारे मनुष्यनिकै समान सेवक हैं तातैं इनिकै भी चक्रीकरि पूज्यपणू नही संभवै । ता सिवाय ये क्रिया सम्यग्दृष्टीके करनेकी है ऐसा हुकम तौ अहतीसमा पर्वमै है;—

ताश्च क्रियाः त्रिधाम्नाताः श्रावकाध्यायसंग्रहे ।

सद्दृष्टिभिरनुष्ठेया महोदर्काः शुभावहाः ॥ ५० ॥

अर्थ—वै क्रिया जे है ते गर्भान्वय दीक्षान्वय कर्तृन्वय नाम करि तीन प्रकार श्रावकाध्यायसंग्रह नामा आगमकै विषै आम्नायरूप करी है सो महान उदयकी करता शुभफलकी दाता सम्यग्दृष्टीनिकरि अनुष्ठान करने योग्य हैं ॥ ५० ॥

अर सम्यग्दृष्टीकूं समंतभद्रस्वामी असा हुकम देवै है;—

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ५१ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जो है सो भयतै आशातै स्नेहतै लोभतै कुदेव कुआगम कुलिंगी जे है तिनकूं प्रणाम अर विनय नही करै ॥ ५१ ॥ सो ये कुदेव हैं क्योकि देवका लक्षण दोषरहित किया है अर ये रागद्वेषादि दोषनि करि सहित है तातैं वंदवे योग्य नही हैं, तथा दीक्षान्वयक्रियामैं क्रूरदेव त्याज्य कहे हैं अर ये क्रूर हैं ही क्योकि क्रूर शब्द भी द्वेषका पर्यायवाची है तातै भी वंदबे योग्य नहीं हैं।

तथा गणग्रहक्रियामै औसै लिखै है;—

निर्दिष्टस्थानलाभस्य पुनरस्य गणग्रहः ।
स्यान्मिथ्यादेवताः स्वस्माद्विनिःसारयतां गृहात् ॥४५॥

अर्थ—दिखायो है स्थानलाभ जाकै ताकै फेर गणग्रहण होय है तहां क्रियाकै विषै अपने घरतैं मिथ्यादेवतानै वाहिर निकाशै ॥ ४५ ॥

इयंतं कालमज्ञानात् पूजिताः स्थ कृतादरं ।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः ॥४६॥

अर्थ—अर असैं कहै कि इतना काल अज्ञानतातैं आदरपूर्वक

तुमनैं पूजे, अब आगामीकालमैं हम जे हैं तिन करि हमारे सिद्धान्त-मैं जिनकूं देव संज्ञा है ते पूज्य हैं ॥४६॥

ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यतां ।
इति प्रकाशमेवैता नीत्वाऽन्यत्र क्वचित्त्यजेत् ॥४७॥

अर्थ—तातैं ईर्षाकरि तथा क्रोध करि तौ पूरी पड़ौ अर औरनिके घरमैं इच्छापूर्वक तिष्ठो, या प्रकार प्रकट जैसैं होय तैसै कहि इननें उठाय और कोऊ स्थानमैं त्यजै ॥ ४७ ॥

गणग्रहः स एषः स्यात्प्राक्तनं देवतागणं ।
विसृज्यार्चयतः शांता देवताःसमयोचिताः॥ ४८ ॥

अर्थ—सो यो गणग्रहण विधान है तानैं अंगीकार करि प्राक्तन देवतागणनैं विसर्जन करि सिद्धातमैं उचित शांतरूप देवता जे हैं ते पूजै ॥ ४ ॥

या वचनतैं सिद्धातमैं उचित अर शांतरूप देव जे हैं ते पूज्य हैं। ता सिवाय अन्य प्रकरणमै आराध्यशब्द नमस्कारादिवाची ही नहीं है, ये शब्द सामान्यपणैं अपणानेका वाची है; क्योंकि गोमटसारकी टीकामैं उपासकाध्ययन अंगका व्याख्यानमै लिखै हैं कि—

"आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीत्युपासकाः,, याका अर्थ ऐसा हैं कि आहार आदि दान करि अर नित्यमह आदि पूजनविधान करि संघनै आराधन करै है। तातैं विचारनैंकी वार्त्ता है कि संघमै मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका च्यारूं हैं अर साधर्मी श्रावकनिकूं इच्छामि करनेका हुकम है, तातैं केवल नमस्कारादि करना ही नहीं जानना, सामान्यपणैं अपणेश करनेका नाम जानना ।

प्रश्न—अक्षरार्थ तौ ऐसा ही करै है परंतु कहै हैं कि भवनत्रिकमै भी जे जिनशासन हैं ते क्रूर भी नही है अर शांत भी है अर समयोचित भी है तातै पूज्य हैं।

उत्तर—शांतता अर क्रूरता तौ उनके स्तोत्रनिके सुननेतै तथा प्रतिबिंबनिके देखनैतै प्रकट ही बाल गोपालनिकै निश्चय होय है जिनकै वस्त्राभरण अंगराग गंधमाल्य वाहन खड्ग त्रिशूल चक्र आदि विद्यमान हैं ते रागतैं अर द्वेषतै भिन्न कैसै मानै जायं तथा रागद्वेष नही होय तौ व्रती संयमी शीलवाननिकी सहायता अर धर्मद्रोहीनिका तिरस्कार कैसैं करै, इत्यादि चर्याके देखनेतैं रागीद्वेषीपणा निश्चय होय है; तातै भवनत्रिकमै देव शांत नही हैं क्रूर ही है, अर शांतता नही हैं क्रूरता है तहां पूज्यता नही हैं, पूजकता ही है।

प्रश्न—शुभराग तौ सरागचारित्रके धारक मुनीश्वरनिकै भी है तातै वै भी अपूज्य हैं कहा।

उत्तर—देवनिके रागमै अर मुनीश्वरनिके रागमैं बड़ा अन्तर है, क्योकि देवनिका राग तौ निरंतर विषय भोगनिमैं प्रवर्त्तै है अर मुनीश्वरनिका राग संयमके उपकरणनिमैं कदाचित् किंचित् प्रवर्त्तै है; तातै देवनिकूं तौ राग द्वेष करि मलीमस कहै है अर मुनीश्वरनिकूं वीतराग कहै हैं। अर रागद्वेषरूप परणति धरणेंद्रादिकनिकी भई ताकी तौ अनेक कथा है, अर मुनीश्वरनिमै रागद्वेषरूप परणति अभव्यसेन द्वीपायन आदिको भई तिनको गति नरक लिखी है तातै देव तौ पूजक ही हैं अर मुनीश्वर पूज्य ही है। अर समयोचित कहौ हौ तो देखो कि आदिपुराणमैं तौ क्रूरदेव त्याज्य कहे हैं अर शांतदेव पूज्य कहे सो इनिकै रागद्वेष विद्यमान है तातै

समयोचित नहीं हैं अर बोधपाहुडमें कहै है कि—गयो है मोह जातै सो देव है सो इनिकै मोह विद्यमान है तातै समयोचित नहीं हैं। अर मोक्षपाहुडमें कहे हैं कि—अष्टादशदोषविवर्जित देवमैं श्रद्धा होत संतै सम्यक्त होय है, तथा ऐसै कहै है कि—रागी देवनै वंद्यमान त्नो मिथ्यादृष्टी है सो इनिकै दोष भी विद्यमान है अर राग भी विद्यमान है तातै समयोचित नहीं हैं; तथा स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षामै कहे हैं कि—वर्जितदोष देवनै मानै सो तौ सम्यग्दृष्टी अर दोषसहित देवनै मानै सो मिथ्यादृष्टी, सो इनिकै दोष विद्यमान है तातै समयोचित नहीं हैं, तथा राजवार्त्तिकमै चत्यगुरुप्रवचन सिवाय अन्य देवताका स्तवन पूजन वदना रूप क्रियाकू मिथ्यात्वक्रिया कही तातै इनिका स्तवन पूजन वदना रूप क्रिया है सो भी समयोचित नहीं है। तातै भवनत्रिक आदि सर्वही देवनिकै समयोचितपणू भी नहीं है यातैं पूज्य नहीं है।

प्रश्न—सर्वही देवनिकू तौ अपूज्य मति कहौ अहमिंद्र तौ सदाकाल धर्मचर्चा ही करै है अर देवांगना भी नही राखै है अर एकाभवावतारी है, तातै पूज्य है।

उत्तर—पूज्य तौ बीतराग देव ही है उनकै हूं विषयानुराग विद्यमान है, सो ही आदिपुराणका एकादशम पर्वमै,—

स्वावासोपांतिकोद्याने सरःपुलिनभूमिषु।
दिव्यहंसश्चिरं रेमे विहरन् स यदृच्छया ॥१३९॥
परक्षेत्रविहारस्तु नाहमिंद्रेषु विद्यते।
शुक्ललेश्यानुभावेन स्वभोगैः धृतिमीयुषां ॥१४०॥
स्वस्थाने या च संप्रीतिर्निरपायसुखोदये।

न सान्यत्र ततोनैषां रिरिंसा परभुक्तिषु ॥१४१॥
अहमिंद्रोऽस्मि नेंद्रोऽन्यो मत्तोऽस्तीत्यात्तकत्थनाः।
अहमिंद्राख्यायाख्यातिं गतास्ते हि सुरोत्तमाः ॥१४२॥

अर्थ—वो दिव्यहंस जो है सो अपने विमानका निकट उद्यानकै विषै सरोवरनिके तटकी भूमिमें अपनी इच्छाकरि विहार करतो संतो चिरकाल रमत भयो ॥ १३९ ॥ अर अहमिंद्रनिकै विषै परक्षेत्रविहार नहीं विद्यमान है क्योंकि शुक्ललेश्याका प्रभावकरि अपने भोगनि करि भली प्रीतिकूं प्राप्त होय है ॥ १४० ॥ अर कष्टरहित सुखका उदयतैं होत संतैं जो निजस्थानमैं भली प्रीति है सो अन्य स्थानमैं नहीं है, तातैं इनिकै परक्षेत्रमैं रमवाकी इच्छा नहीं है ॥ १४१ ॥ अर हम ही इंद्र हैं और इंद्र नहीं है या प्रकार प्राप्त भयो है निजसराहनारूप अहंकार जिनकै ते ही सुरोत्तम अहमिंद्र नामकरि विख्यातिनै प्राप्त होय हैं ॥

इत्यादि वरननतैं सरागी है अर असंयमी ही है तातैं नमस्कारादि योग्य नहीं है। ता सिवाय त्रेपन क्रियानिमैं जा जीवनै छव्वीसमी क्रियामैं तौ षोडशकारण भावना भाई अर अड़तीसमी क्रियामै वाही जीवनै सिद्धनिनै ही नमस्कार किया, अर वाही जीवकै गुणतीसमी क्रियामै श्रीदेवी आदि कुलाचलनिवासिनी देव्यां तौ माताकी सेवा करी अर कुबेर छः महीना पहली रत्नवर्षादि मंगल किये, अर चालीसमी क्रियामै वोही जीव सुमेरु ऊपरि इद्रनिकरि अभिषेककूं प्राप्त भयो; अर वाही जीवकै छियालीसमी क्रियामैं तौ चक्रका तथा निधिनिक तथा रत्ननिका पूजना कहै है अर सैतालीसमी क्रियामै दिव्यास्त्रदेवनिका आराधन करना कहै है सो कैसें

संभवै, क्योंकि तीर्थंकरकूं तौ वै भी त्रिलोकनाथ परमेश्वर सकल परमात्मा कहै हैं; अर इनिकै पूज्य चक्र निधि रत्न दिव्यअस्त्र देव भये तब ये तौ निकल परमात्मा सिद्ध जे है तिनकै समान सर्वोत्तम ठहरे अर तीर्थंकर सामान्य मनुष्य समान ठहरे। इहां भी वै कहै हैं किहमारे मनसैं तौ कहै ही नही है मूल ग्रंथमै लिखे है ताकूं अन्यथा कैसैं करै।

उत्तर—शब्दका अक्षरार्थ उनके ज्ञानमैं दीख्या ताहीकूं तौ सत्य कहै है अर परंपरा संप्रदायके अर्थतै महान विरुद्धता होय है ताकूं नहीं गिनै है, अर तीन लोकके समस्त जीवनिकरि पूज्य तीर्थंकरनिकूं भी नीच देवनिके पूजक कहै है, ऐसा अर्थ कोऊ हिंदू मुसलमानके मुखतै नही सुन्या कि वाहींकूं तौ समस्तजगतकै पूज्य कहै अर वाहीकूं नीच देवनिका पूजक कहै, तातै तुमतौ ऐसे कहन-वारे पुरुषनिकी संगति मतिकरो अर उनसे विसंवाद भी मतिकरो उनसै तौ मध्यस्थ भाव ही राखो याहीमै कल्याण है, हम तौ तुमारे ताईं धर्मा त्मा सम्यग्दृष्टी प्रथम भूमिकानै प्राप्त भया जानि कहै है कि जाकै पांचूं इंद्रिय अर छठा मन संबंधी विषयनिके सेवनेका भी प्रमाण नाहीं भया अर पांचूं थावर अर छठा त्रसके घातका भी त्याग नाहीं भया केवल साँचा देवगुरुशास्त्रका श्रद्धानी भया ताके लक्षण कुंदकुं-दाचार्य आदि ऋषीश्वरनिके सुनाय श्रद्धान शुद्ध करानेका उद्यम किया है तातै कहै हैं कि—इन क्रियानिमै जो "पूजयित्वा" शब्द है तथा ऐसैं ही अन्य प्रकरणमै "पूज्य-संपूज्य-पूजयित्वा-पूजां चकार-पूजनीय" इत्यादि शब्द होय तथा पूजावाची अन्य शब्द होय तहां भी पूजा नाम सत्कारका ही जानना। जैसैं आदिपुराणके पैंताळी सभा पर्वमैं,—

इति प्रश्रयणीं वाणीं श्रुत्वा तस्य निधीश्वरः ।
तुष्टया संपूज्य पूजाविद्वस्त्राभरणवाहनैः ॥ ५३३ ॥
दत्त्वा सुलोचनायैव तद्योग्यं विससर्ज तं ।
महीं प्रियमिवालिंग्य तं प्रणम्य ययौ जयः ॥ ५३४ ॥

अर्थ—पूर्वोक्तप्रकार अकंपन महाराजाका जयनामा दूतकी हर्षकारी वाणी सुणि करि पूजाको जाननवारो चक्री हर्ष करि वस्त्राभरण वाहन करि वा दूतनै भले प्रकार पूजि ॥ ५३३ ॥ सुलोचनाकै अर्थि वाकै योग्य देय अर वा दूतनै विदा कियो सो दूत प्रियाकी नांई पृथ्वीनै आलिंगन करि चक्रीनै नमस्कार करि जात भयो ॥ ५३४ ॥

या वचनतैं दूतका पूजना दीखै है सो दूतका चक्री करि पूजना संभवै नाही तातैं सत्कार ही अर्थ करिये है। तथा उत्तरपुराणसंबन्धी शांतिनाथपुराणमैं;—

दृष्टवंतौ खगाधीशं यथौचित्यं प्रतुष्य सः ।
संभाष्य सामवाक्सारैः पूजयित्वा दिने परे ॥४६३॥
अङ्गहारैः सकरणैः रसैर्भावैर्मनोहरैः ।
नृत्यं तयोर्विलोक्याऽऽससम्मदः परितोषदः ॥ ४६४॥

अर्थ—दमितारि नामा प्रतिनारायणकै निकट होणहार बलदेव नारायण नृत्यकारिणीको भेषधारि नृपमंदिरमै प्रवेश करि दमितारि नामा खगाधीशनैं यथायोग्य देखत भये, अर वो दमितारि हर्षित होय सारभूत साम्यवचन करि बतलाय दूसरै दिन इनि दोऊनिको नृत्य इंद्रियनिसहित अंगहारकरि तथा मनोहर रसभावकरि हर्षको उपजावनवारो देखि पायो है आनंद जानै असो नरपति वा नृत्यका-

रिणीका युगलनैं पूजि अर बोलत भयो ॥ ४६३–४६४ ॥

इहां नृत्यकारिणीनिकूं पूजना कह्या है सो सम्भवै नाहीं, तातै सत्कारपूर्वक इनाम देना ही अर्थ जानना। अर आराधनशब्दका भी अंगीकार करना ही भाव अर्थ जानना, क्योंकि पंचपरमेष्ठी-सिवाय अन्यका पूजना आगममें निषेध्या है।

प्रश्न—पंचपरमेष्ठी सिवाय रत्नत्रय दशलक्षण आदिका भी पूजना योग्य है कि नहीं।

उत्तर—रत्नत्रयादिक पंचपरमेष्ठीतै भिन्न पदार्थ नहीं हैं. पंचपरमेष्ठीके ही निजस्वभावरूप गुण हैं तातै रत्नत्रयादिक अनंत गुण है ते सर्व ही पूज्य है, तैसैं ही नव पदार्थनिकूं देव संज्ञा है ते सर्व पूज्य है तिनका नामका,—

इति पंचमहापुरुषाःप्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमला दिशतु बोधिं बुधजनेष्टां ॥ १॥

अर्थ—या प्रकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप तौ पंच महापुरुष अर जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जे है ते नमस्कार किया संता बुधजननिकै इष्ट निर्मल ज्ञाननै द्यो ॥१॥

चौपई—**पूज्य पंच गुरु आदिक जानि।**
षट् अनायतन त्याज्य बखानि॥
पूज्यापूज्य किये निरनीत।
आगमरीति अनौपम नीति ॥ १ ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्श-नोद्योतके प्रथमकाण्डे पूज्यापूज्यनिर्णयो नाम पंचमोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ पूज्यपूजकदिशानिर्णय लिख्यते ।

श्रीजिन श्रीगुरु परमऋषि, जिन प्रतिमा जिनग्रंथ।
सन्मुख मंगल करन हित, करन कहे निर्ग्रंथ ॥ १ ॥

प्रश्न—पूज्यापूज्यनिर्णयमैं पूज्यपणा तौ पंचपरमेष्ठीकै तथा जिनधर्मकै तथा जिनवचनकै तथा जिनप्रतिमाक तथा जिनालयकै सिद्ध भया अर इनि सिवाय कुदेवादिकनिकै अपूज्यपणा सिद्ध भया, परंतु केई पुरुष तौ पूज्यकै सन्मुख खड़ा होय पूजन करै हैं अर केई पुरुष दक्षिणभागमैं वैठि पूजन करै हैं सो आगमत कैसे योग्य है ।

उत्तर—आदिपुराणमैं केवलपूजा इंद्रकृतविधानका, श्लोक;—

अथोत्थाय तुष्ट्या सुरेंद्राः स्वहस्तैः,
जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ॥ १ ॥

अर्थ—अथानंतर प्रतीतवान कहिये सम्यग्दृष्टी सुरेंद्र जे हैं ते हर्षकरि खड़ा होय अपने हाथनिकरि जिनेंद्रके चरणनिका पूजन करते भये ॥१॥ या वचनतैं खड़ा होय पूजन करना उचित है ।

प्रश्न—या श्लोकमें 'उत्थाय' पद है तातैं तुम खड़ा पूजन करना कहो हौ सो बनै नाहीं, क्योंकि सभामैंसूं ऊठि पूजन कियो होयगो; तातैं 'उत्थाय' पद लिख्यो है ।

उत्तर—सभामैं तौ पूजन किया पाछै वैठना लिख्या है, इहां तौ दर्शन करि नमस्कार करि खड़ा होय पूजन लिख्या है ।

प्रश्न—ऐसै है तौ हू नमस्कार करि खड़ा होना जानो खड़ा रह पूजन करना तौ नहीं सभवै ।

उत्तर—नमस्कार करि खड़ा होना अर पूजन करना तौ तुमनें मान्या अर खड़ा पूजन करना नही संभवता बताया तौ याकै बीचिमें बैठनाका वाचक और पद होय सो बताओ नही तर अंगीकार करो

तथा मूलाचारमें चतुर्विंशतिस्तवनविधानकी गाथा;—

[1]चउरंगुलंतरपादो पडिलेहिय अंजलीकयपसत्थो।
अव्वाखित्तो वुत्तो कुणदि य चउवीसत्थयं भिक्खू ७३

अर्थ—च्यार अंगुलके अंतररूप हैं पद जाके अर त्याग्यो है शरीरके अवयवनिको हलन चलन जानें (यो अर्थ चकारतैं प्राप्त भयो है) अर शरीर भूमि आसन आदिनै शोधि करि कियो है पिच्छिकासहित अंजुलीको संपुट जानैं अर प्रशस्त कहिये साम्यभावयुक्त अर अव्याक्षिप्त कहिये सर्व आकुलता रहित ऐसो भिक्षु कहिये संयमी पुरुष जो है सो चतुर्विंशतिस्तवन करै ॥ ७३ ॥

या वचनतैं अपने पगनिकै च्यार अंगुलको अंतर राखि निश्चल खडो रहि शरीर भूमि आसन आदिनैं शोधि हाथ जोड़ि साम्यभावयुक्त होय मनवचनकायकी अन्यक्रिया त्यागि चतुर्विंशतिस्तवन पूजन करै।

प्रश्न—यामें तौ स्तवन शब्द है तुम पूजन अर्थ कहातैं करौ हौ।

---

१ चतुरंगुलांतरपादः प्रतिलिख्य अंजुलीकृतः प्रशास्तः।
अव्याक्षिप्तः उक्तः करोति च चतुर्विंशतिस्तवं भिक्षुः।
इस गाथाकी संस्कृतछाया लिखित प्रतिमें नही थी। यह गाथा मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें ७५ वें नंबरकी है।

उत्तर—स्तवनका लक्षण मूलाचारमैं वट्टकेर स्वामी कह्या है सो सुनहू;—

उसहादिजिणवराणं णामणिरुत्तं गुणाणुकित्तं च ।
काऊण अच्चिदूण य तिसुद्धिपणमो थवो णेओ ॥२५॥
ऋषभादिजिनवराणां नामनिरुक्तिं गुणानुकीर्त्तिं च ।
कृत्वा अर्चयित्वा च त्रिशुद्धिप्रणामः स्तवो ज्ञेयः ॥२५॥

अर्थ—ऋषभादि जिनवर जे हैं तिनकी नामनिरुक्ति करि गुणानुकीर्त्तन करि पूजन करि मन वचन कायकी शुद्धता करि नमस्कार करै सो स्तवन जानवे योग्य है।

टीका—उसहादिजिणवराणं—ऋषभतीर्थंकर आदिर्येषां ते ऋषभादयस्ते च जिनवराश्च ऋषभादिजिनवरास्तेषां ऋषभादिजिनवराणां वृषभादिवर्द्धमानपर्यंतानां चतुर्विंशतितीर्थंकराणां । णामणिरुत्तिं-नाम्नामभिधानानां निरुक्तिर्नामनिरुक्तिस्तां नामनिरुक्तिं प्रकृतिप्रत्ययकालकारकादिभिर्निश्चयेनानुगतार्थकथनं ऋषभाजितसंभवाभिनंदनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्वचन्द्रप्रभपुष्पदंतशीतलश्रेयांसवासुपूज्यविमलानंतधर्मशांतिकुंथ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमि-अरिष्टनेमिपार्श्ववर्द्धमानाः नामकीर्त्तनमेतत् । गुणाणुकित्ति च-गुणानामसाधारणधर्माणामनुत्कीर्त्तिं च निर्दोषासलक्षणस्तुतिः, लोकस्योद्योतकराः धर्म-

तीर्थंकराः ससुरासुरेंद्रमनुष्येंद्रस्तुताः दृष्टपरमार्थतत्त्वस्वरूपाः विमुक्तघातिकठिनकर्माणः इत्येवमादिगुणानुकीर्त्तनं। काऊण–कृत्वा गुणग्रहणपूर्वकं नामग्रहणं प्रकृत्वा। अच्चिदूण य–अर्चित्वा च गंधपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतैर्द्रव्यरूपैश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलैः सुगंधैश्चतुर्विंशतितीर्थंकरपदयुगलानामर्चनं कृत्वाऽन्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेवग्रहणं। तिशुद्धिपणमो–तिस्रश्च ताः शुद्धयश्च त्रिशुद्धयस्ताभिः त्रिशुद्धिभिः प्रणामःत्रिशुद्धिप्रणामः मनोवाक्कायशुद्धिभिः स्तुतेः करणं। थओ–स्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकरस्तुतिः। नामैकदेशेऽपि शब्दस्य प्रवर्त्तनात् यथा सत्यभामा भामा, भीमो भीमसेनः। एवं चतुर्विंशतिस्तवः स्तवः। णेओ–ज्ञातव्यः। ऋषभादिजिनवराणां नामनिरुक्तिं गुणानुकीर्त्तिं च कृत्वा अर्चित्वा च योऽयं मनोवचनकायशुद्ध्या प्रणामः सः चतुर्विंशतिस्तव इत्यर्थः॥ २५॥

अर्थ—नामनिरुक्ति कहिये प्रकृति प्रत्यय काल कारक ये च्यारू व्याकरणके अंग हैं इनिकरि निश्चयकरि यथावत नामका अर्थको जो कथन सो नामनिरुक्ति है, सो ही नामकीर्त्तन है सो ऐसैं- ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ,पुष्पदंत,शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति,

कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, वर्द्धमान, यो नामकीर्त्तन है। अर गुणानुकीर्त्तन कहिये अन्य देव दानव मनुष्यनिमैं नहीं संभवै औसे असाधारण धर्मनिका अनुकीर्त्तन, सो निर्दोष आप्तका लक्षणसंयुक्त स्तुति है सो औसैं—लोकका उद्योत करनवारा (भावार्थ—लोकका यथावत स्वरूप दिखावनवारा) अर धर्मतीर्थका करता अर देवनि सहित देवेंद्रनिकरि तथा मनुष्येंद्रनिकरि स्तुतिरूप कीए अर देख्यो है परमार्थरूप तत्त्वस्वरूप जानैं अर विशेषपणै त्यागे हैं घातिया कठिन कर्म जानैं, या प्रकार इत्यादिक गुणनिको कीर्त्तन करि गुणग्रहणपूर्वक नामग्रहण प्रकर्षपणैं करि गंधपुष्प धूप दीप आदि प्रासुक, अर दूरि भयो है मलपटल जिनतैं अर सुगंधित अर दिव्य औसे ल्याये जे द्रव्यरूप तथा भावरूप द्रव्य तिनिकरि चतुर्विंशति तीर्थकरनिके चरणयुगलको पूजनकरि (इहां और देवादिकनिको शास्त्रमैं हुकम नहीं है तातै तीर्थकरनिको ही ग्रहण है) अर त्रिशुद्धिप्रणाम कहिये मन वचन कायकूं शुद्ध करि स्तुतिका करना सो स्तव कहिये चतुर्विंशतितीर्थकरस्तवन है, क्योंकि नामका एकदेशमैं भी सर्वोदेश शब्दको प्रवर्त्तन होय है। तातैं जैसैं भामा शब्दतैं सत्यभामा अर भीमशब्दतैं भीमसेन ग्रहण करिये है तैसैं ही स्तवशब्दतैं चतुर्विंशतिस्तवन है सो स्तव है औसैं 'ज्ञेयः' कहिये जाणवो योग्य है ॥ भावार्थ—ऋषभादि जिनवरनिकी नामनिरुक्तिकरि अर गुणानुकीर्त्तन करि पूजन करि मन वचन कायकी शुद्धता करि जो प्रणाम करै सो चतुर्विंशतिस्तवन है ॥ २५ ॥

या वचनतैं नाम कथन गुणानुकीर्त्तन पूजन प्रणाम ये च्यारूं ही स्तवनके अंग हैं तातैं स्तवनका विधान है सो ही पूजनका विधान है यातैं खड़ा रहि करि ही पूजन करना उचित है।

प्रश्न—यो वचन मुनीश्वरां प्रति है।

उत्तर—यामैं द्रव्यरूप अर भावरूप दोऊ ही द्रव्य कहे हैं तातैं गृहस्थनिकूं तथा मुनीश्वनिरकूं ये ही हुकम है।

अर च्यारूँ दिशाहीमैं पूजन करनेका हुकमकी त्रिलोकसारमैं—

दिव्वफलपुप्फहत्था सत्थाभरणा सचामराणीया।
बहुधयतूरारावा गत्ता कुव्वंति कल्लाणं॥ ९६५॥
पडिवरसं आसाढे तह कत्तिय फग्गुणे य अट्टमिदो
पुण्णदिणोत्ति यभिक्खं दोद्दो पहरं तु ससुरेहिं९६६
सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोयणो पदक्खिणदो।
पुव्ववरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं॥ ९६७

अर्थ—दिव्य फल पुष्प हैं हाथ विषै जिनकै अर प्रशस्त आभरण तथा चामर तथा सेनासहित अर बहुत ध्वजा तथा वादित्रनिके शब्दसंयुक्त नंदीश्वर द्वीपमैं जाय कल्याण कहिये पूजन करै हैं॥९६५॥ सो सर्व वर्ष प्रति आसाढमैं तथा कार्त्तिकमै तथा फाल्गुनमै शुक्ल

---

१ संस्कृतच्छाया–दिव्यफलपुष्पहस्ताः शस्ताभरणा सचामरानीका॥
बहुध्वजतूर्यारावाः गत्वा कुर्वंति कल्याणं॥९६५॥
प्रतिवर्षं आसाढे तथा कार्त्तिके फाल्गुने च अष्टमीतः।
पुण्यदिनांत चाभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ तु स्वसुरैः॥९६६॥
सौधर्म ईशानः चमरः वैरोचनः प्रदक्षिणतः।
पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कुर्वन्ति कल्याणं॥ ९६७॥

(क) लिखित प्रतिमे छाया नही थी। (ख) मुद्रितप्रतियोमे ये तीनो गाथाये क्रमसे९७५–९७६–९७७के नंबर पर हैं, सो ही ठीक हैं।

अष्टमीके दिनतैं पूर्णमासीके दिन पर्यंत निरंतर दोय दोय प्रहर अपने अपने देवनि सहित ॥ ९६६ ॥ सौधर्म ईशान अर चमर वैरोचन ये च्यारूं प्रदक्षिणारूप पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर दिशानिकै विषै जिनपूजारूप कल्याण करै है ॥९६७॥

या वचनतैं च्यारूं ही दिशामैं जिनप्रतिमाकै सन्मुख होय पूजन करना योग्य है। तथा मूलाचारमैं चतुर्विंशतिस्तवनविधानके पूर्वमैं;—

[1]तेसिं अहिमुहदाए अत्था सिज्झंति तह य भत्तीए।
तो भत्ति रागपुव्वं वुच्चइ एदं ण हु णिदाणं ॥७२॥

अर्थ—तिन जिनवरादिकका सन्मुखपणाकरि तथा भक्तिकरि वांछित अर्थ सिद्ध होय है कि आत्मस्वभावकी सिद्धि होय है तातैं या भक्ति रागपूर्वक कहिए है अर निदान नहीं है, क्योंकि यामैं संसारका कारणपणाको अभाव है यातैं ॥ ७२ ॥

या वचनतैं सन्मुख ही पूजन स्तवन भक्ति करना योग्य है।

प्रश्न—तुमनै तौ खड़ा रहि सन्मुख पूजन करना स्थापन किया परंतु जिनसंहितामैं उमास्वामी ऐसा कह्या है;—

पद्मासनसमासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः।
मौनी वस्त्रावृतः सोऽयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥१॥
तत्रार्चकः स्यात्पूर्वस्यामुत्तरस्यां च सन्मुखः।
दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत् ॥२॥

---

१ संस्कृतच्छाया—तेषामभिमुखतया अर्थाः सिद्ध्यंति तथा च भक्त्या। ततः भक्तिः रागपूर्वं उच्यते एतत् न खलु निदानं ॥७२॥
यह संस्कृतच्छाया लिखित प्रतिमे नहीं थी।

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात्पूजां श्रीमज्जिनेशिनः ।
तदा स्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसंततिः ॥ ३ ॥
आग्नेय्यां च कृता पूजा धनहानिर्दिने दिने ।
वायव्यां च संततिर्नैव नैऋर्त्यां तु कुलक्षयः ॥४॥
ईशान्यां नैव कर्त्तव्या पूजा सौभाग्यहारिणी ।
पूर्वस्यां शांतिपुष्ट्यर्थमुत्तरे च धनागमः ॥ ५ ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं तथा ।
ध्यानं च दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥ ६ ॥

अर्थ—पद्मासन करि बैठि नासिकाका अग्रमै स्थापन करे है नेत्र जानै अर धारण कियो है मौनव्रत जानै अर वस्त्रकरि वेष्टित है सो यो जिनेश्वरको पूजन करै ॥ १ ॥ तहा पूजक पूर्वदिशामै तथा उत्तर दिशामै सन्मुख रहै अर दक्षिण दिशामै तथा विदिशामैं पूजानै वर्जै ॥ २ ॥ अर श्रीमज्जिनेश्वरकी पूजा पश्चिमदिशा सन्मुख करै तौ वाही समय संततिको छेद होय अर दक्षिणमै करै तौ संतति नहीं होय ॥ ३ ॥ अग्निदिशामै करी पूजा दिन दिनमै धनकी हानि करै है, अर वायव्य दिशामै करै तौ कुलको क्षय होय ॥ ४ ॥ अर ईशान दिशामै सौभाग्यकी हरनवारी पूजा नही करणी, अर पूर्व दिशामै शातिकै तथा पुष्टिकै अर्थि करणी, अर उत्तर दिशामैं करै तौ धनको आगम होय ॥ ५ ॥ अर अरहंतका तथा अरहंत-प्रतिमाका दक्षिण भागमै वंदना करवो योग्य है अर दक्षिण भागमै ही ध्यान करै तथा दीपकस्थापन भी दक्षिण भागमै ही करै ॥ ६ ॥

या वचनतै पर्व उत्तर सन्मुख ही बैठि पूजन करिवौ योग्य है ।

उत्तर—ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके तौ हैं नाही।

प्रश्न—ये तुमनै कैसे जानी।

उत्तर—हमनै अनुमानतैं जानी।

प्रश्न—ऐसा अनुमान कौनसा है।

उत्तर—यो अनुमान ऐसै है कि जिनागमको लक्षण समंतभद्र स्वामी रत्नकरंडमै ऐसो लिख्यो है;—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

अर्थ—आप्तको भाषित होय अर स्वमत परमतकी युक्ति करि उल्लंघन करनेमै नही आवै अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणको अविरोधी होय अर तत्त्वरूप उपदेशको करता होय अर सर्वको हितकारी होय अर कुमारगको खंडन करनवारो सो शास्त्र है॥ तथा शांतिनाथपुराणमै गुणभद्रस्वामी ऐसा कह्या है;—

पूर्वापरविरोधादिदूरं हिंसाद्यपासनं।
प्रमाणद्वयसंवादि शास्त्रं सर्वज्ञभाषितम्॥ ६८॥

अर्थ—पूर्वापरविरोध आदि दूषणनि करि दूरवर्त्ती अर हिंसादिक पापनिको नाश करता अर प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणद्वयको कहनवारो होय अर सर्वज्ञभाषित होय सो शास्त्र है॥ ६८॥

शास्त्रका लक्षण तौ ऐसा है, अर सूत्रकार उमास्वामीके वचन भी महान गंभीर हैं; अर जिनसंहिताके वचन उनतैं विरुद्ध प्रकट भासैं है, सो ऐसैं:— प्रथम तौ उमास्वामी सूत्रकारके होनेका समय-वरननका प्रसिद्ध श्लोक सुनो;—

वर्षे सप्तशते चैव सप्तत्या च विस्तृतौ ।
उमास्वामी मुनिर्जातः कुंदकुंदस्तथैव च ॥

अर्थ—महावीरस्वामीनैं सातसै सत्तरि वर्ष वितीत भये पीछैं उमास्वामी नामा मुनि तथा कुंदकुंदस्वामी नामा मुनि उत्पन्न भये हैं॥

तिनके पीछैं जिनसेनजी नेमचन्द्रजी वट्टकेरिजी भये हैं, सो ये जिनसहिताके वचन सूत्रकार उमास्वामीके ही होते तौ वै जिनसेनादिक भी इनतैं मिलते ही लिखते, विरुद्ध वचन नही लिखते, क्योकि और जो कथन किया है सो सर्व सूत्रकै अनुकूल ही किया है; तातैं ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके ही मानेतैं आदिपुराणकै तथा त्रिलोकसारकै तथा मूलाचारकै अप्रमाणता आवै सो होजे नाही, तातैं जानिये है कि ये वचन सूत्रकार उमास्वामीके नाही है । उमास्वामी नामा ये और कवि हैं । दूसरां ये वचन अशक्यानुष्ठानरूप हैं।

प्रश्न—अशक्यानुष्ठान कहा होय है ।

उत्तर—अशक्यानुष्ठान उपदेशका दूषण है ।

प्रश्न—याका लक्षण कहा है ।

उत्तर—लक्षण तौ नामका अक्षरार्थमात्र ही है, सो ऐसै है कि नहीं बणि सकै ऐसा जो अनुष्ठान सो अशक्यानुष्ठान है । अर याका दृष्टांत परीक्षामुख सूत्रकी टीका प्रमेयचन्द्रिकाकी आदिमैं गद्यरूप ऐसा लिख्या है,—"अशक्यानुष्ठानस्येष्टप्रयोजनस्य सर्वज्वरहरतक्षकचूडारत्नालंकारोपदेशस्येव प्रेक्षावद्भिरनादरणीयत्वात्" । अर्थ-अशक्य अनुष्ठानरूप इष्ट प्रयोजनकै सर्वज्वरका हरता तक्षक सर्पका जो चूडारत्न ताका अलङ्कार करनेका उपदेशकी नांई परीक्षावान पुरुषनि करि आदरणीयपणातैं नही कहने योग्य है । भावार्थ—नहीं बणि सकै ऐसा अपना चाहता भी उपदेश परीक्षावाननिकै आदर

करने योग्य नही है। याका दृष्टांत ऐसा है कि जैसे किसीकै ज्वर है वाकै अर्थि कोई कहै है कि तक्षक सर्पका मस्तककी मणि सर्वज्वरकी हरणवारी ल्याय याके कंठकै बांधो ज्यूं थाको ज्वर निर्वृत्ति होय, सो या उपदेशमैं ज्वरका मिटना इष्ट है तौ भी तक्षक सर्पके मस्तककी मणिका ल्यावना अशक्य है तातै परीक्षावान या उपदेशकूं नही ग्रहण करै हैं। तैसै ही यहां कृत्रिम जिनमंदिरनिमै जिनप्रतिमा उत्तर सन्मुख है तहां पूजक दक्षिणभागमै वैठैगा ताकै पश्चिम दिशा ही सन्मुख रहैगी तदि पूर्व उत्तरका नियम नही करैगा अर पूर्व उत्तरका नियम राखैगा तौ दक्षिण भागका नियम नही रहैगा, तातै जिनसंहिताका उपदेश अशक्यानुष्ठानरूप है। तथा पूजक पद्मासन नासादृष्टि धरि वैठै तदि अभिषेकमै तौ बिम्बस्थापन कलशस्थापन अर्घदान आदि अभिषेक तथा मार्जन तथा पुनः सिंहासनमै स्थापन नही वर्णैगा, क्योंकि नासादृष्टिवारेकूं अन्यपदार्थ दीखै नाहीं अर दीखे विना यथावत् क्रिया बनै नाही तातैं अशक्यानुष्ठान है, अर पूजनमै क्रमसै यथास्थानतैं द्रव्यनिका उठाना तथा चढ़ाना नही वर्णै अर ये सर्व क्रिया किया बिना पूजन होता नाही अर ये क्रिया रहै तौ नासादृष्टि रहै नाही, तातैं अशक्यानुष्ठानरूप उपदेश है।

तथा स्ववचनवाधित उपदेश है, सो ऐसैं,—

श्रीचंदनैर्विना नैव पूजा कुर्यात्कदाचन ।
प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याद्विचक्षणैः १ ॥

---

१ "पूजा कुर्याद्विचक्षणैः" यहा कर्तृपद तृतीयान्त होनेसे कर्ममें प्रत्यय होना चाहिये सो "कुर्यात्" प्रयोग अशुद्ध है "क्रियेत" ऐसा होना चाहिये था। यदि "पूजा कुर्याद्विचक्षणः" ऐसा पाठ समझा जाय तो सर्वत्र पूजा प्रथमांत प्रयोग है।

मध्याह्ने कुसुमैःपूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ।
वामांगे धूपदाहः स्यात् दीपपूजा च सन्मुखी ॥

अर्थ—श्रीचन्दन विना पूजा कदाचित् ही नही करै। अर प्रभातमै विचक्षण पुरुषनिकरि घनसारकी पूजा करबो योग्य है अर मध्यानमै पुष्पनिकरि पूजा करै अर संध्या समयमै दीपधूप सयुक्त पूजा करै अर वामभागमै धूपदाह करै दीपक पूजा सन्मुख करै ॥

यामै प्रथम तौ 'कदाच' अर 'एव' पद चंदनकै साथि लिख्या तातै तौ ये नियम भया कि कदाचित् भी चंदन विना पूजन नही करै अर पीछें मध्याह्नमैं पुष्पनिकरि पूजा लिखी तहां चदनका नाम हू नाहीं लिख्या अर संध्यामै दीपधूप करि पूजा लिखी तहां भी चंदनका नाम नाहीं लिख्या, तातै स्ववचनबाधित भया। अर वहां तौ पूर्व उत्तर सन्मुख पूजा लिखी अर इहां भगवत सन्मुख पूजा दीपकतै लिखी तहां पूर्व उत्तरका नियम नही रहि सकै तातै स्ववचनबाधित अर पूर्वापरविरोध भया । इत्यादि दोषनियुक्त बाधित वचन सूत्रकार उमास्वामीके होजे नाहीं । अर और सुनो कि समवसरण वरननमै ऐसा लिख्या है,—

देवोऽर्हन्प्राङ्मुखो वा नियतिमनुसरन्नुत्तराशामुखो वा,
यामध्यास्ते स्म पुण्यांसमवसृतिमहीं तां परीत्याध्युवास
प्रादक्षिण्येनधींद्रा द्युयुवतिगणिनीनृस्त्रियस्त्रिश्च(?)देव्यो
देवाः सेंद्राश्च मर्त्याःपशव इति गुणा द्वादशामी क्रमेण ॥

अर्थ—मर्यादानै अंगीकार करनवारो अरहत देव या पवित्र समवसरणकी पृथ्वीका मध्यकै विषै पूर्व दिशाकै तथा उत्तर

दिशाकै सन्मुख तिष्ठै है, अर वा अरहंतनैं प्रदक्षिणारूप वेष्टित करि मुनीश्वर कल्पवासिनी देवी आर्यिकानैं आदि लेय मनुष्यनिकी स्त्री ज्योतिषिनी देवी व्यंतरी देवी भवनवासिनी देवी भवनवासी देव व्यंतरदेव ज्योतिषीदेव और मनुष्य तथा पशु ऐसैं ये द्वादश गण अनुक्रमकरि तिष्ठैं हैं ॥

तथा प्रसिद्ध, काव्य;—

निर्ग्रंथकल्पवनिता व्रतिकाभभौम-
नागस्त्रियो भवनभौमभकल्पदेवाः।
कोष्ठस्थिता नृपशवोऽपि नमंति यस्य
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥

अर्थ—प्रथम कोठेमैं मुनिराज, दूसरे कोठेमैं कल्पवासिनी देवी, तीसरा कोठामैं आर्यिकादिक मनुष्यनिकी स्त्रियां, चौथा कोठामैं ज्योतिषिनी देवी, पांचमा कोठामैं व्यंतरिनी देवी, छठा कोठामैं भवनवासिनी, सातमा कोठामैं भवनवासी, आठमा कोठामैं ज्योतिषी, नवमा कोठामैं व्यंतर, दशमा कोठामैं कल्पवासी देव, ग्यारहमा कोठामैं मनुष्य, बारमा कोठामैं पशु, तिष्ठता संता जा भगवाननैं नमस्कार करैं हैं ता जिनेश्वरकै अर्थि हमारो नमस्कार होहु ॥

याही अनुक्रमतैं सकलकीर्त्तिजी छोटा आदिपुराणमैं लिखै है। या वचनतै पूज्यका तौ पूर्व उत्तर सन्मुख तिष्ठनेका नियम भी भास्या अर पूजकके तौ कुछ दिशाका नियम नहीं भास्या क्योकि समवसरणमैं च्यारूं ही दिशाके च्यारि मार्ग हैं अर च्यारूं तरफ ही भगवानका मुख भासै है तातैं च्यारूं ही तरफ पूजक पूजन करै है, अर द्वादश सभाके जीव विदिशामैं बैठे च्यारूं ही विदिशाके सन्मुख नामकीर्त्तन गुणकथन स्तवन धर्मश्रवण करता संता

तिष्ठै हैं । तथा आदिपुराणका अड़तीसमां पर्व विवाहक्रियाका वर्णनमें;—

पुण्याश्रमे क्वचित्सिद्धप्रतिमाभिमुखं तयोः ।
दंपत्योःपरया भूत्या कार्यःपाणिग्रहोत्सवः॥ १२८॥

अर्थ—कोई पवित्र स्थानमें सिद्धप्रतिमाके सन्मुख दोऊ वर कन्याका पाणिग्रहणको उत्सव परम विभूति करि करै ॥ १२८ ॥

तथा वर्णलाभक्रियामें;

तदापि पूर्ववत्सिद्धप्रतिमार्चनमग्रतः ।
कृत्वान्योपासकान्मुख्यान्साक्षीकृत्यार्पयेद्धनम्॥१३८॥

अर्थ—वा समयमें भी पूर्ववत् सिद्धप्रतिमाका अर्चन अग्रभागतें करि अर मुख्य गृहस्थनिनै साक्षी करि पुत्रकै अर्थि धन अर्पण कर ॥ १३८ ॥

तथा गुणचालीसमा पर्वमें उपासकदीक्षाका उपदेशमें;—

जिनार्चाभिमुखं सूरिर्विधिनैनं निवेशयेत् ।
तवोपासकदीक्षेयमिति मूर्द्धि मुहुः स्पृशन् ॥४१॥

अर्थ—गृहस्थाचार्य जो है सो जिनप्रतिमाकै सन्मुख या शिष्यनैं विधिकरि बैठावै अर वारंवार मस्तक स्पर्श करतो संतो कहै कि तिहारै या उपासकदीक्षा है॥ ४१ ॥

तथा भगवती आराधनामै आलोचनासमय आचार्यका बैठवाको वर्णन,—

पाचीणोदीचिमुहो आयदणमुहो वसुह निसण्णो हु ।
आलोयणं पडिच्छदि एक्को एक्कस्स विहरम्मि॥६५॥

अथ—आचार्य हू आलोचनाके श्रवणसमयमें पूर्वसन्मुख

अथवा उत्तरसन्मुख अथवा जिनमंदिरसन्मुख तिष्ठता एकाकी एकांत स्थानमैं एक ही क्षपकको आलोचना श्रवण करै ॥ ८५॥

अर इहां और सुनो कि समवसरणमै मानस्तंभके मूलमै अर अकृत्रिम मंदिरनिमैं मानस्तंभके मस्तक परि च्यारूं दिशाकै सन्मुख जिनबिंब विराजमान हैं तहां पूजनवारे दक्षिण भागमैं बैठैंगे तौ अर सन्मुख बैठैंगे तौ पूर्व उत्तरका नियम नहीं रहैगा । तथा चैत्यवृक्षनिके मूलमैं च्यारूं दिशा सन्मुख जिनबिंब विराजमान है तथा सिद्धार्थ वृक्षनिके मूलमैं सिद्धबिंब भी च्यारूं दिशा सन्मुख ही विराजमान हैं, तहां भी पूजनवारे दक्षिणभागमैं बैठैंगे तौ अर सन्मुख बैठैंगे तौ पूर्व उत्तरका नियम नहीं रहैगा । तथा स्तूपगिरनिमैं चहूं दिशा चहूं विदिशाकै सन्मुख जिनबिंब तथा सिद्धबिंब विराजमान है तहां पूजनवारेकै किसी ही दिशाका नियम नहीं रहैगा । इत्यादि वचनितै जिनबिंबका भी कोई दिशा सन्मुख स्थापनेका नियम नहीं रह्या अर पूजककै भी नियम नहीं रह्या, मुख्य नियम ये रह्या कि जिनबिंबकै तथा जिनागमकै तथा साधुनिकै सन्मुख ही खड़ा रहि पूजन स्तवन करना । तथा आलोचना प्रतिक्रमण मंत्रोपदेश दीक्षा विवाह आदि क्रिया कर्म भी जिनबिंब जिनागमके सन्मुख ही करना । तथा जिन पुरुषनिकै दक्षिणभागमै बैठिकरि ही पूजन करनेका आग्रह है ते भी सन्मुख नमस्कार करि खड़ा रहि बिदाम नारेल चढ़ावै ही है तथा आरती भी सन्मुख खड़ा ही करै है । तथा महा अभिषेक तथा महा अर्घदान तथा शांतिधारा आदि केई पूजनके अंग सन्मुख खड़ा ही करै है तथापि वचनपक्ष नहीं छोड़ै सो बड़ा अनर्थकी वार्त्ता है; क्योंकि वर्त्तमान देशकालमै प्रथमानुयोगमै तौ आदि उत्तर खंडद्वयरूप महापुराण, अर करणानुयोगमै त्रिलोकसार, अर चरणानुयोगमै

मूलाचार, इनि सिवाय या प्रकरणका प्राचीन सर्वकै प्रामाण्य और ग्रंथ नहीं है अर इनके वचनतें तथा अपनी प्रवृत्तितैं भी विरुद्ध वचनपक्ष करना योग्य नाहीं है, अर करै है तौ जानिये है कि उनकै हाल संसार बाकी बहुत है, क्योंकि आगमका हुकम तौ त्रिलोकसारमैं (गोम्मटसारमैं ?)ऐसा है,—

सम्माइठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहई ।
सद्दहइ असब्भावं अजाणमाणो गुरूवएसेण ॥ १ ॥
सुत्तादुत्तं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि॥२॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश किया प्रवचननै श्रद्धान करै है गुरूका उपदेशकरि अज्ञानमान हुवो सतो असत्यार्थनै भी श्रद्धान करै है ॥ १ ॥ भावार्थ—सत्यार्थ गुरुको उपदेश तौ मिलै नहीं अर आप अज्ञानमान है सो अन्यथा भी ग्रहण करै है ॥ १ ॥ बहुरि जो सूत्रोक्त सम्यक् दिखाया तत्त्वनै नहीं श्रद्धान करै तौ वो ही सम्यग्दृष्टी जीव वाही समयतैं मिथ्यादृष्टी है अर मिथ्यादृष्टी है ताहीकै दीर्घ संसार है ॥

ऐसे तौ जिनागमतैं जिनपूजन सन्मुख खड़ा रहि करि करना सिद्ध भया अर याहीकै अनुकूल किंचित् युक्ति भी और लिखिये है कि—राजादिकनिकी भी निजरि भेट करते हैं सो सन्मुख खड़ा ही करते हैं अर और भी भाई सगासू मिलणी मुजरो करिये है सो भी सन्मुख खड़ा ही करिये है, किसीकू राजादिकनिके दक्षिणभागमैं बैठि निजरि भेट करता देख्या सुन्या नाहीं । तातैं पूज्यकै तौ अग्रभाग ही मैं खड़ा रहि पूजन स्तवन करना योग्य है ।

चौपई।

सन्मुख उत्थित ह्वै सिर नाय।
पूजन करहु भविक गुन गाय॥
नरभव सफल गात जिननाम।
अर्चन करत सरत सब काम॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके
सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे पूज्यपूजक-
दिशानिर्णयो नाम षष्ठोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ अभिषेकनिर्णय लिख्यते।

लखि प्रतिबिंब जिनेशकौं, नमन ठानि अभिषेक।
करन कह्यो ऋषिवर सकल, धरि धरि परम विवेक॥१॥

प्रश्न—पूज्य पूजककै दिशाका नियम तौ सिद्ध भया परंतु केई पुरुष तो पूज्यका पूजन अभिषेकपूर्वक करै हैं अर केई पुरुष पूजन अभिषेकरहित करै है, सो आगमतैं कैसैं योग्य है?

उत्तर—बृहत्सामायिकमैं;—

स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युंज्याद्यथाऽऽम्नायमाद्याद्दृते संकल्पितेऽर्हति॥

अर्थ—साम्यभावकी प्राप्तिकै अर्थ आम्नायपूर्वक प्रतिमामैं अर्पित किया अरहंतकै विषै स्नपन अर्चन स्तवन जपन इन च्यारू-हीनै युक्त करै अर संकल्पित अरहंतकै विषै स्नपन विना पूजन-स्तवन जपन ये तीनूं ही करै। भावार्थ—साकार स्थापनारूप प्रतिमा-

का तौ अभिषेक पूजन स्तवन जपन च्यारू ही करना अर पुष्प अक्ष-तादिकनिमै करी जो निराकार स्थापना ताका स्नपन तौ नहीं करना अर पूजन स्तवन जपन करना।

प्रश्न—अभिषेक करना तौ श्रद्धान किया परंतु केई पुरुष तौ पंचामृत करि करै हैं, सो आगमतै कैसै है।

उत्तर—मूल संघमै दिगंबरनिके किये ग्रंथनिमै तौ पंचामृतका नाम हू नहीं सुन्या।

प्रश्न—तुम सर्व ग्रंथनिका नियम करो हौ सो सर्वज्ञ हो कहा।

उत्तर—हम सर्वज्ञ तौ नाही परतु सर्वज्ञनै अनुमान प्रमाणकूं भी प्रमाणभूत कह्या है तातै यो अनुमान करिये है कि—दिगंबरनिके वचननिमै प्रत्यक्ष अनुमानके विषयमै परस्पर विरोधता नही है अर अकृत्रिम कृत्रिम बिंबनिका अभिषेक जहां तहा शुद्ध जलतैं ही लिख्या है। सो अकृत्रिम बिबनिका अभिषेक तौ सिद्धांतसारमैं ऐसै लिख्या है,—

अभिषेकमहं नित्यं सुरनाथाः सुरैः समम्।
द्विद्विप्रहरपर्यंतमेकैकदिशि शांतये ॥ ६९ ॥
कनत्कांचनकुंभास्यनिर्गतैः निर्मलांबुभिः।
महोत्सवशतैर्वाद्यैर्जयकोलाहलस्वनैः ॥ ७० ॥
नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम्।
जिनेंद्रदिव्यबिंबानां गीतनृत्यस्तवैः सह ॥ ७१ ॥

अर्थ—देवेंद्र जे हैं ते देवनि करि साथि एक एक दिशामै दोय दोय प्रहर पर्यंत अशुभ कर्मकी शांतिकै निमित्त जिनेंद्रके दिव्य बिंबनिका गीत नृत्य स्तवन करि तथा अनेक वादित्रनिकरि तथा

महान उत्सवनिके सैकड़ेनि करि तथा जय जय रूप कोलाहल शब्दनिकरि तथा अन्य विभूति करि संयुक्त कांतिमान सुवर्ण कुंभनिके मुखतैं निकलता निर्मलजल करि निरंतर समस्त विघ्नको हरता शुभ महान अभिषेक नित्य करै है ॥ ६९—७०—७१ ॥

या वचनतैं अनेक वादित्रनि सहित जय जय शब्द उच्चारण करता संता शुद्ध जलकरि अभिषेक करना योग्य है। तथा कृत्रिम बिंबनिका भी अभिषेक शुद्ध जलतैं ही आदिपुराणमैं लिख्या है;—

दिक्चतुष्टयमाश्रित्य रेजे स्तंभचतुष्टयम् ।
तत्तद्व्याजादिवोद्भूतं जिनानंतचतुष्टयम् ॥ १ ॥
हिरण्मयी जिनेंद्रार्चा तेषां बुध्नप्रतिष्ठिता ।
देवेंद्राः पूजयंति स्म क्षीरोदांभोभिषेचनैः ॥ २ ॥

अर्थ—च्यारूं दिशानै आश्रय करि च्यार मानस्तंभ सोहै है सो मानूं जिनेंद्रको अनंतचतुष्टय ही मानस्तंभनिके छलतै प्रकट भयो है ॥ १ ॥ तिनि मानस्तंभनिके मूलमैं तिष्ठती सुवर्णमयी जिनेद्रकी प्रतिमा है तिनिमैं देवेद्र जे हैं ते क्षीर समुद्रके जलकरि अभिषेचनकरि पूजै हैं ॥

या वचनतैं कृत्तृ (कृत्रिम) बिंबनिका भी शुद्धजलतै ही अभिषेक करि पूजन करना योग्य है। अर और स्थलमैं भी जहां तहां सामान्यपणैं अभिषेक तौ लिख्या परंतु पंचामृतका नाम नहीं लिख्या तातै सर्व ग्रंथनिका नियम लिख्या है। अर जा समय मूलसंघमैं भगवन् जिनसेनजी तथा गुणभद्रजी भये हैं तिनतैं तौ पंचामृतका नाम मात्र हू कहूं जन्माभिषेकमैं कि राज्याभिषेकमैं कि प्रतिमा अभिषेकमैं कि अभिषेक विना अन्य प्रकरणमैं भी नहीं लिख्या। तथा अन्य दिगंवर मूलसंघके आचार्यनिनैं भी नहीं

लिख्या। तातैं जानिये है कि पंचामृत संज्ञा ही जिनागममैं नही है। अर वाही समय काष्ठासंघमैं जिनसेनजी रविसेनजी भये तिननै हरिवंशपुराण पद्मपुराणमै जहा तहां पचामृत लिख्या है तातैं जानिये है कि ये पंचामृतकी राह उनकी है।

प्रश्न—जहां अभिषेक सामान्य पद है तहा पंचामृतका ही क्यू नहीं कहौ।

उत्तर—प्रथम तौ असै छिपाय करि कहै सो उनकै मायाचार है कि भय है जो पंचामृतके विषयमै सामान्य पद कहै। दूसरा जहां अभिषेक द्रव्यकी व्यक्ति लिखो तहां शुद्ध जल ही लिख्या तातै सामान्य अभिषेक पद है तहा भी शुद्धजलका ही अर्थ करना योग्य है। तथा और विचारनेकी वार्त्ता है कि अभिषेकतै भिन्न क्रिया तौ दुग्धकरि करी लिखी परंतु अभिषेक नही लिख्या। सो आदिपुराणमै,—

शांतिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्टशांतये।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः ॥८५॥
गोदोहैः प्लाविता धात्री पूजिताश्च महर्षयः।
महादानानि दत्तानि प्रीणितः प्रणयी जनः ॥८६॥

अर्थ—या उपरांति दुःस्वप्नजनित अनिष्टफलकी शांतिकै अर्थि जिनेंद्रका अभिषेक तथा सत्पात्रदान आदि पुण्य चेष्टाकरि शातिक्रिया करत भयो ॥ ८५ ॥ अर गोदुग्धकरि पृथ्वी प्लावित करी अर अष्टद्रव्य करि महर्षीनिकूं पूजे तथा महादान दिये तथा बंधुजन तृप्त किये ॥ ८६ ॥

यामै प्रथम तौ अभिषेक लिख्या ता पीछै और पुन्य चेष्टा करी लिखी, ता पीछै गोदुग्धकरि पृथ्वी प्लावित करी लिखी, ता

पीछै महर्षीनिकूं पूजे लिखे, तापीछै महादान दिये लिखे, ता पीछै बंधुजन तृप्त किये लिखे, ऐसैं सर्व क्रिया भिन्न भिन्न लिखी तिनिमैं सत्पात्रदान अर महादान दोऊ भिन्न भिन्न लिख्या तातैं जानिये है कि सत्पात्रदानमैं तौ मुनीश्वरनिकूं आहार आदि दीया होगा अर महादानमैं अश्व गज सुवर्ण वस्त्र आभूषण आदि बंधुजन आदि गजनिकूं दिये होगे। अर अभिषेकतै भिन्न गोदुग्ध करि पृथ्वी प्लावित करी लिखी तातैं जानिये है कि अभिषेक तौ शुद्धजलतै ही किया होगा अर गोदुग्धतै पृथ्वी प्लावित करी लिखी सो क्रिया अभिषेकतै भिन्न और कछू करी होगी तातैं ही भिन्न लिखी है। अर मूलसंघके आर्ष ग्रंथनिमैं तौ अभिषेक शुद्धजलतैं ही है, अर और मूलसंघके नामतैं आधुनिक ग्रंथ हैं तिनमैं लिख्या है परंतु मूलसंघके सिद्धांत शास्त्रनितै तथा आदि उत्तरपुराणतै तौ मिलते नाही अर पद्मपुराण हरिवंशपुराणतै मिलते नाही, तातैं जानिये है कि ये राह भी उनकी ही है।

प्रश्न—केवल जलतै ही कैसैं कहौ हौ, गंधजलतै तौ आदिपुराणमैं भी लिख्या है;—

शुद्धांबुस्नपने निष्ठां गते गंधांबुभिः शुभैः।
ततोऽभिषेक्तुमैशानं शतयज्वा प्रचक्रमे ॥

अर्थ—शुद्धजलकृत स्नपननैं हदपर पहुंचता संता ता पीछैं देवेंद्र जो है सो भगवाननैं शुभगंध जलकरि अभिषक करावनेकां प्रारंभ करतो भयो ॥

या वचनतैं गंधमिश्रित जलकरि तौ अभिषेक करना योग्य है॥

उत्तर—तुमनैं श्लोक कह्या सो तौ सत्य है परंतु ये वर्णन

जन्माभिषेक समयका है अर या प्रतिष्ठित अरहंत प्रतिबिंबकै विषै फेर जन्माभिषेककी कल्पना करि गंधमिश्रित जलतै अभिषेक करैगे तौ वहांकी और भी ऐसी क्रिया है,—

गंधैः सुगंधिभिः सांद्रैरिंद्राणी गात्रमीशितुः।
अन्वलिंपंच लिंपद्भिरिवामोदैस्त्रिविष्टपम्॥ १॥
प्रत्यंगमिव विन्यस्तैः पौलोम्या मणिभूषणैः।
स रेजे कल्पशाखीव शाखोल्लासिविभूषणैः॥२॥

अर्थ—इंद्राणी प्रभूके शरीरनै जलसहित सुगंधित गंधकरि लेपन करत भई सो मानूं सुगंधकरि तीन जगतनै लेपन करती ही प्रभूके सर्वाङ्गमै लेपन कियो। अर इंद्राणीनै अंग अंग प्रति स्थापन किये जे मणिनके आभूषण तिनकरि प्रभू ऐसे सोहते भये कि मानूं शाखाकै विषैं उल्लासित भये विभूषणनिकरि कल्पवृक्ष ही सोहै है॥ २

या वचन तै सर्वागमै गंधलेपन आदि सर्व आभूषण भी धारण करावणे पडैंगे तातैं जन्माभिषेकका संकल्पकरि अभिषेककी क्रिया करना योग्य नाहीं, क्योंकि ये प्रतिमा प्रथम तौ अरहंत केवलीकी हैं तथा सामान्यपणै पंचपरमेष्ठीकी भी है यातैं।

प्रश्न—आदिपुराण का चालीसमा पर्वमै,—

जन्मसंस्कारमंत्रोऽयमेतेनार्भकमादितः।
सिद्धाभिषेकगंधांबुससिक्तं शिरसि स्पृशेत्॥१०९॥

अर्थ—यो मंत्र जन्मसंस्कारको है या करि आदितैं कहिये प्रथमतै सिद्धनिका अभिषेक गंधजल करि भलै प्रकार सींच्या बालकनै मस्तक विषै स्पर्श करै॥ १०९॥

या वचनतं तौ गंधमिश्रित जलतै अभिषेक करना स्थापन करोगे ?

उत्तर—यामै गंधाबुपद है सो प्रथम तो गंधशब्द सामान्यवाची है तामै सुगंध दुर्गंधका निर्णय है ही नही, ता सिवाय गंध है सो पुद्गलको गुण है यातै गंधाबु कह्या है, तातै या पदतै ही गंधमिश्रित जलका ग्रहण करणा अयोग्य है, क्योकि गंधमिश्रित जलतै तौ पादप्रक्षालनका भी निषेध मूलाचारमैं अनगारभावनाका व्याख्यानमैं लिख्या है,—

मुहणयणदंतधोयणमुव्वट्टणपादधोयणं चेव ।
संवाहणपरिमद्दणसरीरसंठावणं सव्वं ॥ ७४ ॥

टीका—मुखस्य नयनयोर्दंतानां च धोवनं शोधनं प्रक्षालनं, उद्वर्त्तनं सुगंधद्रव्यादिभिः शरीरोद्वर्त्तनं, पादप्रक्षालनं कुंकुमादिरागेण पादयोर्निर्मलीकरणं, संवाहनं अंगमर्दनं पुरुषेण शरीरोपरिस्थितेन मर्दनं, परिमर्दनं करमुष्टिभिस्ताडनं काष्ठमययंत्रेण वा पीडनं, इत्येवं सर्वं शरीरसंस्थानं शरीरसंस्कार साधवो न कुर्वंतीति संबंधः ॥

अर्थ—मुखनयनदंतशोधनं कहिये मुखका तथा नयनका तथा दंतनिका शोधन प्रक्षालन करना, अर उद्वर्त्तन कहिये सुगंधद्रव्यकरि शरीरका उपटना करना अर पादप्रक्षालनं कहिये कुंकुमादिकका रंग करि चरणनिका निर्मल करना अर संवाहन कहिये शरीरकै ऊपरि तिष्ठता पुरुषकरि अंगका मर्दन करावना अर परिमर्दनं कहिये करमुष्टिकाकरि ताडन करना तथा कांष्ठमय यंत्रकरि अंग-

का पीडना, इत्यादिक या प्रकार आपका सर्व शरीरका संस्थापन कहिये संस्कार साधु पुरुष नहीं करै, ऐसो अर्थसंबंध है ॥ ७४ ॥

या वचनतै गंधद्रव्यमिश्रित जलकरि पंचपरमेष्ठीका अभिषेक नहीं करना।

प्रश्न—ये वरनन तौ मुनीश्वरनिका है तुम प्रतिमाका अभिषेक गंधमिश्रित जलतै करनेका निषेध या वचनतैं कैसै करौ हौ।

उत्तर—ये प्रश्न तौ अतिमुग्ध पुरुषका सा तुमारे करने योग्य नहीं है क्योंकि प्रतिमा भी तौ उनकी ही है, जाका मूलमै निषेध है ताका प्रतिमामैं भी करना योग्य नाही।

प्रश्न—मूलमैं तौ स्नानका भी त्याग है तुम अभिषेक स्थापन कैसैं करौ हौ अर अभिषेक स्थापन करौ हौ तौ गंधमिश्रित जलका तथा पंचामृतका भी स्थापन करो।

उत्तर—स्थापन करना अर निषेध करना केवल युक्तितै ही नहीं होय है क्योंकि केवल युक्ति तौ अयुक्ति है अर आगमकै अनुकूल युक्ति है सो युक्ति है तातैं जैसैं शुद्ध जलतै अभिषेक करनेकी राह अनादिकालतैं है ताका वचन अनेक आर्षग्रथनिमै पाइये है तिनिमै प्राचीनसिद्धांतनिमै शिरोमणि तौ त्रिलोकसार है ताका वचन तुमै सुनाया अर प्रथमानुयोगमै सर्वकै मान्य प्राचीन सर्वमैं शिरोमणि महापुराण है ताका वचन सुनाया तथा बृहत्सामायिकका तथा सिद्धांतसारका वचन सुनाया तैसैं ही कोई आर्षग्रथ सर्वकै मान्य होय ताका वचन सुनावो तौ हमारै भी मान्य होय, हमारै तौ आर्षवचन होय सो सर्व प्रमान है। सो ही गोम्मटसारकी टीका अभयनंदिकृतमै गद्यरूप,—

तत्र नाममंगलमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधून्

कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिबिंबं।

अर्थ—तहां अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इनिका नाम कीर्त्तन है सो नाम मंगल है, अर कृत्रिम अकृत्रिम जिनादिकनिका प्रतिबिंब है सो स्थापना मंगल है यामैं आदि पदतैं सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ग्रहण करने क्योंकि नाममंगलमैं भी ये ही कहे है। तथा वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासारमैं भी पंचपरमेष्ठीकी ही प्रतिमा बनावना कह्या है;—

प्रातिहार्याष्टकोपेतं संपूर्णावयवं शुभं।
भावरूपानुविद्धांगं कारयेद् बिंबमर्हतः॥ ६९॥
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं सिद्धबिंबमपीदृशं।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम्॥७०॥

अर्थ—प्रातिहार्यका अष्टक करि संयुक्त अर शुभरूप संपूर्ण अवयनिकरि संयुक्त अर भावरूपानुविद्धांगं कहिये साक्षात जिनेंद्रका रूप समान है अंग जाका ऐसा अरहंतको बिंब करै॥ ६९ अर प्रातिहार्य विना शुद्ध सिद्धबिंब करै अर सिद्धबिंबसमान आचार्यनिको तथा उपाध्यायनिको तथा साधनको बिंब आगमप्रमाण करै। भावार्थ—सर्व अंगोपांग शास्त्रकै अनुकूल करै॥ ७०॥

ता सिवाय जो प्रतिबिंबकै तपविशेषके चिह्न हैं सो साधु अवस्थाके है कि जैसैं वेलिसहित तौ बाहुबलिजीका अर फणसहित पार्श्वनाथजीका है सो बिंब तप अवस्थाका है।

उत्तर—महापुराणका आदि उत्तर खंडतै ही लिख्या है, सो ही आदिपुराणकी छत्तीशमी संधिमैं,—

विद्याधर्यः कदाचिच्च क्रीडाहेतोरुपागताः।
वल्लीरुद्वेष्टयामासुः मुनेः सर्वांगसंगिनी॥ १८३॥

इत्युपारूढसद्ध्यानबलोद्धततपोबलः।
स लेश्याशुद्धिमास्कंदन् शुक्लध्यानमुखो भवेत्।१८४।

अर्थ—कदाचित् क्रीडानिमित्त विद्याधरी वा वनमै आई अर बाहुबलि मुनिका सर्वांगमै प्राप्त भई वल्लीनै 'उद्वेष्टयामासुः' कहिये उधेड़ती भई॥ १॥ या प्रकार प्राप्त भयो जो उत्कट ध्यानको बल तातै उत्पन्न भयो है तपबल जाकै ऐसो बाहुबलि मुनि लेश्याकी शुद्धतानै धारण करतो संतो शुक्लध्यानकै सन्मुख होतो भयो॥ २॥

या वचनतै शुक्लध्यानकै पूर्व ही बेलिका तौ अभाव है तथापि प्राचीनबिंब वेलिसहित देखिये है सो तप अवस्थाका जानिये।

तथा उत्तरपुराणका पार्श्वनाथपुराणमै,—

तं ज्ञात्वाऽवधिबोधेन धरणेशो विनिर्गतः।
धरण्यां प्रस्फुरद्रत्नफणमंडपमंडितः॥ १॥
भद्रं तमस्थादावृत्य तत्पत्नी च फणाततेः।
उपर्युच्चैः समुद्धृत्य स्थिता वज्रातपच्छिदं॥ २॥
अमू क्रूरौ प्रकृत्यैव नागौ संस्मरतुः कृतं।
नोपकारं परे कस्माद्विस्मरंत्यार्द्रचेतसः॥ ३॥
ततो भगवतो ध्यानमाहात्म्यान्मोहसंक्षये।
विनाशमगमद् विश्वो विकारःकमठद्विषः॥४॥
द्वितीयशुक्लध्यानेन मुनिर्निर्जित्य कर्मणां।
त्रितयं चैत्रमासस्य काले पक्षे दिनादिमे॥५॥
भागे विशाखनक्षत्रे चतुर्दश्यां महोदयः।
संप्राप केवलज्ञानं लोकालोकावभासनम्॥ ६॥

अर्थ—धरणेंद्र जो है सो अवधिज्ञान करि पार्श्वनाथका उपसर्गनैं जाणि स्फुरायमान रत्ननिका फणमंडपकरि मंडित हुवो संतो पृथ्वी मैं आयो ॥ १ ॥

अर वा कल्याणरूप प्रभूनैं वेष्टितकरि तिष्ठतो भयो अर धरणेंद्रकी पत्नी पद्मावती जो है सो फणनिका पंक्तिकै ऊपरि भलै प्रकार धरणकरि वज्रमई छत्रकरि तिष्ठती भई ॥ २ ॥

इहां ग्रंथकार कहै है कि ये दोऊ नाग नागिणी प्रकृति करि क्रूर हैं तौ हू भगवानका उपकारनैं स्मरण करत भये तौ अन्य कोमल परिणामके धारक पुरुष परकृत उपकारनैं कैसै भूलै कदाचित हू नहीं भूलै ॥ ३ ॥

ता पीछै भगवान ध्यानके माहात्म्यत मोहका भलप्रकार नाश करता संता कमठ वैरीकृत समस्त विकार नाशनैं प्राप्त होतो भयो ॥ ४ ॥

अर पार्श्वनाथमुनि दूसरा शुक्लध्यान करि बाकीके ज्ञानावरणी दर्शनावरणी अंतरायरूप घातिया कर्मनिका त्रितयनैं जीति चैत्रमासका कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका दिनका आदिमभागमै विशाखा नक्षत्रकै विषै महान उदयको धारक लोकालोकको प्रकाशक केवलज्ञान जो है ताहि प्राप्त होतो भयो ॥ ५–६ ॥

या वचनतै शुक्लध्यानका प्रथम चरण होतसंतै मोहका नाश भया वाही समय कमठकृत समस्त विकाररूप उपसर्ग मिटि गया तदि फणमंडप आदिका भी कार्य नहीं रह्या, ता पीछैं शुक्लध्यानका दूसरा चरण करि बाकीके तीन घातिया नष्ट भये तब केवलज्ञान भया तथापि उपसर्ग समयके चिह्नयुक्त प्रतिबिंब देखिये है सो तप अवस्थाका जानिये है । ऐसैं ही और भी तप विशेषके चिह्नयुक्त होय सो प्रतिबिंब साधुका जानना तैसै गर्भजन्मके चिह्नयुक्त प्रति-

बिंब बनानेका हुकम भी नही सुन्या अर कहूं वर्त्तमानमैं तिष्ठता भी नही सुन्या।

प्रश्न—जो प्रतिबिंब पुरुषाकार अर निराकार जालीकै समान पारगुजार है सो कौनका है।

उत्तर—ये प्रतिबिंब सिद्धनिका है, क्योंकि द्रव्यसंग्रहमै सिद्ध स्वरूपकी, गाथा;—

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धोज्झाएइ लोयसिहरम्मि।५२
नष्टाष्टकर्मदेहः लोकालोकस्य ज्ञाता द्रष्टा।
पुरुषाकारः आत्मा सिद्धः ध्यायत लोकशिखरस्थः।५२।

अर्थ— नष्ट भये हैं ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म अर औदारिक आदि देह जिनकै अर लोक अलोकका ज्ञाता द्रष्टा पुरुषाकार लोकका शिखरमै तिष्ठता सिद्ध आत्मा ध्यावो ॥ ५२ ॥

प्रश्न—अरहतका कहनेतैं याही प्रतिबिंबकूं पाचूं ही कल्याणकका जानना?

उत्तर—अरहतका प्रतिबिंब तौ अष्ट प्रातिहार्ययुक्त ही कह्या है सो प्रातिहार्य गर्भ जन्ममै होय नाही तातैं तेरमा गुणस्थानवर्ती भगवान अरहत भट्टारकका ही या प्रतिबिंबकूं जानना।

प्रश्न—जामै प्रातिहार्यके चिह्न नही है तामै तौ जन्मकल्याणसंबधी उत्सव करनेका कुछ दोष नही?

उत्तर—प्रथम तौ जा प्रतिबिंबके चरणचौकीमै तौ बलद आदिका चिह्न है अर प्रातिहार्य भिन्न भिन्न कराय स्थापन करै है सो तौ तीर्थंकरनिका ही जानो, अर जाकै बलद आदिका चिह्न नहीं हैं अर प्रातिहार्य भी नहीं है ताकूं सिद्धनिका तथा साधुनिका जानो, परंतु

गर्भकल्याणक जन्मकल्याणकका तौ संभवै ही नाही क्योकि वीत-रागमुद्रायुक्त प्रतिबिंबमैं कोऊ गर्भजन्मका चिह्न नही दीखै है अर जिनबिंब संयमीनिकै पूजने बंदने योग्य है तातै जो कदाचित् याही प्रतिष्ठित बिंबमै गर्भजन्मका कोऊ चिह्नकरि गर्भजन्मकी संभावना करोगे तौ असंयमीनितै संयमीनिका दरजा बड़ा है, क्योकि असंय-मी चतुर्थ गुणस्थानी है अर संयमी पंचम आदि गुणस्थानी है तातैं नही बंदै है। अर उत्तरपुराणका महावीरपुराणमै ऐसा लिख्या है;

संजयास्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानंतरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः॥ १ ॥
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः॥ २ ॥

अर्थ—संजयंत अर विजयनामा चारण मुनिके अर्थमै संदेह उत्पन्न होता संता जन्मते ही भगवान महावीरनैं प्राप्त होय देखवा मात्रतै ही वा संदेहनै दूर होतां संतां वै दोऊ चारण मुनि अपनी भक्तितै या प्रकार बोलते भये कि यो होणहार सन्मति देव है॥१२॥

यामै प्रत्यक्ष मिलाप अर प्रीतिमै प्रशंसारूप वचन तौ लिख्या परंतु नमस्कार नही लिख्या तथा गर्भ जन्मके उत्सवमै भी मुनीश्व-रनिको आगमन कहूं नही लिख्यो तौ जन्मोत्सव समयका प्रतिबिंब-नै नमस्कार कैसै करै, अर कृत्रिम अकृत्रिम अरहंत बिंबनै मुनीश्वर नमस्कार करैं ही हैं।

प्रश्न—जो प्रतिमा पंच कल्याण करि प्रतिष्ठित है तामैं फेर जन्मकल्याणका संकल्पकरि अभिषेकादि क्रिया करनेका कहा दोष है।

उत्तर—प्रतिष्ठा नाम स्थापनेका है सो जाकी जामै स्थापना

करिये ताकी सर्व भावना वामै करिये तब वो नाम पावै तातै गर्भ आदि जो जो जैसै जैसै भया है सो सो तैसै तैसै यथाशक्ति प्रतिष्ठामै करिये है अर उनकै जो जो नही भया सो सो अन्याय व्यभिचार आदि नही करिये है अर दीक्षा भये पीछै काहू इंद्रादिकनिनै गर्भ जन्मका उत्सव उनपै नही किया सुन्या, अर स्तवनमै तौ ऋषभदेवका दश पूर्व भवका हू वरनन किया है तथा गर्भजन्मका हू वैभव वर्णन किया है तैसै इहां भी प्रतिष्ठामै प्रतिमाका तप कल्याण भये पीछै गर्भजन्मका उत्सव करना योग्य नाही अर स्तुतिमै सर्व ही वरनन करना योग्य है।

प्रश्न—जो प्रतिमाकूं पंच परमेष्ठीकी ही मानूंगे तौ अभिषेक ही नही बनैगा क्योंकि प्रतिबिंब उनहीका कहौ हौ तातै, क्योंकि उनमै अरहंत सिद्धकै तौ स्पर्श करनेहीका काम नाही अर साधुनिकै मूलगुणमै ही स्नान वस्त्रादिकका त्याग है तातै।

उत्तर—तुमनै कह्या सो तौ सत्य है परंतु अभिषेक शुद्धजलतै करनेका हुकम आर्ष ग्रंथनिमैं है तातै यामै जैनी मात्र तौ प्रश्न करै ही नाहीं क्योंकि जिनागमके एक अक्षरकूंभी अश्रद्धानरूप ग्रहण करनेकूं मिथ्यादृष्टी कह्या है, सो भगवती आराधनामै,—

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो॥ ३९॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रमै दिखाया एक पदनै तथा एक अक्षरनै भी नही श्रद्धान करै है सो पुरुष और समस्त आगमका अर्थनै श्रद्धान करतो सतो भी प्रकट मिथ्यादृष्टी जानवे योग्य है॥ ३९॥

अर अकृत्रिम जिनबिंबनिका अभिषेक वरननकी त्रिलोकसारमै—

धम्मं पसंसिदूणं एहादूण दहे भिसेयलंकारं ।
लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कुव्वंति सद्दिट्ठी ॥५४६॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जे है ते उत्पादशय्यातै उठते ही धर्मकी प्रशंसा करि द्रहके विषै स्नान करि अभिषेक अलंकार पाय जिनेद्रको अभिषेक पूज करै है ॥ ५४९ ॥

या वचनतैं अकृत्रिम प्रतिबिंबनिका अभिषेक अनादि कालतै होय है ऐसा निश्चय है, अर कृत्रिम बिंबनिका अभिषेक समवसरणमै इंद्रादिकनिनै कीया सो श्लोक याही प्रकरणमै पहिलै लिख्या ही है ।

प्रश्न—ये तो कथारूप वचन है आज्ञारूप वचन हो सो कहो।

उत्तर—प्रथम तौ पूजनरूप कार्यमै इंद्रका जहां नाम होय सो प्रामाण्य ही जानौ क्योंकि पूजनेके कार्यमैं इंद्रका ही अधिकार हैं। दूसरां या गाथामै सम्यग्दृष्टी पद है तातैं आज्ञारूप वचनतैं समान ही ये वचन मानना, ता सिवाय या प्रकरणकी आदिहीमैं वृहत्सामायिकका श्लोक लिख्या है तातै निःसंदेह अभिषेक शुद्ध जलतै करि पूजन स्तवन जपन करना योग्य है ।

प्रश्न—अभिषेक शुद्ध जलतैं करना तौ इनि वचननितै हमनै प्रमाणभूत कीया परंतु शुद्धजलतै भी प्रासुक तप्तसै करै कि शीतलसै करै ?

उत्तर—जहां तहां अभिषेकके प्रकरणमै तथा पूजनके प्रकरणमैं शीतल जलका भी निषेध नाही सुन्या क्योंकि पूजन दोय प्रकार है एक सचित्त एक अचित्त, तातैं सचित्तका त्यागी तौ अचित्त द्रव्यनिसैं ही करै अर सचित्तका त्याग नहीं होय सो सचित्तसैं भी करै अर अचित्तसैं भी करै जैसी योग्यता वर्णै तैसी

ही तरै करै ।

प्रश्न—ये रीति तौ पूजनकी है, सचित्तसैं अभिषेक करणेका होय सो कहौ ?

उत्तर—प्रथम तौ अभिषेक भी पूजनहीका अंग है न्यारा नहीं समझणा ता सिवाय अभिषेक समवसरणका वर्णनमै प्रतिमाका क्षीरसागरका जलकरि लिख्या तहां तप्त नहीं लिख्या तातैं सचित्तसै भी है ।

प्रश्न—क्षीरसमुद्रके जलमैं तौ है जलचर जीव नहीं हैं तातैं उसका ग्रहण है ?

उत्तर—जलचर तौ नहीं हैं परंतु जबतक जलकायके जीव हैं तब तक अचित्त नहीं कह्या जाता है अर तैसै हो इहां कूपादिकके जलकौं वस्त्रतैं छाणि जलचररहित मानि एक मुहूर्त्तपर्यन्त अभिषेक पूजनमैं ग्रहण करिए है अर मुहूर्त्त उपरांत राखणा होय तौ तीक्ष्ण लवगादि द्रव्य मिलाय दोय पहर पर्यंत ग्रहण करिए है, अर सचित्तका त्यागीकै योग्य द्रव्य अष्टद्रव्यका निर्णयकै अनतर ही प्रासुकद्रव्यनिर्णयका प्रकरण लिखियेगा तहातैं जानना ।

प्रश्न—पूजनके पूर्व अभिषेक करना तौ सिद्ध भया परंतु वर्त्तमानमैं पूजनके अंतमैं भी अभिषेक करते हैं सो कैसै है ?

उत्तररूप उत्तरपुराणका बासठमा पर्वमै,—

विधाय विधिवद्भक्त्या शांतिपूजापुरःसरम् ।
महाभिषेकं लोकेशामर्हतां सचिवोत्तमाः ॥

अर्थ—मंत्रीनिमै उत्तम जे हैं ते सर्व लोकके स्वामी अरहत जे हैं तिनिकी भक्तिकरि यथाविधि शांतिपूजापूर्वक महा अभिषेक करि राजाको अभिषेककरि सिंहासनमै स्थापन करते भये ऐसा

संबध है, यातें शांतिके निमित्त पूजनके अंतमैं भी महाअभिषेक करना योग्य है।

चौपई।

मूलसंघमें श्रावककृतग्रंथ। कहत नित्यअभिषेक सुपंथ॥
यजन आदि पुनि अन्तमझार। केवल नीर थकी निरधार।

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीते विद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनाद्यातके प्रथमकांडे जिनाभिषेकनिर्णयो नाम सप्तमोल्लासः।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ स्थापना निर्णय।

दोहा।

स्वर्ग मध्य पाताल मधि, दुविध थापना थापि।
यजत भव्य जिनपद सुमरि, नमूं जिनद गुन जापि॥

प्रश्न—अभिषेकनिर्णय तौ भया परंतु आह्वानन, संस्थापन, संनिधीकरण, पूजन, विसर्जन ऐसैं पंचोपचार पूजन वृद्धव्यवहारतैं प्रवर्त्त है तामैं स्थापना सद्भावा नामा तौ साकारा अर असद्भावा नामा निराकारा है, तिनिमैं निराकाराको निषेध वसुनंदिश्रावकाचारमें लिख्या है सो कैसैं है?

हुंडावसप्पिणीए विइया ठवणा ण होय कायव्वा।
लोए कुलिंगमयमोहियं जदा होइ संदेहो॥३८४॥

अर्थ—हुंडावसर्पिणीकालकै विषैं निराकारा नामा दूसरी स्थापना नहीं होय तैसैं जाननी क्योंकि लोक कुलिंगमय है अर कुलिंगधारि निराकार स्थापना करै है तातैं संदेह होय है अर मोह

होय है, यातैं ॥ ३८४ ॥

ऐसें कैसें लिख्या है ?

उत्तर--ये वसुनंदिजो बहुश्रुत है इनूंनै कोई आगमतैं लिखी होगी परन्तु वर्त्तमानमैं तौ जितनै प्रबंध पूजनके हैं तिनिमैं तो पंचोपचार ही देखिये है अर निराकाराका निषेध कहूं अन्य ग्रंथनिमैं सुन्या नाहीं अर सर्व ही जैनी अक्षत पुष्पनिमै स्थापनाकरि पूजैं हैं, इतना विशेष तौ सुन्या है कि जा पूज्यका पूजन करणा होय सो पूज्य प्रत्यक्ष विद्यमान होय अर कितनेक काल रहैगा ताका तौ आह्वानन संस्थापन संनिधीकरण विसर्जन तौ होय नाही अर केवल पूजन ही होय है जैसै साक्षात् केवली तथा मुनि तथा अकृत्रिम अर कृत्रिम बिंब विराजमान हैं तिनको पूजन ही होय है अर आह्वानन संस्थापन सनिधीकरण विसर्जन नहीं होयहै क्योंकिजो जो प्रत्यक्ष विराजमान होय ताको बुलावणूं बैठावणं निकट बरतावणू पुनरुक्त शोभै नाहीं अर कितनेक काल रहैंगे तातै विसर्जन भी योग्य नाहीं, अर जा भावतै विद्यमान है ता भावतै अन्य भावरूप तथा अन्यप्रकाररूप तथा अन्य पूज्यरूप गुणी तथा गुणका पूजन करणा होय तहा पंचोपचार ही योग्य है क्योंकि आह्वानन संस्थापन संनिधीकरण नहीं करै तौ पूजन किसका करै अर जिन पुष्पादिकनिमै स्थापना करि तिनको पूजन स्तवन बंदना भक्तिकरि विसर्जन भी करै ही क्योंकि सिवाय काल रह सकै नाहीं तातै ऐसै स्थापनाको विधान सुन्यो है।

प्रश्न—जहां पंचपरमेष्ठीरूप प्रतिमा विराजमान है तहां स्थापना फेर कौन कारणतै करैहैं ?

उत्तर—केवल स्थापना निक्षेप हीपूज्य है, नोआगमभावरूप भगवानके सूचक सर्व ही निक्षेप पूज्य हैं तातै प्रथम तौ निक्षेप-स्वरूप

जानवो योग्य है, यातैं मूलाचारमैं कही है सो;—

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले तहेव भावे य ।
एसो थवम्हि णेओ णिक्खेवो छव्विहो होदि ॥

टीका—नामस्तवः स्थापनास्तवः द्रव्यस्तवः क्षेत्रस्तवः कालस्तवः भावस्तवः एष स्तवे निक्षेपः षड्विधो भवति ज्ञातव्यः । चतुर्विंशतितीर्थंकराणां अर्थानुगैरष्टोत्तरसहस्रसंख्यैर्नामभिः स्तवनं चतुर्विंशतिनामस्तवः चतुर्विंशतितीर्थंकराणामपरिमितानां कृत्रिमाकृत्रिमस्थापनानां स्तवनं चतुर्विंशतिस्थापनास्तवः, तीर्थंकरस्वरूपाणां परमौदारिकस्वरूपाणां वर्णभेदेन स्तवनं द्रव्यस्तवः, कैलाससम्मेदोर्जयन्तपावाचंपानगरादिनिर्वाणक्षेत्राणां समवसृतिक्षेत्राणां च स्तवनं क्षेत्रस्तवः , स्वर्गावतरणजन्मनिष्क्रमणकेवलोत्पत्तिनिर्वाणकालानां स्तवनं कालस्तवः, केवलज्ञानकेवलदर्शनादिगुणानां स्तवनं भावस्तवः ।

अर्थ—नामस्तव स्थापनास्तव द्रव्यस्तव क्षेत्रस्तव कालस्तव भावस्तव ये छह प्रकार स्तवमैं निक्षेप हैं सो जाणवा योग्य हैं । अथ इनिके भिन्न भिन्न लक्षण कहैं हैं—चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थके अनुकूल जे अष्टोत्तरसहस्रसंख्यारूप नाम तिनकरि जो स्तवन सो चतुर्विंशति नामस्तव है, अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिकी

अपरिमाण कृत्रिम अकृत्रिम स्थापना जे हैं तिनको जो स्तवन सो चतुर्विंशतिस्थापनास्तव है, अर चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका परम औदरिकस्वरूपको वर्णभेदकरि जो स्तवन सो द्रव्यस्तव है, अर कैलास सम्मेदशिखर गिरनारि पावापुर चंपापुरनगरादि निर्वाण-क्षेत्रनिको तथा समवसरणक्षेत्रको जो स्तवन सो क्षेत्रस्तव है, अर स्वर्गावतरणसमयादि कहिये गर्भ अर जन्म तथा केवलोत्पत्ति निर्वा-समयको जो स्तवन सो कालस्तव है, अर केवलज्ञान केवलदर्शन आदि गुणनिको जो स्तवन सो भावस्तव है। तथा ऐसै भी जानना कि जा नामके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो नामस्तव है, तथा जा स्थापनाके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो स्थापनास्तव है, तथा जा द्रव्यके आश्रय जो नो आगमरूप पूज्यका स्तवन करिये सो द्रव्यस्तव है, तथा जा क्षेत्रके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो क्षेत्रस्तव है, तथा जा कालके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो क्षेत्रस्तव है, तथा जा कालके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्य-का स्तवन करिये सो कालस्तव है, तथा जा भावके आश्रय नोआगमभावरूप पूज्यका स्तवन करिये सो भावस्तव है, ऐसै स्तवन पूजनके निक्षेप तौ ये जानने, अर वस्तुस्थापनके निक्षेप मुख्यपणैं च्यारके अनेक प्रकार सर्वार्थसिद्धिमै तथा राजवार्त्तिकमैं लिखे है ते सर्व जानने योग्य हैं इनिके जानेतैं वचनके नानाभेद प्रवर्त्तते देखतै संतैं नानाप्रकार नयका स्वरूप ही तौ भासै अर संशय मोह नहीं उपजै है॥

भावार्थ—नो आगम भाव नाम जो वस्तु जिस पर्यायविषैं वर्त्तमानकालमैं होवै ताका है तातैं जो जो निक्षेप नोआगमभावरूप पूज्यके सूचक हैं सो सर्व ही स्तवनपूजनयोग्य हैं। तिनि सबनिका विषय-

भूत जो पूज्य ताका छहूं निक्षेपमय स्वभावन स्मरण करता संता छहूं निक्षेपनिका पूजन करनेका इच्छुक पुरुष जो है सो पुनःस्थापना करि पूजन करै है, तथा केई पूजक भिन्न भिन्न भी स्थापनाकरि पूजन करैं हैं। जैसैं नामका पूजन करना होवै तहां अष्टोत्तरसहस्र नामनिकी स्थापना करि अष्टोत्तर सहस्र अर्घ देय तथा एक अर्घ देय पूजन करै है, तथा स्थापनाका पूजन करना होवै तहां तीन लोकका मंडल आदिमैं अकृत्रिम कृत्रिम बिबनिकी स्थापना करि पूजन करै है, तथा द्रव्यका पूजन करना होवै तहां परम औदारिकादि शरीरका वर्ण आदि गुणनिकी स्थापनाकरि भिन्न भिन्न तथा समुच्चयपूजन करैहै तथा क्षेत्रका पूजन करना होवै तहां कैलास सम्मेदशिखर पूजन करै है समवसरण आदि क्षेत्रनिको स्थापना करि भिन्न भिन्न तथा समुच्चय पूजन करै है, तथा कालका पूजन करना होवै तहां गर्भादिनिर्वाण-पर्यन्त समयकी तिथिनिका स्थापन करि पूजन करै है, तथा भावनिका पूजन करना होवै तहां अनंत चतुष्टयादि भावनिकी स्थापनाकरि पूजन करै है । तातै प्रतिमाके विराजमान होते भी ऐसे अभिप्रायतै स्थापना करना योग्य है अर जा पूजककै विशेष-काल ठहरनेकी थिरता नहीं होवै है सो जिनप्रतिमाको अभिषेककरि अष्टद्रव्यनिकरि भिन्न भिन्न तथा समुच्चय अर्घ चढ़ाय नमस्कार करै है सो भी पूजन ही है ॥

प्रश्न—केई जैनी नव स्थापना करै हैं, सो कैसै हैं ?

उत्तर—प्रथम तौ जिस प्रबंधसै करै हैं तिस प्रबंधमैं नवका ही पाठ है,, दूसरां जिनि नवनिकी स्थापना करै हैं सो नव जैनी मात्रकै पूज्य है ।

प्रश्न—तुमारे कहनेसै तो प्राचीन रीति भासै है अर रत्नकरंड-की वचनिकामैं अठारासै पचास १८५० के संवतसै भई लिखी है

सो कैसे है ?

उत्तर—उनके लिखनेका अभिप्राय जैपुरमें भई जनानेका है, पूर्वें कहूं ही नहीं थी अर इहां ही नई कल्पना करी ऐसा तो नहीं लिख्या क्योंकि वे सदासुखजी अनेक ग्रंथ अनेक पूजनप्रबंध अनेक देशनिकी प्रवृत्तिकूं जाननेंवारे थे वे चूकि अर कदाचित् नहीं लिखैं। अर तुम सिवाय और भी केई मनुष्य विना समझ्या कहै हैं कि गुमानीरामजीन ही ये रीति खडी करी है तातें लिखिये है कि गुमानीरामजीके भहोत काल पहली मैंगपुरी वगैरैमैं या ही नव स्थापनाकी रीति पाइये है तथा उनकै भी वहौत काल पहलीका पंडित मेधावीकृत धर्मसंग्रहनामा ग्रंथ है ताके नवम अधिकारमैं भी ये ही नव पूज्य कहे हैं,—

पूज्योऽर्हन्केवलज्ञानदृग्वीर्यसुखधारकः।
निःस्वेदत्वादिनैर्मल्यमुख्यकैः सयतो गुणैः॥४१॥
सम्यक्त्वादिगुणः सिद्धः सूरिराचारपंचकः।
पाठको द्वादशांगज्ञः साधुश्चार्यः स्वसाधकः॥४२॥
सर्वज्ञभाषितार्थं यद्ग्रथितं गणधरादिभिः।
स्थापितं पुस्तकादौ तच्छ्रुतं पूज्यं च भक्तितः॥४३॥
यथैते धर्मिणः पूज्यास्तथा धर्मोऽपि तन्मतः।
स च दृग्बोधचारित्रलक्षणश्च क्षमादिकः॥४४॥
चकारात् षोडशकारणमपि।

अर्थ—केवलज्ञान केवलदर्शन केवलवीर्य केवलसुखके धारक अर निःस्वेदत्वनैं आदि लेय निर्मल मुख्य गुणनिकरि संयुक्त ऐसे अर्हन् पूज्य हैं॥ ४१ ॥ अर सम्यक्तनै आदि लेय आत्मीक

गुणनिकरि युक्त सिद्ध पूज्य हैं, अर आचारपचकयुक्त आचार्य अर द्वादशांगका ज्ञाता उपाध्याय अर निजगुणका साधक आर्य कहिये साधु ॥ ४२ ॥ अर जो सर्वज्ञभाषित अर्थ गणधरनिनैं गूंथि पुस्तकादिकमैं स्थापित कियो सो श्रुत भक्तितैं पूज्य है ॥ ४३ ॥ अर जैसैं तिहारे धर्मी पूज्य हैं तैसै अरहंतनिकै मान्य धर्म भी पूज्य है सो धर्म दर्शनज्ञानचारित्रलक्षण है अर उत्तमक्षमादिक दशलक्षण है। अर दूसरा चकार शब्दतैं षोडशकारण भी धर्ममैं ही जानना ॥ ४४ ॥

या वचनत भी ये ही नव पूज्य पनरासै इकताळीसका साल पहळीसैं लिखे हैं।

तथा दूसरा जिनसेन काष्ठासंघी हरिवंशपुराणका कर्त्ता भी ये ही कहै है;—

क्षीरहीरगौरनीरपूरवारिधारयाऽ—
मन्दकुन्दनन्दनेन सौरभेण सारया।
देवबोधिसूरिसिद्धदर्शनादिकत्रयं
द्व्यष्टकारणं यजे वरोत्तमक्षमादिकम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुगंधभूत सार करि, क्षीर कहिये दुग्ध अर हीर कहिये हीरो जो है ता समान गौर प्रचुर जलकी धाराकरि, फेरि वै धारा कैसीक है कि प्रचुर कुंदाका पुष्पकरि वृद्धिनैं प्राप्त भई जो सुगंध ताकरिकै सारभूत है, ताकरि अरहंत, जिनवाणी, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सिद्ध, षोडशकारण, उत्तमक्षमादि धर्म ऐसैं नव जो ताहि यजे कहिये यजूं हूं ॥ १ ॥

इति वचनांनतें ये राह भी प्राचीन है।

प्रश्न—देव शास्त्र गुरु आदिका एक श्लोकतैं ही स्तवन पूजन करनेकी रीति काष्ठासंघ की है ?

उत्तर—ऐसा कहना भी उचित नाहीं क्योंकि ऐसैं तौ वृहत्सामायिकमें भी नव देवनिकूं एक ही श्लोकमें स्तवनरूप किये हैं,—

इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमला दिशंतु बोधिं बुधजनेष्टाम् ॥

अर्थ—या प्रकार 'पांचमहापुरुषाः' कहिये अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु अर जिनधर्म जिनवचन चैत्य चैत्यालय जे हैं ते नमस्कार किया संता बुधजननिकै इष्ट निर्मल ज्ञान द्यो ॥

यामैं भी नवदेवनितैं प्रर्थना एक ही श्लोकमें करी है सो एकमैं करै तथा भिन्न भिन्न करै या तौ वक्ताकी इच्छा है यामैं एकात नहीं है। अर और भी देखिये है कि पंच परमेष्ठीको पूजन करै तदि प्रथम तौ सामान्यपणैं पाचांहीकी एक श्लोक मंत्रसैं ही स्थापना करि सामान्यपणैं समुच्चय पूजन करै पीछै पाचांकी भिन्न भिन्न ही तौ स्थापना करै अर भिन्न भिन्न ही पूजन करै। ऐसैं अनेक प्रबंध हैं तौ हैं ही परंतु मूलमंत्र एक आर्याछंदरूप है तामैं पंचपरमेष्ठीनै नमस्कार करै है ततैं सामिलका तथा भिन्न भिन्नका कुछ एकांत नहीं कहणा ।

प्रश्न—इहां भी केई पक्षपाती कहै हैं कि षोडशकारण तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करै है तातैं बंधका कारणपणातैं नित्यपूजनमैं पूजन करना योग्य नाहीं ।

उत्तर—पूजन करै है सो गुणाधिकमैं रागकी अधिकता होत करै है अर रागभाव है सो सर्व ही बंधनैं कारण है परंतु

इतना विशेष है कि अरहंतादिकमैं राग है सो पुण्यबंधनै कारण है अर षोडशकारणमैं राग है सो सर्वोत्तमपणातैं तीर्थंकरगोत्रका बंधनै कारण है तातैं षोडशकारणका पूजन सर्वथा नित्य कर्त्तव्य है।

प्रश्न—नव देवता मूलसंघमैं तौ कहे हैं तहां रत्नत्रय षोडशकारण तौ कहे नाहीं अर जिनमंदिर जिनप्रतिमा कहे है, सो त्रिभंगीके अंतमैं मंगलरूप;—

अरहंत सिद्ध साहूतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाओ।
जिणणिलया इति एदे णव देवा दिंतु मे बोहिं॥ ११६॥
अर्हंतः सिद्धाः साधुत्रितयं जिनधर्मवचनप्रतिमाः।
जिननिलया इति एते नव देवा ददतु मे बोधिं॥

अर्थः—अरहंत सिद्ध साधुत्रितयं कहिये आचार्य उपाध्याय साधु अर जिनधर्म जिनवचन जिनप्रतिमा जिनालय या प्रकार ये नव देव जे है ते मेरे अर्थि सम्यक् ज्ञान द्यो॥ ११६॥

उत्तर—तुमनैं कह्या सो तौ सत्य है क्योंकि नव देव संज्ञा तौ इन नवूंहीकी है परंतु वचनपक्ष छोड़ि विचारनेकी वार्त्ता है कि नवदेवसंज्ञामे नहीं है तौहू रत्नत्रय षोडशकारणकूं जहां तहां पूज्य तौ कहे हैं तातैं कषायके आश्रय आपसमै निंदा करि कषाय वधावना कर्मबंधकाका कारण है, तातैं ऐसी कुतर्क करना योग्य नाहीं जिनेंद्रका धर्म तौ निःकषाय है।

चोपई।

पट् निक्षेप जिनागममाहिं,
कहे पूज्यके पूज्य सराहिं।
परिहरि पक्ष पंच उपचार.

करहु भव्य लखिये निरधार॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतो विद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकांडे स्थापनानिर्णयो नाम अष्टमोल्लासः॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ अष्टद्रव्यनिर्णय लिख्यते।

दोहा।

जिन प्रतिमा तिहुंलोकमैं, राजत नित्य निरंत।
ताहि बंदि तत् भजन हित, कहूं द्रव्य विरतंत॥१॥

प्रश्न—स्थापनाका निर्णय तौ सिद्ध भया परंतु स्थापना किये पीछें पूजन करनेमै द्रव्यके स्वरूपमै तथा द्रव्यके चढ़ानेमै भी केई पुरुष विसंवाद करै है तातैं इनिका भी भिन्न भिन्न निर्णयकरि कहौ क्योकि प्रथम तौ केई पुरुष जलकी धारा जिन प्रतिमाके चरण ऊपरि चढ़ावै है अर केई पुरुष जिन प्रतिमाके अग्रभागमैं चढ़ावै हैं सो आगमतै कैसैं योग्य है?

उत्तर—पद्मनंदिपंचविंशतिकामै श्लोक,—

जातिर्जरामरणमित्यनलत्रयस्य
जीवाश्रितस्य बहुतापकृतो यथावत्।
विध्यापनाय जिनपादयुगाग्रभूमौ

धारात्रयं प्रवरवारिकृतं क्षिपामि ॥ १ ॥

अर्थ—जीवके आश्रित बहुत तापका करता जन्म जरा मरणरूप अग्नित्रय जो है ताकूं यथावत दूरि करिनेके अर्थि जिनचरणयुगलकी अग्निभूमिमैं अति उत्तम जलकृत धारात्रयनें क्षेपूं हूं ॥ १ ॥

या वचनतैं अग्रभूमिमै जलधारा देवो योग्य है।

तथा आदिपुराणके विषैं इंद्राणीकृत पूजनमैं;—

ततो नीरधारां शुचिस्वानुकारां
लसद्रत्नभृंगारनालस्रुतां ताम्।
निजां स्वांतवृत्तिं प्रसन्नामिवाच्छां
जिनोपांघ्रि सम्पातयामास भक्त्या ॥१॥

अर्थ—तदनंतर शची जो है सो देदीप्यमान रत्ननिकी झारीका नालतैं निकलती अर पवित्र तथा आत्माके अनुकरण करनवारी ऐसी निर्मल अपना सुन्दर अंतःकरणकी प्रवृत्ति समान वा जलकी धारा जो है ताहि भक्तिकरि जिनेंद्रका चरणनिके समीप भागके विषैं पटकत भई ॥ ॥

इहां अंघ्रि शब्दके उप उपसर्ग है तातैं समीप अर्थ भया है यातैं अग्रभागमैं ही चढ़ाबो योग्य है।

इति जलपूजननिर्णय।

ॐ नमःसिद्धेभ्यः।

प्रश्न—जल चढ़नेकी रीति तौ मानी अब चंदन चढ़ानेकी भी रीति कहौ ?

उत्तर—आदिपुराणमैं श्लोक—

स्वरुद्भूतगंधैः सुगन्धीकृताशैः

भ्रमद्भृंगमालाकुलारावहृद्यैः ।
जिनांघ्री स्मरंती विभोः पादपीठं
समानर्च भक्त्या तदा शक्रपत्नी ॥ १ ॥

अर्थ—ता समयमैं शक्रपत्नी जो है सो जिनेंद्रका चरणनै स्मरण करती संती सुगंधित करी है दशूं दिशा जानैं अर भ्रमण करते भ्रमरनिकी पंक्तिनैं कियो जो शब्द ताकरि मनोहर ऐसा स्वर्गलोकतै उत्पन्न भया गंधकरि प्रभूका पादपीठनै भक्तिकरि पूजत भई ॥ १ ॥

या वचनतै पादपीठकै निकट चढ़ाना योग्य है।

प्रश्न—तुमनै तौ पादपीठकै निकट चढ़ाना स्थापन किया परंतु वसुनंदिकृत प्रतिष्ठासार आदि ग्रंथनिमै चरणकै लगाना लिख्या बताते हैं, सो कैसे है ?

उत्तर—वे श्लोक कौनसे हैं ?

प्रश्न—सुनो कि वसुनंदिकृत प्रतिष्ठापाठमैं ऐसा है,—

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचन्दनैः ।
सौगंध्यवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ॥१॥

अर्थ—अपनी सुगंध करि सुगंधित किये हैं समस्त दिशाके मुख जानैं ऐसा कर्पूर इलायची लवंग आदि द्रव्यनिकरि मिश्रित चंदनि करि जिनेंद्र जो है ताहि "चर्चयेत्" ॥

तथा अभयनंदिकृत श्रेयोभिधानमै,—

काश्मीरपंकहरिचन्दनसारसान्द्र-
निष्यन्दनादिरचितेन विलेपनेन ।
अव्याजसौरभतनोः प्रतिमां जिनस्य

संचर्चयामि भवदुःखविनाशनाय ॥ १॥

अर्थ—काश्मीरको पंक अर हरिचंदनको सार जलसहित घसिकर बनायो जो विलेपन द्रव्य ताकरि स्वाभाविक सुगंधित है शरीर जाको ऐसा जिनेंद्रकी प्रतिमानैं भवदुःखका विनाशकै अर्थि "संचर्चयामि" ॥ १ ॥

तथा आशाधरकृत नित्यपूजनमैं; —

काश्मीरकृष्णागरुगंधसार-
कर्पूरपौरस्त्यविलेपनेन ।
निसर्गसौरभ्यगुणोल्बणानां
संचर्चयाम्यंघ्रियुगं जिनानाम् ॥ १ ॥

अर्थ—केशरि कृष्णागरु चंदन कपूरनै आदि लेय मुख्य विलेपन द्रव्यकरि स्वभावतैं सुगंधगुणकी है उत्कटता जाविषैं ऐसा जिनेंद्रका चरणयुगलनैं "संचर्चयामि" ॥ १ ॥

तथा दूसरा शुभचंद्रकृत सहस्रगुणी पूजासै—

परिमलविमलाढ्यैरिन्दुकाश्मीरमिश्रै-
र्निखिलमिलितद्रव्यैश्चन्दनैर्घ्राणपेयैः ।
शिवसदननिविष्टं नाद्यनंतप्रमुक्तं
दशशतजिनवारं चर्चये सिद्धचक्रम् ॥ १ ॥

अर्थ— मैं पूजक जो हूं सो निर्मल सुगंधकरि व्याप्त अर नासिकानैं प्यारा ऐसा कर्पूर केसरि करि मिलित संपूर्ण मिले हैं द्रव्य जाविषैं ऐसा चंदनकरि मोक्षमंदिरमैं तिष्ठता आदि अंतरहित हजारां जिनका समूहरूप सिद्धचक्र जो है तानैं "चर्चये" ॥ १ ॥

तथा सोमदेवकृत यशस्तिलकमैं;—

मंदमदमदनदमनं मंदरगिरिशिखरमज्जनावसरे।
कंदमुमालतिकायाश्चन्दनचर्चार्चितं जिनं कुर्वे॥ १॥

अर्थ—अज्ञानमद मदनको दमन करनवारो अर लक्ष्मीरूप लताको कंद ऐसो जिनेद्र जो है ताहि सुमेर गिरिका शिखरकै विषै अभिषेकसमयमैं चन्दनकी चर्चाकरि अर्चित करूं हूं॥ १॥

इत्यादि श्लोकनिमै 'चर्चयेत्' 'संचर्चयामि' 'चर्चा' क्रियापद है सो चरणारविदके लेपन करनेका वाचक है।

उत्तर—प्रथम तौ वसुनंदिप्रतिष्ठापाठका श्लोकमै 'जिनं चर्चये' ऐसा अन्वय है ताका ऐसा अर्थ होय है कि जिनेद्रनैं 'चर्चये' कहिये पूजत हू, तथा अभयनदिकृत श्रेयोविधानका श्लोकमै 'जिनस्य प्रतिमां सचर्चयामि' ऐसो अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि जिनेद्रकी प्रतिमानैं 'संचर्चयामि' कहिये पूजत हू,तथा शुभचद्रकृत सहस्रगुणी पूजाका श्लोकमै 'सिद्धचक्रं सचर्चये' ऐसो अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि सिद्धचक्रनै 'संचर्चये' कहिये भलै प्रकार पूजत हूं,तथा यशस्तिलकका श्लोकमै 'जिनं चन्दनचर्चार्चितं कुर्वे' ऐसा अन्वय है ताको ऐसो अर्थ होय है कि जिनेद्रनैं चन्दनकी चर्चा कहिये पूजाकरि अर्चित करूं हू कि पजूं हू ऐसो अर्थ है। अर या अर्थतैं विपरीत लेपन करूं हूं विलेपन करू हू विलेपन करतभये ऐसा अर्थ करोगे तौ सर्वांगलेपन करना पड़ैगा क्योकि च्यारूं ही श्लोकनिमै चरणका नाम नही है। तथा यशस्तिलकको श्लोक जन्मसमयको है तातैं, बहुरि और श्लोकनिका अर्थमै असंगतता आवैगी सो सुनो, प्रथम तौ ब्रह्म नेमिदत्तकृत नेमिपुराणमै केवलसमयका पूजनमै,—

चंदनागुरुकाश्मीरसंभवैः सुविलेपनैः ।
जिनेंद्रचरणांभोजं चर्चयंतिस्म संमदम् ॥ १ ॥

अर्थ— चन्दन अगुरु केसरितैं उत्पन्न भया सुंदर विलेपन द्रव्यकरि जिनेंद्रका चरणकमलनैं हर्षसहित जैसैं होय तसै 'चर्चयंतिस्म' ॥ १ ॥

इहां भी वा ही चर्चधातुका रूप 'चर्चयंति स्म' है तातै विलेपन अर्थ करोगे तौ केवलसमयका पूजनमैं लेपन करना कदाचित् ही नही सभवैगा क्योंकि प्रथम तौ केवलीको कोऊ स्पर्श ही करै नाहीं दूसरा वा समयका सहस्रनाममै निर्लेप नाम है यातै ।

तथा दूसरा पद्मनंदिजीकृत सिद्धपूजनमैं;—

नेत्रीन्मीलविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैर्फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धस्वादमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥

अर्थ—जो पुरुष चिंतामणिसमान शुद्धभावस्वरूप परम ज्ञानात्मक जल चंदन अक्षत पुष्पमाला नैवैद्य और दीप धूप फल जे हैं तिनकरि सिद्ध भयो है आत्मीक रसको स्वाद जाकै ऐसो अचल अगाध बोध जो है ताहि पूजै है ताकै निश्चय करि नेत्रनिका उघाडनाकै समान प्रकाशका समूहरूप ज्ञानकै अर्थ होय है तातैं हम जे हैं ते वा सिद्धरूपनै संचर्चयामः कहिये पूजै हैं ॥ १ ॥

यामै भी 'बोधं अर्चयेत् तं संचर्चयामः' ऐसा अन्वय है अर वै ही चर्च धातुका रूप है ताका ऐसा अर्थ है कि पूजत हूं । अर इहां भी वै ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन करूं हूं तौ प्रथम वा

ज्ञानको स्वभाव अमूर्तीक है तातैं ज्ञानका स्पर्श ही नही संभवै तदि लेपन कैसै करोगे, अर ज्ञानकी मूर्ति शास्त्रनै मानि वाकै लेपन करोगे तो प्रथम तौ गंधके लेपनतैं ही शास्त्रके अक्षर लुप्त हो जावैंगे ता सिवाय यामैं अष्टद्रव्यतैं ही 'सचर्चयामि' ऐसा संबंध है तातैं जलका भी लेपन करना पड़ैगा तथा अक्षत पुष्प नैवैद्य दीप धूप फलकरि भी लेपन करना पड़ैगा सो लेपन शास्त्रकै कीये शास्त्रकी कहा दशा होवैगी ताहि अनुभव करि डरो। अर शास्त्र सिवाय अरहंतबिंबकूं तथा सिद्धबिंबकूं ज्ञानकी मूर्ति मानोगे तौ भी नैवेद्य दीप धूप आदि अष्ट द्रव्यका लेपन तौ करना ही पड़ैगा तदि धातु पाषाणकी मूर्त्तिकी भी कहा व्यवस्था होवैगी सो ज्ञानमैं अनुभव करि डरो।

तथा जिनसेनजीकृत सहस्रनामका धर्मभूषणनामा मुनिकृत पूजनमै 'बृहत् आदि' अष्टमशतकका प्रत्येक अर्घदानको,—

जगच्छ्रेष्ठो जगन्नाथो जगच्छ्रेष्ठैः प्रपूजितः।
बृहन्नामा जितानंगश्चर्चे तं सलिलादिकैः ॥ १ ॥

अर्थ—जगतमैं श्रेष्ठ, अर जगतका नाथ, अर जगतमैं श्रेष्ठ जीव जे हैं तिनकरि प्रपूजित, अर जीत्यो है अनंग जानै ऐसो बृहत् नामा जिनेंद्र जो है ताहि सलिल आदि अष्टद्रव्यनिकरि 'चर्चे'।

इहां भी वाही चर्च धातुको रूप है तातैं 'चर्चे' कहिये पूजत हू ऐसा ही अर्थ है अर वैसे ही विपरीत अर्थ करोगे कि लेपन करैं हैं तौ प्रथम तौ ये सहस्रनाम साक्षात केवलीकी स्तुति है तातैं लेपन करना संभवै नाही, ता सिवाय इहां भी सलिल आदिकरि चर्चें ऐसो अन्वय है तातैं आठूं द्रव्यनिकरि ही लेपन करना पड़ैगा सो योग्य नाही तातैं जहां तहां पूजनप्रकरणमैं 'चर्च' धातुका

रूप होय वहां पूजन अर्थ ही करना योग्य है।

प्रश्न—इनि श्लोकनिका अर्थ तौ तुमनै कह्या सो जाण्या परंतु वसुनंदिसंहिताको श्लोक सुनो कि—

अनर्चितपदद्वन्द्वं कुंकुमादिविलेपनैः।
बिंबं पश्यति जैनेंद्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥ १ ॥

अर्थ—कुंकुम आदितैं उत्पन्न भया विलेपनद्रव्यकरि अनर्चित कहिये नहीं लेपन कियो है चरणयुगल जाको ऐसा जिनेंद्रका बिंबनै देखै है सो ज्ञानहीन कहिये है ॥ १ ॥

या वचनतैं जिनबिंबका चरणयुगलनैं केसरि चंदन आदितै बनाया विलेपनद्रव्यकरि लिप्त सदाकाल राखणूं क्योंकि लेपनरहित जिनबिंबनै देखै सो ज्ञानहीन होय ऐसै कह्यो है यातैं।

उत्तर—प्रथम तौ या श्लोकमै 'अनर्चित' पद है ताकी निरुक्ति ऐसी होवै है कि 'न अर्चितं अनर्चितं' इहां 'नञ्' अव्ययपद है ताकूं 'अन्' आदेश होय करि "अर्च पूजायां" धातुका रूपतैं मिल्यो समासांत पद है तातैं अपूजित अर्थ होय है यातै वक्ताको तात्पर्य ऐसो है कि अप्रतिष्ठित जिनबिंबनैं देखै कि भक्तियुक्त दर्शन करै विनय करै नमस्कार करै पूजन करै सो ज्ञानहीन कहिये।

प्रश्न—ऐसा अभिप्राय तुमनैं कैसै जान्या ?

उत्तर—हमनैं ऐसै जान्या कि वसुनंदिजी बहुश्रुत है तातै तुमनै कह्या सो अर्थ नहीं राख्या होगा क्योंकि तुमारा कीया ही अर्थ मानै तौ बड़ा दूषण आवै, सो ऐसै कि—प्रथम तौ समवसरणमै विराजमान केवली भगवान है सो सदा निर्लेप सिंहासनतै ही अंतरिक्ष है ताहीतैं सहस्रनाममै निर्लेप नाम प्रसिद्ध है तौ उनके दर्शन करनेंवारे सर्व जीव अज्ञानी ठहरैंगे।

प्रश्न—ये वार्त्ता केवली भगवानकी है अर यो श्लोक प्रतिमा वरननको है तातै हमनै अर्थ कियो सो ही वक्ताको अभिप्राय मानो ।

उत्तर—तुमारै तांई अभिषेक वरननमै स्पष्टतर दिखाया है कि साक्षातमैं अर प्रतिमामै कुछ भेद नही है, फेर भी वै ही प्रश्न करो हौ तौ अपनौ मुख दर्पणमै तौ देखौ कि प्रत्यक्ष वैसाको वैसो ही दीखै है कि कुछ कमती ज्यादा भी दीखै है। जो कमती ज्यादा दीखै जदि तौ साक्षातमै अर प्रतिबिंबमै फरक मानो अर जो वैसाका वैसा ही दीखै तौ केवली भगवानकै समान ही प्रतिमानै मानो। ता सिवाय और सुनो कि त्रिलोकसारमै,—

सिरि गिहसीसठिसंवुजकण्णियसिंहासणं जडामउलं।
जिणमभिसेत्तुमणा वा ऊदिण्णा मत्थए गङ्गा ॥५८५॥

अर्थ—गंग देवीका जो श्रीमंदिर ताका मस्तक ऊपरि तिष्ठता कमलकी कर्णिकाविषै तिष्ठता सिंहासनमै जिनबिंब जो है ताहि अभिषेक करानेके मन करिकै ही कहा मानो जिनबिंबके मस्तक ऊपरि गंगा अवतरै है ॥ ५८५ ॥

या वचनतै जानिये है कि वै बिंब सदा निर्लेप रहै है क्योंकि जलके प्रवाहतै चंदन ठहरै नाही तौ उन बिंबनिका दर्शन करनवारा सर्व अज्ञानी ठहरैगे ?

प्रश्न—ये वरनन भी अकृत्रिम बिंबनिका है अर ये श्लोक कृत्रिम बिंबनिका है ।

उत्तर—प्रथम तौ कृत्रिममै अर अकृत्रिममैं भेद नही है ता सिवाय कृत्रिम बिंब भी अभिषेकसमय निर्लेप रहै हैं तातै अभिषेक करता तथा वा समयमै दर्शन करता अज्ञानी ठहरैगे सो है नाही।

तथा और भी विचारनेकी वार्त्ता है कि गंधलेपसहित ही प्रतिमा पूज्य ठहरै तौ प्रतिमा तौ अज्ञानकारक ठहरी प्रतिमाका कुछ महातम ही नही रह्या अर ज्ञानादिकका कर्त्ता गंधलेप ही ठहर्या, तातैं मिथ्यापक्ष मति करो।

प्रश्न—पूजन विना और अनेक प्रकरणमैं अर्च धातुका तथा चर्च धातुका रूप विलेपन अर्थमैं सबके मान्य है अर तुम एकांततैं पूजन अर्थ ही करो हौ सो कैसै मान्य होगा ?

उत्तर—हमारै धातु अर्थमैं एकांत नही है ये धातु तौ "अर्च-चर्च पूजनविलेपनयोः" ऐसा धातु पाठमैं लिखै है तथा "धातूनो अनेकार्थत्वात्" या वचनतैं धातुनिका अनेक अर्थ होय है तातैं ही पंचपरमेष्ठीके पूजनमै पूजन अर्थ करै हैं क्योंकि गंधलेप तौ रागका उद्दीपक है अर पंचपरमेष्ठी वीतराग हैं तथा दिगंबर हैं यातैं, अर वस्त्रत्यागसमयका वरननमैं गंधलेपका भी त्याग लिख्या है सो गाथा मूलाचारकी आगै लिखैगे। तातैं पंचपरमेष्ठीका प्रतिबिंबकै गंधलेपनका निषेध सर्वथा करै हैं। जैसैं 'दृशि धातु' दर्शन अर्थमैं प्रसिद्ध है तथापि जहां सम्यक्त्वका प्रकरण है तहां दर्शन शब्दका श्रद्धान अर्थ ही करै हैं तैसैही इहां पूजन अर्थ ही करैं हैं।

प्रश्न—इहां तौ तुमनैं कह्या सो जाण्या परंतु चंद्रप्रभकाव्यका तीसरा सर्गमैं ऐसा लिख्या है—

कृत्वा करावथ स संकुचदब्जकांती
सप्रश्रयामिति जगाद गिरं क्षितीशः।
दन्तावलीविशदरश्मिवितानकेन
लिंपन्मुनींद्रचरणाविव चन्दनेन ॥ ४७ ॥

अर्थ—अथानंतर श्रीषेणनामा पृथ्वीपति जो है सो संकुचित कमलकी कांतिसमान हस्तनिनैं करि अपने दंतनिकी जो पंक्ति ताकी विशद कांतिका समूहरूप चंदनकरि मुनीश्वरनिके चरणनिनैं लेपन करतो ही कहा मानौं आनंदसहित होतो संतो या प्रकार वचन कहत भयो ॥ ४७ ॥

यामैं मुनीन्द्रके चरणनिनैं चन्दनकरि लेपन करना कह्या है।

उत्तर—प्रथम तौ यामैं चन्दनकी उपमा दांतनिकी कांतिकूं दिई है साक्षात् चन्दन है ही नही ता सिवाय इस उपमाके वचनतैं ही लेपन करना मानौंगे तौ वहां या श्लोकके प्रथम ऐसा लिखे हैं,—

सोऽप्यात्मनः परिसमाप्य समाधियोग-
माशीर्वचांसि निपपाठ विशुद्धपाठः ।
संस्नापयन्नरपतिं कुमुदोज्ज्वलेन
धर्माभिषेकपयसेव निजस्मितेन ॥ ४८ ॥

अर्थ—सो अनंतनामा चारणमुनि भी अपनी समाधिनैं परिपूर्ण करि कुमुदका पुष्पकै समान उज्ज्वल अपना मंदहास्य करि धर्मरूप अभिषेकका जल करि श्रीषेण नरपतिकूं भलै प्रकार स्नान करावतो संतो ही कहा मानौ विशुद्ध है पाठ जाको ऐसो आशीर्वादरूप वचन कहत भयो ॥

यामैं मुनीश्वरनिनैं नरपतिकौं स्नान कराया लिख्या है, सो वा श्लोकतैं मुनीश्वरके चरणनिकौं चन्दनकरि लेपन करना मानौगे तौ या श्लोककरि नरपतिका अभिषेक करना मुनीश्वरनिकौं भी योग्य मानना पड़ैगा तातैं ऐसा समझा कि दोऊ ही श्लोकमैं अलंकाररूप कथन है, वा कथनतैं नही तौ लेपन सिद्ध होय है अर नहीं या कथनतैं स्नान सिद्ध होय है। ता सिवाय इतनी और विचारनेकी

है कि ये तौ काव्य है तामैं भी इतिहासका श्लोक है, अर यत्याचारका आर्षग्रंथ मूलाचार है तामैं मुनीश्वरनिका चरणप्रक्षालन भी गंधजलतैं करनेका निषेध लिख्या है सो गाथा आगैं लिखैंगे। तातैं ऐसा मानौ कि वीतरागीनिकै गंधलेप कदाचित् ही नहीं संभवै।

प्रश्न—इहां भी तुमनैं कह्या सो जाण्या परंतु देवसेनकृत भावसंग्रहमैं ऐसैं लिखै हैं;—

चंदणसुगंधलेओ जिनवरचरणेसु कुणइ जो भविओ।
लहइ तणु विकिरियं सहावसुगंधयं विमलं॥ ६५॥

अर्थ— जो भव्य जिनचरणकै विषैं चन्दनको सुगंधित लेप करै है सो स्वाभाविक सुगंधित निर्मल वैक्रियिक शरीर पावै है॥ ६५॥

या वचनतै तौ जिनेंद्रका चरणकै लेपन करोगे?

उत्तर—जो अर्थ होय है सो संप्रदायकै अनुकूल होय है कि—जैसे पार्वतीको नाम हैमवती प्रसिद्ध है तथापि जैनी तौ अर्थ करैंगे तहां हिमवत राजाकी पुत्री है ऐसा ही करैंगे अर वैष्णव अर्थ करैंगे तहां हिमाचल नामा पर्वतकी पुत्री है ऐसा ही अर्थ करैंगे तथा गणेश शब्दका अर्थ जैनी करैंगे तहां तौ द्वादश गणका स्वामी गणधरही कहैंगे अर वैष्णव अर्थ करैंगे तहां विकृत मुखका धारी एकदंतवान गजका मुखवाला कहैंगे तैसै ही हम तौ इहां भी जिनचरण निकट ही गंधलेपन करना कहैंगे। सो ऐसैं जानो कि अर्थ लक्षणातैं व्यंजनातैं ध्वनितैं व्यंग्यतैं और अनेक तरैं उपचारतैं होय है, केवल अक्षरार्थतैं ही नहीं होय है सो इहां मुख्य अर्थमैं दूषण आवता जानि आरोपिताक्रिया नामा लक्षणातैं अर्थ करैंगे।

प्रश्न—प्रथम तौ लक्षणा किसकूं कहो हौ सो कहौ, पीछें या लक्षणाका लक्षण यामैं कैसें स्थापन करो हौ सो कहौ ?

उत्तर—प्रथम तौ लक्षणाका लक्षण काव्यप्रकाशमैं सुनो;—

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणाऽऽरोपिता क्रिया ॥

अर्थ—मुख्य अर्थनैं बाधित होता संतां रूढितैं तथा प्रयोजनतैं वा शब्दको योग होत सतैं और अर्थ देखिये सो आरोपिता क्रिया नामा लक्षणा है ॥

याका उदाहरण ऐसा है कि—'वटे गावः सुशेरते' या पदको अक्षरार्थ तौ ऐसो है कि 'वटकै विषै गौ सोवै है', तथापि यो अर्थ असंभव मानि ऐसो अर्थ करैं हैं कि "वटकी छायामैं गौ सोवै है" तैसैं ही इहां भी निर्लेप भगवान जिनेंद्रकै लेप करना असंभव मानि चरणनिकी छायामैं लेप करना कहैं हैं। तथा "गंगायां घोषः" या पदको भी अक्षरार्थ तौ ऐसो है कि 'गंगाके विषैं घोष है' इहां घोषनाम गोपालनिकी वस्तीको है तथापि गंगाका प्रवाहकै विषैं वस्तीको असंभव मानि 'गंगाके निकट तीरकै विषैं घोष है' ऐसो ही अर्थ करते हैं तैसैं ही इहां भी निकट अर्थ ही करैं हैं।

तथा भक्तामरस्तोत्रमैं मानतुंगजी भगवत् चरणको विशेषण लिख्यो है कि—

आलंबनं भवजले पततां जनानाम् ।

अर्थ—या को अक्षरार्थ ऐसो है कि संसाररूप जलमैं पड़ता मनुष्यनिकूं पकडणेको पदार्थ है सो भगवान् अर्हंतका चरणको पकडणों असंभव मानि स्मरण करनेको पदार्थ है ऐसो ही अर्थ करैहैं ।

तथा वसुनंदिकृत श्रावकाचारमैं चंदनपूजनका वरननकी गाथामैं भी जिनेंद्रका चरणको विशेषण ऐसो लिख्योहै कि—

'सुरमउडघिट्ठिचलणं'

याको भी अक्षरार्थ ऐसो है कि 'देवनिके मुकुटनिकरि घस्यो है चरण जिनको' तथापि अर्हंत भगवानका चरणकै मुकुटको स्पर्श होनौं असंभव मानि निकटकी भूमिको ही मुकुटतैं घसनौं अर्थ कहैं हैं।

तथा बृहत्सामायिकमैं; श्लोक—

जयति भगवान् हेमांभोजप्रचारविजृंभिता—
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

अर्थ—जा भगवान्‌के चरणनिकै विषैं प्राप्त होय परस्पर वैरके धारक अहि नकुल भी पापरहित हुवा संता विश्वासकूं प्राप्त होव भये सो भगवान् जयवंता रहौ, वा भगवान्‌के चरण कैसेक हैं कि सुवर्णमय कमलनिकै विषैं जो प्रचार ताकरि शोभायमान हैं, तथा देवनिके जे मुकुट तिनिमैं जो मणि तिनितैं निकसी जो प्रभा ताकरि सर्व तरफतैं चुंबित हैं, अर कैसेक हैं अहि नकुलादिक पापरूप है हृदय जिनिका तथा अहंकारतैं भ्रमनैं प्राप्त भया है ॥ १ ॥

या श्लोकमैं सुवर्णकमलकै विषैं भगवानको प्रचार लिख्यो है तथापि कमलनिका स्पर्शना अरहंतकै असंभव जानि अंतरीकही प्रचार कहैं हैं तथा देवनिके मुकुटनिमैं रत्न जे हैं तिनितैं निकसी प्रभाकरि चुंबित चरण लिखेहै तथापि जिनचरणनिके अतिनिकट जाना असंभव जानि दूरितैं ही नमस्कार करना कहै हैं तथा

आदि नकुलादिकनिका चरणनिके विषै प्राप्त होना लिख्या है तथापि अरहंतके चरणनिके विषै प्राप्त होना असंभव जानि सभामैं प्राप्त भया ही कहै हैं। ऐसे अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं तैसें ही या गाथाको अर्थ भी लक्षणातैं करै हैं।

प्रश्न—पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं श्लोक,—

यद्वद्वचो जिनपतेर्भवतापहारि
नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत्।
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोति ॥ १ ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र, जैसो जिनपतिको वचन संसारकी आतापको हरनवारो है तैसो मै शीतल भी हू तथापि भवतापहारी नाहीं,अर उहां होहूगो या हेतुतैं ही कहा मानूं मैंकरि अर्पण कियो कर्पूर चंदन जो है सो तिहारा चरणकमलको भलै प्रकार आश्रय करै है ॥ १ ॥

यामैं समाश्रय पद है ताको अर्थ विलेपन है तातैं चन्दनका चरणकै विलेपन करना दुरस्त है।

उत्तर—तुमारे कहनेमैं ऐसी सिद्ध हो है कि जो जाको आश्रय करै सो ताकै ऊपरि चढ़ै तो पुराणनिमैं केई स्थलमै ऐसा लिखे हैं कि हे राजन्, हम तिहारा चरणनिको आश्रय करै हैं सो ऐसैं कहनवारा पुरुष राजाका चरणनिकै ऊपरि बैठता होगा, सो ऐसी अविनीतता सभवै नाहीं।

तथा भक्तामरस्तोत्रमैं, श्लोक—

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।

युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥ ४३ ॥

अर्थ—हे जिनेंद्र, भालाका अग्रकरि भेदनै प्राप्त भये जे गज तिनका रुधिररूप जलको जो प्रवाह कहिये वेग ताका अवतारकै विषै कि उतरबाकै विषै आतुर जे योद्धा तिनकरि भयंकर ऐसा युद्धकै विषैं तिहारा पादपङ्कजरूप वनको आश्रय करनेवारे पुरुष जीत्यो है दुर्जय शत्रुपक्ष जिननैं ऐसे भये संते विजयनैं प्राप्त होय हैं ॥ ४३ ॥

यामैं भी चरणनिके आश्रय करनेवारे लिखे है ते भी चरणनिकै ऊपरि ही चढ़ते होगे, सो ऐसो विपरीत अर्थ संभवै नाही ।

प्रश्न—तुमनैं इनि श्लोकनिका अर्थ तौ समर्थनपूर्वक कह्या सो जान्या परन्तु जिनके चरण ऊपरि चंदन चढ़ानेकी पक्ष है ते इनि श्लोकनिका अर्थ दूसरा सुनाय हम सारिसेनिकै भ्रम पैदा करै हैं तातै ऐसा वचन प्रामाण्य बतावो कि जाका दूसरा अर्थ ही नही होवै ।

उत्तर—आदिपुराणके विषै केवलकल्याणमैं इंद्रकृत पूजन-वरननमैं, श्लोक—

अथोत्थाय तुष्ट्या सुरेन्द्राः स्वहस्तैः
जिनस्यांघ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ।
सगंधैः समाल्यैः सधूपैः सदीपैः
सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूषपिंडैः ॥ १ ॥
पुरो रंगवल्याातते भूमिभागे
सुरेन्द्रोपनीता बभौ सा सपर्या ।

शुचिद्रव्यसंयत् समस्तैव भर्त्तुः
पदोपास्तिमिच्छुः श्रिता तच्छलेन ॥ २ ॥

अर्थ—अथानंतर श्रद्धावान देवेन्द्र खड़े होय हर्षकरि अपने हाथनिकरि गंधसहित पुष्पसहित धूपसहित दीपसहित दिव्य अक्षतसहित प्रचुर घृत तथा अमृतपिंडकरि जिनेन्द्रके चरणनिकी पूजा करत भये॥ १ ॥

सो इंद्रनिकरि प्राप्त करी पूजा अग्रभागमैं रंगावलीकरि विस्तृत भूमिभागकै विर्षे सोहत भई सो मानो समस्त ही पवित्र द्रव्यनिकी संपदा भर्त्ताके चरणनिकी उपासना करनेकी इच्छुक पूजाका मिसकरि आश्रित भई है ॥

या वचनतैं प्रभूके अग्रभागमैं खड़ा होय हर्षयुक्त रंगावलीसंयुक्त अग्रभूमि करि वाकै विर्षे जल चन्दन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप फल चढ़ावने योग्य है। या वचनको और अर्थ भी कदाचित ही नहीं होय है, अर या सिवाय प्राचीन आर्षग्रन्थ भी या प्रकरणको नहीं है तातैं या अर्थसैं मिलतो ही जहा तहां अर्थ करनो योग्य हैं। अर पद्मनंदिपंचविंशतिकाका श्लोकमैं समाश्रयपदको अर्थ निकट वर्त्तनामैं संदेह करै ताकूं विचार करनेको है कि इहां भी 'श्रिता' पद समस्त द्रव्यनिके संबंधमैं है तातै वहां अर्थ लेपन करोगे तौ इहां भी अष्टद्रव्यतैं लेपन करना पड़ैगा सो योग्य नाहीं तातै वहां भी अर इहा भी निकट वर्त्तावना ही अर्थ योग्य हैं।

प्रश्न—या वचनतैं और तौ सर्व संदेह दूरि भया परंतु केवली भगवानको स्पर्श इंद्रादिक भी नही करै हैं तातैं इहा तौ अग्रभागमैं गंध पुष्प भी चढ़ाये हैं ऐसा उन लोगोंका कहना है ताका भी जवाब होय तौ और कहौ।

उत्तर—महापुराणका उत्तरपुराणसंबंधी महावीरपुराणमैं महावीरका प्रथम आहारसमय पूजनवरननमैं, श्लोक—

गंधादिभिर्विभूष्यैतत् पादोपान्तमहीतलम् ।
परमान्नं त्रिशुद्धयाऽस्मै सोऽदितेष्टार्थसाधनम् ॥५२१॥

अर्थ—सो राजा वा भगवानका चरणनिके निकटकी पृथ्वीतलनैं गंधादिक द्रव्यनिकरि विभूषित करि वा प्रभूकै अर्थि अपनैं इष्ट अर्थको साधनभूत परम अन्न मन वचन कायकी शुद्धि करि देत भयो ॥ ५२१ ॥

या वचनतैं स्पर्श करने योग्य भगवानका भी पूजनमैं गंधादिक समस्त द्रव्य चरणके अग्रभूमिमैं ही चढ़ाना सिद्ध भया ।

प्रश्न—ये वरनन भी मुनि अवस्थाका है ।

उत्तर—किंचित् हृदयके नेत्र खोलिकरि तौ प्रश्न करो कि तुम पूजन किसका करो हौ ?

प्रश्न—हम पूजन तौ जिनेन्द्रकी प्रतिमाका करैं है ।

उत्तर—जिनेन्द्रकी प्रतिमाका पूजन करो हौ तौ प्रथम तौ निश्चय करो कि प्रतिमा नाम ही काहेका है, पीछै जिनेन्द्रकी प्रतिमा कैसीक होय है ताका निश्चय करो, तथा जिनेन्द्रकी प्रवृत्तिका निश्चय करो तातैं तुमारा भ्रमरूप प्रश्न करना मिटै।

प्रश्न—प्रथम तौ सामान्यपणैं प्रतिमाका लक्षण कहौ ।

उत्तर—अमरकोशमैं श्लोक;—

प्रतिमानं प्रितिबिंबं प्रतिमा प्रतियातना ।
प्रतिच्छाया प्रतिकृतीरर्चा पुंसि प्रतिनिधिः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रतिमान, प्रतिबिंब, प्रतिमा, प्रवियातना, प्रतिच्छाया, प्रति कृती, अर्चा, प्रतिनिधि, यामैं प्रतिनिधि शब्द पुल्लिंग-

वाची है ॥ १ ॥

या वचनतैं साक्षात् प्रतिबिंब है सो प्रतिमा है तातैं साक्षात्तैं सिवाय प्रतिमामैं किंचित् भी अधिक नहीं करना चाहिये, सो ही सर्वमतमैं प्रवृत्ति है कि कृष्णकी प्रतिमाकै तौ मोर मुकुट गुंजा हार वंशी आदि चिह्न करैं हैं अर रामकी प्रतिमाकै धनुषबाण आदि चिह्न करैं है तैसें ही जिनप्रतिमा जिनसमान राखी चाहिये।

प्रश्न—ऐसे है तौ जिनप्रतिमाका लक्षण कहौ।

उत्तर—बृहत्सामायिकमैं, श्लोक—

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टी-
र्भुवनेषु त्रिषु भूतये प्रवृत्ताः ।
वपुषा प्रतिमा जिनोत्तमानां
प्रतिमाः प्रांजलिरस्मि वन्दमानः ॥ १ ॥
विगतायुधविक्रियाविभूषाः
प्रकृतिस्थाःकृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्या—
प्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥ २ ॥

अर्थ—द्युतिमंडलकरि भासुर है अंगयष्टी जिनकी अर तीन लोकमै प्राणीनिके उपकार निमित्त प्रवर्त्तता जिनोत्तम जे हैं तिनका शरीरकरि समान प्रतिमा जो है ताकूं अंजुलीसहित वंदन करतो संतो तिष्ठूं हूं ॥ १ ॥ अर आयुध विक्रिया विभूषारहित निजस्वभावमैं तिष्ठता कृती जिनेश्वर जे है तिनकी कांतिकै समान प्रतिमा जो है ताकूं प्रतिमागृहकै विषै पापकी शान्तिकै अर्थि सर्व तरफतैं वंदना करूं हू कि मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना

करि नमस्कार करूं हूं ॥ २ ॥

या वचनतैं जिनेन्द्रके शरीर समान प्रतिमा जानि आयुध-विक्रियाविभूषारहित राखि पूजन स्तवन करना योग्य है।

प्रश्न—इनि श्लोकनिमैं तौ गंधमाल्यका नाम भी नाहीं, तुम गंधमाल्यका निषेध काहेतैं करौ हौ ?

उत्तर—यामै विभूषा पद है सो गंधमाल्य आदि सर्व आभूषण वस्त्रादिकका ही वाचक जानना क्योंकि मूलाचारमै अचेलकगुण-व्याख्यानमै लिखें हैं:—

वत्थाजिणवक्केण व अह वा पत्ताइणा असंवरणं।
णिब्भूसण णिग्गंथं अचेलक्कं जगदि पुज्जं ॥ २९ ॥

१ वस्त्रं अजिनं वल्कलं च अथवा पत्रादिना असंवरणं।
निर्विभूषणं निर्ग्रंथं अचेलकत्वं जगति पूज्यम् ॥२९॥

टीका—वत्थाजिणवक्केण व वस्त्रं पटचीवरकंबलका-दिकं, अजिनं चर्म मृगव्याघ्रादिसमुद्भवं, वक्कं वल्कं वृक्षादित्वक्, वस्त्रं चाजिनं च वल्कं च वस्त्राजिन-वल्कानि तैः वस्त्राजिनवल्कैः, पटचीवरचर्मवल्कलै-रपि, अह वा अथ वा पत्ताइणा पत्रादिना पत्राणि आदिर्येषां तानि पत्रादीनि तैः पत्रादिभिः पत्रबाल-तृणादिभिः असंवरणं अनावरणमनाच्छादनं, णिब्भू-सण भूषणानि कटककेयूरमुकुटाद्याभरणमंडनविले-पनधूपनादीनि तेभ्यो निर्गतं निर्भूषणं सर्वरागांग-

१—यह छाया जैसी लिखित प्रतिमें थी उसी प्रकार लिखीहै।

विकाराभावः,णिग्गंथं ग्रंथेभ्यः संयमविनाशकद्रव्येभ्यो निर्गतं निर्ग्रंथं बाह्याभ्यंतरपरिग्रहाभावः,अचेलक्कं अचेलकत्वं चेलं वस्त्रं तस्य मनोवाक्कायैः संवरणार्थमग्रहणं, जगदि पुज्जं जगति पूज्यं महापुरुषाभिप्रेतवन्दनीयं। वस्त्राजिनवल्कलैः पत्रादिभिर्वा यदसंवरणं निर्ग्रंथं निर्भूषणं च तदचेलकत्वं व्रतं जगति पूज्यं भवतीत्यर्थः ॥

अर्थ—वस्त्र नाम पटवस्त्र तथा सूतवस्त्र तथा कंबल आदिका है, अर अजिन नाम चर्मका है सो मृगतैं तथा व्याघ्र आदितैं उत्पन्न भया चर्मका है, अर वल्क नाम वृक्षकी छालिका है सो वस्त्र तथा अजिन तथा वल्कल इनिकरि, अथवा पत्रादिक कहिये पत्र बालतृण आदि करि भी आवरणरहित अर निर्विभूषण कहिये आभूषणरहित, भावार्थ–सर्व ही रागके अंगरूप विकारका है अभाव जिनकै, अर निर्ग्रंथ कहिये ग्रंथ जे सयमके विनाशक द्रव्य तिनकरि दूरवर्त्ती, भावार्थ–बाह्य अभ्यंतर परिग्रहको है अभाव जिनकै, अर अचेलकत्वं कहिये चेल जो वस्त्र ताहि आवरणकै अर्थि ग्रहण नहीं करवो, अर 'जगति पूज्यं' कहिये महापुरुषनिकरि वंदनीक। ऐसै तौ सर्व पदनिका भिन्नभिन्नरूप अर्थ जानना, अर सर्व पदनिका संबंधरूप अर्थ ऐसै जानना कि– वस्त्र अजिन बल्कलनिकरि तथा पत्र बालतृणआदि करि भयो आवरण ताकरि रहितपणू अर निर्ग्रंथपणू तथा निर्भूषणपणू ऐसो अचेलकत्वरूप व्रत जगतमैं पूज्य होय है ॥ २९ ॥

या वचनतैं गंधमाल्य भी विभूषणमैं ही है तथा अचेलक गुणमैं इनिका त्याग लिखनेतैं वस्त्रसमान है । तातैं गंधमाल्य आदि

पदार्थतैं आवरण होवै तथा रागभाव होवै सो द्रव्य कदाचित ही प्रतिमा उपरि लगाना योग्य नाहीं ।

इहां भी अपना हठग्राहीपणातैं प्रश्न करै है कि—आभूषण तौ और सब ही अंगके होवै है चरणकै ऊपरि किंचित् चंदन लगाणेका कहा दोष है ?

याका उत्तर—गंधका चरणकै लगाणा तौ दूर ही रहौ गंधजल-का संस्कार ही चरणकै करना योग्य नाहीं, सो ही मूलाचारमैं अनगार भावनाका व्याख्यानमै संस्कारस्वरूप भेदनिरूपणकी, गाथा—

मुहणयणदंतधोयणमुव्वट्टण पादधोयणं चेव ।
संवाहण परिमद्दण सरीरसंठावणं सव्वं ॥ ७४ ॥

मुखनयनदंतधावनमुद्वर्त्तनं पादधावनं चैव ।
संवाहनं परिमर्दनं शरीरसंस्थापनं सर्वम् ॥ ७४ ॥

टीका—मुखस्य नयनयोर्दन्तानां च धावनं शोधनं प्रक्षालनं उद्वर्त्तनं सुगंधद्रव्यादिभिः शरीरोद्वर्त्तनं पादप्रक्षालनं कुंकुमादिरागेण पादयोर्निर्मलीकरणं संवाहनं अंगमर्दनं पुरुषेण शरीरोपरि स्थितेन मर्दनं परिमर्दनं करमुष्टिभिस्ताडनं काष्ठमययंत्रेण वा पीडनं इत्येवं सर्वं शरीरसंस्थानं शरीरसंस्कारं साधवो न कुर्वन्तीति संबंधः ॥

तथा गाथा—

धूवण वमण विरेयण अंजन अब्भंग लेवणं चेव ।
णत्थय वत्थयकम्मं सिरवेधं अप्पणो सव्वं ॥ ७५॥

धूपनं वमनं विरेचनं अंजनं अभ्यंगं लेपनं चैव।
नासिकावस्तिकाकर्म शिरोवेधः आत्मनः सर्व्वम् ॥७५

टीका—धूपनं शरीरावयवानामुपकरणानां च धूपेन संस्करणं, वमनं कंठशोधनाय स्वरनिमित्तं वा भुक्तस्य छर्दनं, विरेचनमौषधादिनाऽधोद्वारेण मलनिर्हरणं, अंजनं नयनयोः कज्जलप्रक्षेपणं, अभ्यंगनं सुगंधतैलेन शरीरसंस्कारः,लेपनं चंदन-कस्तूरिकादिना शरीरस्य म्रक्षणं, नासिकाकर्म-वस्तिकर्म शलाकावर्त्तिकादिक्रिया, शिरोवेधःशिरा-भ्यो रक्तापनयनं इत्येवमात्मनः सर्वं शरीर-संस्कारं न कुर्वंतीति ॥ ७५ ॥

अर्थ—'मुखनयनदंतधावनं' कहिये मुखका तथा नयनका तथा दंतका शोधना प्रक्षालन करना, अर 'उद्वर्त्तन' कहिये सुगंध द्रव्य करि शरीरका उबटना करना, अर 'पादप्रक्षालन' कहिये कुंकुमादिका रंगकरि चरणनिका निर्मल करना, अर 'संवाहन' कहिये शरीरकै ऊपरि तिष्ठता पुरुष करि अंगका मर्दन कराना, अर 'परिमर्दन' कहिये करमुष्टिकाकरि ताडन करना तथा काष्ठमय यंत्रकरि अंग-का पीडना इत्यादिक या प्रकार आपका सर्व शरीरका संस्थापन कहिये संस्कार साधुपुरुष नहीं करै, ऐसो अर्थ संबंध है ॥ ७४ ॥

तैसैं ही और कहैं हैं कि—'धूपनं' कहिये शरीरके 'अंग उपां-गनिका तथा कमंडल पीछी पुस्तकरूप उपकरणनिका धूपकरि संस्कार करना, अर वमन कहिये कंठशोधन निमित्त तथा स्वर शुद्ध

करनें निमित्त किया भोजनका मुखद्वार करि निकालना, अर विरेचन कहिये औषधादिककरि मूलद्वार होय करि मलका निकालना, अर अंजन कहिये नेत्रनिमैं कज्जलका लेपना, अर अभ्यंगन कहिये सुगंध तैल करि शरीरका संस्कार करना, अर लेपन कहिये चंदन कस्तूरी आदिकरि शरीरकै म्रक्षण कहिये लेपन करना, अर नासिकाकर्म कहिये तमाखू आदिका सूंघना, अर वस्तिकर्म कहिये गुदाके शलाका वर्तिका आदि कर्म कराना, अर शिरोवेध कहिये शिराकरि रुधिरका निकालना, या प्रकार आदि और हू आपकै सर्व ही शरीरसंस्कार साधु नही करै ॥

यामैं गंधलेपन तथा गंधजलकरि पादप्रक्षालन आदि सर्व शरीरसंस्कारका निषेध है।

प्रश्न—सब संस्कारका ही निषेध है तौ जलका भी संस्कार काहेकूं करो हो ?

उत्तर—प्रथम तौ जलकृत संस्कारका कहूं निषेध लिख्या नाहीं, दूसरां लघुबाधा दीर्घबाधा आदिमैं मल दूर करना तथा अस्पृश्यके स्पर्श आदि कारण होतै स्नानका हू करना लिख्या है सो अभिषेकके प्रकरणमै या ग्रंथमै भी लिख्या है तैसै प्रथम तौ गंधमाल्यका हुकम नाही, दूसरां निषेधवचन, तीसरां वीतराग निर्लेप पंचपरमेष्ठीके लेपका करना अनुभव करतै ही असंभव भासै, चौथां कुछ प्रयोजन भासै नाही अर हुकम विना तथा प्रयोजन विना मूर्ख भी प्रवर्त्तै नाही तातै गंधमाल्य आदि पदार्थनिका संस्कार करना योग्य नाहीं। ताहीतैं ज्ञानवाननिनै ऐसा स्तवन किया है कि—

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय
सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय ।

प्रशांतरूपाय दिगम्बराय
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

अर्थ—जीव आदि तत्त्व जे हैं तिनको दिखावनेवारो, अर सम्यक्त है मुख्य जिनमें ऐसे अष्ट गुणनिको समुद्र, अर अत्यंत शांत है स्वरूप जाको, अर दिशा ही हैं अंबर कहिये वस्त्र जाकै ऐसो जिनेंद्र जो है ताकै अर्थि नमस्कार हो ॥

यामें अत्यत शात अर दिगम्बर विशेषणतैं ऐसा भाव प्रकट होय है कि शात होय सो प्रथम ही परम वीतराग होय अर वीतराग होय ताकै गंधमाल्यको काम नाहीं अर दिगंबर होय ताकै सर्व आवरणको अभाव होय अर सर्व आवरणको अभाव होय ताकै गंधमाल्यको कहा काम ?

तथा एकीभावमें, श्लोक—

आहार्येभ्यः स्पृहयति परो यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणां यश्च शक्यः ।
सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

अर्थ—हे भगवन्, आप सिवाय और देव मानव स्वभावतः अमनोज्ञ हैं सो गंधमाल्य आभूषणादिककरि मनोज्ञपणूं वांछै है अर जो वैरीनिके शक्य है सो निरंतर शस्त्रग्राही रहै है, अर तूं सर्व अंगकै विषै सुभग है तथा तू शत्रूनिकै शक्य नहीं है तातैं तिहारै गंधलेपनादि आभूषणनिकरि तथा वस्त्र कुसुमकरि कहा ? तथा उत्कट शस्त्रनिकरि कहा ? ॥ १९ ॥

या वचनतै गंधमाल्य आदि द्रव्यनिका कुछ प्रयोजन नाहीं।

प्रश्न—तुम बारंबार केसर आदि रंगका लेपतैं दिगंबरपणाका अभाव कहौ हौ परंतु अकृत्रिम प्रतिमाका स्वरूप तौ त्रिलोकसारमैं ऐसा कह्या है;—

सिंहासणादिसहिदा विणीलकुंतल सुवज्जमयदंता।
विद्दुमअहरा किसलयसोहाधरहत्थपादतला ॥९७५॥
सिंहासनादिसहिता विनीलकुंतला सुवज्रमयदन्ता।
विद्रुमाधरा किसलयशोभाधरहस्तपादतला ॥९७५॥

अर्थ—सिंहासन आदि प्रातिहार्यसहित अर विशेषकरि नीले हैं केश जाके अर सुंदर वज्रमय है दांत जाके अर मूंगा समान हैं अधर जाके अर कूंपलकी शोभानै धारण करता है हस्ततल तथा पादतल जाके, ऐसी रत्नमय प्रतिमा है ॥ ९७५ ॥

या वचनतै केसरि आदि रंग चरणकै लगानेतै दिगंबरपणाका अभाव नहीं होय है क्योकि अकृत्रिमकै ही चरणनिकै रंग है तौ कृत्रिमकै केसरि चंदनका रंग लगानेमै कहा दोष है? क्योकि जिनबिंब सर्व समान है।

उत्तर—जिनबिंब सर्व समान है तातै ही इहां कृत्रिमकै रंग नही लगाये है क्योकि वहा तौ सहज ही स्वाभाविक या प्रकार पुद्गलनिकी परणति होवै है तैसै इहां भी सहज पुद्गल परणमै तौ दोष नाही क्योकि सहज पुद्गलनिकी परणति तौ अरहंत केवलीके अंगमै तथा साधुनिके अंगमै भी होय है परंतु ऊपरिसै कोई इंद्रादिक ज्ञानवान भक्त नही लगावै है तैसै ही इहां पंचपरमेष्ठीकी प्रतिमाकै भी ज्ञानवान भक्तकूं ऊपरिसूं लगाना योग्य नाही क्योकि प्रतिबिंब उनका ही है। अर ऊपरिसै लगानेतै दिगंबरपणा नही बिगड़ता होता तौ प्रतिष्ठाके पूर्व ही ऐसा रंग करा देते; जो काली-

तरमैं भी नहीं जाता अर अकृत्रिम बिंबनितैं समानता दीखती परंतु दिगंबरपणा बिगड़नेके भयतैं ही दिगंबर संप्रदायके आचार्यनिनैं रंग लगानेकी राह नही राखी अर श्वेतांबरनिकै सर्वथा लेप करने-की प्रवृत्ति है ही परंतु दिगंबरनिकै तौ संभवै ही नाही, तातैं हो मूलाचारकी टीकामै स्पष्ट निषेध लिख्या है तातैं जो दिगंबर संप्रदायका शिष्य है सो तौ जिनप्रतिमाके ऊपरि गंधमाल्य कदाचित ही नही चढ़ावैगा ।

प्रश्न—प्रतिमाका स्वरूप लक्षण सुननेतैं साक्षातमैं अर प्रतिमा-मैं भेदबुद्धिका तौ हमारे अभाव भया अर साक्षातकै गंधमाल्यादि संस्कारका निषेध सुननेतैं प्रतिमाकै चरण ऊपरि गंधमाल्य चढाना भी बुरा जानि हमनै तौ त्याग्या परंतु वै पुरुष फेर भी कहैं है कि प्रतिमाके चरण ऊपरि चढ़ानेका और भी निषेध होय सो बताओ ।

उत्तर—हमारे कहने लायक तौ जो कुछ कहना था सो आर्ष-ग्रंथनिका वचन कह्या, या उपरांति भी जाकै संदेह है सो अनन्त-संसारी है वा पुरुषका संदेह दूर करनेकूं हम समर्थ नाही क्योकि निषेधवचन भी मूलाचारका तुम्हैं सुनाया तौ भी फिर प्रश्न करते हौ यातैं, तथापि तुमारे आग्रहतैं उनूंनै ही कह्या है सो और कहै हैं कि—एकसंधिभट्टारककृत संहितामै ऐसा लिख्या है,—

पश्येन्नो जिनबिंबस्य चर्चितं कुंकुमादिभिः ।
पादपद्मद्वयं भव्यैः तद्वंद्यं नैव धार्मिकैः ॥ १ ॥

अर्थ—कुंकुमादि करि चर्चित कहिये लिप्त ऐसा जिनबिंबका पादपद्मद्वय जो है सो नहीं देखै क्योकि धर्मात्मा भव्य जीवनि करि वो चरणयुगल नही वंदबा योग्य है तातै नहीं ही दर्शन करै ॥ १ ॥

यामैं चर्चित पदका हमनै विलेपन अर्थ किया है सो तौ पंडित शुभशीलजीनै विलेपन अर्थमैं चर्चित पद लिख्या ही है अर वाकै ये अर्थ मान्य ही है। अर कदाचित् इहां वाकी पक्ष टूटनेतैं चर्चित-पदका अर्थ पूजित करै तौ हमारै कुछ हानि नाही वाहीकै हानि होगी क्योंकि जहां तहां अपणी पक्ष राखणे निमित्त चर्चित पदका अर्थ लेपन करता है सो नही ठहरैगा तदि सर्व श्लोकनिमै चर्चित पदका अर्थ वाहीकी जबानतैं पूजित ठहरैगा तदि हमारा अर्थ तौ सिद्ध रहैगा अर वाकी पक्षका भंग होगा अर हमारै तौ दोऊ ही अर्थतैं सत्य अर्थकी सिद्धि है क्योंकि इहां चर्चित पदका अर्थ विलेपित राखै तौ हम लेपनका निषेध पूर्वैं बताया ही है अर पूजित अर्थ राखै तौ हम पूजित अप्रतिष्ठितका निषेध भी पूर्वैं कह्या ही है तातैं वाकी राजी आवै सो अर्थ करो। अर इनि दोऊ ही अर्थकूं त्यागि तीसरा ऐसा विपरीत अर्थ ग्रहण करैगा कि कुंकुमादिककरि नही चर्चित कहिये नही लिप्त ऐसा जिनबिंबको पादपद्मद्वय जो है सो धर्मात्मा भव्यजीवनि करि नहीं वंदबे योग्य है तातै नही दर्शन करै, तौ जानै ऐसा अर्थ अंगीकार किया तानै सर्वथा धर्मनै जलांजली दई।

प्रश्न—ऐसा कहा दोष भया।

उत्तर—धर्मका लक्षण कार्तिकेय स्वामी ऐसा कह्या है.—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४८२॥
धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावः च दशविधः धर्मः।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥ ४८२ ॥

अर्थः—वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है तथा उत्तमक्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म है तथा रत्नत्रय है सो धर्म है तथा

जीवनिको रक्षण है सो धर्म है ॥ ४८२ ॥

ये च्यार लक्षण शिष्यके समझावने निमित्त दिखाये हैं परंतु ये तीनूं ही लक्षण एक वस्तुस्वभाव लक्षण धर्मके विषैं अन्तर्भूत होय है क्योंकि वे तीनूं ही लक्षण परभावतैं भिन्न निजस्वभावरूप हैं यातैं । सो वा विपरीत अर्थ ग्रहण करनेवारेन वस्तुस्वभावलक्षण धर्मनैं ऐसै घात्या कि बिंब नाम प्रतिबिंबका है सो प्रतिबिंबका स्वभाव ऐसा है कि जैसा मूल पदार्थ होय वैसा ही प्रतिबिंब होय कुछ न्यूनाधिक नहीं होय सो अरहंत सिद्धकूं तौ देव मनुष्य स्पर्श नहीं करैं तदि गंधलेप कहांतैं होय ताहीतैं निर्लेप नाम है अर आचार्य उपाध्याय साधु ये तीनूं मुनीश्वर हैं अर मुनीश्वरनिकी प्रवृत्तिका प्रधान ग्रंथ मूलाचार है सो मूलाचारमैं गंधलेपका तथा गंधजलतैं चरणसंस्कारका भी निषेध है । अर प्रवृत्तिका उदाहरणरूप वचन महावीरस्वामीका पूजनको कह्यो ही है तातैं मुनीश्वर भी निर्लेप ही है अर अकृत्रिम कृत्रिम बिंब हैं सो इनि ही पंच परमेष्ठीनिका प्रतिबिंब है तातैं प्रतिमाके चरणनिकै लेप सर्वथा संभवै नाही । अर वाके किये अर्थमैं एवकार पदतैं नियम भया कि लेप विना धर्मात्मा जिनबिंबचरणनै वंदै ही नाही जातै दर्शन ही नहीं करै तदि प्रथम तौ वस्तुस्वभावलक्षण धर्मकी श्रद्धा गई अर श्रद्धारहित भया वाही समय मिथ्यादृष्टी भया, पीछे निर्लेप बिंबनितैं पराङ्मुख भया तदि महापापी भया । अर और भी विचारनेकी वार्त्ता है कि गंधसहित ही प्रतिमा पूज्य ठहरै तौ प्रतिमाका तो कुछ महात्म ही नहीं ठहरै, पूज्यपणूं गंधमैं ही ठहरै ?

प्रश्न सर्व बिंबनिकै गंधलेप सदा रहै हैं निर्लेप बिंब कोई भी नहीं रहै है तातैं हम तौ सर्व बिंबनितैं सन्मुख ही हैं तातैं पुण्यात्मा ही हैं पापी नहीं हैं, ऐसैं वे लोग कहैं है ।

उत्तर—प्रथम तौ सम्यक्ती देव मनुष्य हैं ते आर्षवचनके उल्लंघनेवारे नहीं है अर आर्ष ग्रंथनिमैं चरण ऊपरि गंधमाल्य चढ़ानेका हुकम नही, उलटा निषेध है सो लिख्या ही है तातैं सर्व बिंब निर्लेप ही रहै हैं। ता सिवाय गंगादिक देवीनिके मंदिरकै ऊपरि अकृत्रिम बिंब विराजमान अनादिकालतैं है, तिनिके मस्तक ऊपरि अनादिकालतैं ही गंगादिक नदीका प्रवाह दश योजन चौड़ा अवतरै है तातैं सदा गंधलेपरहित उनकूं तौ मानैगा तदि उनकूं वंदना करते दर्शन करते देव मनुष्यनिकूं धर्मात्मा कहैगा कि अधर्मी कहैगा ?

प्रश्न—ये वरनन अकृत्रिम बिंबनिका है, अर ये श्लोक कृत्रिम बिंबनिका है।

उत्तर—ऐसा विपरीत अर्थ करनेवालेका कह्या मानै तौ प्रथम तौ अभिषेक ही नही करै क्योंकि अभिषेकतैं निश्चय करि निर्लेप होय है सो सर्व करै ही है, दूसरां कदाचित करै तौ नेत्र बांधि करै सो कोई नेत्र बांधै नहीं है, तीसरा अभिषेक समय और धर्मात्मा नहीं देखै सो अवश्य देखै है, अर प्रतिमा लेपसहित होय सो भी अभिषेकके प्रारंभमै ही निर्लेप होय है सो यावत् अभिषेक होय तथा वस्त्रतैं मार्जन होय तथा सिंहासनमैं विराजमान होय पीछैं पूजक पंच नमस्कारमंत्र तथा मंगल उत्तम शरणरूप मंत्र पढ़ि स्वस्तिपाठ पढ़ि पूजनप्रतिज्ञाकी पुष्पांजली क्षेपि स्थापना करि जलतैं पूजन करि गंधतैं पूजन करनेका पाठ पढ़ै तावत् समय तौ अवश्य निर्लेप ही रहे हैं अर वा समय अवश्यकरि देव मनुष्य आवैं हैं वंदना करै हैं स्तवन पूजन करैं ही हैं अर वा विपरीतबुद्धिका वचन कोई जैनी-मात्र नहीं माने है अर गंध पूजनका पाठ पढ़ैं पीछैं कोई मंदज्ञानी

भोला पुरुष चरण ऊपरि गंध चढावे है तौ लेपसहित होय है, परंतु जानिये है कि वो विपरीत अर्थ करनवारो पुरुष हठग्राही दुर्बुद्धी तौ अभिषेक प्रारंभतै लेप किये पहली मध्यके समयमैं नेत्र बांध्यां ही सर्व क्रिया करना होगा । इत्यादि अनेक दोष वा अर्थमै आवैं है तातै तुमारे मानवे योग्य वाको वचन नाही है ।

प्रश्न—या श्लोकका तुमारा किया ही अर्थ राखैगा तौ भी इतना प्रश्न तौ फेर भी करैहीगा कि—गंधलेप करनेकी राह प्राचीन होगी तव या श्लोकमैं निषेध लिख्या है ।

उत्तर—ऐसा संदेह तुम तौ मति राखौ क्योंकि दिगंबरसंप्रदाय-मैं तौ भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालमै कदाचित् भी गंधलेप संभवै नाही परतु एकसंधि भट्टारक दिगंबर मूलसंघमै ही भये हैं तिननै बहुत काल पहली सर्वथा लेप करना अर लेप विना प्रतिमा होय ताका दर्शन सर्वथा नही करना ऐसी पक्ष स्थापन करनवारे श्वेतांबर भये है तिनकी पक्ष कदाचित् अपने श्रावक ग्रहण नही कर लेवै या अभिप्रायतैं अपने श्रावकनिकूं कह्या हैं कि—सर्वांगलेप तौ दूरि ही रहौ, चरणकै लेप होय सो ही वंदबे योग्य नहीं है ।

याही श्लोकका अभिप्रायतै वणारसीदासजी वाणारसीविलास-मै दोहा कह्या है कि—

जिन प्रतिमा जिन सारिसी, कही जिनागममाहिं ।
रंचमात्र दूषण लगै, वंदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥

ऐसै एकसंधि भट्टारकके वचनमै तथा वाणारसीदासजीके वचनमैं भी गंधलेपसहित प्रतिमाका दर्शन करनेका वंदना करनेका निषेध है, अर विधि कहूं भी नहीं कही है, तथापि अज्ञानीजन दिगंबर प्रतिमाके चरणनिनैं चंदन केसरितैं लिप्त करि चमेली

गुलाब केवड़ा आदि पुष्पनिकरि आच्छादित राखै हैं तथा प्रभावनाका नाम लेय उत्सव करैं तदि पुष्पमाला जिनप्रतिमाके गलेमै पहरावे हैं तथा मुकुटसप्तमीका व्रतके दिन पुष्पांको मुकुट बणाय वीतराग देवकी प्रतिमाका मस्तक ऊपरि धरैं है इत्यादि अनेक विपरीतता करैहैं तामै वीतरागताको अर दिगंबरपणाका मूल नाश होय है, सो जानियेहै कि दिल्लीमै तेरासै पांच १३०५ का संवतमैं प्रभाचंद्र-नामा मुनि भ्रष्ट भये, रक्त वस्त्र यवन बादस्याहकी आज्ञातै धारण किये तिनिके शिष्यनिनै वस्त्राभरण वाहन धन धान्य आदि परिग्रह ग्रहण करि खेती बाग विणज आदि आरंभ करने कराने लगे अर बादस्याहनकी हिमायत पाय भोले जीवनिके गुरु बणे तिननै अपना सरागीपणानैं सही दिखाणे निमित्त अरहंतदेवका स्वरूपनैं भी सरागी दिखाने वास्तै ये चाल चलाई है, अर धर्ममैं भी रात्रिपूजन कुदेवपूजन आदि अनेक विपरीतता चलाई है तिनका विशेष स्वरूप चतुर्थकांडमै लिखैंगे। इहां तौ ऐसा जानना कि जा मंदिरमै उनके शिष्यनिनैं दिगम्बर प्रतिमाका स्वरूपनै आच्छादित किया जानौ ता मन्दिरमैं अपना इष्टका अविनयरूप दिगम्बरपणाका अभावनै दूर करनेकी सामर्थ्य होय तौ जावो अर चंदन पुष्पकृत आवरणनै तत्काल दूर करो अर दिगम्बर वीतराग मुद्राका दर्शन करि स्तवन पूजन वन्दन आदि भक्ति करो अर इतनी सामर्थ्य नही होय तौ वहां मति जावो अर्थात्—अरहंत भगवान निर्लेप निरावरण हैं तातै लेपसहित आवरणित पुष्पादि आभरणयुक्त है सो अरहंतप्रतिमा नहीं है अर अरहंत प्रतिमा नहीं है सो पूज्य नहीं है।

प्रश्न—जिनप्रतिमाके चरण ऊपरि चंदन पुष्प चढावनें वारा तौ पापी हीहै परंतु दर्शन करनेवालेकूं तौ कुछ पाप है ही नही।

उत्तर—प्रथम तौ अपना इष्टका अविनय देखनेमैं उत्साह करै वै भी तौ वैसा ही है।

प्रश्न—अविनयके देखनेमैं तौ कोऊकै भी उत्साह नही है, उत्साह तौ जिनप्रतिमाके देखनेका ही है।

उत्तर—जो आवरणित प्रतिमा है सो जिनप्रतिमा ही है तथापि वा समय पूज्य नही है क्योंकि प्रतिमाका लक्षण पूर्वैं कह्यो है सो है यातैं। ता सिवाय तुम जानो हौ इहा अविनय हो रह्या है अर अबै विशेष होगा अर वहां वाके देखनेका संकल्प करि जावो हौ फिर हमसैं धर्मके कार्यमैं भी मायाचारतैं मिथ्याभाषणकरि सचिक्कण कर्म काहेकूं बांधो हौ। हमारे ज्ञानमैं तौ अविनय करना कराना करतेकूं सराहना तथा प्रीतिसैं देखना सर्व बरोबर है।

प्रश्न—जा क्षेत्रमैं शुद्ध बिंब नहीं होय तहां कहा करै?

उत्तर—सामर्थ्य होय तौ उपवास करै तथा नीरस एकभक्त करै, इतनी भी सामर्थ्य नही होय तौ एक रसका त्यागकरि अपना अन्तरायकर्मकी हानि निमित्त एकाग्र बैठि ध्यान करि भावपूजन करि भोजन करै।

इति चंदनकृत पूजननिर्णयः।

ॐनमः सिद्धेभ्य।

प्रश्न—चंदनकी रीति भी मानी अब अक्षत चढ़ानेकी रीति भी कहौ।

उत्तर—पद्मनंदि पचीसीसतिकामैं, श्लोक—

राजत्यसौ शुचितराक्षतपुंजराजिः
दत्ताधिकृत्य जिनमक्षतमक्षधूर्त्तैः।

वीरस्य नेतरजनस्य तु वीरपट्टो
बद्धःशिरस्यतितरां श्रियमातनोति ॥ १ ॥

अर्थ—इंद्रियरूप धूर्त्तनिकरि नही हत्या गया ऐसा जिनेन्द्रनैं अधिकारकरि दई ऐसी या पवित्र उत्तम अक्षतनिके पुंजनिकी पंक्ति सोहै है सो योग्य ही है क्योंकि वीरका शिरकै विषै बांध्यो वीरपट्ट अत्यंत पुष्कल लक्ष्मीनैं विस्तारै है अर कायरका शिरकै विषै वीरपट्ट नही शोभै है । भावार्थ—भगवान आप अक्षत हैं तातैं अक्षतपुंज शोभै है ॥ १ ॥

या वचनतै जिनचरणके अग्रभागमै अक्षतपुंज करबो योग्य है । तथा आदिपुराणमै इंद्राणीकृत पूजनमै—

व्यधान्मौक्तिकौघैर्विभोस्तंदुलेज्यां
स्वचित्तप्रसादैरिव स्वच्छभाभिः ।

अर्थ—प्रभूकी तंदुलपूजाकै विषै निजचित्तकी प्रसन्नताकै समान निर्मल कांतिमान मौक्तिकनिके समूहकरि पूजन करत भई ॥ १ ॥

या वचनतै तंदुलपूजामै मुक्ताफल भी चढ़ाबो योग्य है ।

प्रश्न—प्रवृत्तिमै मोती सीपके तथा संखके मुखमै पैदा हुये आते हैं तिनका ग्रहण पूजनमैं कैसै योग्य होय ?

उत्तर—मोतीकी पैदासि रत्नपरीक्षामैं आठ स्थाननिमै लिखी है, सो ही रत्नपरीक्षाका द्वितीय प्रकरणमैं श्लोक—

जीमूतकरिमत्स्याहिवंशशंखवराहजाः ।
शुक्त्युद्भवाश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिकजातयः ॥ ३० ॥

अर्थ—जीमूत १ गज २ मच्छ ३ सर्प ४ बांस ५ शंख ६

बराह ७ सीप ८ इनितै उत्पन्न भये मोती आठ जातिके हैं ।। तिनिमैं मेघतै तथा वांसतै भी उपजना लिख्या है तातै सामान्य मोतीके नाममै प्रश्न करना योग्य नहीं । दो जातिके उत्तम मिलै सो ल्यो, अशुद्ध मिलै तौ मति ल्यो।

इति तदुलपूजननिर्णयः ।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—अक्षतपूजनकी रीति भी मानो अब पुष्पनितैं पूजनकी रीति भो कहौ ।

उत्तर—आदिपुराणमै इंद्राणीकृत पूजनमै, श्लोक—

तथाऽम्लानमन्दारमालाशतैश्च
प्रभोः पादपूजामकार्षीत् प्रहर्षात् ॥

अर्थ—तैसैही इद्राणी नवीन प्रफुल्लित मंदारजातिके कल्पवृक्षजनित मालाके सैकड़ेनिकरि प्रभूके चरणकी पूजा हर्षतै करती भई ॥

प्रश्न—यामै तौ देवलोकके पुष्पनिका ही वर्णन है सो योग्य हीहै क्योकि पूजक इंद्राणी है तातै, परन्तु केई पुरुष हरित पुष्प चढ़ाना मनै करैं है सो कैसे है ?

उत्तर—जै पुरुष नित्यपूजन जा पद्धतितै करैं है ताहीका श्लोक सुनो—

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान्
वर्यांसुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखप्रसूनै—
र्जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥

अर्थ—विनयवान भव्यजीवरूप कमलनिके जागृत करनेंमें सूर्य, अर उत्कृष्ट चर्याका कथनमें अद्वितीय धुराके धारण करनवारे ऐसे जिनेन्द्र सिद्धान्त यतीश्वर जे हैं तिननैं कुन्द तथा अरविंद आदि पुष्प जे हैं तिनिकरि पूजैं हैं ॥

या वचनतैं सचित्त पुष्पनिकरि भी पूजन करना योग्य है।

प्रश्न—उमास्वामीके नामतैं श्रावकाचार किसीनैं बनाया है तामैं पूजनयोग्य पुष्पनिका लक्षण किया है कि—

पद्मचम्पकजात्यादिभिस्त्रिभिः पूजयेज्जिनान् ।
पुष्पाभावे प्रकुर्वीत पीताक्षतभवैः शुभैः ॥ १ ॥

अर्थ—कमल चंपक जाय आदि करकैं मन वचन काय करि जिन जे हैं तिननै भलै प्रकार पूजै अर पुष्पका अभावमें पीत अक्षत जनित शुभ पुष्पनिकरि पूजन करै ॥

यामै पुष्पके अभावमै पीत तन्दुल ग्रहण किये है सो कैसै है ?

उत्तर—पुष्पपूजनमै पीत तन्दुल चढावनेकी रीति प्रवृत्तिमै सर्वकै ही है अर मनोज्ञ सुगंधित निर्दोष बनै है. अर संभावना अन्य द्रव्यकी अन्य द्रव्यमै करनेका हुकम आगमका है ही अर अक्षत पुष्पादिकनिमै पूज्यकी ही संभावना करिये है तौ पूजन सामग्रीकी संभावना करनैमैं कुछ दोष हमारे ज्ञानमै तौ नहीं दीखै है। अर पुष्पके अभावमै ही पीत तन्दुल करना अर पुष्पके सद्भावमैं नही करना ऐसा भी एकांत रूप आग्रह नही राखणा क्योंकि प्रत्यक्ष केवली समवसरणमैं विराजमान होता संतां भी मान-स्तंभादिकनिमैं प्रतिमा स्थापन करि इंद्रादिक देव मनुष्य पूजै ही है तातैं नानाजाति पुष्पनिमै एक जाति या भी है, ऐसा मानि पूजक-की इच्छा होय तौ पुष्पके सद्भावमै भी पीत तंदुल चढ़ावै तौ कुछ

दोष नाही है ।

प्रश्न—तथा वसुनंदिश्रावकाचारमैं तथा रैधूकविकृत षोडश-कारण जयमालमैं सुवर्णजनित तथा रजतजनित मुक्ताफलादिरत्न-जटित पुष्प भी पूजन योग्य कहे है, सो कैसैं है ?

उत्तर—इहा भी संभावना ही है अर यामै कुछ दूषित द्रव्य भी नहीं है, अर अकृत्रिम मंदिरके वरननमैं त्रिलोकसारमैं भी लिखे है,—

मणिकणयपुप्फसोहियदेवच्छंदस्स पुव्वदो मज्झे ।
वसइ रूप्पकंचणघडा सहस्सा हि बत्तीसं ॥९८० ॥
मणिकनकपुष्पशोभितदेवच्छंदस्य पूर्वतः मध्ये ।
वसत्यां रौप्यकांचनघटा सहस्रा हि द्वात्रिंशत् ॥९८०॥

अर्थ—मणि सुवर्णमय पुष्पनिकरि शोभित देवछंद जो है ताके पूर्वकै मध्य वसतीकै विषैं रूपामयी अर सुवर्णमयी बत्तीस हजार घडे हैं ॥ ९८० ॥

यामै भी मणिसुवर्णमय पुष्प वरनन किये हैं तातैं जानिये है कि मणिसुवर्णमय पुष्प भी अनादितैं बनै हैं तातैं योग्य ही हैं ।

प्रश्न—वा ही आधुनिक उमास्वामीके नामका श्रावकाचारमैं पुष्पलक्षणका, श्लोक—

हस्तात्प्रस्खलितं क्षितौ निपतितं लग्नं क्वचित्पादयोः
यन्मूर्द्धोर्द्ध्वगतं धृतं कुवसने नाभेरधो यद्धृतम् ।
स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनैरभिहतं यद्दूषितं कीटकै-
स्त्याज्यं तत्कुसुमं वदंति विबुधा भक्त्या जिनप्रीतये ॥

अर्थ—जो पुष्प हाथतैं पड़ि गयो तथा वृक्षतैं स्वयमेव ही पृथ्वीमैं पड़ि गयो तथा कदाचित् चरणमैं लगि गयो तथा मस्तक ऊपरि प्राप्त भयो तथा कुत्सित वस्त्रमैं धरि दियो तथा नाभिकै नीचै धरि दियो तथा दुष्ट अस्पृश्यजन स्पर्श करि लियो तथा मेघवर्षाकरि गलि गयो तथा कीट पतंगकरि दूषित भयो सो पुष्प जिनेन्द्रमैं प्रीतिकै अर्थि भक्तिकरि ज्ञानवाननिनैं त्याज्य कह्यो है। ऐसो लक्षण कह्यो है सो कैसै है ?

उत्तर—या श्लोकमैं त्याज्य पुष्पके जो विशेषण कहे है सो उचित ही कहे है तातैं मानबे योग्य ही हैं।

प्रश्न—याही ग्रंथके वचन दिशानिर्णयमैं तौ खंडन किये अर इहां ग्रहण किये सो ऐसी मनोक्त रीति तुमारी कैसै मान्य होयगी ?

उत्तर—ऐसी रीति हमारै मनसै ही नहीं है, भगवती आराधनामैं कह्या है ;—

गिहिदत्थो संविग्गो अत्थुवदेसेण संकणिज्जो हु।
सो चेव मंदधम्मो अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो ॥३५॥
गृहीतार्थः संविग्नः अर्थोपदेशेन शंकनीयः खलु।
सः चैव मंदधर्मः अर्थोपदेशे भजनीयः ॥ ३५ ॥

अर्थ—आगमका अर्थकूं प्रमाण नय निक्षेप करि तथा गुरुपरिपाटी करि तथा शब्दब्रह्मका सेवन करि तथा स्वानुभव प्रत्यक्ष करि भलै प्रकार सत्यार्थ ग्रहण कऱ्या होय बहुरि संसार देहभोगतैं विरक्त होय पापतैं भयभीत होय ऐसा सम्यग्ज्ञानी अर वीतरागी शास्त्रार्थका उपदेशमैं नहीं शंका करनेयोग्य है। भावार्थ—ज्ञानी वीतरागीका वाक्य निःशंक ग्रहण करना अर जो

उपदेशदाता धर्ममैं मंद होय अर संसार परिभ्रमणका जाकै भय नहीं होय सो शास्त्रार्थका उपदेशमैं भजनीय कहिये प्रमाण करने योग्य भी है अर प्रमाण नहीं करने योग्य भी है। भावार्थ—जो परमागमको परिपाटीसूं अर्थ मिलि जाय तौ प्रमाण करने योग्य है अर परमागमसूं विरुद्ध दीखै तो नहीं प्रमाण करने योग्य है।

प्रश्न—या पुष्पवरननका श्लोकमै कीटक पदकी एवज कटक पद कहै हैं, सो कैसे है?

उत्तर—कीटक पद ही दुरुस्त है क्योंकि जीवित कीटकयुक्त होय तौ धोनैं पूछनेमैं जीवघात होय अर मृतक कीटकयुक्त होय तौ सर्वथा अस्पृश्य ही होय तातैं कीटककरि दूषित ही त्याज्य है। बहुरि कटक पद होय तौ कंटककरि छेदित होय सो त्याज्य है ऐसा भाव जानना। अर या वचनतैं कटक वृक्षके पुष्पनिका निषेध करैं हैं सो योग्य नाहीं है क्योंकि कमल केवड़ा केतकी आदि कंटक वृक्षनिके पुष्प केई स्थलमैं लिखे हे। भावार्थ—जामै जंतुघात होय तथा जतुकरि छेदित होय तथा कटककरि छेदित होय तथा अमनोज्ञ गंधयुक्त होय सो प्रभूकै नहीं चढाणे योग्य है।

प्रश्न—पुष्पनिका स्वरूप तौ निश्चय भया परतु केई मनुष्य पुष्पनिकूं जिनचरणकै ऊपरि चढाते है सो आगमतैं योग्य है कि नहीं?

उत्तर—प्रथम तौ पंचमी प्रतिमाधारी श्रावक ही सचित्तका त्यागी होय है ता पीछै उत्तरोत्तर शुद्धता चारित्रकी होत सतैं मुनिपदवीमे तौ सचित्तका स्पर्श हो नही रह्या अर ये प्रतिमा पंच-परमेष्ठीकी है तातैं चरणकै स्पर्श करना ही योग्य नाही। अर देवनिकृत पुष्पवृष्टिका वरननमै भी प्रभूके निकट ही पुष्पनिका पड़ना लिख्या है सो सुनो आदिपुराणका तेईसमा पर्वमै, श्लोक—

वृष्टिरसौ कुसुमानां तुष्टिकरी प्रमदानाम् ।
दृष्टिततीरनुकृत्य स्रष्टुरपसदुपान्ते ॥३३ ॥

अर्थ—या आनंदकी करता पुष्पनिकी वृष्टि जो है सो नायिका-निकी दृष्टिपंक्तिनै अनुकरण करि स्रष्टाका उपांतकै विषै पड़त भई कि भगवानका निकटवर्त्ती क्षेत्रकै विषै पड़त भई ॥ ३३ ॥

तथा श्लोकः—

शीतलैर्वारिभिर्गांगैरार्द्रिता कौसुमी वृष्टिः * ।
षट्पदैराकुलाऽपसत्पत्युरग्रे ततो मुदा ॥ ३५ ॥

अर्थ—गंगाका शीतल जलकरि आर्द्रित कहिये आली अर भ्रमरनिकरि व्याप्त अर विस्तार्‍यो है सुगध जानै अर विस्तार्‍यो है हर्ष जानैं ऐसी पुष्पवृष्टि जो है सो भर्त्तारका अग्रभागकै विषैं पड़त भई ॥ ३५ ॥

तथा चौबीशमा पर्वमै, श्लोक—

पुष्पवृष्टिप्रतानेन परितो भ्राजितं प्रभुम् ।
कल्पद्रुमप्रगलितप्रसूनमिव मंदरम् ॥ १२३ ॥

अर्थ—कल्पद्रुमतै झरता पुष्प सुमेरुगिरिनै शोभित करै तैसैं सुरेंद्र जो है सो पुष्पवृष्टिका समूहकरि प्रभूनै चहूं तरफतै शोभित करत भयो ॥ १२३ ॥

---

* 'आर्द्रिता कौसुमी वृष्टिः' यहा पर छंदोभंग है इसलिए अगर यो पढ़ा जाय तो अच्छा है,—

शीतलैर्वारिभिर्गांगैः कौसुमी वृष्टिरार्द्रिता ।

इत्यादि वचननित हरित पुष्प तथा प्रासुक पुष्प तथा सुवर्ण-रजतजनित पुष्प तथा रत्नजटित पुष्प जैसे अपने योग्य मिलै तैसे ही उत्तम पुष्प भगवतके अग्रभागमै चढ़ाना योग्य है ॥

इति पुष्पपूजननिर्णयः ।

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

प्रश्न—पुष्पपूजनकी रीति भी मानी अबै नैवेद्यकी रीति भी कहौ ।

उत्तर—पद्मनंदिपंचविंशतिकामै, श्लोक—

देवोऽयमिन्द्रियबलप्रलयं करोति
नैवेद्यमिंद्रियबलप्रदखाद्यमेतत् ।
चित्रं तथाऽपि पुरतः स्थित महंतोऽस्य
शोभां बिभर्त्ति जगतो नयनोत्सवाय ॥ १ ॥

अर्थ—यो देव तौ इन्द्रियबलको प्रलय करै है अर यो नैवेद्य इन्द्रियबलको दाता खाद्य है तौ भी या अरहंतका अग्रभागमै तिष्ठतो जगतका नेत्रनिकै उत्सवनिमित्त शोभानै धारण करै हैं, यो आश्चर्य है ॥

या वचनतै भक्षण करने योग्य सर्व ही द्रव्य भगवानके अग्र-भागमै चढ़ाना योग्य है । तथा आदिपुराणमै ऐसा है कि—

"प्राज्यपीयूषपिंडैः"

अर्थ—इन्द्राणी जो है सो उत्तम घृत तथा अमृतपिंडकरि पूजन करत भई ।

तथा सकलकीर्तिजी शांतिनाथपुराणमै ऐसा लिख्या है कि—

"नैवेद्यैश्चतुर्विधैः"

अर्थ—च्यार प्रकारका नैवेद्यकरि पूजत हूं । या वचनतें खाद्य स्वाद्य लेह्य पेयरूप च्यारूं ही भेदके नैवेद्य जिनेंद्रका अग्रभागमैं चढ़ाना याग्य है ।

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका बीशमा परिच्छेदमैं श्लोक—

क्षीरमोदकपक्वान्नशाल्यन्नवटकादिभिः ।
जिनपूजां विधत्ते यो लभेद्भोगं त्रिलोकजम् ॥२००॥

अर्थ—दुग्ध लाडू पक्वान्न चावल बडानै आदि लेय नैवेद्यकरि जो पुरुष जिनपूजा रचै है सा तीनलोकतैं उत्पन्न भया भोगन पावै है ॥

या वचनतैं भी च्यारूं ही प्रकारका नैवेद्य चढ़ावो योग्य है ।

प्रश्न—तुमनै तौ सर्व भक्षणयोग्य द्रव्य चढ़ाना स्थापित किया अर केई मनुष्य चावल रोटी व्यंजन चढ़ानेका निषेध करैं हैं, सो कैसैं है ?

उत्तर—भक्षणयोग्यमैं किसीका निषेध तौ आगममैं है नहीं, सर्व ही चढ़ानेयोग्य चावल रोटी व्यंजन हैं, नहीं चढ़ानेयोग्य बतावै है सो आगमके अनुकूल नहीं कहै है। अर इतना विचारना तो अवश्य योग्य दीखै है कि—जहां तहां पूजनद्रव्यका विशेषण पवित्र खाद्य उत्तम लिखै है अर वर्त्तमान देशकालमैं चावल रोटी व्यंजन चौका बारैं होय तामैं जिनके अपवित्र बुद्धि तथा वचन प्रवर्त्तै अर जो श्रावक जन ग्रहण नहीं करैं तातैं पवित्र खाद्य उत्तमपणाको भान जाकै नहीं रहै सो नहीं चढावै । अर पूजक नाना जातिका नाना देशका नाना अभिप्रायका सबे ही देव मनुष्य तिर्यंच हैं तिनमैं जिनकै जा द्रव्यमै अपवित्र अखाद्य अधम बुद्धि उत्पन्न होय तिनकूं तौ सो द्रव्य चढाना योग्य नाहीं क्योंकि भावदुष्ट द्रव्य अखाद्य

कह्या है अर जिनकै जा द्रव्यमैं पवित्र खाद्य उत्तम बुद्धि होय सो सर्व रोटी चावल आदि नाना व्यंजन प्रभृति च्यारूं ही प्रकार भोज्य चढ़ावो योग्य है ।

इति नैवेद्यपूजननिर्णयः ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

प्रश्न—नैवेद्यपूजनकी रीति भी मानी अब दीपकपूजनकी रीति भी कहो ।

उत्तर—पद्मनंदि पंचविंशतिकामैं, श्लोक--

आरार्त्तिकं तरलवह्निशिखं विभाति
स्वच्छे जिनस्य वपुषि प्रतिबिंबितं सत् ।
ध्यानानलो मृगयमाण इवावशिष्टं
दग्धुं परिभ्रमति कर्मचयं प्रचण्डम् ॥ १ ॥

अर्थ—जिनेंद्रका स्वच्छ शरीरकै विषैं चंचल अग्निकी शिखारूप आरती प्रतिबिंबित होती संती सोहै है सो मानो ध्यान रूप अग्नि बाकीका प्रचंड कर्मसमूहनै भस्म करनेकूं हेरती संती ही सोहै है ॥

या वचनतैं उत्तम घृतजनित ज्वलित दीपक चढ़ावो योग्य है ।

प्रश्न—कर्पूर योग्य है या नहीं है ?

उत्तर—कर्पूर द्रव्य वनस्पतीका रस है अर आर्य पुरुषनिकै ग्राह्य लिखे है तातै तो उत्तम द्रव्य है तथापि वर्त्तमान देशकालमैं आर्यदेशमैं आर्य मनुष्यनिकरि नहीं बनै है अर म्लेच्छ ही बनावै है अर म्लेच्छ ही ल्यावैहै तातैं पूजनमै ग्रहण करने योग्य नहीहै ।

तथा आदिपुराणमै श्लोकः—

ततो रत्नदीपैर्जिनांगद्युतीनां
प्रसर्पेण मन्दीकृतात्मप्रकाशैः ।

जिनार्कं शची प्रार्चिचद्भक्तिनिघ्ना

न भक्ता हि युक्तं विदन्त्यप्ययुक्तम्॥ १ ॥

अर्थ—तदनंतर इन्द्राणी जो है सो जिनेंद्रका अगकी द्युतिका फैलावकरि मंद कियो है आत्मप्रकाश जानैं ऐसा रत्नदीपककरि जिन सूर्यनै पूजत भई, इहां ग्रंथकार कहै है कि—निश्चयकरि भक्तिकरि संयुक्त भक्त जे हैं ते युक्त अयुक्त भी नही जाने हैं। भावार्थ—जा रत्नकी कांति भगवानकी देह संबंधी कांतिकरि मंद हो गई ता रत्नका चढ़ाना कहा योग्य था ? परंतु भक्तजननिकूं योग्य अयोग्यका कछु ज्ञान नहीं रहै है ॥

या वचनतैं प्रकाशमान रत्ननिके दीपककरि भी पूजन करना योग्य है ॥

प्रश्न—केई पुरुष उत्तम घृत कर्पूर रत्न सिवाय खोपराका खंडके पीतरंग लगाय दीपक मानि चढ़ावै है, सो कैसैं है ?

उत्तर—ऐसैं बनानेका हुकम तौ कहूं देख्या नाहीं अर उन पुरुषनितै प्रश्न किया तौ ऐसा ही कह्या कि यामैं दीपककी संभावना ही करनी पड़ती है सो संभावना करनेका तौ दोष नाहीं परंतु जाकै सचित्तका त्याग होय ताकूं तौ ऐसा भी करना योग्य ही है। तथा उत्तम घृत कर्पूर रत्नका जा देश कालमै अभाव होय ता देश कालमैं करना योग्य है अर उत्तम घृत कर्पूर रत्नका सद्भावनैं होतां संतां उनका निषेध करि सचित्तग्राही पुरुष भी केवल हठग्राहीपणातैं करै है सो तौ उत्सूत्र ही करै है।

इति दीपकपूजननिर्णयः।

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

प्रश्न—दीप पूजनकी रीति भी मानी अब धूपपूजनकी रीति

भी कहो।

उत्तर—पद्मनंदि पंचविंशतिकामैं, श्लोक—

कस्तूरिकारसमयैरिव पत्रवल्लीं
कुर्वन्मुखेषु वलनैरिव दिग्वधूनाम्।
हर्षादिव प्रभुजिनाश्रयणेन वात-
प्रेंखत्वपुर्नटति पश्यत धूपधूमः॥ १॥

अर्थ—दिशारूप स्त्रीनिका मुखकै विषैं कस्तूरीका रसमई वलनै, कहिये वलन करिकैं पत्ररचनानैं करतो सतो समर्थ जिनका आश्रयकरि हर्षतैंही कहा मानूं पवन करि हालतो है शरीर जाको ऐसो धूपको धूम जो है सो नृत्य करै है, सो हे आत्मन्! देखो॥१॥

या वचनतैं प्रभूका अग्रभागमैं धूप अग्निकुंडरूप धूपायनमैं खेपि धूम करवो योग्य है। तथा—

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजाल—
संधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधै-
र्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥ १॥

अर्थ—दुष्ट अष्टकर्मरूप इंधनका पुष्ट जालनै दूर करवाकै अर्थि दूर कियो है अन्य सुगंध द्रव्यनिको गंध जानै ऐसा धूप-करि प्रज्वलित धूमकेतु समान जिनेन्द्र सिद्धांत यती जे हैं तिनने पूजत हूं॥

या वचनतैं सर्वोत्तम सुगंधित धूप अग्निमैं खेपि पूजन करवो योग्य है।

प्रश्न—धूपमैं देवदारु, चंदन, तगर, चीणी, कपूर, कपूरकाचरी

लौंग, अगर, वालछड़, छाड़छड़ीलो, सिलारस, इनि दश द्रव्यनिका धूप बनाते हैं सो योग्य है कि नहीं ?

उत्तर—ये दशूं ही द्रव्य मूलमें तौ उत्तम धूपयोग्य ही है परंतु वर्त्तमान देशकालमैं सिलारस चर्मके पात्रमैं देशांतरतै म्लेच्छके हाथसै आवै है तातैं ग्रहण करनेयोग्य नहीं है क्योंकि चर्मके संयोगतैं रसमैं त्रसकायकी उत्पत्ति लिखी है तातैं चर्मसंयोगजनित सिलारसकी धूप अग्निमैं क्षेपै तौ त्रसकायका घात होय तातैं सिलारस और कपूर विना और द्रव्य तथा और भी कंकोल मिरचि जायफल जावत्री वगैरै उत्तम सुगंध द्रव्य मिलाय प्रभूके अग्रभागमैं धूपायनमैं क्षेपवो योग्य है। अर ऐसा भी आग्रह नही करना कि दशसै तथा सिवायसैं ही धूप होय है, अपनी सामर्थ्य माफिक एक दोय दश बीस जितने उत्तम द्रव्य सुगंधित मिलै तितनेहीका चूर्ण करि धूप बनावनी अर चर्मसंयोग विना अर म्लेच्छनिके हाथ बिना सिलारस मिलै तौ वे भी द्रव्य लेने योग्य ही वृक्षका गूंद है तैसै ही कपूर भी वृक्षका ही गूंद है तातै त्याज्य द्रव्य नही है।

इति धूपपूजननिर्णय.।

ॐनमःसिद्धेभ्यः।

प्रश्न—धूप पूजनकी रीति भी मानी अब फलकृत पूजनकी रीति भी कहो।

उत्तर—पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं श्लोक—

उच्चैः फलाय परमामृतसंज्ञकाय
नानाफलैर्जिनपतिं परिपूजयामि।
त्वद्भक्तिरेव सकलानि फलानि दत्ते

मोहेन तत्तदपि याचत एव लोकः ॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! परमामृत है नाम जाका ऐसा उच्चफलकै वास्तै नानाफल जे हैं तिन करि तू जिनपति जो है ताहि परिपूजयामि कहिये परिपूर्णताकरि पूजूं हूं सो तिहारी भक्ति ही सकल फल देवै है तौ भी लोक मोहकरि फल यावै ही है ॥ १ ॥

या वचनतैं नाना जातिके उत्तम फल जे हैं तिनकरि पूजन करना योग्यहै ।

तथा आदिपुराणका सतरमा पर्वमै, श्लोक—

अथ भरतनरेन्द्रो रुन्द्रभक्त्या मुनीन्द्रं
समधिगतसमाधिं सावधानं स्वसाध्ये ।
सुरभिसलिलधारागंधपुष्पाक्षतार्घै-
रयजत जितमोहं सप्रदीपैश्च धूपैः ॥२५१॥
परिणतफलभेदैराम्रजंबूकपित्थैः
पनसलकुचमोचैर्दाडिमैर्मातुलिंगैः ।
क्रमुकरुचिरगुच्छैर्नालिकेरैश्च रम्यै-
र्गुरुचरणसपर्यामातनोदाततश्रीः ॥२५२॥

अर्थ—अथानंतर भरतनरेन्द्र जो है सो घनभक्तिकरि प्राप्त भयो है ध्यान जाकै अर अपना कार्यकै विषै सावधान ऐसो जितमोह मुनीन्द्र जो है ताहि प्रचुर दीपकसहित तथा धूपसहित सुगंधित जलधारा गंध पुष्प अक्षतयुक्त अर्घकरि पूजत भयो ॥२५१॥ अर आम्र जांबूंणि कैथ पनस लिकुच कहिये केला मोच कहिये दाडयूं बिजोरा क्रमुक कहिये सुपारीका मनोहर गुच्छा नारेल तथा और मनोहर पक्या फलविशेषकरि गुरुका चरणकी पूजाकै विषैं

विस्तीर्ण शोभा विस्तारतो भयो ॥ २५२ ॥

या वचनतैं सचित्त अचित्त भेदयुक्त सर्व ही मनोहर उत्तम फल चढ़ावो योग्य है।

इति फलपूजननिर्णयः।

प्रश्न—अष्ट द्रव्यकृत पूजनके निर्णयमैं तौ सचित्त अचित्त दोऊ ही जातिके द्रव्य पूजनयोग्य सिद्ध भये परंतु कहूं केवल प्रासुक द्रव्यनितैं भी पूजन कह्या कि नाहीं ?

उत्तर—पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं, आर्या—

प्रातः प्रोत्थाय ततः कृत्वा तात्कालिकं क्रियाकल्पम्।
निर्वर्त्तयेद्यथोक्तं जिनपूजां प्रासुकैर्द्रव्यैः॥ १५४॥

अर्थ—प्रातःकाल ऊठि ता पीछैं वा समयसंबंधी क्रियाकल्प करि जिनेंद्रकी पूजा प्रासुकद्रव्यनिकरि यथोक्त रचै ॥ १५४ ॥

या वचनतैं प्रासुक द्रव्यनितैं ही पूजन करना योग्य है।

प्रश्न—ये श्लोक तौ प्रोषधव्रतीके वरननका है।

उत्तर—प्रोषधव्रतीका ही है तातैं इतना तौ नियम जानो कि प्रोषध करै ताकूं तौ प्रासुकतैं ही करनेका हुकम है तातैं सचित्ततैं नहीं करै अर और भी करै तौ उच्चमार्ग है कहूं निषेध तौ है नाहीं।

प्रश्न—निषेध नहीं है तौ भी आज्ञा विना उच्चमार्ग गृहस्थकै करपात्रतैं भोजन करना समान है तातैं ही सूत्रपाहुड़मैं निषेध किया है;—

सुत्तत्थपदविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिपत्तं सचेलस्स ॥७॥

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः स्फुटं सः ज्ञातव्यः।
खेले अपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जो पुरुष सूत्रका अर्थरूप स्थानतैं भ्रष्ट है सो प्रकट मिथ्यादृष्टी है जैसै वस्त्रधारी गृहस्थकूं ख्याल कौतूहलमै भी पाणि-पात्रकरि भोजन नहीं करवा योग्य है ॥

या वचनतै अपने पदस्थतै उच्च प्रवृत्ति करना है सो भी उत्सूत्र प्रवृत्ति ही है।

उत्तर—ये वचन तौ सत्य ही है परंतु जैसै करपात्रभोजनका निषेध है तैसै प्रासुक पूजनका तौ निषेध नहीं है। आज्ञा भी है सो दिशानिर्णयका प्रकरणमै चतुर्विंशतिस्तवन स्वरूपकी गाथा मूला-चारकी टीका सहित लिखी है तामै "अच्चिदूण य" पदकी व्याख्यामै ऐसा लिख्या है कि "अर्चित्वा च गंधपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरा-नीतैर्द्रव्यरूपैर्भावरूपैश्च" अर्थ—"प्रासुक ल्याये द्रव्यरूप तथा भावरूप गंध पुष्प धूप दीप जे है तिनकरि अर्चित्वा कहिये पूजनकरि" इत्यादि संबंध है या वचनतैं सर्व ही पुरुष सदा काल ही प्रासुक द्रव्यतैं भी पूजन करैं।

प्रश्न—ये मूलाचार ग्रंथ यत्याचारका है तातैं मुनीश्वरनिका वरनन है।

उत्तर—ये प्रकरण चतुर्विंशतिस्तवनका है सो सर्व ही गृहस्थ तथा मुनीश्वरनिके करनेका है तातै ही द्रव्यरूप भावरूप विशेषण सर्व द्रव्य प्रति जनाया है। अर केवल मुनीश्वरनिकूं ही ये उपदेश होता तौ द्रव्यरूप विशेषण नहीं होता क्योंकि मुनीश्वरनिकै द्रव्य-पूजन है ही नहीं। अर इतनी और जानो कि–दर्शन व्रत सामायिक प्रोषध ये च्यार प्रतिमाके धारक तौ सचित्ततै भी करै तथा अचित्ततै भी करैं क्योंकि इनि च्यारनिकै आपकै भी त्याग नहीं है यातैं इनिकै सचित्तमै ग्लानि नहीं है अर पांचमा सचित्तविरती छठा

रात्रिभुक्तिविरती सातमा ब्रह्मचारी आठमा आरम्भत्यागी ये च्यार प्रतिमाके धारी अचित्त द्रव्यतैं ही करैं क्योकि इन च्यारनिकै सचित्तका त्याग है तातैं सचित्तमै ग्लानि है यातैं, अर नवमा परिग्रहत्यागी दशमा अनुमोदनत्यागी ग्यारमा उद्दिष्ट आहारत्यागी ये च्यार प्रतिमाके धारक भावरूप द्रव्यतैं ही करैं हैं क्योकि इनकै द्रव्य नहीं है यातैं। अर और विचारनेको वार्त्ता है कि—पूजन अतिथिसंविभागव्रतकै अंतर्भूत है अर द्वादश व्रतमैं गणना नहीं कियो है और द्वादश व्रततैं बाहिर भी नही है अर अतिथिसंविभागका अतीचार सूत्रकारनै ऐसा लिख्या है कि—सूत्र—"सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः" याको अर्थ ऐसो है कि-सचित्तनिक्षेप कहिये सचित्त पत्र आदिकै विषैं स्थापन कियो अर सचित्त अपिधान कहिये सचित्त पत्र आदितै ढक्यो अर परव्यपदेश कहिये पैलानैं उपदेश कियो अर मात्सर्य कहिये ईर्षासहित दियो अर कालातिक्रम कहिये कालको उल्लंघन कियो ऐसैं पांच अतीचार हैं अर्थात् अतिथिसंविभागमैं पूजन है अर अतिथिसंविभागका अतीचारांमैं सचित्तनिक्षेप अर सचित्तापिधान लिख्या तातैं सचित्तपूजनका निषेध सर्वथा संभवै है तथापि सचित्तपूजनकी भी आज्ञा है तातैं अनुमानतैं मालूम होय है कि ये दोऊ ही वचन पूजककी अपेक्षातैं हैं, ऐसै अवधारण किये वचन विरोध नहीं होय है।

प्रश्न—प्रासुक द्रव्यतै तौ पूजन करना सिद्ध भया परंतु प्रासुक द्रव्यका लक्षण भी कहो।

उत्तर—गाथा:—

तत्तं पक्कं सुक्कं आमिललवणेण मिस्सियं दव्वं।

जं जंतेण य छुन्नं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥
तप्तं पक्वं शुष्कं आम्लुलवणेन मिश्रितं द्रव्यम्।
यत् यंत्रेण च छिन्नं तत्सर्वं प्रासुकं भणितम् ॥१॥

अर्थ—तप्त कहिये अग्निकरि तप्त भये जल दुग्ध छाछि आदि द्रव द्रव्य अर पक्व कहिये अग्निकरि पक्यो हरितकाय तथा शुष्कं कहिये सूखा हरितकाय अर आमिली लवणकरि मिश्रित भयो हरितकाय तथा यन्त्रकरि छेदित भेदित भयो हरितकाय सो सर्व द्रव्य प्रासुक कह्यो है ॥

ऐसैं तौ सामान्यवचन ये है तथा आचारसारमै,—

नारं तु प्रासुकं गाह्यं मुनिभिः शुद्धमेव तत्।
षष्ठ्यंशं स्थापयेद्द्रव्यं प्रासुकं च जिनोदितम् ॥

अर्थ—प्रासुक जल करनेके समयमै जो हरडै आदि द्रव्य जलमै जलका प्रमाणतैं साठिवैं भाग प्रमाण मिलावै सो जल प्रासुक मुनीश्वरनिकै ग्रहण करने योग्य है क्योंकि जिनेद्रको कह्यो शुद्ध ही है ॥

तथा मूलाचारमैं आहारके दोषनिमै निक्षिप्तदोष वरननकी गाथा—

सच्चित्तपुढविआऊतेऊ हरिदं च बीय तसजीवा।
जं तेसिमुवरि ठविदं णिक्खित्तं होदि छब्भेयं ॥४१॥
सचित्तपृथिव्यप्तेजांसि हरितं च बीजत्रसजीवाः।
यत्तेषामुपरि स्थापितं निक्षिप्तं भवति षड्भेदम् ॥

टीका—सचित्तपृथिव्यां सचित्ताप्सु सचित्तते-जास हरितकायेषु बीजकायेषु त्रसजीवेषु तेषूपरि

यत्स्थापितमाहारादिकं तन्निक्षिप्तं भवति षट्भेदं। अथ वा सह चित्तेनाप्रासुकेन वर्त्तत इति सचित्तं च पृथिवीकायाश्चाप्कायाश्च तेजः कायाश्च हरितकायाश्च बीजकायाश्च त्रसजीवाश्च तेषामुपरि यन्निक्षिप्तं सचित्तं तत् षड्भेदं भवति ज्ञातव्यम्॥ ४१॥

अर्थ—सचित्त पृथ्वीकै विषै सचित्त जलकै विषै सचित्त अग्निकै विषैं हरितकायकै विषैं बीजकायकै विषैं तथा त्रस जीवनिकै विषैं कि इनिकै ऊपरि जो आहरादिक स्थापित किया सो छह भेदरूप निक्षिप्तदोषयुक्त द्रव्य भया। अथ वा चित्तकै साथि प्रवर्त्तै सो सचित्त, अर पृथिवीकाय अप्काय तेजकाय हरितकाय बोजकाय अर त्रसकाय जे है ते प्रासुककै ऊपरि स्थापित करै तौ वो द्रव्य षट्भेदरूप सचित्त है, ऐसैं जानबे योग्य है। भावार्थ—प्रासुक द्रव्य अप्रासुककै ऊपरि धरि देवै अथवा नीचे धरि देवै अथवा दोऊ सामिल करि देवै तौ सर्व अप्रासुक ही जानना॥ ४१॥

प्रश्न—प्रथम प्रासुकलक्षणमैं अग्नितैं तप्त भया तथा पक्क भया सो प्रासुक है ऐसैं कह्या अर इहां अग्निकै ऊपरि धरनेतैं प्रासुकपणा बिगड़ना कह्या सो कैसैं है?

उत्तर—अग्नितैं तप्त पक्क भया ताही द्रव्यनै बहुरि तप्त करे चलितरस होय है तातैं त्यागने योग्य कह्या है।

तथा अपरिणतदोषकी गाथाः—

तिलतंदुलउसिणोदय चणोदय तुसोदयं अविद्धत्थं।
अण्णं तहाविहं वा अपरिणदं णेव गेण्हिज्जो॥४२॥

तिलतंदुलोष्णोदकं चणोदकं तुषोदकं अविध्वस्तम् ।
अन्यत्तथाविधं वा अपरिणतं नैव गृण्हीयात् ॥४६॥

टीका—तिलोदकं तिलप्रक्षालनं तंदुलोदुकं तंदुलप्रक्षालनं उष्णोदकं भूत्वा शीतं च चणोदकं चणप्रक्षालनं तुषोदकं तुषप्रक्षालनं अविध्वस्तमपरिणतं आत्मीयवर्णगंधरसापरित्यक्तं अन्यदपि तथाविधमपरिणतं हरीतकीचूर्णादिना अविध्वस्तं नैव गृण्हीयात् नैव ग्राह्यमिति, एतानि परिणतानि ग्राह्याणीति ॥ ४६ ॥

अर्थ—तिलांको धोवण तंदुलको धोवण उष्ण होय करि होहू तथा शीतल होहू चणांको धोवण तुषांको धोवण जो अपना वर्ण गंध रसनै नही छोड्यो होय तथा और भी तैसै ही हरडैका चूर्ण आदि द्रव्यकरि अन्यरूप नही परिणम्यूं होय सो जल मुनीश्वर नही ग्रहण करै । भावार्थ—ये पूर्वोक्त जल निज वर्ण गंध रूपतै परिणति पा जाय तौ प्रासुक जाणि ग्रहण करै अर तिल तंदुल चणा तुष हरड आदिका रस गंधरूप जा जलमै नही प्रवेश करै सो जल अप्रासुक जाणि नही ग्रहण करै ॥ ४९ ॥ तथाः—

पगदा असवो जम्हा तम्हादो दव्वदोत्ति तं दव्वं ।
फासुगमिदि सिद्धं त्विषयं अत्तकदं असुद्धं तु ॥६१॥
प्रगता असवो यस्मात्तस्मात् द्रव्यतः इति तत् द्रव्यम् ।
प्रासुकमिति सिद्धं त्विषयं(?) आत्मकृतं अशुद्धं तु ।६१।

टीका—द्रव्यभावतः प्रासुकं द्रव्यं भुंक्ते। द्रव्यगतप्रासुकमाह—प्रगता असवः प्राणिनः यस्मात्तस्मात् तत्द्रव्यतः शुद्धं तत् द्रव्यं यत्रैकेन्द्रिया जीवा न संति न विद्यंते स आहारस्तदद्रव्यतः शुद्धः द्वीन्द्रियादीनां कलेवराः पुनर्यत्र सजीवा निर्जीवाः संति सः आहारो दूरतः परिवर्जनीयो द्रव्यतोऽशुद्धत्वादिति प्रासुकमिति, अनेन प्रकारेण प्रासुकं सिद्धं निष्पन्नमपि द्रव्यं यद्यात्मकृतं आत्मनिमित्तं कृतं चिंतयति तदा द्रव्यतः शुद्धमशुद्धमेव ॥ ६१ ॥

अर्थ—द्रव्यतै तथा भावतै प्रासुक द्रव्य होय सो मुनीश्वर भोजन करै तातै द्रव्यगत प्रासुक कहैं हैं—अतिशयकरि गये है प्राणी जातै तातै वो द्रव्य द्रव्यतैं शुद्ध है। भावार्थ—जहां एकेंद्रिय जीव नहीं विद्यमान है सो आहार द्रव्यतै शुद्ध है अर जहां द्वीन्द्रियादिकका कलेवर जीवसहित तथा निर्जीव है सो आहार दूरतै ही अत्यंत वर्जनीक है क्योंकि वाकी मास संज्ञा है तातै द्रव्यतै अशुद्धपणूं है यातै, या प्रकार प्रासुकको लक्षण जानना। इहां इतना और जानना कि या प्रकारकरि प्रासुक सिद्ध भयो भी द्रव्य जो आपकै निमित्त कियो चितवन करै कि जान लेवै तौ वाही समय आहारादिक द्रव्य द्रव्यतै शुद्ध है सो भी अशुद्ध ही है॥ ६१ ॥

तथा प्रसिद्ध, श्लोक—

मुहूर्त्तं गालितं तोयं प्रासुकं प्रहरद्वयम्।
कोष्णं चतुष्कयामं च विशेषोष्णं तथाष्टकम्॥ १॥

अर्थ—वस्त्रकरि छाण्यूं जल मुहूर्त्तमात्र प्रासुक चतुर्थप्रतिमाधारक श्रावक पर्यंत पुरुषकै योग्य है, अर हरडै आदिका चूर्णकरि रस गंध वर्ण जाको परिणति पागयो होय सो जल दोय प्रहरमात्र प्रासुक है, अर किंचित् तप्त भयो जल च्यार प्रहर मात्र प्रासुक है, अर विशेष तप्त भयो जल आठ प्रहर मात्र प्रासुक है सो मुनिकै तथा गृहस्थकै ग्रहण करिवे योग्य है। इहां इतना और विशेष जानना कि—केवल वस्त्रकरि छाण्यूं ही जल सचित्तत्यागी गृहस्थी पुरुषकै तथा महाव्रती मुनीश्वरनिकै योग्य नहीं है क्योंकि वामैं एकेंद्रिय जलजीव विद्यमान है यातैं दो घडी पहली तीक्ष्ण द्रव्य मिलाने योग्य है तथा तप्त करने योग्य है ॥ चौपई।

अष्टद्रव्यको निर्णय एम,
लिख्यो जिनागम देखो जेम।
भक्तिवान ज्ञानी जो होय,
हठ तजि ग्रहण करहु सब कोय ॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनाद्यातके प्रथमकाडे अष्टद्रव्यनिर्णयो नाम नवमोल्लासः ।

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ चमर आदि अनेकपदार्थ निर्णय लिख्यते दोहा;—

**शुद्ध सिद्ध चिद्रूपमय सकल निरंजन देव।
हृदय धारि बहु द्रव्यको निर्णय कियो सुएव ॥१॥**

प्रश्न—केई पुरुष तौ चमरी गौके केशनिका चमर बनाते हैं

अर कहते हैं कि आदिपुराणमें लिखते है अर केई पुरुष निषेध करते है, सो कैसें है ?

उत्तर—तहां 'चमरीरुह' लिखते है तातें कहैं हैं परंतु इहां विचार करनेका काम है कि वहां जो पदार्थ हैं सो सर्व स्वर्गसमुद्भव है तातैं ये चमरीके केश वहा नही है जैसैं नारायणके हस्तमै सख लिखै है सो सखकै आकार देवोपनीत उत्तम द्रव्य है ये हाडद्रव्य नहीं है, तथा नारायणका नाम 'शार्ङ्गी' है ताका अक्षरार्थ ऐसा करते है कि जो सींग शार्ङ्ग ताका धनुष जाकै होय सो शार्ङ्गी है परन्तु वो धनुष देवोपनीत द्रव्य है सींगका नहीहै तातैं यहां चमरीके केशकै समान आकृतिमान चमर करना योग्य है, केशनिका चमर बनाना योग्य नहींहै क्योंकि केश तौ अस्पृश्य द्रव्य है अर इहां परम उत्तम द्रव्यका ग्रहण है।

प्रश्न—केई पुरुष कहैहै कि एक पुरुष पूजन करै ता समय दूसरेकूं करना योग्य नाही है, सो कैसें है ?

उत्तर—समवसरणमै असख्यात देव मनुष्य तिर्यंच एकै काल पूजन स्तवन वंदना करै है तथा नंदीश्वरादिक कृत्रिम अकृत्रिम जिनमंदिरनिमें देव मनुष्य एकत्र होय सदाकाळ पूजन स्तवन वंदना करै है तातैं ऐसा भी एकान्त पक्ष करना योग्य नाही जो एक समय एक ही पूजन करै।

प्रश्न—देव पूजन सामान्यपनें एक भेदरूप ही है कि कछू यामैं विशेष भी है ?

उत्तर—आदिपुराणका अड़तालिसवां पर्वमैं;—

कुलधर्मोयमित्येषामर्हत्पूजादिवर्णनम् ।
तदा भरतराजर्षिरन्ववोचदनुक्रमात् ॥ २५ ॥

प्रोक्ता पूजाऽर्हतामिज्या सा चतुर्द्धा सदाऽर्चनम् ।
चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमश्चाष्टाह्निकोऽपि च ॥ २६ ॥

अर्थ—तिन श्रावकनिकै योग्य अर्हतपूजादिकको वर्णन जो है सो कुलधर्म है सो वा समय भरत राजऋषि अनुक्रमतैं कहत भयो॥ २५॥ अरहंतकी पूजानैं इज्या कहै है सो पूजा च्यार प्रकार है, तिनिके नाम—सदार्चन, चतुर्मुखपूजन, कल्पद्रुमपूजन, अष्टाह्निकपूजन॥२६ ॥

प्रश्न—इनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहो। उत्तररूप श्लोक—

तत्र नित्यमहो नाम शश्वज्जिनगृहं प्रति ।
स्वगृहान्नीयमानाऽर्चा गंधपुष्पाक्षतादिका ॥ २७ ॥
चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च तत् ।
शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम् ॥२८॥
या च पूजा मुनीन्द्राणां नित्यदानानुषङ्गिनी ।
स च नित्यमहो ज्ञेयो यथाशक्त्युपबृंहितः ॥ २९॥

अर्थ—तिन च्यार भेदनिमैं जो निरंतर जिनमंदिर प्रति अपने गृहतैं ल्याये जे गंध पुष्प अक्षत आदि द्रव्य पूजा सो नित्यमह नाम पूजन है ॥ २७ ॥ तथा जो जिनप्रतिमाका तथा जिनमंदिरका भक्तिकरि बनावना है सो भी नित्यमह है, तथा दानतैं प्रधान करि ग्राम नगर आदिकै विषै ※ सदार्चन है सो भी नित्यमह है ॥ २८ ॥ तथा जो नित्यदानकै साथि प्रवर्त्तनवारी मुनीश्वरनिकी पूजा है सो

※ इसका अर्थ इस तरह होना चाहिये—"गाँव, जमीन आदि 'शासनलेख' या दस्तावेज लिखकर मन्दिर को दानकर देना भी सदार्चन या नित्यमह है। —प्रकाशक

भी यथाशक्तिकरि वृद्धिनैं प्राप्त भई नित्यमह जानवे योग्य है ॥ २९॥

महामुकुटबद्धैस्तु क्रियमाणो महामहः।
चतुर्मुखः स विज्ञेयः सर्वतोभद्र इत्यपि ॥ ३० ॥

अर्थ—महा मुकुटबद्ध राजानिकरि कियो महामह है सो चतुर्मुख है सो ही सर्वतोभद्र है, या प्रकार जानवे योग्य है ॥ ३० ॥

दत्त्वा किमिच्छकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते।
कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो किमिच्छक दान देय चक्रवर्तीनिकरि प्रवर्त्तै सो यो जगतकी आशाको परिपूर्ण करनेवारो कल्पद्रुममह है ॥ ३१ ॥

अष्टाह्निको महः सार्वजनिको रूढ एव सः।
महानैन्द्रध्वजो यस्तु सुरराजैः कृतो महः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अर जो देवेन्द्रनिकरि कियो महान ऐन्द्रध्वज पूजन है सो ही सर्वजनप्रसिद्ध अष्टाह्निकमह है ॥ ३२ ॥

बलिस्नपनमित्यन्यत्त्रिसंध्यासेवया समम्।
उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—या प्रकार और तीनूं सध्यासंबंधी सेवन करिकै साथि मंडल पूजन स्नपन जो है सो कहे विकल्पनिकै विषै ही अन्तर्भूत जानने अर और भी तिनसमान जे है ते सर्व उनहीमैं अन्तर्भूत जानने ॥ ३३ ॥

एवंविधविधानेन या महेज्या जिनेशिनाम्।
विधिज्ञास्तामुशंतीज्यां वृत्तिं प्रथमकल्पिकाम् ॥

अर्थ—या प्रकार विध विधानकरि जो जिनेश्वरकी महान पूजा

है ताहि विधिका ज्ञाता प्रथम कल्पकी इज्या वृत्ति कहै है ॥ ३४ ॥

प्रश्न—जिनपूजननिमित्त मंडलविधान करतेहैं सो रीति प्राचीन है कि नवीन है ?

उत्तर—आदिपुराणका तेईसमा पर्वमैं, श्लोक—

पुरो रंगवल्यातते भूमिभागे
सुरेन्द्रोपनीता बभौ सा सपर्या ।
शुचिद्रव्यसंपत्समस्तैव भर्तुः
पदोपास्तिमिच्छुः श्रिता तच्छलेन ॥१०७॥

अर्थ—सुरेन्द्रनिकरि ल्याई वा पूजा जो है सो अग्रभागकै विषैं रंगावलीकरि विस्तृत भूमिभागकै विषै सोहत भई, इहां कवि उत्प्रेक्षा करै है कि—समस्त ही पवित्र द्रव्यनिकी संपदा जो है सो मानों भर्त्तारके चरणनिकी उपासनाकी इच्छुक पूजनके छलकरि आश्रय कियो ॥ १०७ ॥

शची रत्नचूर्णैर्बलिं भर्तुरग्रे
ततानोन्मयूखप्ररोहैर्विचित्रम् ।
मृदुस्निग्धसूक्ष्मैरनेकप्रकारैः
सुरेन्द्रायुधानामिव श्लक्ष्णचूर्णैः ॥ १०८ ॥

अर्थ—शची जो है सो भर्त्तारके अग्रभागकै विषै सुरेन्द्रका धनुषकै समान निकलती कांतिके है अंकुरे जिनविषै ऐसे कोमल सचिक्कण सूक्ष्म अनेक प्रकारके महीन चूर्ण जे हैं तिनकरि चित्रित बलि कहिये मंडलरचना जो है सो विस्तारत भई ॥ १०८ ॥

या वचनतैं अनेक रंगयुक्त प्रभूका अग्रभागमैं मंडल करनेकी प्राचीन राह है ।

प्रश्न—मंडलकी रीति तौ प्राचीन मानी तथापि केई पुरुष तौ चांवलांको करै है अर केई पुरुष चूनको करै है अर केई पुरुष चंदन आदि सुगंधित द्रव्यनिको करै है, सो आगमतै कैसै योग्य है ?

उत्तर—आदिपुराणका अड़तीसमा पर्वमैं स्थानलाभक्रियाका वरननकै विषै, श्लोक—

श्लक्ष्णेन पिष्टचूर्णेन सलिलालोडितेन वा ।
वर्त्तनं मंडलस्येष्टं चंदनादिद्रवेण वा ॥ ३७ ॥

अर्थ—सूक्ष्म पीस्या शुष्क चूर्णकरि अथवा जलकरि पीस्या चून करि अथवा चंदन आदिका द्रव कहिये विलेपन योग्य द्रव्य करि मंडलको वर्त्तन कहिये बनायवो इष्ट है ॥ ३७ ॥

प्रश्न—पूजनका विधान कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब पूजकका भी लक्षण कहौ ।

उत्तर—आर्षग्रंथनिमै कहूं भिन्नपणै तौ लक्षण हमारी दृष्टिमै आये नही अर जहां तहां पूजन च्यारूं ही वर्णके मनुष्यनिका तथा च्यारूं ही निकायके देवनिका द्रव्यरूप तथा भावरूप तथा सर्व ही तिर्यंचनिका भावरूप तथा द्रव्यरूप पूजन स्तवन समवसरणमैं तथा कृत्रिम अकृत्रिम जिनमंदिरनिमै करना लिखै है तातै श्रीजिनेद्रके पूजक सर्व ही हैं तथापि स्पर्श करनेका शूद्रकूं अधिकार वर्त्तमान देशकालमै नहीं है सो ही योग्य दीखै है अर और आधुनिक ग्रंथकार भिन्न लक्षण भी लिखै है, सो पूजासारमैं,—

पूजकः पूजकाचार्य इति द्वेधा स पूजकः ।
आद्यो नित्यार्चकोऽन्यस्तु प्रतिष्ठादिविधायकः ॥१६॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽऽद्यः सुशीलवान्
दृढव्रतो दृढाचारः सत्यशौचसमन्वितः ॥ १७ ॥

कुलेन जात्या संशुद्धो मित्रबंध्वादिभिः शुचिः ।
गुरूपदिष्टमंत्राढ्यः प्राणिबाधादिदूरगः ॥ १८ ॥
द्वितीयस्योच्यते ऽस्माभिर्लक्षणं सर्वसंपदः ।
लक्षितं त्रिजगन्नाथवचोमुकुरमंडले ॥ १९ ॥
कुलीनो लक्षणोद्भासी जिनागमविशारदः ।
सम्यग्दर्शनसम्पन्नो देशसंयमभूषितः ॥ २० ॥

अर्थ—सो जिनेन्द्रका पूजन करनेवारा दोय भेदरूप है, एक पूजक दूसरा पूजकाचार्य, तिनमैं आदिको पूजक जो है सो तौ नित्य पूजनकरनेवारो है अर दूसरो जो है सो प्रतिष्ठादिक विधानको करावनेवारो है ॥ १६ ॥ तहां भलै प्रकार शीलवान होय अर दृढव्रत कहिये लिया व्रतकू दृढपणै धारनेवारो होय अर दृढाचारः कहिये कुलकै तथा देशकै योग्य जिनागमकै अनुकूल आचारवान होय अर निर्दोष वचनरूप सत्य अर निर्लोभतारूप शौच जो है ताकरि संयुक्त होय अर कुलकरि तथा जातिकरि भलै प्रकार शुद्ध होय अर मित्र तथा बंधुजनकरि पवित्र होय अर गुरुनिकरि उपदेश दिया मंत्रकरि संयुक्त होय अर जीवहिंसातै दूरवर्त्ती होय ऐसो ब्राह्मण हौ अथवा क्षत्रिय हौ अथवा वैश्य हौ अथवा शूद्र हौ सो तौ आद्यका भेदरूप नित्य पूजक कहिये है । अर कुलीन कहिये उत्तमकुलवान होय अर प्रतिमा मंदिर सामग्री आदिका लक्षणको प्रकट करनेवारो होय अर जिनागमको भलै प्रकार जाननेवारो होय अर सम्यग्दर्शनकरि युक्त होय अर देशसंयम जो गृहस्थकै योग्य अणुव्रत तिनकरि भूषित होय सो दूसरा भेद रूप प्रतिष्ठादिविधान-

को करानेवारो सर्व संपदावान जो है ताको लक्षण तीन जगत्का नाथ सर्वज्ञ जे है तिनका वचनरूप काचका मंडलकै विषै देख्यो सो हम जे है तिनकरि कहिये है ॥ १७-१८-१९-२० ॥

इहां इतनी और विचारनेकी है कि यामैं शूद्र भी पूजक लिखे हैं सो सामान्यपणै पूजक है परंतु अभिषेकपूर्वक स्पर्शन करना संभवै नहीं क्योंकि जिनपूजन अतिथिसंविभागमैं है अर यत्याचारमैं शूद्रका घरका आहार लेनेका मुनीश्वरनिकूं निषेध किया है तातैं शूद्र जो है सो अग्रभागमैं खड़ा रहि द्रव्य अर्पण तौ करै अर स्पर्शकरि पूजन तौ करै नहीं यां ही वर्त्तमान क्षेत्र कालमैं प्रवृत्ति है, सो ही योग्य है।

तथा प्रतिष्ठापाठ वसुनन्दिजीकृतमैं—

नत्वा तावत्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाचार्यलक्षणम् ।
तस्योपदेशतो यस्मात्क्रियाकांडप्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—नत्वा कहिये प्रतिष्ठाचार्यसमूहकूं विनै प्रथम ही प्रतिष्ठाचार्यका लक्षण कहैंगे क्योंकि ताके उपदेशतैं प्रतिष्ठामैं समस्त कर्मका प्रवर्त्तन होय है।

कुलीनो जातिसम्पन्नः कुत्साहीनः सुदेशजः ।
कल्याणांगो रुजाहीनः प्रसन्नोऽविकलेंद्रियः ॥७॥
शुभलक्षणसम्पन्नः सौम्यरूपः सुदर्शनः ।
विप्रो वा क्षत्रियो वैश्यो विकर्मकरणोज्झितः ॥८॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा सम्यग्दृष्टिर्जितेन्द्रियः ।
निःकषायः प्रशांतात्मा वेश्यादिव्यसनोज्झितः ॥९॥

श्रद्धालुर्भक्तिसम्पन्नः कृतज्ञो विनयान्वितः।
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमन्वितः॥ १० ॥
जिनवन्दनकर्मादिष्वनुष्ठानपरः शुचिः।
श्रावकाध्ययने दक्षः प्रतिष्ठाविधिवत्सुधीः॥ ११ ॥
महापुराणशास्त्रज्ञो वास्तुविद्याविशारदः।
एवंगुणो महासत्वः प्रतिष्ठाचार्य इष्यते॥ १२ ॥

अर्थ—कुलीन कहिये उत्तम कुलवान होय, अर जाति-संपन्नः कहिये उत्तम मातृपितृपक्षरूप जातिकरि संपन्न होय, अर कुत्साहीन कहिये लोकनिंदाकरि रहित होय, अर सुदेशज कहिये आर्यक्षेत्रमै उत्पन्न भयो होय, अर कल्याणाग कहिये मनोहर अंगको धारी होय हीनाधिक अंगकरि रहित होय, अर रुजा-हीन कहिये कुष्ट आदि रोगनिकरि रहित नीरोग होय अर प्रसन्न कहिये क्रोध मानकरि रहित प्रसन्न होय, अर अविकलेंद्रिय कहिये इंद्रियनिकी शिथिलतारहित होय॥ ७ ॥ अर शुभलक्षणसपन्न कहिये सुन्दर लक्षणकरि सयुक्त होय अर सौम्यरूप कहिये वक्रतारहित शातरूप होय अर सुदर्शन कहिये जाको सुन्दर दर्शन होय ऐसो ब्राह्मण होय अथवा क्षत्रिय होय वा वैश्य होय अर विकर्मकरणो-ज्झित कहिये कुकार्यके करणेकरि रहित उत्तमकार्यको कर्त्ता होय॥ ८ ॥ सम्यग्दृष्टी होय जितेंद्रिय होय निःकषायी होय अर प्रशातात्मा होय अर वेश्यादि सप्त व्यसनकरि रहित होय॥ ९ ॥ श्रद्धावान होय भक्तिसयुक्त होय कृतज्ञ होय विनयवान होय व्रत शील तप दान जिनपूजाको कर्त्ता होय पवित्र होय श्रावकाध्ययन विषै चतुर होय अर प्रतिष्ठाकी विधिको जाननवारो होय अर सुबुद्धी

होय ।।१०-११।। महापुराण आदि शास्त्रको ज्ञाता होय अर वास्तुविद्या जो मंदिर आदि करावनेके ग्रंथ तिनके जाननेमैं प्रवीण होय। या प्रकार गुणनिको धारक महापराक्रमी ब्राह्मण होय वा क्षत्रिय होय वा वैश्य होय इनि तीन उत्तम कुलनिमैं उत्पन्न भयो ब्रह्मचारी होय वा गृहस्थ होय सो प्रतिष्ठाचार्य इष्ट करिये है।। १२।।

ये ही लक्षण प्रतिष्ठाचार्यके आशाधरजीनै भी प्रतिष्ठापाठमैं लिखे हैं।

प्रश्न—इन वचननितै तौ प्रतिष्ठाचार्य गृहस्थ है अर भेषीजन गृहस्थनिके करानेका निषेध कहैं हैं, सो कैसैं है ?

उत्तर—वर्त्तमानमैं जो आधुनिक प्रतिष्ठाकेग्रंथ मिलेहै जिनका वचन तौ तुमै सुनाये ही तिनहीमैं जो भेषीनिका नाम नही है तौ आर्ष ग्रंथनिमैं भेषीनिका नाम होना संभवै ही नही, अर जिनके करावनेका निषेध याहीमैं लिख्या है सो और सुनौ;—

लिंगिपाषंडिपुत्रो वा भ्रष्टलिंगी कलंकवान् ।
गीतवाद्योपजीवी च भांडो वैतालिको नटः ॥१३॥
उन्मत्तो वा ग्रहग्रस्तो भोजने पंक्तिवर्जितः ।
शास्त्रज्ञः कुलजातो वा वर्जनीयस्तथाविधः ॥१४॥

अर्थ—'लिंगिपाषंडि पुत्रो वा' कहिये जिनागममैं कहे जे तीन लिंग तिनितै बाह्य स्वइच्छा लिंगके धारक होय सो लिंगिपाषंडि कहिये अर तिनके पुत्र होय कि भेषधारीको पुत्र होय अथवा शिष्य होय अर भ्रष्टलिंगी कहिये मुनिलिंगका धारणकरि भ्रष्ट भये होय अर कलंकवान कहिये पंच पाप रूप कलंककरि युक्त होय अर गीतवाद्योपजीवी कहिये गानविद्याकरि अथवा वादित्रविद्याकरि जीविका करनेवारो होय अर भांड कहिये अयोग्य क्रियाको कर्त्ता

होय तथा अयोग्य वचनको वक्ता होय अर वैतालिक कहिये भूत विद्या मंत्र यंत्र तंत्रादिकको कर्त्ता होय अर नट कहिये नृत्य कर्मको कर्त्ता होय ॥ १३ ॥ उन्मत्त होय अथवा पिशाच आदि ग्रसित होय तथा भोजनकै विषै पंक्तिग्राह्य होय ऐसो होय सो शास्त्रको ज्ञाता होय अर कुलवान होय तौहू प्रतिष्ठादि महान विधानकै विषै वर्जनीक है ॥ १४ ॥

प्रश्न—केई पुरुष कहै है कि प्राचीनमार्गमै तौ जिनपूजन केवल मंत्रनितै ही है काव्य छंद संस्कृत प्राकृतदेशभाषामय है सो मार्ग आधुनिक है।

उत्तर—मंत्र तौ सर्वही पूजनपाठमै है बिना मंत्र तौ कोऊ पाठ है ही नहीं अर काव्य छंद है सो द्रव्यका तथा पूज्यका तथा पूजकके भावनिका सत्यार्थ स्वरूप दिखावनेकूं है सो सर्व ही प्राचीन-पद्मनंदिपंचविंशतिकामै तथा महापुराणमै तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचार-मै दिगंबर आचार्यनिनै जहां तहां लिख्या है तातै काव्य छंदनिका उच्चारणपूर्वक पंचपरमेष्ठीवाचक मंत्र पढि उत्तम द्रव्य चढ़ाना योग्य है सो ही सर्वकै मान्य प्रवृत्ति अद्यापि विद्यमान है। अर द्रव्यनिकी प्रशंसा करना है सो प्रस्तावनविधि है सो महापुराणमै जन्माभिषेकवर्णनमै इंद्रका करना लिख्या ही है तातै केवल मंत्रनितै ही पूजन कहनेवारेकूं हठग्राही जानना।

प्रश्न—केई पुरुष वादित्रनिसहित गान नृत्यपूर्वक पूजन करै है सो योग्य है कि नाहीं?

उत्तर—सिद्धान्तसारमै, श्लोक—

नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम्।
जिनेंद्रदिव्यबिंबानां गीतनृत्यस्तवैः सह ॥ ७१ ॥

अर्थ—देवेन्द्र जे है ते विभूतिकरि समस्त विघ्नको हरता महान शुभरूप जिनेद्रके दिव्य बिंबनिको पूजन गीत नृत्य स्तवनकरि सहित निरंतर अतिशयरूप करै है ॥ ७१ ॥

इत्यादि अनेक स्थलमैं तथा पूजनके पाठमैं जहां तहां लिखे हैं तातै योग्य हैं।

प्रश्न—शरद पून्यूंका तथा दीपमालिकाका उत्सव जिनमंदिरमै करना योग्य है कि नाहीं ?

उत्तर—शरदऋतुका उत्सव राजनिकै योग्य है वीतरागके मंदिरमै करनेका चरणानुयोगरूप तथा प्रथमानुयोगरूप आर्ष ग्रंथनिमै कहूं हुकम नाही तातै उन्मार्ग ही है अर दीपमालिकाको भी हुकम नाहीं तातै ये भी उन्मार्ग ही है।

प्रश्न—तुमतौ उन्मार्ग कहौ हौ अर केई पुरुष कहै है कि महावीरस्वामीका निर्वाणको उत्सव देवनिनै रात्रिमै आय कियो है तहां दीपमालिका करी है ता दिनतै दीपमालिका प्रसिद्ध है।

उत्तर—प्रथम तौ देवनिके कृत्य सर्व तीर्थंकरनिके कल्याणमैं समान है सो तेईस तीर्थंकरनिका निर्वाणनिमै तौ दूसरा देव आय दीपोत्सव नहीं कियो, अर चौवीसवांके समयमैं ही कहौ तौ महापुराणसंबधी महावीरपुराणमे तथा सकलकीर्त्तिजीकृत महावीरपुराणमे तौ लिख्यो नाही तातै ही अपनी सप्रदायमैं कोऊ जिनमंदिरमैं तथा गृहस्थनिके घरनिमैं निर्वाणदिनके सध्यासमयमैं दीपोत्सव करनेकी मर्यादा भी अद्यापि नहीं है, अर कार्त्तिककृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमैं अरुणोदय पहली नक्षत्रनिकी प्रत्यक्ष होत संतै महावीरस्वामीका निर्वाण भया है तातैं वा समय पूजन उत्सव करियेहै बहुरि वाही दिन दीपोत्सव करनेकूं संध्यासमय श्रावकजन जिनमंदिरमैं सामिल होय जाते नाहीं अर अमावास्याकी रात्रिमैं सर्व ही

ग्राममैं दीपमालिका होय है सो वैष्णव आम्नायमैं वा दिन अर्धरात्रिमैं लक्ष्मीको आगमन नगरमैं लिखै है ता निमित्त गृहका धोवना चित्रित करना दीपक जोवना उज्वल वस्त्र पहरना उत्तम भोजन करना सर्व जन करते है सो अन्यमतीनिकै योग्य है अपनै तौ राज आज्ञातै करै है ॥

प्रश्न--सूतककी आगममैं कहा आज्ञा है ?

उत्तर--सामान्य वचन तौ सूतकके माननेका आर्षग्रंथनिमैं है, मूलाचारका समयसार अधिकारमैं, गाथा--

ववहारसोहणाए परमट्ठविसोहणाय परिहरउ ।
दुविहा चावि दुगुंछा लोइय लोगुत्तरा चेव ॥ ५७ ॥
व्यवहारशोधनाय परमार्थविशोधनाय परिहरणीया ।
द्विविधा चापि जुगुप्सा लौकिकी लोकोत्तरा चैव ॥५७॥

अर्थ--व्यवहारका शोधनकै अर्थि तथा परमार्थका शोधनकै अर्थि लौकिकी अर लोकोत्तरा दोऊ हा जुगुप्सा जो है सो त्यागवे योग्य है ॥ ५७ ॥

टीका--**जुगुप्सा गर्हा द्विविधा द्विप्रकारा, लौकिकी लोकोत्तरा च । लोकव्यवहारशोधनार्थं सूतकादिनिवारणाय लौकिकी जुगुप्सा परिहरणीया तथा परमार्थशोधनार्थं रत्नत्रयशुद्ध्यर्थं लोकोत्तरा च कार्येति ॥ ५७ ॥**

अर्थ--जुगुप्सा गर्हा ग्लानि ये तीनो शब्द एक अर्थवाची है सो ग्लानि दोय प्रकार है, एक लौकिकी दूसरी अलौकिकी । तिनमैं

लोकव्यवहारका शोधनकै निमित्त सूतकादिकका निवारणनिमित्त लौकिकी ग्लानि त्यागबे योग्य है अर तैसै ही परमार्थका शोधनकै अर्थि रत्नत्रयकी शुद्धिकै निमित्त लोकोत्तरा शुद्धि भी करिबे योग्य है। अर इहां ग्लानिका त्याग करना कह्या ताका अभिप्राय ऐसा जानना कि जैसे लोकव्यवहारमें तथा परमार्थमें ग्लानि नहीं उपजै तैसै प्रवर्त्तन करना याहीतैं लोकमैं सूतकादिके त्याज्य दिन जे है तिनमैं स्वाध्याय पूजन नहीं करते है सो भी धर्मका ही विनयनिमित्त ग्लानिरूप दिनका त्याग है। इहां आधारका आधेयमैं उपचार करि ग्लानिका त्यागना कह्या है। अर परमार्थमैं शकादिकका त्याग करना है सो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका शुद्ध करना है तातैं दोऊ ही ग्लानि त्याग करने योग्य है॥

तथा पिंडशुद्ध्यधिकारमैं दीपकदोष कथनकी गाथा—

सूदी सोंडी रोगी मदय णपुंसय पिसाय णगजीवा।
उच्चारपडिदवतरुधिरवेसीरूमणी अंगमक्खीय॥
सूती शौंडी रोगी मृतकनपुंसकपिशाचनग्नजीवाः।
उच्चारपतितवांतरुधिरवेश्याश्रमण्यंगम्रक्षिण्यः॥१॥

टीका—**सूती या बालं प्रसाधयति, शौंडी मद्यपानलंपटः, रोगी व्याधिग्रस्तः, मृतकं श्मशाने प्रक्षिप्याऽऽगतो यः मृतक इत्युच्यते, मृतकसूतकेन यो जुष्टः सोऽपि मृतक इत्युच्यते, णपुंसय न स्त्री न पुमान् नपुंसकमिति जानीहि, पिशाचो वाताद्युपहतः, नग्नःपटाद्यावरणरहितो गृहस्थः, उच्चारमूत्रा-**

दीन् कृत्वा य आगतः स उच्चार इत्युच्यते, पतितो मूर्च्छां गतः, वांतः छर्दिं कृत्वा य आगतः, रुधिरं रुधिरसहितः, वेश्या दासी, श्रमणिकाऽऽर्यिका, अथ वा पंचश्रमणिका रक्तपटिकादयः, अंगम्रक्षिका अंगाभ्यंगनकारिणी॥ ४९ ॥

अर्थ—सूती कहिये बालकक्रूं चुखावती होय, सौंडी कहिये मद्यपान भांगि वगैरे मदके वस्तु खानपानमैं लंपटी होय, रोगी कहिये व्याधिकरि पीडित होय, मृतक कहिये जो श्मशानमैं मृतकक्रू देपि करि आया होय सो मृतक कहिये अथवा मृतकका सूतककरि युक्त होय सो मृतक कहिये. अर नपुसक होय, अर पिशाच कहिये उन्माद व्याय करि पीडित उन्मत्त होय, अर नग्न कहिये वस्त्रादिकका आवरण करि रहित गृहस्थ होय, अर उच्चार कहिये मूत्र पुरीप आदि करिकै जो आयो होय, अर पतित कहिये मूर्च्छानैं प्राप्त भयो होय अर वांत कहिये जो वमनकरि आयो होय, अर रुधिरं कहिये रुधिरसहित होय, वेश्या कहिये वेश्या, दासी, अर श्रमणिका अथवा पंच श्रमणिका रक्तपटकादिक अर अंगम्रक्षिका कहिये उपटनूं तैल आदि करि अंगमर्दन करनेवारी होय ॥

या वचनतैं इनके करतैं रचित आहारक्रूं साधु ग्रहण नहीं करै है ताहीतैं जिनेंद्रका अभिषेक पूजन भी इनक्रूं करना योग्य नहीं है क्योंक जिनपूजन भी अतिथिसंविभागमैं लिखै है, अर देव गुरु सिद्धांतका विनय समान है यातैं। अर इहां इस विषयका काल-प्रमाण जनावनेवारा आर्ष वचन तौ हमनैं पाया नाहीं अर मूलमैं सूतकका मानना ऐसा वचन है तातैं यावत्काल आर्ष वचन नहीं

मिलै तावत्काल जो वचन मिलै है सो ही मानने योग है, तातैं प्रसिद्ध; श्लोक—

सूतकं वृद्धिहानिभ्यां दिनानि दश द्वादश ।
प्रसूतिस्थानमासैकं दिनानि पंच गोत्रिणाम् ॥१॥

अर्थ—वृद्धिकरि अर हानिकरि सूतक जो है सो दश दिन अर बारा दिनको है। भावार्थ—जन्मका सूतक तौ दश दिनका है अर मृत्युका सूतक द्वादश दिनका है। बहुरि प्रसूतिका स्थान एक मास पर्यंत सूतकयुक्त जानना अर गोत्रके मनुष्यनिकै पंच दिनका सूतक जानना ॥ १ ॥

अबै इनिकी विशेष व्यक्ति दिखाइयेहै;—

प्रव्रजिते मृते बाले देशांतरे मृते रणे ।
सन्यासे मरणे चैव दिनैकं सूतकं भवेत् ॥ २ ॥

अर्थ—अपना कुलको दीक्षित भयो कि उत्कृष्ट क्षुल्लक पद धार्‍यो अथवा मुनिपद धार्‍यो ताको मरण हातसंतैं तथा बालकको मरण होतसंतैं तथा देशान्तरमै मरण होतसंतैं तथा संग्राममैं मरण होत संतैं तथा सन्यासमै मरण होत संतैं एक दिनको सूतक होय है। भावार्थ—जो गृह त्यागि दीक्षित भयो ताका मरणमै अर सात आठ महीना तांईका बालकका मरणपै सूतक एक दिनको है ॥

प्रश्न—सात आठ महीनेका प्रमाण या श्लोकमै तौ है नहीं, तुम कहांसैं लिखो हौ ?

उत्तर—बालक संज्ञा कहूं तौ योग्य अयोग्य शब्दका विचार-रहितकूं कहैहै अर कहू अष्ट वर्ष पर्यंतकूं बालक कहैहै अर कहूं स्तनपान करतेकूं बालक कहै है तथापि इहां हमारे ज्ञानमै यावत्

अन्नभक्षण नहीं करै केवल स्तनपानहीतैं जीवै तावत् काल बालक-संज्ञा है सो अन्नप्राशनक्रिया महापुराणमैं सातवां मासमैं तथा आठवां मासमैं करना कह्या है, सो ही श्लोक—

गते मासपृथक्त्वे च जन्मादस्य यथाक्रमम् ।
अन्नप्राशनमाम्नातं पूजाविधिपुरःसरम् ॥ ९५ ॥

अर्थ—जन्मका दिनतैं सातवा मासनै अथवा आठवा मासनै प्राप्त होता सता जिनेन्द्रदेवकी पूजाविधिपूर्वक अन्नप्राशनक्रिया कही है। भावार्थ—इस श्लोकमैं पृथक्त्व शब्द है सो सिद्धांतमैं तीनकै उपरांति नव पर्यन्तका वाचक कह्या है तातैं इहां सात आठ मास ग्रहण किया है। अर जो अपना संबधीका देशान्तरमैं मरण भया अर द्वादश दिन उपरांति सुण्या तौ वाका सुणै जाकै एक दिनका ही सूतक है अर संग्राममैं तथा सन्यासमैं मरण करै ताका भी एक भी दिनका सूतक है। भावार्थ—द्वादश दिनमाहि सुणै तदि तौ द्वादश-की घटतीका दिन जानना अर द्वादश दिन उपरांति सुणै तदि एक दिन जानना।

अब पीढ़ याका भेदतैं सूतकमैं भेद दिखावै है,—

चतुर्थे दशरात्रिः स्यात् षटरात्रिः पुंसि पंचमे ।
षष्ठे चतुरहः शुद्धि सप्तमे च दिनत्रयम् ॥ ११ ॥
अष्टमे पुस्यंहोरात्रं नवमे प्रहरद्वयम् ।
दशमे स्नानमात्रंस्यादेतद्गोत्रस्य सूतकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पूर्वै कह्या जो मरणका द्वादश दिन सो तौ तीन पीढ़ी ताईं जानना अर चौथी पीढ़ीमैं दश रात्रि प्रमाण सूतक है अर पांचमी पीढ़ीमैं षट्रात्रि प्रमाण है अर छट्ठी पीढ़ीमैं च्यार दिन

उपरांति शुद्धि है अर सातमी पीढ़ीमैं तीन दिन सूतक है अर आठमी पीढ़ीमैं अहोरात्रिप्रमाण आठ प्रहरका सूतक है अर नवमी पीढ़ीमैं दोय प्रहर सूतक है अर दशमी पीढ़ीमै स्नानमात्रतै शुद्धि है। यो गोत्रको सूतक जानना ॥ ११-१२ ॥

यदि गर्भविपत्तिः स्यात् सूवणं चापि योषिताम् ।
यावन्मासस्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥ ६ ॥

अर्थ—बहुरि जो स्त्रीनिका गर्भका पात होय तथा स्राव होय तौ जितना मास गर्भ स्थित भयो तितना दिन प्रमाण सूतक जानना ॥ ६ ॥

पुत्रादिसूतके जाते गते द्वादशके दिने ।
जिनाभिषेकपूजाभ्यां पात्रदानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—पुत्र आदिका सूतकनै प्राप्त होत संतै द्वादश दिननैं व्यतीत होत संतै जिनेद्रका अभिषेक अर पूजन करि तथा पात्रदान-करि शुद्ध होय है॥ ४ ॥

अश्वी च महिषी चेटी गौः प्रसूता गृहांगणे ।
सूतकं दिनमेकं स्याद्गृहवाह्ये न सूतकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—घोड़ी भैंसि दासी गौ जो अपना गृहका आंगणांमे व्यावं तौ एक दिनको सूतक है अर गृहकै।बारैं अन्य गृहमैं व्यावै तौ सूतक नहीं है ॥ ३ ॥

सतीनां सूतकं हत्यापापं षण्मासकं भवेत् ।
अन्यासामात्महत्यानां यथापापं प्रकाशयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ—सती जे हैं तिनका आत्महत्याकरि पापरूप सूतक षट् मास प्रमाण है अर औरनिकी आत्महत्यानिको पाप यथायोग्य

प्रकाशे ॥ ९ ॥

दासी दासस्तथा कन्या जायते म्रियते यदि ।
त्रिरात्रं सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये तु दूषणम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जो दासी दासकै तथा कन्याकै प्रसूति होवै तथा मरै तौ तीन रात्रिको सतक है सो गृहकै मध्य हाय तौ दूषण है गृहकै वार होय तौ दूषण नहीं है ॥ ५ ॥

महिष्याः पाक्षिकं क्षीरं गोर्क्षीरं च दशोदितम् ।
अष्टमे दिवसेऽजायाः क्षीरं शुद्धं न चान्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—भैंसिको दुग्ध पनरा दिनमैं गौको दुग्ध दश दिनमैं छ्यालीको दुग्ध अष्टदिन उपरांति शुद्ध है या पहली शुद्ध नहीं है ॥ १० ॥

बहुरि तैसें ही त्रिवर्णाचारमैं लिखै है,—

जातदंतशिशोर्नाशे पित्रोर्दशाहसूतकम् ।
गर्भस्रावे तथा पाते विनष्टे च दिनत्रयम् ॥ १ ॥

अर्थ—उत्पन्न भये हैं दंत जिनकै ऐसा पुत्रका नाशनैं होता संता माता पिताकै दश दिनको सूतक है अर गर्भस्रावमैं तथा गर्भपातमैं तथा गर्भविनष्टमैं सूतक तीन दिनको है ॥

ये श्लोक हमारे सुननेमैं आये सो लिखे हैं अर और आधुनिक ग्रंथकार भी या प्रकरणकूं लिखै है परंतु सबंका मन समान नहीं है तातैं नीका समझि मुनासिब अनुभवमैं भासै सो अंगीकार करियो ।

प्रश्न—केई पुरुष रात्रिविषै पूजन करै है अर केई पुरुष निषेध करै हैं, सो कैसें है ?

उत्तर—पूजन करना जहां तहां त्रिकालमैं लिखै है सो पूर्वाह्न

है कहा ? कदाचित् ही योग्य नहीं है ॥ २५ ॥

यामें तौ सर्व शुभ कर्मनिका निषेधहै अर गृहस्थनिकै सर्व शुभकर्मनिमें प्रधान देवपूजन है तातै पूजनका निषेध है, अर गमनागमनक्रियाका त्याग लिख्या तातै भी पूजनकी सामग्री जल आदि एकत्र करनेका निषेध स्वयमेव ही भया तदि पूजनका निषेध तौ सहज ही सिद्ध भया। अर तुमनै कहा कि पूजन विना अन्य गृहस्थाश्रमके कार्यनिका निषेध भलां हो कहौ, सो ऐसा कहना भी योग्य नाहीं क्योंकि गृहस्थनिकूं विवाह आदिमै रागप्रधान शुभकर्म तौ रात्रिमें करने हा पडै हैं अर इहां उनके निषेधका प्रयोजन भी नाहीं इहां तौ परम पुण्य उपार्जन करनेका अर पापतै छुड़ावनेका उपदेश है तातै जामै अधिक पाप होय सो कार्य करना योग्य नाहीं।

प्रश्न—पूजन सिवाय अधिक पुण्य गृहस्थकै नहीं है तातै पूजनजनित पुण्यतै रात्रिसमयमै भया आरंभजनित पाप किंचित् होयगा सो भी नाशकूं प्राप्त हो जायगा।

उत्तर—ऐसा जिनागमका हुकम नहीं है कि जहां प्रत्यक्षमै हिंसा होती होय तहां भी पुण्य मानना। पूजनके प्रकरणमै यत्नाचाररूप प्रवर्त्तनकरि पुण्यबंध करना ऐसा हुकम है अर तुमनै कहा कि जिनपूजन सिवाय महान् पुण्यका कारण गृहस्थकै और नहीं है सो ऐसा भी एकांततै कहना योग्य नाहीं क्योंकि गृहस्थकै योग्य देवपूजादि षट्कर्म कहे हैं ते सर्व समान नहीं कहे हैं उत्तरोत्तर प्रधान हैं, इनिमैं ध्यान भी है सो ध्यान मुनीश्वरनिकै भी सर्वोत्तम कहै है तौ गृहस्थकै तौ सर्वोत्तम है ही, तातै पूजन तौ त्रिकालमै कह्या है तातै दिनमैं ही करवो योग्य है अर रात्रिमै अपनी शक्तिप्रमाण धर्मध्यान करवो योग्य है।

प्रश्न—ये कहा सो तौ सत्य है परंतु महापुराणमै श्रीमती

वज्रजंघ विवाहके अंतमै जिनमंदिर रात्रिसमय चिराकांके चांदणै जाय पूजन कीया लिख्या है, सो कैसे है?

उत्तर—ये वचन कथारूप है सो वा समय जैसा भया तैसा लिख्या है परंतु सर्व ही मनुष्य सर्व ही क्रिया आगमकै अनुकूल करै ऐसा नियम तौ नही है, चरणानुयोगरूप उपदेशवचन होय सो सत्य है, ऐसा तौ नियम है।

प्रश्न—ये भी तुमनै कहा सो सत्य है परंतु श्रीमती वज्रजंघ निकटभव्य हुते इनका करना अन्यथा नहीं मान्या जाय।

उत्तर—श्रीमती वज्रजंघकूं निकटभव्य कह्या सो तौ सत्य है परंतु निकटभव्य होनेतै ही उनकरि करी क्रिया सर्व ही प्रामाण्य नही होयगी क्योंकि वा समय श्रीमती वज्रजंघनै सम्यक्त्व ग्रहण नही किया था सो मिथ्यात्वी ही थे तातैं मिथ्यात्वीकी करी क्रिया बताय जामैं प्रत्यक्ष हिंसा प्रवर्तै अर आगमकी आज्ञा भंग होय ऐसा आग्रह करना तुमैं तौ योग्य नाही है।

प्रश्न—वा समय मिथ्यात्वी ही थे ऐसा निश्चय तुमार कैसे भया?

उत्तर—श्रीमती वज्रजंघका भव त्यागि उत्कृष्ट भोगभूमिमैं उत्पन्न भये तहां इनका ही पूर्व भवका मंत्री स्वयंबुद्ध जीव था सो दीक्षा धारण करि चारणऋद्धि पाय भोगभूमिमै जाय इनिकूं उपदेश देय सम्यक्त्व ग्रहण कराया, ऐसा कथन महापुराणका नवम पर्वमैं है;—

तद्गृहाणाऽऽद्य सम्यक्त्वं तल्लाभे काल एषते।
काललब्ध्या विना नाऽऽर्ये! तदुत्पत्तिरिहांगिनाम्॥२१५॥

अर्थ—हे आर्ये! तिहारै सम्यक्त्व ग्रहण कराने निमित्त हम आये

है तातैं या समय सम्यक्त्व ग्रहण करि, यो समय तिहारै सम्यक्त्वलाभको है क्योंकि इहाँ प्रणीनिकै काललब्धि बिना सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं है ॥ २१५ ॥

या वचनतैं हमारै निश्चय भया कि जा समय रात्रिपूजन किया ता समय मिथ्यात्वी ही थे अर मिथ्यात्वीकी करी क्रियाकै प्रामाण्यता होजे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वीकूं उन्मत्तसमान कहै हैः—

सूत्र—सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।

अर्थ—सत्‌का अर असत्‌का अविशेषरूप इच्छापूर्वक ग्रहण हावातैं जो ज्ञान होय सो उन्मत्तकै समान है, अर उन्मत्तसमान विपर्ययज्ञानको धारक मिथ्यात्वी है तातैं ।

प्रश्न—सम्यक्त्व नहीं था तौ भी चतुर्थकालवर्त्ती महान् पुरुष तौ थे उनकी करी क्रियाकूं अप्रमाणभूत कैसै कहा हौ ?

उत्तर—प्रथम तौ जहां मिथ्यात्वीपणा सिद्ध भया तहां सर्व वाकी क्रिया अप्रमाणभूत ही सिद्ध भई ता सिवाय चतुर्थकालवर्त्तीपणा कह्या तौ और सुनो कि—चतुर्थकालकी आदिमै ही श्री ऋषभदेवकूं केवलज्ञानसंयुक्त विराजमान होतै सतै उनहीका पौत्र मारीचनामा भया तानै सांख्यशास्त्र तन्त्रशास्त्र अर कपिलशास्त्र ये तीनूं स्थापन किये सो अद्यापि विद्यमान है । सो ही आदिपुराणका अठारमा पर्वमै,—

मरीचिश्च गुरोर्नसा परिव्राड् भूमौ स्थितः ।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धांतभाषितैः ॥ ६० ॥

अर्थ—गुरु जे ऋषभदेव तिनको पौत्र परिव्राजक होय तिष्ठत भयो अर सिद्धांतविरुद्ध सांख्यशास्त्रादिकरि मिथ्यात्वकी वृद्धि करत भयो ॥ ६० ॥

तदुपज्ञमभूद्योगशास्त्रं तंत्रं च कापिलम् ।
येनाऽयं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपरांमुखः ॥८१॥

अर्थ—या मरीचिकरि कह्या योगशास्त्र तंत्रशास्त्र कपिलशास्त्र होत भये तिनिकरि यो सम्यग्ज्ञानपरांमुख लोक मोहित भयो ॥८१॥

अर वाही समय तद्भवमोक्षगामी चरमशरीरी क्षायिकसम्यग्दृष्टी भरतनामा चक्रवर्त्ती भया तानैं भाई बाहुबलिके ऊपरि वाके घात करणेका संकल्पकरि चक्र चलाया अर बाहुबलिनै भरतका मानभंग कीया, अर रामचंद्रनै केवल स्त्रीके निमित्त महानिर्लज्ज कायरपणाके वचन जहां तहां उच्चारण कीये, अर युधिष्ठिर आदि पांचूं पांडव द्यूतकर्मकरि अपने राज्यतैं भ्रष्ट भये तेभी स्वर्गमोक्षके गामी थे ऐसै चतुर्थकालवर्त्ती सम्यग्दृष्टी तथा मिथ्यादृष्टीनिनैं अनेक क्रिया स्वइच्छापूर्वक करी है तिनका अवलंबनरूप छल ग्रहण करि भोले जीवनिकूं रात्रिविषैं पूजन करनेका झूठा आगम सुणाय रात्रिपूजन स्थापन करना योग्य नाहीं ।

प्रश्न—और तौ सर्व निर्णय भया तथापि केई हठग्राही इहां भी कहैंगे कि तुमनै जिन पुरुषनिका उदाहरण कह्या सो तौ भरतक्षेत्रमैं हुंडावसर्पिणीकालसंबंधीहैं अर श्रीमती वज्रजंघ विदेहक्षेत्रसंबंधी है तातैं उदाहरणकै समानता नहीं है।

उत्तर—प्रथम तौ विदेहक्षेत्रमैं कर्मभूमि है तातैं वहांके उत्पन्न भये जीव पांचूंही गतिमैं उपजै हैं तातैं वहांके जीवनिकी क्रिया योग्यरूप तथा अयोग्यरूप सर्व ही प्रकारकी सिद्धि होय है। दूसरां जयकुमार सुलोचनाके पूर्वभवमैं भीमनामा चोरके जीवनैं तीन भव तक वाही विदेहक्षेत्रमैं उकनरपयो वैर धारण करि जयकुमार सुलोचनाके जीवकूं मारे अर मुनि अर्जिकानिकूं एक चितामैं धरि भस्म कीये। तीसरां महाबलिकै च्यार मंत्री थे तिनिमैं तीन मंत्रीनिनैं

तौ सर्वथा एकांत मिथ्यात्व दृढ़ करनेकूं अनेक कुयुक्तिपूर्वक दृष्टांत कहे अर एक स्वयंबुधनामा सम्यग्दृष्टी मंत्री महाबलिनैं अनेकांतरूप सत्यार्थ उपदेश देय अष्टाह्निकापूजनपूर्वक बाईस दिनका संन्यास ग्रहण कराय स्वर्गकूं प्राप्त कीया, अर उन तीन मंत्रीनिमैं एक मंत्री तौ महामिथ्यात्वके दृढ़पणातैं निगोदकूं प्राप्त भया अर दोय मंत्री नरक गये तातैं कालकी अर क्षेत्रकी अपेक्षातैं अधमक्रियाकूं सुनाय आगानैं वाही अधमक्रियाका स्थापन करना अनंतसंसारका कारण है तातैं आगमकै अनुकूळ चरणानुयोगरूप वचन संप्रदायतैं अविरुद्ध होय सो मानबो योग्य है। यातैं पूजन दिवसमैं ही करना योग्य है।

प्रश्न—निर्माल्य किसकूं कहते हैं अर वाके ग्रहण करनेका कहा फल है ? सो कहो।

उत्तर—दशाध्यायी सूत्रमैं;—

विघ्नकरणमन्तरायस्य।

अर्थ—विघ्नका करना अन्तरायका आस्रव है।

वार्त्तिक—**दानादिविहननं विघ्नम्।**

अर्थ—दानादिक पूर्वैं कहे है कि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य इनका जो विहनन कहिये विशेषकरि घात करना सो विघ्न कहिये है।

वार्त्तिक—**घञर्थे कविधानम्।**

अर्थ—घञ् अर्थकै विषैं 'क' प्रत्ययका विधान है।

धारा—**स्थास्नापाव्यधिहनियुध्यर्थमिति कविधिः विघ्नस्य करणं विघ्नकरणं अन्तरायस्यास्रव इति संक्षेपः। तद्विस्तारस्तु विव्रियते—ज्ञानप्रतिषेध**

सत्कारोपघातदानलाभभोगोपभोगवीर्यस्नानानुले-पनगंधमाल्याच्छादनविभूषणशयनासनभक्ष्यभो-ज्यपेयलेह्यपरिभोगविघ्नकरणविभवसमृद्धिविस्मय-द्रव्यापरित्यागद्रव्यासंप्रयोगसमर्थनाप्रमादात्रर्णवा-ददेवतानिवेद्यानिवेद्यग्रहणनिरवद्योपकरणपरित्याग-परवीर्यापहरणधर्मव्यवच्छेदनकुशलाचरणतपस्वि-गुरुचैत्यपूजाव्याघातप्रव्रजितकृपणदीनानाथवस्तु-पात्रप्रतिश्रयप्रतिषेधक्रियापरनिरोधवंधनगुह्यांगछेद-नकर्णनासिकौष्ठकर्त्तनप्राणिवधादिः । अत्र चोद्यते सूत्रेऽनुपात्तः सर्वास्त्रवप्रपंचः कथमेवं गंतुं शक्यत इत्यभोच्यते ।

अर्थ--छाधातु, स्नाधातु, पाधातु, व्यध् धातु अर युद्धअर्थ वाची हन धातु इनिकूं क प्रत्ययको विधान है। इस सूत्रतैं वि उप-सर्गपूर्वक हन धातुको विघ्न ऐसो पद सिद्ध होय है, सो विघ्नको करवो सो विघ्नकरण अन्तरायको आस्रव है, ऐसा तौ संक्षेप अर्थ है। अर याका विस्तार वर्णन करिये है—ज्ञानका निषेध करना, सत्कारका घात करना, अर दान लाभ भोग उपभोग वीर्य स्नान अनुलेपन गंधमाल्य, इनिका आच्छादन करना कि रोकना, अर विभूषण शयन आसन भक्ष्य भोज्य पेय लेह्य परिभोग इनिका अंतराय करना, अर अन्यका विभव समृद्धि देखि आश्चर्य करना, अर द्रव्यका त्याग नहीं करना कि कृपणता राखना, अर द्रव्य उपार्जनकै निमित्त अयोग्य उपायका समर्थनमैं प्रमादरहितपणा अर

योग्य उपायका अवर्णवाद करना, अर देवताकै अर्थि निवेद्य कहिये अर्पण कीयो अर अनिवेद्य कहिये संकल्परूप कीयो जो द्रव्य ताको ग्रहण, भावार्थ—जो द्रव्य भगवतकै सन्मुख खड़ा रहि मंत्रपूर्वक अर्पण करै सा तौ निवेद्यनाम कहावे है सो निर्माल्य है सो तौ जिनमंदिरमैं उपकरण आदि सामग्रीमै तथा मरमति विछायत वगैरैमैंभी लगाणेके योग्य नहीं है, अर अर्पण करणेकै निमित्त जो द्रव्य मनमैं संकल्पकरि जिनमंदिरका भंडारमैं स्थापित कीयो अथवा अपना भंडारतै भिन्नकरि अन्य स्थानमै स्थापित कीयो सो द्रव्य अनिवेद्य कहिये है सो जिनमदिरके उपकरण वगैरैमै लगानेकै योग्य है, यो द्रव्य खाती सिलावट दरजी कारीगर चित्रकार पुस्तकके लिखनेवाले मंदिरकी चाकरी मुसद्दीरीकी अथवा चौकी पहराकी अथवा भुवारा देना उपकरणका मार्जन करना आदि करनेवालेनकूं देनेके योग्य है । या द्रव्यकूं बजाज तौ कपड़ा देकरि ग्रहण करैग, कसेरा वर्त्तन देकरि ग्रहण करैगा तैसै ही ऊपर लिखे ते अपने अंगकी मिहनत करिकै ग्रहण करेगे ते दूषित नहीहै क्योंकि ये द्रव्य निर्माल्य नही है, निर्माल्य तौ वो ही है जाकूं मन्त्रपूर्वक जिनेद्रकै सन्मुख अर्पण कीया ।

प्रश्न—केई मंद ज्ञानी अपने पासि जा द्रव्य है अर आप मंदिरमै जाय पीछा आया फिर उस द्रव्यकूं निर्माल्य मानि अपने कार्यमैं लेनेकूं निषेध करै है, सो कैस है ?

उत्तर—उनकूं ऐसै समझना चाहिये कि जो द्रव्य जिनमंदिरनिमित्त संकल्प करि अपने पासि राख्या अर जिनमदिरमै जाय वामैसूं कछू तौ चढ़ाया अर कछू मौजूद राख्या सो द्रव्य फेर भी चढानेकै ही योग्य है परंतु निर्माल्य नही है अर अपने काममै लेनेके योग्य भी नही है, अर जो याकूं भी निर्माल्य मानिये तौ जा

समय आप पूजन करनेके निमित्त सामग्री तयार करि सन्मुख धरि पूजनको प्रारंभ करै अर वामैंसै अनुक्रमतै अर्पण करै तहां अवशेष भी निर्माल्य हुई चाहिये सो वा अवशेषकूं निर्माल्य मानै तौ फेर उसका चढ़ाना कैसै संभवै तैसै ही मंदिरकै निमित्त संकल्प कीया द्रव्य अपणै पासि है ताकूं भी जानना, अर जा द्रव्यका मंदिरनिमित्त संकल्प ही नही किया सो द्रव्य मन्दिरमै जानेसै ही निर्माल्य नहीं होय है, अर वा द्रव्यकूं भी निर्माल्य मानिये तौ अपने वस्त्र आभूषण भी निर्माल्य मानि त्यागे चाहिये। या प्रकरणका तात्पर्य ऐसा समझना कि–जो मंत्रपूर्वक अर्पण कीया सो तौ निर्माल्य है अर मंदिरनिमित्त संकल्पित कीया सो मंदिरके खरचकै योग्य है, अर जाका संकल्प नहीं किया सो अपने योग्य है।

प्रश्न—ये कह्या सा तौ सत्य है परंतु जो पुरुष तीर्थयात्रानिमित्त वा प्रतिष्ठानिमित्त अपना द्रव्य संकल्पित कीया वामैसूं पूजननिमित्त दाननिमित्त संघकी रक्षानिमित्त अपना खानपाननिमित्त अथवा संघका जिमावणा वा सत्कार करना इत्यादिकमै वा द्रव्यमैंसूं लगाते हैं सो योग्य है कि नहीं?

उत्तर—जो मनुष्य भिन्न भिन्न तौ संकल्प करै नहीं अर अपने योग्य द्रव्य लेय चल्यो जाय ता प्रति तौ तुमारा प्रश्न पहूंचै ही नहीं, इहां सामान्यपणै ऐसा संकल्प करै है कि ये द्रव्य यात्रामै लगाऊंगा अथवा ये द्रव्य प्रतिष्ठामै लगाऊंगा तातै तुमारा प्रश्नकै अनुकूल सर्वकार्यमैं वा द्रव्यकूं लगावता संता दूषित नहीं है क्योंकि वै सर्व कार्य यात्राका यात्रामै है प्रतिष्ठाका प्रतिष्ठामै है। अर संकल्प कीये पीछै लोभदृष्टिकरि जी ती प्रकार वा संकल्पित द्रव्यमै सूं बचाय अपने भोगमैं लगावै वा पुत्र पौत्रादिकनिकै निमित्त लगावै तौ दूषित है। अर जो मनुष्य द्रव्यमैं भिन्न भिन्न

कल्पनाकरि जाय जो इतनो द्रव्य तौ पूजनमैं इतनो दानमैं इतनो खानपानमैं लगाऊंगो सो वा ही माफिक करै अर घाटि बादि करै सो अयोग्य है।

प्रश्न—जो द्रव्य देवकै अर्थि अर्पण कीया सो द्रव्य अति उत्तम है याकूं निर्माल्य बताय याका ग्रहणका निषेध करौ हौ, सो कैसे है?

उत्तर—जैनीमात्र तौ ऐसा प्रश्न करै नहीं क्योंकि आगममैं निषेध है। अर अन्यमती कहै तिनकूं ऐसा कहना कि जा देवकै अर्थि अर्पण कीया सो देव प्रत्यक्ष होय करि देवै तौ ग्रहण भी करै, अर जा देवकै निमित्त अर्पण कीया सो देव तौ देवै नहीं अर आप ही अर्पण करै अर आपही ग्रहण करै सो तौ प्रत्यक्ष विरुद्ध है, जैसे राजाकी भेट करै अर वै प्रसन्न होय बकसीस करै सो तौ ग्रहण भी करै अर वै तो बकसीस करै नहीं अर आप ही भेट करै अर आप ही ग्रहण करै सो तौ राजदंड योग्य होय है तातै निर्माल्यका ग्रहण करना योग्य नाहीं।

अर निर्दोष उपकरणनिका त्याग करना, अर अन्य जीवनिका वीर्य जो तो प्रकार बिगडै ऐसा उपाय करना, अर धर्मका आच्छादन करनेमैं प्रवीणता धारना, अर सुन्दर आचरणका तपस्वीनिका गुरूनिका जिनप्रतिमाका तथा पूजनका व्याघात करना, अर दीक्षित तथा कृपण तथा दीन तथा अनाथ जे है तिनका वस्तु पात्र अर प्रतिश्रय कहिये वस्तिका आदि स्थान इनिकै निषेधकी क्रिया करना अर परजीवनिकूं रोकना बांधना गुह्य अंगका छेदन करना अ कान नाक होठका काटना अर प्राणीनिकी हिंसा करना इत्यादिक अन्तरायकर्मके आस्रवनै कारण हैं।

इहां प्रतिमाका व्याघात आदि महान पापनिके मध्य निर्माल्य-कूं भी अंतरायका आश्रवनै कारण कह्या तातै अपना कल्याणका वांछक पुरुषनिकूं निर्माल्य सर्वथा त्यागबो योग्य है। सो ही अमृतचंद्रजी तत्त्वार्थसारमै लिखै है:—

"प्रमादाद्देवदत्तनैवेद्यग्रहणं यथा"।

अर्थ—जैसै देवताके निमित्त अर्पण किया नैवेद्यको प्रमादतै ग्रहण जो है सो अन्तरायकर्मका आस्रवनै कारण है॥

तथा कुंदकुंदस्वामी रयणसारमै लिखै है;—

जिणधारणइट्ठाजिणपूजातित्थवंदणविसेसधणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणदिट्ठं णरयगइदुक्खं ॥३२॥
पुत्तकलत्तविदूरो दारिद्दोपंगमूगवहिरंधो।
चंडालादिसुजादो पूजादाणादिदव्वहरो ॥ ३३ ॥

जिनधारणेष्टजिनपूजातीर्थवन्दनविशेषधनम्।
यःभुंक्ते सः भुंक्ते जिनदृष्टं नरकगतिदुःखम् ॥३२॥
पुत्रकलत्रविदूरः दरिद्रः पङ्गमूकवाधिरांधः।
चांडालादिषु जातः पूजादानादिद्रव्यहरः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनेंद्रकै निमित्त धारण किया पदार्थ अर जिनपूजा तीर्थवंदनादिकनिमित्त संकल्पित किया धन जो है ताहि जो भोगै है सो पुरुष जिनेंद्रका दिखाया नरकका दुःखनै भोगै है ॥ ३२ ॥ अर जो पूजा दान आदिका द्रव्य ग्रहण करै है सो पुत्र स्त्रीका वियोगनै दरिद्रतानै पंगुपणानै गूंगापणानै बहरापणानैं अंधपणानैं चांडाल आदिकुलमैं उत्पन्न हुवो संतो भोगवै है ॥ ३३ ॥

प्रश्न—धान्यके अंकुरनिकौ तथा डाभ दोभ शिरस्यूं आदि द्रव्यनिकूं केई पुरुष तौ भगवतकै अर्पण करै है अर केई पुरुष निषेध करै है, सो योग्यता कैसे है ?

उत्तर—भगवतका पूजन आर्षग्रंथनिमै तौ अष्टद्रव्यतैं ही लिखै है, सो सारचौवीसीमैं,—

कर्त्तव्या गृहिभिः पूजा जिनेन्द्राणां निरन्तरम् ।
जलाद्यष्टविधैर्द्रव्यैः शक्त्या भक्त्या सुखाकरा ॥६६॥

अर्थ—गृहस्थीनिकै निति प्रति सुखको करता जिनेद्रको पूजन यथाशक्ति भक्तिकरि जल आदि अष्ट प्रकारके द्रव्यनिकरि करबो योग्य है ॥

और जहां तहां ग्रंथनिमैं अष्ट द्रव्यका ही नाम है अर प्रवृत्ति भी अष्टद्रव्यनितै ही करनेकी है अर और द्रव्य कहते हैं सो अनुभवमैं भी योग्य नही भासै हैं अर प्रवृत्तिमै भी नहीं है तातैं योग्य नहीहै।

प्रश्न—महान् मंडल आदि उद्यापनमै सकलीकरण पुण्याह-वाचन शांतिधारा आदि क्रिया केई पुरुष तौ करै है अर केई पुरुष निषेध करै है, सो योग्यता कैसे है ?

उत्तर—इन क्रियानिका नाम आर्षग्रंथनिमैं तौ कहूं सुन्या नाहीं अर जिनका नाम नाही तिनका विधान कैसैं पावै ? अर जिनका विधान नहीं पावै सो उन्मार्ग नाम ही पावै, अर उन्मार्ग-नाम पावै सो सर्व अयोग्य कहावै हमारे ज्ञानमैं तौ ऐसा भासै है।

प्रश्न—केई पुरुष कहै है कि यज्ञ नाम अग्निमैं होम करनेही-का है, सामान्य पूजनका नही है।

उत्तर—ऐसा एकांतरूप श्रद्धान मति करो, यज्ञ नाम तौ सामा-न्यपणै पूजनको है, अर पूजनका विधान दोऊ ही प्रकारसैं है

क्योंकि उत्तरपुराणसंबंधी अभिनंदनपुराणमें केवल पूजनमें यज्ञ शब्द कह्यो है तहां अग्निकुंड ही नहीं है;—

सिते पौषे चतुर्दश्यां सायाह्ने भेऽस्य सप्तमे।

केवलागमो यज्ञो विश्वामरसमर्चितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—या अभिनंदन स्वामीकै पौषशुक्ल चतुर्दशीकै दिन संध्या-समय पुनर्वसुनक्षत्रकै विषै केवलज्ञान होत भयो, वा यज्ञकै विषै भगवान समस्त देवनिकरि पूजित होत भये॥ ५६ ॥

अब जिनमंदिर बनावनेका तथा जिनबिंब बनानेका तथा गृहस्थीके गृहमें चैत्यालय होनेका तथा जिनप्रतिष्ठा करानेका तथा जिनपूजन करनेका माहात्म्य लिखै है,—

सार चौवीसीका चतुर्थ अधिकारमैं;—

कुर्वन्ति ये जिनागारं विश्वजीवोपकारकम्।

बह्वाश्रयात्फलं तेषां प्रोक्तुं कोऽत्र क्षमो बुधः ॥५७॥

अर्थ—जे पुरुष समस्त जीवनिको उपकार करनेवारो जिन मंदिर बनावै है तिनको फल इहां बहुतनिका आश्रयतै कौन ज्ञान-वान कहनेकौं समर्थ है॥ ५७ ॥

चैत्यगेहं यथा कुर्वन् शिल्पी याति शनैः शनैः।

तदंतं यावदामोक्षं चैतत्कारापकस्तथा ॥ ५८ ॥

अर्थ—जैसै चैत्यगृहनैं करतो शिल्पी शनैं शनैं वाका अंतनै प्राप्त होय है तैसै या जिनमंदिरको करावनवारो श्रावक जो है सो मोक्षपर्यंत उच्च स्थाननिनै प्राप्त होय है॥ ५८ ॥

वसंति यत्र सागारास्तत्र स्याज्जिनमंदिरम्।

यत्र सोऽस्ति हि तिष्ठंति संयतास्तत्र धर्मदाः ॥५९॥

अर्थ—जा देशमैं जा ग्राममै श्रावक बसै हैं ता देशमै वा ग्राममै जिनमंदिर होत है, बहुरि जहां जिनमंदिर है तहां सर्व धर्मका दातार संयमी तिष्ठै है ॥ ५९ ॥

तैर्महान् वर्त्तते धर्मो धर्माच्छर्मपरंपरा ।
सतां तस्मात्परं श्रेयश्चैत्यगेहान्महच्च न ॥ ६० ॥

अर्थ—तिन संयमीनिकरि महान् धर्म प्रवर्त्तै है अर धर्मतै सुखकी परंपरा होय है तातै जिनमंदिरतै सिवाय और कल्याण नहीं है ॥ ६० ॥

पूजनैःस्तवनैर्गीतैर्नमस्कारैश्च नर्त्तनैः ।
स्नपनैर्भक्तिभिर्ध्यानैर्दर्शनैर्वाद्यवादनैः ॥६१॥
घंटोल्लोचादिधर्मोपकरणादिसमर्पणैः ।
जिनागारे सदा पुण्यमर्जयंति सुमेधसः ॥६२॥

अर्थ—जिनमंदिरकै विषै सुबुद्धी जीव जे हैं ते भक्तिकरि दर्शन करि नमस्कारकरि अभिषेक पूजनकरि स्तवनकरि बादत्रनिके बजावनेकरि गानकरि नृत्यकरि ध्यानकरि ॥ ६१ ॥ घंटा चंदवा आदि धर्मका उपकरण आदिका समर्पण करि सदाकाल पुण्य उपार्जन करै है ॥ ६२ ॥

कुर्वते जिनबिंबं ये नैकभव्यार्चितं महत् ।
तेषां पुण्यप्रमाणं न वेद्म्यतिकालपूजनात् ॥६३॥

अर्थ—जे पुरुष भव्यजीवनिकरि पूजनीक जिनबिंब करावै है तिनका महान पुण्यका प्रमाणनै हम नहीं जानै हैं क्योंकि जिनबिंब-निका अत्यंत दीर्घकालपर्यन्त पूजन होय है यातैं ॥ ६३ ॥

चतुर्विंशतितीर्थेशां ये कुर्युः प्रतिमां वराम् ।
लक्ष्मीं त्रिलोकजां लब्ध्वा ते भवंत्यत्र तत्समाः ॥६४॥

अर्थ—जे चतुर्विंशति तीर्थकरनिकी प्रतिमा करावै हैं ते पुरुष इहां उत्कृष्ट तीन लोकतै उत्पन्न भई लक्ष्मीनै पायकरि तीर्थकरनिकै समान होय है ॥ ६४ ॥

यत्रागारे जिनार्चाहो नास्ति पुण्यकरा नृणाम् ।
तद्गृहं धार्मिकैः प्रोक्तं पापदं पक्षिसन्निभम् ॥६५॥

अर्थ—जा गृहकै विषै मनुष्यनिकूं पुण्यकी करता जिनप्रतिमा नहीं है ता गृहनै धार्मिक पुरुष पापको दाता पक्षीनिका गृहकै समान कहै हैं ॥ ६५ ॥

जिनार्चाणां प्रतिष्ठां ये शक्त्या दध्युर्बुधोत्तमाः ।
प्रमाणं वेत्ति कस्तेषां महापुण्यस्य धर्मिणाम् ॥६६॥

अर्थ—जे ज्ञानवाननिमै उत्तम पुरुष जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठानैं रचै है तिन धर्मात्मानिका महान पुण्यको प्रमाण कौन जानै है ॥६६॥

प्रतिष्ठार्जितपुण्येन तीर्थनाथा भवंत्यहो ।
सद्दृष्टयो जगत्पूज्या विश्वभव्योपकारतः ॥६७॥

अर्थ—अहो कहिये बड़ा आश्चर्य है कि सम्यग्दृष्टी प्रतिष्ठातै उत्पन्न भया पुण्यकरि समस्त भव्यजीवनिका उपकार करवातैं जगतकै पूज्य तीर्थनाथ होय है ॥ ६७ ॥

न प्रतिष्ठा समं पुण्यं विद्यते गृहिणां क्वचित् ।
बह्वंग्युपार्जनाद्धर्मवर्द्धनाच्च महीतले ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रावकनिकै पृथ्वीतलकै विषै बहुत प्राणीनिकरि धर्मका

उत्पन्न करबातै अर वधायबातै प्रतिष्ठासमान और कोऊ पुण्य नहीं विद्यमान हैं ॥ ६८ ॥

कर्त्तव्या गृहिभिः पूजा जिनेन्द्राणां निरन्तरम् ।
जलाद्यष्टविधैर्द्रव्यैः शक्त्या भक्त्या सुखाकरा ॥ ६९ ॥

अर्थ—गृहस्थनिकरि सुखका कर्त्ता जिनेन्द्रका पूजन जलनै आदि लेय अष्टप्रकारके द्रव्यनिकरि शक्तिकरि भक्तिकरि निरन्तर करबो योग्य है ॥ ६९ ॥

नश्यंति पूजया सर्वविघ्नजालानि धीमताम् ।
क्षुद्रदेवारिभूपादिकृतानि दुःखदानि च ॥ ७० ॥

अर्थ—जिनेन्द्रकी पूजा करिकै बुद्धिवाननिकै क्षुद्रदेवनि करि वैरीनिकरि राजादिकनिकरि कीया दुःखका दाता समस्त विघ्नजाल जे है ते नाशनै प्राप्त होय हैं ॥ ७० ॥

जिनार्चनेन सर्वत्र लक्ष्मीर्लोकत्रयोद्भवा ।
धीमतां गृहदासीव वशं यात्यतिशर्मदा ॥ ७१ ॥

अर्थ—जिनेन्द्रका पूजनकरि या लोककै विषै तीन लोकतैं उपन्न भई सर्व लक्ष्मी बुद्धिवाननिकै गृहदासीकी नाई अत्यंत सुखकी दाता वशीभूत होय है ॥ ७१ ॥

इहां केई नास्तिक कहै है कि—केई मनुष्यनिकूं वहौत कालतैं जिनपूजन करते देखते हैं अर परम दरिद्री है तातै तुमने जो फल-स्तुति करी सो अन्यथा भासै है । उत्तररूप कल्याण मंदिरमै श्लोक,—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।

जातोऽस्मि तेन जनबांधव दुःखपात्रं

यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः ॥१॥

अर्थ—हे जनबांधव ! आपका मै निरंतर उपदेश भी सुण्या अर आपका पूजन भी कर्‍या अर आपका दर्शन भी कर्‍या परंतु निश्चयकरि आपकू चित्तकै विषै भक्तिपूर्वक धारण नही किया ता कारणकरि दुःखको पात्र भयो हूं जातै ऐसा निश्चय है कि भावशून्य क्रिया फलदाता नही होय है ॥

यातै जितना अंसां परिणाम जुड़ै है तितना अंसां कल्याण होय है।

तथा तृतीयसर्गमें श्लोक—

दानपूजादिहीनोऽत्र यथागारी यशो वृषम् ।

न चाप्नोति तथाऽमुत्र यतिरावश्यकातिगः ॥७२॥

अर्थ—जैसै गृहस्थ दान पूजाकरि हीन हुवो संतो इहां यशनै अर धर्मनैं नही प्राप्त होय है तैसै मुनीश्वर षट् आवश्यकरहित हुवो संतो परलोकमै यशनै अर धर्मनै नही प्राप्त होय है ॥ ७२ ॥

ॐनम सिद्धेभ्यः ।

अथ प्रतिष्ठादिपूजनविधानेषु अहिंसाधर्मस्थापनं ।

दोहा—अर्हन जिन षटकायकी, रक्षाहित कहि धर्म ।

पूजन आदि प्रभावना, कहे सर्व शुचि कर्म ॥१॥

प्रश्न—"सव्वजीवाण दयावरं धम्मं" अर्थ—सर्व जीवनिकी दयामें तत्पर है सो धर्म है ऐसे स्वामी कार्त्तिकेयके वचन सुननेत

अनृतादिक च्यार पापनिका त्यागकूं धर्म मानना नहीं ठहर्‍या क्योंकि यामैं जीवदयाहीकूं धर्म कह्या यातैं।

उत्तर—इहां संग्रहनयकी अपेक्षा च्यारूं व्रतनिकूं अहिंसामैं अंतर्भूत करि अहिंसाहीनैं धर्म कह्या है सो ऐसैं है—

'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा'।

अर्थ—प्रमत्तयोगतैं प्राणनिका व्यपरोपण कहिये वियोग करना सो हिंसा है।

सर्वार्थसिद्धिटीका—**प्रमादकषायत्वं तद्वानात्मपरिणामः प्रमत्तः प्रमत्तस्य योगः प्रमत्तयोगस्तस्मात्प्रमत्तयोगादिन्द्रियादयो दश प्राणाः तेषां यथासंभवं व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसा इत्यभिधीयते। सा प्राणिनो दुःखहेतुत्वादधर्महेतुः। प्रमत्तयोगादिति विशेषणं केवलं प्राणव्यपरोपणं नाधर्मायेति ज्ञापनार्थम्।**

अर्थ—इहां कषायसहितपणा है सो तौ प्रमाद है अर तिस प्रमादसहित आत्माका परिणाम है सो प्रमत्त है, अर प्रमत्तका योग सो प्रमत्तयोग कहिये तातैं प्रमत्तयोगतैं इंद्रियादिक दश प्राण जे हैं तिनिका यथासंभव व्यपरोपण कहिये वियोग करणा सो हिंसा है, ऐसैं कहिये है। सो हिंसा प्राणीनिकूं दुःखका कारणपणातैं अधर्मको कारण है। इहां 'प्रमत्तयोगतैं' ऐसा विशेषण है सो केवल व्यपरोपण ही अधर्मके अर्थि नहीं है, या जनावनेके अर्थि है।

यामैं कषायसहित परिणामनैं प्रमाद कह्यो अर कषाय नाम राग द्वेषका है अर राग द्वेषतैं प्राणनिको नाश होय है सो हिंसा है

अर प्राण दोय प्रकार है, सो द्रव्यसंग्रहमैं कहै है गाथाः—

तिक्काले चदु पाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
बवहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स॥

अर्थ—व्यवहारनयतैं जाकै भूत भविष्यत वर्त्तमान कालमैं इंद्रिय बल आयु श्वासोच्छ्वास ये च्यार प्राण है सो जीव है अर निश्चयनयतैं जाकै चैतन्य प्राण है सो जीव है॥ ३॥

ताहीतैं पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं कह्या है;—

आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय॥४२॥
यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा।४३।

अर्थ—आत्मपरिणामका हिसनपणातैं सर्वही परभावरूप होना है सो हिसा है अर ये अनृतवचनादिक भेद केवल शिष्यका समझायबा अर्थि कह्या है॥ ४२॥ तातैं जो कषायका योगतैं द्रव्यभावरूप प्राणांको वियोग करणूं सो निश्चयकरि हिसा है॥ ४३॥

इनि वचननितैं अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रह ये च्यारू हिसाका पर्यायशब्द है तातै पांचूं पापनिका त्याग है सो ही अहिसा धर्म है।

प्रश्न—यह तौ जानी परंतु जिनपूजा प्रतिष्ठादिकमै तथा तीर्थ-यात्रादिकमै आरंभजनित हिसा देखिये है वहां धर्म कैसै कह्या है?

उत्तर—जे आरंभी गृहस्थ है तिनका उपयोग आरंभ तथा नाना द्रव्यके अवलंबन बिना ठहरै नाहीं तातै यत्नाचारपूर्वक पूजादिकमै उपयोग ठहरावना कह्या है क्योकि गृहके कार्यमै विष-यानुरागरूप तथा लोभरूप तथा हिसारूप प्रवर्त्तै था ताकूं छुड़ाय

शुद्धोपयोगका हेतुभूत शुभोपयोगरूप पूजादिकमै लगाया तहां जितना अंशा अशुभोपयोगरूप राग घट्या तितना अंशा अहिंसा भई अर जितना अंशा अहिंसा भई तितना अंशा धर्म भया ।

सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमै कह्या है,—

येनांशेन तु दृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२११॥
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२१२॥
येनांशेन चरित्रं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति ।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥२१३॥

अर्थ—या जीवकै जितने अंशनिकरि सम्यग्दर्शन है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याभावका जानना ॥ २११ ॥ अर या जीवकै जितने अंशनिकरि ज्ञान है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है, अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याज्ञानका है ॥२१२॥ अर या जीवकै जितने अंशनिकरि चारित्र है तितने अंशनिकरि बंध नहीं है अर या जीवकै जितने अंशनिकरि राग है तितने अंशनिकरि बंध है, इहां राग नाम मिथ्याचारित्रका जानना ॥२१३॥

अर धर्मका अंशमात्रकूं भी धर्म कहना सो व्यवहार है ।

प्रश्न—ऐसै मानेतै यज्ञकर्त्ता मीमांसककै भी अहिंसा ठहरी क्योंकि मीमांसक भी तुमारीसी नाईं गृहकार्यत्यागि यज्ञधर्ममै प्रवर्त्ते है तातै ।

उत्तर—ऐसै नहीं है क्योंकि वाका ऐसा आगम है;—

ऋचा—**अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ।**

या वचनतैं केवल स्वर्गलोकके विषयभोगनिकी वांछानिमित्त यज्ञ कर्म है तातैं मीमांसककै गृहकार्यतैं यज्ञमैं विषयानुराग अर लोभ दोऊ ही अधिक है यातैं निज स्वभावका घातरूप भावहिंसा अत्यंत अधिक है अर द्रव्यहिंसा भी गृहस्थकार्यतैं अधिक है क्योंकि प्रथम तौ जानै त्रसका घात किया तानैं कोऊकी भी रक्षा नहीं करी। दूसरा गृहकार्यमैं कदाचित् भी नर गज अश्व गौ आदिका घात नहीं करै था सोही पुरुष यज्ञमैं मनुष्य आदि सब जीवनिका घात करै है तातैं गृहकार्यतैं जितना अंशां भावरूप तथा द्रव्यरूप हिंसा अधिक है तितना अंशां ही पापरूप अधर्म है। अर जीवघाततैं देवकी तृप्तिता मानै है तातैं देवनिमित्त भी हिंसा है। तैसैं जिनपूजामैं भावहिंसा तथा द्रव्यहिंसा तथा देवनिमित्त हिंसा नहीं है क्योंकि विषयानुरागका अर लोभका तौ निदानके अभावतैं अभाव है क्योंकि जैननिकूं निदानका निषेध तौ प्रथम ही लिखे है तातैं अहिंसारूप धर्म है। तथा गृहकार्यकूं त्यागि जितना काल पूजनादिकमैं प्रवर्त्तै है तितना काल गृहसंबंधी रागादिकके घटनेतैं कषायमंद भई सो ही भाव अहिंसा रूप धर्म भया तथा द्रव्यहिंसामैं भी श्रावकमात्र गृहस्थकै संकल्पित त्रसहिंसाका तौ त्याग है ही अर थावरका आगार है तामैं भी वृथा नहीं प्रवर्त्तै है क्योंकि अनर्थदंडका सर्वथा निषेध है अर प्रयोजनतैं भी यत्नाचारतैं प्रवर्त्तै है। ऐसा भी गृहारंभतैं अत्यंत सूक्ष्म यत्नाचारपूर्वक अपना शुद्धोपयोगका हेतुभूत पूजनादि शुभोपयोगनैं मानि पूजननिमित्त आरंभ करता पूजककै जितना अंशां गृहकार्यतैं द्रव्यहिंसा न्यून भई तितना अंशां अहिंसारूप धर्म भया।

प्रश्न—ये भी जानी परंतु नृत्यगान आदि प्रभावनामैं तौ राग-भावकी आधिक्यता देखिये हैं अर रागभावकी आधिक्यता है वहां अवश्य हिंसा है तातैं वहां अहिंसा कैसै होवैगी ?

उत्तर—गृहारंभके छूटनेतैं कषायके मंद होनेतैं अर वीतराग पंचपरमेष्ठीके गुणनिमैं अनुराग होनेतैं आपकै भी वीतरागता ही भई तातैं शुभोपयोग होत सतै अहिंसारूप धर्म भया तातैं अहिंसा को कारणभूत आरभजनित द्रव्य भावरूप सूक्ष्महिंसा जो है सो पापका लेशमात्र उपजावनवारी है अर बहुत पुण्यका बधावनवारी है तातैं ही अष्टमी प्रतिमा तांई गृहस्थ करै है। याका लौकिक दृष्टांत ऐसा है कि—आठ आना सैकडाका व्याजसैं भी रुपया ल्याय दो रुपया सैकड़ा को व्याज पैदा करै है सो गृहस्थपणाका सुख भोगै है अर व्याजके भयतै रुपया नहीं ल्यावै है सो नफो भी नहीं पावै है अर जगत मूर्ख बतावै है अर दोको व्याज लगाय आठ आनाको व्याज पैदा करै तानैं भी मूर्ख कहै है तातै अल्प आरंभकरि बहुत उपयोगकी शुद्धता करना योग्य है। याही प्रयोजनकूं जनावता संता समन्तभद्रस्वामी स्वयंभूस्तोत्रमैं वासुपूज्यस्वामीकी स्तुति करै है कि—श्लोक;—

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥ १ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! जैसैं शीतल कल्याणरूप जलकी राशिकै विषैं विषकी कणिका दोष करनेवारी नहीं है तैसै पूज्य जिन जो है ताहि पूजता मनुष्यकै बहुत पुण्यकीराशिकै विषै सावद्य को लेश

होय है सो दोषके अर्थि समर्थ नहीं होय है ॥

इहां प्रश्न करै है कि—तुमनै युक्तिपूर्वक आगम कह्या सो तौ जान्यां परंतु तुमारै भी देव गुरु धर्म निमित्त हिंसा करना पुरुषार्थसिद्ध्युपायमैं मनै किया है;—

धर्मो हि देवताभ्यः प्रभवति ताभ्यः प्रदेयमिह सर्वम्।
इति दुर्विवेककलितां धिषणां न प्राप्य देहिनो हिंस्याः॥

अर्थ—या श्लोकमै मिथ्यात्वीनिका अभिप्राय दिखाय वाका निषेध करै है कि—निश्चयकरि देवतातै धर्म उत्पन्न होय है तातै इस लोकमै देवताकै अर्थि सर्व ही पदार्थ अतिशयकरि देवो योग्य है, या प्रकार खोटा ज्ञान करि मलिन पुरुष जे है तिनिकी बुद्धिनै पाय देहधारी मात्र हिंसा करबा योग्य नहीं है ॥ ७९ ॥

भावार्थ—देहधारीमात्रनिकी हिंसा करबो योग्य नही ।

पूज्यनिमित्तं घाते छागादीनां न कोऽपि दोषोऽस्ति।
इति संप्रधार्य कार्यं नातिथये सत्त्वसंज्ञपनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अर पूज्यकै निमित्त बकरादिकनिका घातसै कछू भी दोप नहीं है ऐसै धारण करि अतिथिके निमित्त भी जीवघात नही करवो योग्य है ॥ ८० ॥

अर तुमारै भी पूजनादिक देव गुरु धर्मका ही करिये है तामै आरंभजनित हिंसा होय है सो कैसै कर्त्तव्य है ?

उत्तर—निमित्त शब्दका दोय प्रयोजन हांजेहै सो दोऊही हमारै पूजनादिकमैं नहीदै, सो ऐसै—प्रथम तौ पूज्यकै काम आवै सो पूज्यकै निमित्त कहिये सो पूज्य तौ वीतराग है उनकै पूजन द्रव्यतैं कुछ प्रयोजन ही नहीं जैसैं साधुनिकै सन्मुख जानेमै तथा

अभ्युत्थानादि वंदना करनेमें तथा धर्मश्रवणकरने निमित्त जानेमें काययोगतें हिंसा होय है तथापि वा हिंसा साधुकै निमित्त नहीं कहिये है क्योंकि साधुकै प्रयोजन नाहीं है तातें पूज्यनिमित्त नहीं जाननो। अर गृहस्थ अपना उपयोग शुद्ध करने निमित्त जैसें तैसै अनेक उपकरणनिकै तथा शुद्ध उज्ज्वल सामग्रीकै तथा चढ़ावाकी क्रियाकै तथा स्तवनमन्त्रकै आश्रय उपयोग ठहराय पंच परमेष्ठीकै गुण स्मरण करता सन्ता भक्तिपूर्वक पूजन करैहै तितनें काल अन्य वचनालाप नहीं करैहै, अर मनहू पूजनरूप क्रियातैं तथा परमेष्ठीके गुणनितें बाहिर नहीं प्रवर्त्तें हैं, अर कायहू एक पूजनक्रिया सिवाय नहीं विचरै है; तातैं जितना अंशां संवर रहै है तितना अंशां निर्जरा करै है। अर जो आहार वस्तिकादिक पूज्यकै काम आवै है सो गृहस्थ उनके निमित्त नहीं करै है अर करै है सो आज्ञा बाहिर है, अर साधु भी अपने निमित्त किया जान लेवै तौ नहीं लेवै है अर लेवै हैं सो आज्ञा बाहिर है, सो मूलाचारका षष्ठम प्रस्तावमें विशेषपणे लिख्या है। अर दूसरा जाका आपकै त्याग है सो पूज्यका निमित्त पाय करै सो भी पूज्यनिमित्त जानिये, जैसें श्रावककै त्रसघातका त्याग है तातै जामैं त्रसको घात होय सो कदाचित नहीं करै अर करै तौ पूज्यकै निमित्त कहिये जैसै नवमी दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक आरंभ परिग्रहका त्यागीहै सो कदाचित पूजनादिकका आरंभ करै तो पूज्यनिमित्त कहिये सो कदाचित भी नहीं करै है, भावपूजन स्तवन करै है। ऐसें श्रावक गृहस्थ अपने पदस्थ योग्य पूजनादिकमैं प्रवर्त्तै है तातै देव गुरु धर्मनिमित्त हिंसा नहीं जानना।

प्रश्न--जिनवचन तौ निरवद्य हैं वामै पूजनादिकका उपदेश कैसे संभवै ?

उत्तर—तुमारे ज्ञानमैं जिनपूजनादिक सावद्य दीखै है वै तौ निरवद्य हीहै जैसे साधूकूं विहारका उपदेश है तामैं एकांतीकूं हिंसा दीखै है तथापि विहार करना अहिंसारूप ही है क्योंकि एक स्थान रहनेतैं रागादिककी वृद्धि होतैं भावप्राणनिका घातरूप अधिक हिंसा होती जानि वाकी निवृत्तिनिमित्त ईर्यासमितिरूप विहारका उपदेश है तथा चातुर्मासमैं विहारजनित द्रव्यभावरूप विशेष हिंसा होती जानि विहारका निषेधको उपदेश है सो भी अहिंसाको ही उपदेश है, तथा गृहस्थकूं त्रसका त्याग कराय थावरका आगारका उपदेश है सो भी अहिंसाका ही उपदेश है क्योंकि थावरकी हिंसातैं त्रसकी हिंसाका पाप अधिक है, यातैं ।

प्रश्न—थावरघाततैं त्रसका घातका अधिक पाप काहेतैं कह्या ?

उत्तर—सूत्र, -'प्राणव्यपरोपणं हिंसा' या वचनतैं प्राणघातका नाम हिंसा है तातैं थावरतैं त्रसकै विशेष प्राणकी अपेक्षातैं अधिक पाप कह्या है ।

प्रश्न—यामै तौ त्रसघातका त्यागरूप वचन है कछ थावरकी हिंसाका उपदेशरूप वचन नही है ।

उत्तर—मुनीश्वरकूं विहारका तथा सामायिक प्रतिक्रमणमैं कायोत्सर्गविधिमैं आवर्त्त अवनति शिरोनतिकी उपदेश है तहां काययोगतैं हिंसा होय है तथापि साम्यभावकी सिद्धिनिमित्त तौ सामायिक अर दोषकी प्रवृत्तिनिमित्त प्रतिक्रमण अर परमेष्ठीके गुणनिमैं अनुरागनिमित्त आवर्त्त अवनति शिरोनति करनेका उपदेश है । इनि सबनिमैं अशुभोपयोगरूप हिंसाका त्यागतैं अहिंसाका ही उपदेश है । ऐसैं ही गृहस्थकूं आहारआदि दानका उपदेश है तामैं हू हिंसा होय है तथा लोभकषायरूप भाव हिंसाका त्यागतैं

अहिंसारूप ही उपदेशहै तैसैं ही पूजादिकका उपदेश है सो अशुभोपयोगका तथा लोभ कषायका त्यागरूप अहिंसाहीका उपदेश है। तथा हिंसाका अनेक भेद पुरुषार्थसिद्धयुपायमैं लिखे है तिनकूं टालि अहिंसाधर्मनैं प्रमाण नयनिक्षेपनितैं अच्छी तरह समझि यत्नाचारपूर्वक योग्य प्रवृत्ति करता मनुष्यकै अहिंसाधर्मकी ही सिद्धि है।

चौपई।

सर्वधर्मकै मध्य प्रधान,
धर्म अहिंसा कहि भगवान।
पंच महाव्रत आदिक भेद।
कहे भव्यहित सर्व विभेद॥ १॥

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकाण्डे चमरादिबहुद्रव्य-निर्णय तथा प्रतिष्ठादिविधानेषु अहिंसाधर्म-स्थापनवर्णनो नाम दशमोल्लासः॥

ॐनमः सिद्धेभ्यः।

अथ गुरुउपासना लिख्यते।

दोहा।

भव तन भोग विरक्त है, छांड़ि गेह अघखानि।
भये लीन निजरूपमैं प्रणमूं गुरु हितमानि॥ १॥

प्रश्न—देवपूजाको विधान कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो अब गुरु उपासनाको विधान भी कहौ।

उत्तर—सामान्यपणैं तौ गुरु निर्ग्रंथ एक भेदरूप है सो गुरु लक्षण पूर्वं वरनन किये ही हैं, अर गुणविशेषतैं अथवा पदस्थविशेषतै ऐसें है कि—आचार्य उपाध्याय साधु ऐसैं तौ तीन भेदरूप है तथा आचार्य उपाध्याय प्रवर्त्तक स्थविर गणधर ऐसै पांच भेदरूप है तथा पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रन्थ स्नातक ऐसैं पांच भेदरूप है तथा आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ऐसै दश प्रकार है। तिनके लक्षण अनुक्रमतैं कहै है। आचार्य लक्षण द्रव्यसंग्रहमैं; गाथा—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आइरिओ मुणी झेओ ॥५२॥
दर्शनज्ञानप्रधाने वीर्यचारित्रवरतपआचारे।
आत्मानं परं च योजयति स आचार्यः मुनिः ध्येयः॥

अर्थ—जो दर्शनाचार ज्ञानाचार वीर्याचार चारित्राचार तपाचार इन पंच प्रकारके आचारकै विषै आपनैं अर परनैं युक्त करै सो आचार्य मुनि भव्यजीवनिकै ध्यान करवा योग्य है ॥ ५२ ॥

तथा माघनंदिमुनिकृत जयमालमै—

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया
बारसंगाइसुयजलहिअवगाहया।
मोक्खलच्छीमहंते महं ते सया
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया॥
-पंचधाऽऽचारपंचाग्निसंसाधकाः
द्वादशांगादिश्रुतजलध्यवगाहकाः।

मोक्षलक्ष्मीमहान्तः मह्यं ते सदा
सूरिणः ददतु मोक्षं गतासंगताः ॥

अर्थ—पंच प्रकार आचाररूप अग्निका भलै प्रकार साधन करनवारा अर द्वादशांगरूप सुन्दर जलका अवगाहन करनवारा अर मोक्षलक्ष्मीकूं महान माननेवारे ऐसे आचार्य परमेष्ठी जे है ते महान कृपादृष्टि करि महान सर्वोत्तम मोक्ष द्यो ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं,—

ये स्वाचारमपारसौख्यसुतरोर्वीजं परे पंचधा
सद्बोधाः स्वयमाचरंति च परानाचारयंत्येव च ।
ग्रंथग्रंथिविमुक्तमुक्तिपदवीं प्राप्ताश्च यैः प्रापिता—
स्ते रत्नत्रयधारिणः शिवसुखं कुर्वन्तु नः सूरयः ॥५९॥

अर्थ—जे समीचीन ज्ञानके धारक अपारसुखमई सुन्दर वृक्षका उत्तम बीजरूप पंच प्रकारका निर्दोष आचारनैं आप आचरण करै है अर अन्य पुरुषनिनैं आचरण करावै है, अर परिग्रहकी गांठि करि रहित ऐसी मुक्तिपदवीनैं प्राप्त भये अर अन्य पुरुषनिनै प्राप्त किये ऐसे रत्नत्रयके धारक आचार्य जे है ते हमारै मोक्षसुखनैं करो ॥ ५९ ॥

तथा काव्य—

भ्रांतिप्रदेषु बहुवर्त्मसु जन्मकक्षे
पंथानमेकममृतस्य परं नयंति ।
ये लोकमुन्नतधियः प्रणमामि तेभ्य—
स्तेनाप्यहं जिगमिषुर्गुरुनायकेभ्यः ॥ ६० ॥

अर्थ—जे उत्तम निर्मलबुद्धिके धारक आचार्य परमेष्ठी इस संसाररूप वनके विषै भ्रमके देनेवाले अनेक मार्ग जे हैं तिनमैं भ्रमण करते लोकनिनै एक उत्कृष्ट मोक्षमार्गनैं प्राप्त करै है, अर वाही मार्गकरि मोक्षनै प्राप्त होवाको इच्छुक मै जो हूं सो ते गुरुनायक आचार्य परमेष्ठी जे हैं तिनकै अर्थि नमस्कार करूं हूं ॥६०॥

तथा आचारसार वीरनंदिकृतका दूसरा अधिकारमैं;—

संग्रहानुग्रहप्रौढो रूढः श्रुतचरित्रयोः।
यः पंचविधमाचारमाचारयति योगिनः ॥३२॥

अर्थ—जो शिष्यनिका संग्रह अनुग्रह करनेमैं प्रौढ कहिये चतुर समर्थ, बहुरि श्रुत अर चारित्रकै विषैं रूढ कहियें आरूढ, बहुरि अन्य योगनिनैं पंच प्रकारका आचारनैं आचरण करावै हैं ॥३२॥

बहिःक्षिप्तमलः सत्त्वगांभीर्यातिप्रसादवान्।
गुणरत्नाकरः सोऽयमाचार्योऽवार्यधैर्यवान् ॥३३॥

अर्थ—दूरि किये हैं समस्त मलदोष जानैं बहुरि पराक्रम अर गंभीरता अर अतिप्रसन्नताकरि संयुक्त अर गुणांकी खानि अर अनिवार्य धीर्यतावान जो है सो यो आचार्य है ॥ ३३ ॥

तथा चारित्रसारमै धारा,—

यस्मात्सम्यग्ज्ञानादिपंचाचाराधारादाहृत्य व्रतानि स्वर्गापवर्गसुखकल्पकुजवीजानि भव्या आत्महितार्थमाचरंति स आचार्यः।

अर्थ—भव्य जीव जे हैं ते अपना हितकै अर्थि सम्यग्ज्ञानादि पंच आचारका आधार जो है तातैं स्वर्ग मोक्षका सुखरूप कल्पवृक्षका वीजस्वरूप व्रत जे हैं तिननैं ग्रहण करि आचरण करै है, सो आचार्य है।

तथा गाथा;—

आयारादी अट्ठगुणा दहविहधम्मो तहा ठिदिकप्पो।
बारहतव छव्वासो छत्तीसा होंति आयरिया ॥

आचाराद्यष्टगुणाः दशविधधर्मस्तथा स्थितिकल्पः।
द्वादशतपः षडावश्यकःषट्त्रिंशद्भवंत्याचार्यस्य ॥

अर्थ—आचारांगतै आदि लेय अष्ट गुण अर दशविध धर्म अथवा दशविध स्थितिकल्प अर द्वादश तप अर षट् आवश्यक ऐसै षट्त्रिंशत् गुण आचार्यनिके होय है ॥

भावार्थ—आचारांग१ व्यवहारांग२ एकादशांग३ उपासकाध्ययनांग४ निर्यापकांग५ परगुणवैयावृत्त्यांग६ परगुणचर्यांग७ साधुत्व ८ ऐसैं तो आचारादि आठ गुण, बहुरि उत्तमक्षमा१ उत्तममार्दव२ उत्तमआर्जव३ उत्तमसत्य४ उत्तमशौच५ उत्तमसंयम६ उत्तमतप७ उत्तमत्याग८ उत्तमआकिंचन्य९ उत्तमब्रह्मचर्य१० ऐसैं उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्म, अथवा स्थितिगुण१ अचेलत्वगुण२ उद्दिष्टपिंडग्रहणत्याग३ राजपिंडत्याग४ सम्यग्दृष्टि५ सर्वजीवनिकी दयामैं तत्परता६ बहुप्रतिक्रमण७ मासनिषेधक८ कृतिकर्मतप९ दानमैं-तत्परता१० ऐसैं दशलक्षण स्थितिकल्प, बहुरि अनशन१ अवमौदर्य२ व्रतपरिसंख्यान३ रसपरित्याग४ विविक्तशैय्यासन५ कायक्लेश ६ प्रायश्चित्त७ विनय८ वैयावृत्य९ स्वाध्याय१० व्युत्सर्ग११ ध्यान१२ ऐसैं द्वादशप्रकार तप, बहुरि सामायिक१ स्तवन२ वंदना३ प्रतिक्रमण४ प्रत्याख्यान५ कायोत्सर्ग६ ऐसैं षट आवश्यक । इनि सबनिकूं एकत्र कीये छत्तीस गुण आचार्यनिके होते है ॥

अथवा द्वादशप्रकार तप अर दशलक्षणधर्म अर पंच वीर्याचार

अर तीन गुप्ति अर षट् आवश्यक ऐसैं छत्तीस गुण आचार्यनिके है ॥

तथा मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं—

आवेसणी सरीरे इंदियभंडो मणो व आगरिओ ।
धमिदव्व जीवलोहे बावीसपरीसहग्गीहिं ॥ ७ ॥

आवेशनी शरीरं इन्द्रियभांडः मनश्च आकरिकः ।
धमितव्यः जीवलोहः द्वाविंशतिपरीषहाग्निभिः ॥७॥

अर्थ—चुल्लीयंत्रसमान शरीरकै विषै इंद्रिय और मन भांडसदृश है अर जीवरूप लोह द्वाविंशतिपरीषहरूप अग्निकरि तपायवायोग्य लोह धातु है, ताहि आचार्यरूप लोहकार तपावै है । भावार्थ—आरणकै समान यो शरीर है ताकै विषै इंद्रिय अर मन मूषिकै समान है, ताकै विषैं प्रवर्त्ततो जीव लोहरूप है, ताहि शुद्ध करवाका इच्छक जो मुनि बाईस परीषहरूप अग्निकरि तपावै है सो आचार्य है । ऐसा रूपक अलंकाररूप अर्थसंबंध है ॥ ७ ॥

सदआयारविद्दण्हू सदा आयारियं चरे ।
आयारमायारवंतो आयरिओ तेण वुच्चदि ॥८॥

सदाचारवित् सदा आचारितं चरेत् ।
आचारमाचारयन् आचार्यस्तेन उच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—सदाचारको जाननवारो अर सदाकाल गणधरप्रणीत आचारका आचरण करनेवारा अर आचारनै आचरण करावनवारा है ता कारणकरि आचार्य कहिये है ॥ ८ ॥

जम्हा पंचविहायारं आचरंतो पभासदि।
आयारियाणि देसंतो आयरिओ तेण वुच्चदे ॥९॥
यस्मात्पंचविधाचारं आचारयन् प्रभासते।
आचरितानि दर्शयन् आचार्यस्तेन उच्यते ॥९॥

अर्थ—जातै पञ्च प्रकार आचार चेष्टा करतो संतो अतिशयकरि शोभायमान होय है अर आचरण किये पुरुषनिनै दिखावै कि प्रगट करै ता कारणकरि आचार्य कहिये है ॥ ९॥

अथ उपाध्याय लक्षणकी द्रव्यसग्रहमै, गाथा;—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स॥५४॥
यः रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः।
सः उपाध्यायः आत्मा यतिवरवृषभः नमस्तस्मै ।५४।

अर्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि युक्त है अर निरन्तर धर्मोपदेशके देने विषै अतिशयकरि लीन है ऐसो उपाध्यायरूप मुनिवरनिमें प्रधान आत्मा जो है ताकै अर्थि मेरो नमस्कार होहू ॥५४॥

माघनंदिकृत जयमालमै, छंद—

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे
तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया
वंदिमो ते उवज्झाय ह्म्मे सया ॥४॥
घोरसंसारभीमाटवीकानने
तीक्ष्णविकरालनखपादपंचानने।

नष्टमार्गाणां जीवानां पथदेशकान्
वन्दामहे तान् उपाध्यायान् वयं सदा ॥ ४॥

अर्थ—घोर संसाररूप भयंकर अटवी काननकै विषै तीक्ष्ण विकराल है नख जिनके ऐसे पंचाननके समूहकै विषै नष्ट भयो है मार्ग जिनको ऐसे जीवनिनै मार्गके दिखावनवारे उपाध्याय जे है ते वंदवे योग्य है ॥ ४ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिका मैं,—

शिष्याणामपहाय मोहपटलं कालेन दीर्घेण य-
ज्जातं स्यात्पदलाञ्छितोज्ज्वलवचो दिव्यांजनेन स्फुटम्
ये कुर्वन्ति दृशं परामतितरां सर्वावलोकक्षमां
लोके कारणमंतरेण भिषजस्ते पान्तु नोऽध्यापकाः॥६१॥

अर्थ—जे उपाध्याय परमेष्ठी शिष्यनिकै अनादिकाल करि उत्पन्न भयो जो मोहको पटल ताहि स्यात्पदकरि चिह्नित जो उज्ज्वल वचनरूप दिव्य अंजन ताकरि दूरि करि सर्व वस्तुके देखने विषै अतिशय करिकैं समर्थ ऐसी परमदृष्टि जो है ताहि कर है अर लोकमै विना कारण वैद्य है ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी जे है ते हमारी रक्षा करो ॥ ६१ ॥

तथा आचारसारमै,—

संसारज्वरसंतापच्छेदि यद्वचनामृतम् ।
पीयते भव्यलोकेन प्रीत्या नित्यं स देशकः ॥३४॥

अर्थ—संसाररूप ज्वरको छेदनवारो जाको वचनरूप अमृत जो है सो भव्यजीवनिकरि प्रीतिकरि निरंतर पान करिये है सो उपदेशको दाता उपाध्याय है ॥ ३४ ॥

तथा चारित्रसारमैं, धारा:—

विनयेनोपेत्य यस्माद्व्रतशीलभावनाधिष्ठाना-दागमं श्रुताभिधानमभिधीयते स उपाध्याय: ।

अर्थ—विनयवाननिनै प्राप्त होयकरि व्रत शील भावनाको आधार जो है तातै श्रुत है नाम जाको ऐसो आगम जो है ताहि अध्ययन करिये सो उपाध्याय है। भावार्थ—व्रत शील भावनाका धारक श्रुताध्ययन करावनवारे जे है ते उपाध्याय हैं॥

तथा, गाथा,—

ग्यारह अंग वियाणइ चउदह पुव्वाणि णिखसेसाणि।
पणवीसं गुणजुत्ता णाणए तस्स उवज्झाओ ॥
एकादशांगानि विजानाति चतुर्दश पूर्वाणि निखशेषाणि
पंचविंशतिगुणयुक्ता: ज्ञायंते तस्य उपाध्याय: ॥

अर्थ—ग्यारह अगनिनै अर निर्विशेष चौदह पूर्वनिनै जानै है ऐसे पचीस गुणयुक्त उपाध्याय है। भावार्थ—ग्यारह अग अर चौदह पूर्वरूप पच्चीस गुणके धरक है। तिनके नाम ऐसै जानने आचारांग१ सूत्रकृतांग२ स्थानाग३ समवायाग४ व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग५ ज्ञातृधर्मकथाग६ उपासकाध्ययनाग७ अंतकृद्दशाग८ अनुत्तरोपपाददशाग९ प्रश्नव्याकरणाग१० विपाकसूत्रांग११ अर दृष्टिवादनाम ध्येयनामा बारमा अग जो है ताका पांच भेद है, तिनमैं चौदह पूर्वके नाम ऐसै जाने—उत्पादपूर्व१ अग्रायणीपूर्व२ वीर्यानुवादपूर्व३ अस्तिनास्तिप्रवादरूप४ ज्ञानप्रवादपूर्व५ सत्यप्रवादपूर्व६ आत्मप्रवादपूर्व७ कर्मप्रवादपूर्व८ प्रत्याख्यानपूर्व९ विद्यानुवादपूर्व१० कल्याणवादपूर्व११ प्राणवादपूर्व१२ क्रियाविशालपूर्व१३ त्रिलोकविदुसारपूर्व१४ ऐसै पच्चीस गुण उपाध्याय परमेष्ठीके हैं॥

तथा मूलाचारका सातमां प्रस्तावमैं;—

वारसंगं जिणक्खादं सज्झायं कधिदं वुधे ।
उवदेसइ सज्झायं तेणोवज्झाउ वुच्चदे ॥ १० ॥
द्वादशांगानि जिनख्यातानि स्वाध्यायः कथितः बुधैः ।
उपदिशति स्वाध्यायं तेनोपाध्याय उच्यते ॥ १० ॥

अर्थ—भगवान् भाषित द्वादश अंग जे है तिननै ज्ञानवाननिकरि स्वाध्याय कही है यातै स्वाध्याय उपदेश करै है ता कारण करि उपाध्याय कहिये है ॥ १० ॥

अथ साधु लक्षणकी द्रव्यसंग्रहमैं; गाथा—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥५५॥
दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य यः स्फुटं चारित्रम् ।
साधयति नित्यंशुद्धं साधुः सः मुनिर्नमस्तस्मै ॥ ५५ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप परिपूर्ण शुद्ध मोक्षमार्ग जो है ताहि जो मुनिनिरन्तर साधै है सो साधु है ताकै अर्थि नमस्कार होहू ॥ ५५ ॥

तथा प्रवचनसारका चारित्राधिकारमैं; गाथा—

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतधयणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥७॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवठठावगो होदि ॥ युग्मम ॥

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचेलमस्नानम् ।
क्षितिशयनमदंतधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च ॥७॥
एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—पंच महाव्रत—अहिंसा१ सत्य२ अचौर्य३ ब्रह्मचर्य४ नि:परिग्रह५, अर पंच समिति—ईर्यासमिति१ भाषासमिति२ एषणासमिति३ आदाननिक्षेपणा समिति४ प्रतिष्ठापना समिति५, अर पंच इंद्रियनिका निरोध—स्पर्शनिरोध१ रसननिरोध२ घ्राणनिरोध३ चक्षुनिरोध४ श्रोत्रनिरोध५, अर केशलौंच, आवश्यक छह—सामायिक१ स्तवन२ वंदना३ प्रतिक्रमण४ प्रत्याख्यान ५ व्युत्सर्ग आचेलक्य कहिये वस्त्ररहित नग्न दिगम्बरपणौ१, यावत्-जीव स्नानत्याग१ भूमिशयन१ दंतधवन त्याग१ खड़ा भोजन१ एकवार लघु भोजन१, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण साधुपरमेष्ठीके जिन-वरदेवनै कहे है तिनके विषै प्रमत्त श्रमण जो है सो छेदोपस्थापक होय है ॥ ८ ॥

तथा माघनंदिमुनिकृत जयमालमै—

उग्गतवयरणकरणेहिं खीणंगया
धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया ।
णिब्भरं तवसिरीए समालिंगिया
साहवो ते महं मोक्खपहमग्गया ॥ ५ ॥

उग्रतपश्चरणकरणैः क्षीणंगताः
धर्मवरध्यानशुक्लैकध्यानं गताः ।

निर्भरं तपः श्रिया समालिंगिताः
साधवस्ते मह्यं मोक्षपथमार्गगाः ॥ ५ ॥

अर्थ—उग्रतपका आचरणकरि क्षीण भया अर उत्कृष्ट धर्मध्यान शुक्लध्यानतै प्राप्त भया अर अतिशय जैसैं होय तैसैं तपःश्रीकरि आलिंगित भया ते साधु हमारै ताईं मोक्षमार्गनैं प्राप्त करो ॥ ५ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं;—

उन्मुच्यालयबंधनादपि दृढात्कायेऽपि वीतस्पृहा-
श्चित्ते मोहविकल्पजालमपि यद्दुर्भेद्यमन्तस्तमः ।
भेदायाऽस्य हि साधयंति तदहो ज्योतिर्जितार्कप्रभं
ये सद्बोधमयं भवंतु भवतां ते साधवः श्रेयसे ॥६२॥

अर्थ—जे संसार देह भोगनि विषैं हूं वांछारहित हुवा संता अत्यंत दृढ गृहबंधनतैं छूटिकरि चित्तकै विषैं मोहके विकल्पनिको है समूह जामैं ऐसो जो दुर्भेद्य अंतरंगको अंधकार ताका नाशके अर्थि जीतो है सूर्यकी प्रभा जानैं ऐसी सम्यग्ज्ञानमय ज्योतिको साधन करै है ते साधु परमेष्ठी तुम भव्यजीवनिकै कल्याणके अर्थि होहू ॥ ६२ ॥

तथा मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं प्राकृतश्लोक,—

णिव्वाणसाधए जोगे सदा जुंजंति साधवो ।
समा सव्वेसु भूदेसु तम्हा ते सव्वसाधवो ॥ ११ ॥
निर्वाणसाधकान् योगान् सदा योजयंति साधवः ।
समाः सर्वेषु भूतेषु तस्मात्ते सर्वसाधवः ॥ ११ ॥

अर्थ—जे साधु आपकै तथा परजीवनिकै विषैं निर्वाणका

साधनभूत योग जे हैं तिनन सदाकाल जोडै है, अर सर्व प्राणीनिकै विषैं साम्यभावरूप है तातैं ते सर्वसाधु है ॥

ऐसैं तौ तीन भेद जानने अर पांच भेद कहे तिनमै आचार्य उपाध्यायका लक्षण तौ पूर्वैं कह्या ही अर प्रवर्त्तकका लक्षण, आचारसारमै—

प्रभावनाधिकोऽबाधमन्नाद्यैः संघवर्त्तकः।
जगदादेयवाङ्मूर्त्तिर्वर्त्तकः कालदेशवित् ॥ ३५॥

अर्थ—प्रभावनाकरि अधिक अर जगतकै ग्रहण योग्य है वचनकी मूर्त्ति जाकी अर कालका अर देशका जाननवारा अर अबाधित जैसैं होय तैसैं अन्नादिककरि संघका प्रवर्त्तक होय सो मुनि प्रवर्त्तक है। भावार्थ—देश कालका ज्ञाता होय तान आचार्य प्रवर्त्तकपदमै स्थापन करै है अर वै समस्त संघनै इसे मार्ग लगावै कि जा देशमै आहार पान उपकरण सुलभ होय ऐसा अभिप्रायतै "अन्नाद्यैः संघवर्त्तकः" ऐसो विशेषण दियो है ॥ ३५॥

अबै स्थविरका तथा गणधरका लक्षणरूप आचारसारमै, श्लोक—

समयस्थितिसद्गीतिः स्थविरः स्याद्गुणस्थिरः।
गणरक्षाक्षमः सूरिर्गुणी गणधरः स्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सिद्धातकी मर्यादाका अनुक्रमका कहनवारा अर निश्चल है गुण जिनके ते स्थविर है, अर गणकी रक्षा करवासै समर्थ अर अनेक गुणनिके धारण करनवारे आचार्य जे है ते गणधर कहे है ॥ ३६ ॥

ऐसै पाच भेद जानने। अर पुलाक आदि पांच भेद जे हैं तिनका लक्षण देव गुरु शास्त्रका लक्षण पूर्वै वरनन किया तहा

लिख्या ही है। अर आचार्य आदि दश भेद जे हैं तिनका लक्षण विनयका वरननमैं कह्या ही है, ते सर्व उपासना करने योग्य है। अर पार्श्वस्थ आदि भी मुनि नाम कहावै ते उपासना करने योग्य नहीं है।

प्रश्न—ऐसे है तौ इनिके भी नाम तथा लक्षण कहौ।

उत्तर—प्रथम तौ इनके नाम आदि वरनन मूलाचारका सप्तम प्रस्तावमैं;—

णो वंदेज्ज अविरदं मादा पिदु गुरु णरिंद अण्णतित्थंवा
देशविरद देवं अण्णं पासत्थपणगं वा ॥ ९२ ॥
नो वंदेत अविरतं मातृपितृगुरुनरेन्द्रान्य तीर्थं वा।
देशविरतं देवं अन्यं पार्श्वस्थपंचकं वा ॥ ९२ ॥

अर्थ—अविरत कहिये दिगंबरदीक्षारहित माता पिता अर गुरु कहिये लिपिसख्या आदि व्यवहार विद्या तथा अश्व गज चढण शस्त्र अस्त्र शिल्पविद्या आदिकी शिक्षाका देनेवारा अर नरेन्द्र अर अन्यतीर्थ कहिये जिनेद्रभाषित देव गुरु शास्त्र सिवाय और देव गुरु शास्त्र अर देशविरत कहिये गृहस्थ अर देव कहिये चतुरनिकायके देव अथवा और नदी वृक्ष पशू भूमि आदि अचेतन तथा गौ अश्व गज आदि चेतनद्रव्य तथा पार्श्वस्थ आदि पांच भ्रष्ट मुनि नहीं वंदवे योग्य है ॥ भावार्थ—अपने पदस्थतै नीचे पदमैं तिष्ठनेवारे सर्व ही आपकै वंदिवे योग्य नहीं है अर्थात् आप सम्यग्दृष्टी हैं तौ मिथ्या-दृष्टी माता पिता गुरू नरेद्र अन्यभेषी नहीं वन्दिवे योग्य हैं तैसै ही आप संयमी है तौ असंयमी वन्दिवेयोग्य नहीं है॥ ९२ ॥

अव पंच भ्रष्ट मुनि जे हैं तिनके नाम कहै है,—

पासत्थो य कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तो य।
दंसणणाणचरित्ते अणिउत्ता मंदसंवेगा ॥ ९३ ॥
पार्श्वस्थश्च कुशीलः संसक्तोऽवसन्नः मृगचरित्रश्च।
दर्शनज्ञानचारित्रे अनियुक्ताः मंदसंवेगाः ॥ ९३ ॥

अर्थ—पार्श्वस्थ१ कुशील२ समक्त३ अवसन्न४ मृगचरित्र५ ए पांच जातिके मुनि दर्शन ज्ञान चारित्रकै विषै उपयुक्त नही है अर मंद संवेग है ॥ ९३ ॥

अब, इनि पंचनिका लक्षण चारित्रसारमै कहै है,—धारा—

तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठति स पार्श्वस्थः ॥ १ ॥

अर्थ—तिन पंचनिमै जो वसतिकाकै विषै प्रतिबद्ध कहिये अपणायकरि रहै अर उपकरणनिके सम्रहकरि तथा सुधारनेकरि जीविका करनेवारा अर महा मुनीश्वरनिके पार्श्वकै विषै तिष्ठै सो पार्श्वस्थ है॥

धारा—**क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्याविनयकारी कुशीलः ॥ २ ॥**

अर्थ—क्रोध आदि कषायकरि मलिन है आत्मा जाको अर मूलगुण तथा उत्तरगुण अर शीलके समस्त भेदनिकरि रहित अर संघको अविनय करनेवारो जो है सो कुशील है॥

धारा—**वैद्यमंत्रज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः ॥ ३ ॥**

अर्थ—वैद्यविद्या मंत्रविद्या ज्योतिषविद्याकरि जीविका करने-

वारो अर राजादिकको सेवक जो है सो संसक्त है ॥ ३ ॥

धारा—**जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसोऽवसन्नः ॥ ४ ॥**

अर्थ—जिनवचनको नहीं जाननेवारो अर छोड्यो है चारित्रको भार जानैं अर ज्ञान और आचरणतैं भ्रष्ट अर ध्यान आदि शुभोपयोगका करवाकै विषैं आलसी जो है सो अवसन्न है ॥ ४ ॥

धारा—**त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छंदविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छंद इति वा ॥ ५ ॥**

अर्थ—त्याग्यो है गुरुकुल जानै अर एकाकीपणां करि स्वच्छंद विहार करणेवारो अर जिनवचनको निंदक ऐसो मृगसमान चारित्रको धारक जो है सो स्वच्छंद है ॥ ५ ॥

धारा—एते पंच श्रमणा जिनधर्मबाह्याः ।

अर्थ—ये पांच भेद संयुक्त मुनि जे है ते जिनधर्मतैं बाह्य हैं तातै ये पाचूं भेद जे हैं तिनमै अन्तर्गत अनेक उन्मार्गी है ते सर्व नमस्कार आदि उपासना करने योग्य नही है। अर पूर्वे कहे जे भेद ते ही उपासना करने योग्य है।

प्रश्न—गुरुलक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान कीया अब इनकी उपासनाको विधान भी कहौ।

उत्तर—दान वैयावृत्त्यादिक करिके उपासना करिये है, तहां दानमै दाता देय पात्र फल इनि च्यारनिका स्वरूप प्रथम विचार्या चाहिये, तातैं प्रथम दातारका स्वरूप वर्णन, आदिपुराणका बीसवां पर्वमै—

श्रद्धा भक्तिश्च शक्तिश्च विज्ञानं चाप्यलुब्धता।
क्षमा त्यागश्च सप्तैते प्रोक्ता दानपतेर्गुणाः ॥ ८३ ॥

अर्थ--श्रद्धा भक्ति शक्ति विज्ञान अलोभता क्षमा त्याग ये दानपतिका सात गुण है ॥ ८३ ॥

प्रश्न--इनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहौ।

उत्तर--श्लोकः--

श्रद्धाऽऽस्तिक्यमनास्तिक्ये प्रदाने स्यादनादरः।
भवेच्छक्तिरनालस्यं भक्तिः स्यात्तद्गुणादरः ॥ ८४ ॥
विज्ञानं स्यात् क्रमज्ञत्वं देयशक्तिरलुब्धता।
क्षमा तितिक्षा ददतस्त्यागः सद्व्ययशीलता ॥ ८५ ॥
इति सप्तगुणोपेतो दाता स्यात्पात्रसंपदि।
व्यपेतश्च निदानादेर्दोषान्निः श्रेयसोद्यतः ॥ ८६ ॥

अर्थ--पात्रकै विषै आस्तिक्यता कहिये दान योग्य ये ही पात्र है ऐसा दृढ़ परिणामको नाम श्रद्धा है क्योंकि 'अनास्तिक्ये सति' कहिये दातारकै आस्तिक्यता नहीं होय तौ दानकै विषै अनादर होय है यातै दातारका प्रथम श्रद्धा गुण है। अर प्रमादरहितपणौ जो है सो शक्तिगुण है। अर पात्रके गुणनिकै विषै जो आदर सो भक्ति गुण है। अर दानका क्रमको जाणवो सो विज्ञान गुण है। अर दान देवेकी सामर्थ्य सो अलुब्धता गुण है। अर तितिक्षा कहिये सहनशीलता जो है सो क्षमागुण है। अर भलै प्रकार देवाको स्वभाव जो है सो त्याग गुण है। अर उत्तम-पात्रकी प्राप्ति होते सतै इनि सात गुणनिकरि युक्त होय सो दातार

है अर निदानादि कहिये निदान मायाचार मिथ्यात्व इनि तीन दूषणनिकरि रहित होय अर कल्याणकै अर्थि उद्यमी होय सो उत्तम दातार है ॥ ८४-८५-८६ ॥

तथा आधुनिक पद्मनंदिश्रावकाचारमैं—

भागद्वयं कुटुम्बार्थे संचयार्थे तृतीयकः ।
स्वरायो यस्य धर्मार्थे तुर्यस्त्यागी स सत्तमः ॥ १ ॥

अर्थ—आप जो द्रव्य उपार्जन करै ताके दोय भाग तौ कुटुम्बकै अर्थि खरच करै, अर तीसरो भाग सचयकै अर्थि राखै, अर चतुर्थ भाग धर्मकै अर्थि लगावै सो उत्तम दातार है ॥

भागद्वयं तु पुत्रार्थे कोशार्थे तु त्रयं सदा ।
षष्ठं दानाय यो युंक्ते स त्यागी मध्यमो मतः ॥२॥

अर्थ—जो अपने उपार्जनके छह भाग करै तिनमैं दोय भाग तौ पुत्र आदि कुटुम्बकै अर्थि खरच करै अर तीन भाग भंडारमै राखै अर छठो भाग दानकै अर्थि खरच करै सो मध्य दातार कह्यो है ॥ २ ॥

स्वस्वस्य यस्तु षड् भागान् परिवाराय योजयेत् ।
त्रीन् संचयेद्दशांशं तु धर्मे त्यागी लघुश्च सः ॥ ३ ॥

अर्थ—जो अपने धनके दश भागनिमैं छह भाग तौ परिवारकै अर्थि युक्त करै अर तीन भाग संचयमैं राखै अर दशम भाग धर्मकार्यमैं युक्त करै सो दातार जघन्य है ॥ ३ ॥

अथ नवधाभक्तिलक्षण—

प्रतिग्रहणमित्युच्चैः स्थानेऽस्य विनिवेशनम् ।
पादप्रधावनं चर्चा नतिशुद्धिश्च सा त्रयी ॥ ८६ ॥
विशुद्धिश्चासनस्येति नव पुण्यानि दानिनाम् ।

अर्थ—इहा तिष्ठौ तिष्ठौ ऐसै आदररूप तीन वार कहनां सो प्रतिग्रहण है, अर पात्रकूं उच्चस्थानमै स्थापन करै, अर पात्रके चरणारविन्दकूं शुद्ध प्रासुक जलतैं प्रज्ञालन करै, अर पात्रको प्रासुक अष्ट द्रव्यनितै पूजन करै, अर पात्रकू नमस्कार करै, अर दातारका मन वचन कायकी शुद्धता अर भोजन योग्य द्रव्यकी शुद्धता, ए दातारकै पात्रकै अर्थि दान देनेमै पुण्यरूप नवविधि है याहीकूं नवधाभक्ति कहै है ॥

प्रश्न—या श्लोकमै सामान्यपणै पूजन कह्यो ताका अर्थमैं प्रासुक विशेपण विशेष कैसै लिख्यो ?

उत्तर—मूलाचारकी टीकामे प्रासुक विशेषण द्रव्यका लिख्याहै ।

प्रश्न—दातारको स्वरूप कह्यो सो तौ श्रद्धान कियो अब देय द्रव्यको भी स्वरूप कहौ ।

उत्तर—दान च्यार प्रकार है तिनके नामका रत्नकरण्डमै, श्लोक—

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११४॥

अर्थ—"चतुरस्राः" कहिये पण्डित ज्ञानीजन जे है ते उत्तम पात्रनिको वैयावृत्त्य आहार देने करि औपधके देने करि अर उपकरण कहिये ज्ञानोपकरण जो शास्त्रको दान अर दयोपकरण जो पिच्छिकाको दान अर शौचोपकरण जो कमंडलुको दान तिनिकरि अर वस्तिकादान इन च्यार प्रकारके दान करि वैयावृत्त्य च्यार

प्रकार कहे है ॥ ११४ ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं, श्लोक—

आहारं चौषधं शास्त्रं दानं वसतिका जिनैः ।
चतुर्धा गृहीणां दानं प्रणीतंपुण्यहेतवे ॥ ३ ॥

अर्थ--जिनेद्र भगवान जे है तिनिनै गृहस्थीनिकै पुण्यबंधकै निमित्त आहारदान औषधदान शास्त्रदान वस्तिकादान, ऐसै च्यार दान कह्यो है सो गृहस्थ पात्रनिकूं देवै ॥

प्रश्न--इनि च्यार दाननिमैं प्रथम आहारदान कह्या ताका स्वरूप कहो ।

उत्तर—सो आहार छियालीस दोष रहित उत्तम पात्रकै योग्य है । तिनकै नाम मूलाचारके पिंडशुद्धि अधिकारमैं, गाथा—

उग्गमउप्पादणएसणं च संजोयणं पमाणं च ।
इंगालधूमकारण अट्ठविहा पिंडसुद्धी दु ॥
उद्गम उत्पादनं एषणं च संयोजनं प्रमाणं च ।
अंगारं धूमः कारणं अष्टविधा पिंडशुद्धिस्तु ।

अर्थ—दातार अर पात्र इनि दोऊनिके अभिप्रायनिकरि आहारादि उपजै ते अभिप्रायरूप उद्गमदोष सोला प्रकार है । अर केवल पात्रसंबंधी अभिप्रायनिकरि ही आहारादि उत्पन्न होय ते उत्पादन दोष सोला प्रकार है । अर आहारसंबधी दोष दश प्रकार है अर सयोजन करिये वा संयोजनमात्र सो सयोजनदोप एक प्रकारहै अर प्रमाणतै अधिक सो प्रमाण दोष एक प्रकार है । अर अंगारा-की नाई अंगार दोप एक प्रकार है । अर धूमसमान धूम दोष एक

प्रकार है, ऐसै तौ छियालीस दोष है। अर षट् कारण निमित्त तौ आहार करै है अर षट् कारण होतसतै आहारको त्याग करै है। अर उद्गम१, उत्पादन२, सदोषआहार३, संयोजन४, प्रमाणातिलंघन५, अंगार६, धूम७, कारण ऐसै तौ अष्टप्रकार आहारशुद्धि है।

अब उद्गम नामा षोडश दोषनिके नामः—

आधाकम्मुद्देसिय अज्झोवज्झेय पूदिमिस्सेय।
ठविदे बलि पाहुडिदे पादुक्कारे य कीदे य ॥ १ ॥
पामिच्छे परियट्टे अभिहडमुब्भिण्ण मालआरोहे।
आच्छिज्जे अणिसट्टे उग्गमदोसा दु सोलसिमे ॥ २ ॥

अधःकर्म औद्देशिक अध्यधि पूतिमिश्रश्च।
स्थापितं बलिः प्रावर्त्तिनं प्राविष्करणं च क्रीतं च ॥
प्रामृष्यं परिवर्त्तकं अभिघटं उद्भिन्नं मालारोहं।
अच्छेद्यं अनिसृष्टं उद्गमदोषास्तु षोडश इमे ॥

अर्थ—षट्कायके जीवनिको वध करनेवारो अर निकृष्ट व्यापाररूप है सो अधःकर्म दोष छियालीसतै न्यारा है क्योंकि या महान दोष है यातै। अर साधुका नाम लेकरि किया सो औद्देशिक है, अर संयमीनै देखिकरि जो भोजनको आरम्भ करिये सो अध्यधि दोष है, अर प्रासुकमै अप्रासुक मिलावो वा असंयमीकै योग्य भाजनको मिलावो सो पूति दोष है अर रसोई-के स्थानतै अन्य स्थान आपकामै वा परकानै धर्यो हुवो गृहस्थ देवै वा पात्र लेवै सो स्थापित दोष है, अर यक्ष नागादिकके पूजनके अर्थि कीया जो नैवेद्य सो देवै तौ बलिदोष है, अर पात्रकूं

पडगाहे पीछें कालकी हानि वृद्धि करै कि नवधाभक्तिमें शाघ्रता करै अथवा विलम्ब करै सो प्रावर्त्तितदोष है, अर मंडपादिकको प्रकाश करै कि अंधेरो जाणि उजालो करै सो प्राविष्करणदोष है ※। अर आपकै तौ वस्तु मौजूद नही परकेतै वस्तु उधारी ल्याकरि देवै सो प्रामृष्यदोष है। अर अपणी वस्तुकै बदलै अन्य गृहस्थनितै वस्तु ल्याय देवै सो परिवर्त्तकदोष है। अर तत्काल देशांतरतै आई वस्तुकौ देवै सो अभिघटदोष है। अर बंधी हुई वस्तु होय अथवा छांदो लगी वस्तु होय ताको बंधन वा छादो खोलकरि देवै सो उद्भिन्नदोष है। अर रसोईके मकानतै उपरले मकानमै वस्तु धरी हुईकूं निसीरणी चढ़करि वा नालि चढकरि ल्याई वस्तु देवै सो मालारोहणदोष है। अर उद्वेग त्रास भयको कारण जो भोजन सो अच्छेद्य दोष है। अर असमर्थ दातार सो अनीशार्थ दोष है। ये षोडश उद्गमनामा दोष हैं॥

अब उत्पादननामा षोडश दोषनिके नामः—

धादी दूदणिमित्तं आजीवे वणिवगे य तिगिंछे।
कोही माणी मायी लोही य हवंति दस एदे॥२६॥
धात्रीदूतनिमित्तानि आजीवः वनीपकश्च चिकित्सा।
क्रोधी मानी मायी लोभी च भवंति दश एते॥२६॥

अर्थ—मज्जन१ मंडन२ क्रीडन३ स्तनपान४ अम्ब५ ऐसैं पंचविध धात्रीकर्मको दातारकूं उपदेश देय जो आहार ग्रहण करै ताकै धात्रीनामा दोष होय है। अर जो परदेशाके समाचार दातारकूं कहि करि आहार ग्रहण करै ताकै दूतनामा दोष होय है। अर

※—प्राविष्करण दोषके आगे क्रीतदोषका स्वरूप नहीं है जो चाहिये था।

अष्टांगनिमित्तको दातारकूं उपदेश देयकरि भोजन ग्रहण करै ताकै निमित्तदोष होय है । बहुरि अपना जाति कुल तपश्चरणादिकको स्वरूप दातारकूं सुनाय आहार ग्रहण करै ताकै अजीवकदोष होय है। बहुरि दातारकै अनुकूल वचन कहिकरि भोजन ग्रहण करै ताकै वनीपक दोष होय है। बहुरि दातारकूं रोगके नाशके निमित्त औषधि आदि बताय भोजन ग्रहण करै ताकै चिकित्सानामा दोष होय। बहुरि क्रोधकरि तथा मानकरि तथा मायाचारकरि तथा लोभकरि भोजन ग्रहण करै ताकै क्रोध मान माया लोभ जनित च्यार दोष होय है । ये उत्पादनामा दश दोष पात्रकै आश्रय होय हैं।

पुव्वी पच्छा संथुदि विज्जा मंते य चुण्णजोगे य।
उप्पादणाय दोसो सोलसमो मूलकम्मे य ॥ २७ ॥
पूर्वं पश्चात्संस्तुतिः विद्या मंत्रश्च चूर्णयोगश्च ।
उत्पादना च दोषः षोडश मूलकर्म च ॥ २७ ॥

अर्थ—जो पूर्वं दातारकी प्रशंसाकरि आहार ग्रहण करै सो पूर्वस्तुति दोष है अर आहार ग्रहण किये पीछैं दातारकी स्तुति करै सो पश्चात्स्तुति दोष है अर आकाशगामिनी आदि विद्या बताय आहार ग्रहण करै सो विद्यादोष है अर सर्प बीछू आदिके विष दूर करनेवारा मंत्र बताय आहार ग्रहण करै सो मन्त्रदोष है अर शरीरकी शोभा निमित्त चूर्ण आदि बताय आहार ग्रहण करै सो चूर्ण दोष है अर अवशकूं वशि करनेका उपाय बताय आहार ग्रहण करै सो मूलकर्म दोष है। ऐसै षोडश उत्पादन दोष हैं ॥ २७ ॥

अबै आहार संबंधी दश दोषनिके नाम कहै हैं;—

संकिदमक्खिदपिहिदं संववहरणदायगुम्मिस्से ।
अपरणंतलित्तछोडिद एसणदोसाइं दस एदे ॥

शंकितम्रक्षितनिक्षिप्तपिहितसंव्यवहरणदायकोन्मिश्राः
अपरिणतलिप्तत्यक्ता एषणदोषाः दश एते ॥

अर्थ—यह भोजन योग्य है कि अयोग्य है? अथवा खाद्य है कि अखाद्य है? ऐसो शंकावान भोजन ग्रहण करै ताकै शंकित-नामा दोष होय है, बहुरि सचिक्कण हस्ततै वा सचिक्कण वर्त्तनमैं धर‍्यो भोजन ग्रहण करै ताकै म्रक्षित दोष होय है, बहुरि सचित्त पत्रादिकपरि धर‍्यो भोजन ग्रहण करै सो निक्षिप्त दोष है, बहुरि सचित्त पत्रादिककरि ढक्यो भोजन ग्रहण करै सो पिहितदोष है, बहुरि दान देनेकी शीघ्रता करि अपने वस्त्रकूं नहीं सवारि करि तथा भाजनकूं नहीं देखिकरि जो भोजन देवै सो संव्यवहरणदोष है, बहुरि सूतकादि करि युक्त अशुद्ध दातार को दियो आहार ग्रहण करै ताकै दायकनामा अशन दोप होय है, बहुरि सचित्तकरि मिल्यो आहार होय सो उन्मिश्र दोष है, बहुरि अग्निकरि परिपूरण पक्यो नहीं अथवा बलि गयो ऐसो आहार अथवा तिल तंदुल हरीतक्यादि करि अपणा रस गंध वर्णनै नहीं छोड़‍्यो ऐसो जल ग्रहण करै सो अपरिणत दोप है, बहुरि गेरू हरताल खड़ी आदि अर अप्रासुक द्रव्य करि लिप्त जो पात्र ता करिकै आहार देवै सो लिप्तदोप है, बहुरि दातारकरि पात्रके हस्तमै स्थापन कीयो जो आहार सो अस्थिर पाणिपात्रतै गिरतां आहार करै अथवा पहली करपात्रमै आया आहारनै छोडि और आहार लेय ग्रहण करै सो परित्यजन-दोष है। ये दश दोप भोजनके है।

अब संयोजन अर अप्रमाणदोष लक्षणकी गाथा,—

संजोयणाय दोसो जो संजोएदि भत्तपाणं तु।

अदिमत्तो आहारो पमाणदोसो हवदि एसो ॥५२॥
संयोजना च दोषः यः संयोजयति भक्तं पानं तु।
अतिमात्रः आहारः अप्रमाणदोषः भवत्येषः ॥५२॥

अर्थ—जो शीतल भोजनमैं उष्ण भोजन मिलाणा वा उष्णमैं शीतल भोजन मिलाणा अथवा उष्णजलमैं शीतल जल मिलाणा वा शीतल जलमैं उष्ण जल मिलाणा सो संयोजननामा दोष है। बहुरि जो गृद्धिताकरि प्रमाणतैं अधिक भोजन ग्रहण करै सो अप्रमाणदोष है ॥ ५२ ॥

अब अंगार तथा धूमदोषकी गाथाः—

तं होदि स इंगालं जं आहारेदि मुच्छिदो संतो।
तं पुण होदि सधूमं जं आहारेदि णिंदंतो ॥ ५३ ॥
तद्भवति सांगारं यत् आहरति मूर्छितः सन्।
तत्पुनर्भवति सधूमं यत् आहरति निंदितः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो गृद्धिता आदिकरि सहित आहार ग्रहण करै सो अंगारदोष है, बहुरि यो भोजन मेरी प्रकृतितैं विरुद्ध है ऐसैं ग्लानि करतो संतो भोजन करै सो धूम दोष है ॥

अबै षट् कारणनिकी गाथाः—

छहिं कारणेहिं असणं आहारंतो वि आचरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु णिज्जूहंतो वि आचरदि ॥
षड्भिः कारणैरशनं आहारन्नपि आचरति धर्मम्।
षड्भिः चैव कारणैः तु उज्झन्नपि आचरति ॥५४॥

अर्थ—षट् कारणनिकरि भोजन करतो हू धर्मनै आचरण करै है बहुरि षट् कारणनिकरि भोजनको त्याग करतौ भी धर्मनैं आचरण करै है ॥ ५४ ॥

तहां षट् कारणनिकरि भोजन करतो हू धर्मनै आचरण करै तिनिके नाम:—

वेयणवेज्जावच्चे किरियाठाणे य संयमट्ठाए ।
तथ पाणधम्मचिंता कुज्जा एदेहिं आहारं ॥ ५५ ॥
वेदनावैयावृत्ययोः क्रियार्थं च संयमार्थम् ।
तथा प्राणधर्मचिंता कुर्यात् एतैः आहारम् ॥ ५५ ॥

अर्थ—क्षुधा वेदनीयका उपशमके अर्थि भोजन करै है, बहुरि निज परका वैयावृत्यके अर्थि भोजन करै है, बहुरि षट् आवश्यक क्रिया पालनेके निमित्त भोजन करै है, बहुरि तेरह प्रकार संयमके पालने निमित्त भोजन करै है, बहुरि दश प्राणनिके धारण निमित्त भोजन करै है, बहुरि दश लक्षण धर्म पालनेके निमित्त भोजन करै है। ऐसै षट् कारण निमित्त भोजन करतेहू धर्मको ही साधन करै है ॥ ५५ ॥

अब षट् कारणनिकरि भोजनको त्याग करतो हू धर्मनै आचरण करै तिनिके नाम,—

आदंके उवसग्गे तितिक्खणे वंभचेर गुत्तीओ ।
पाणिदया तवहेऊ सरीरपरिहार वेच्छेदो ॥ ५६ ॥
आतंके उपसर्गे तितिक्षायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः
प्राणिदयातपोहेतौ शरीरपरिहारे व्युच्छेदः ॥५६॥

अर्थ—अकस्मात् असाध्य व्याधि उत्पन्न होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि देव मनुष्य तिर्यंचकृत उपसर्ग होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि ब्रह्मचर्य अर गुप्ति इनिकी हानि होतैं भोजनको त्याग करै, बहुरि जा भोजनके ग्रहण करनेतैं षट् कायके जीवनिको वध होतो होय ता भोजनको जीवदयाके निमित्त त्याग करै, बहुरि बारह प्रकार तपकै अर्थि भोजनको त्याग करै, बहुरि जरा अवस्था होतैं दीक्षाकी हानि होती जाणि संन्यासनिमित्त भोजनको त्याग करै ॥ ५६ ॥

अबै चतुर्दश मलदोष कहै है,—

णहरोमजंतुअट्ठीकणकुंडयपूयचम्मरुहिरमंसाणि ।
वीयफलकंदमूला छिण्णाणि मला चउद्दसा होंति ॥
नखरोमजंत्वस्थिकणकुंडयपूतिचर्मरुधिरमांसानि ।
वीजफलकंदमूलानि छिन्नानि मालानि चतुर्दश भवंति॥

अर्थ—नख, केश, जंतु कहिये मृतक त्रस जीवनिको कलेवर, हाड, कण, कहिये जौ गेहू आदिका बारला तुष, कुंडय कहिये शालि आदिका सूक्ष्म तुष, पूय कहिये राधि, चर्म, रुधिर, मांस, बीज कहिये जौ गेहूं आदि उगबा योग्य, फल कहिये आम जांबूंण नारंगी आदि हऱ्या फल, कंद कहिये केळि आदिका अधोभाग जो ऊगनेकूं कारण, मूल कहिये बड़पीपल आदिका अधोभाग जो ऊगनेकूं कारण । ये चौदह मळदोष छियालीस दोषनितैं भिन्न हैं । इनिमै कितनेक तौ महामल है कितनेक अल्पमल हैं, अर कितनेक महादोष है, कितनेक अल्पदोष है । तिनिमै रुधिर मांस हाड चर्म राधि ये महादोष है, जातैं सर्व आहारको परित्याग होत संतैं भी बहुल प्रायश्चित्तके कारण है ।

भावार्थ--इनके देखनेतैं भोजनको तौ त्याग करैं हैं अर प्रायश्चित्त लेवै है। बहुरि विकलत्रयके सूखे कलेवरका तथा रोमका आहारमैं देखना आहारका परित्यागनै कारण है। बहुरि भोजनमैं नखका देखवाकरि आहार तजिये है अर किंचित् प्रायश्चित्त अंगीकार करै है। बहुरि कण कुंड बीज फल मूल त्याग करने योग्य हैं अर जो त्याग करनेकूं नहीं समर्थ हूजिये तौ भोजनको त्याग करिये, भावार्थ—ये द्रव्य ऐसे नहीं है कि रसोईमैं ही आये तथा भोजनके थालमैं आये ही भोजनका त्याग करिये, ये द्रव्य भोजनके योग्य नहीं है तातैं यावत् पात्रके पाणिपात्रमैं नहीं प्राप्त होय तावत् अन्य शुद्ध द्रव्य भक्षण करै अर जो वै द्रव्य पाणिपात्रमैं प्राप्त होय तौ भोजन का त्याग करै। बहुरि जो सिद्धभक्ति कीये पीछैं जो अपने शरीरतैं रुधिर वा राधि श्रवै अथवा निकटवर्त्ती अन्यके शरीरतैं श्रवे तौ भोजनको परित्याग करै अथवा मासको देखनो होय तौ भोजनको परित्याग करै। ऐसे चतुर्दश मलदोष जानने॥ ६०॥

अब द्वात्रिंशत् अंतराय भोजनके नामकी गाथा—

कागा मेज्झा छद्दी रोहण रुहिरं च अंसुवाद च।
जण्हूहिट्ठामरिसं जण्हुवरि वदिक्कमो चेव॥ ७०॥
काकोऽमेध्यं छर्दिः रोधनं रुधिरं च अश्रुपातश्च।
जान्वध आमर्शः जानूपरि व्यतिक्रमः चैव॥७०॥

अर्थ--भोजनके निमित्त गमन करते वा तिष्ठते मुनीश्वरनिकै ऊपरि काक बक बाज आदि कोऊ पंछी बींट कर देवै तौ काकनामा भोजनको अंतराय है १ बहुरि भोजननिमित्त गमन करते मुनीश्वरनिको पग विष्टा आदि मलतै लिप्त हो जाय तौ अमेध्यनामा अन्तराय है२ बहुरि भोजनकै समय साधुकै वमन हो जाय तौ छर्दि-

नामा अन्तराय है३ बहुरि साधुकूं भोजननिमित्त गमन करतैं कोऊ मनैं कर देवै तो रोधननामा अन्तराय है४ बहुरि भोजनकै समय साधुकै दु.ख शोकादिकतैं अश्रुपात पडै अथवा अन्यकै पड़ते देखै अथवा रुदन विलाप सुणै तौ अश्रुपातनामा अंतराय है६ बहुरि भोजन-निमित्त गमन करतै साधुका हाथ अपणे गोड़ेनितैं नीचै स्पर्श हो जाय तौ जान्वधःपरामर्शनामा अन्तराय है७ बहुरि भोजननि-मित्त गोडेनितैं ऊँची डौली आदिकू उलंघन करै तौ जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय है ८ ।।

णाभिअधोणिग्गमणं पच्चक्खियसेवणा य जंतुवहो ।
कागादिपिंडहरणं पाणीदो पिंडपडणं च ॥
नाभ्यधोनिर्गमनं प्रत्याख्यातसेवना च जंतुवधः ।
काकादिपिंडहरणं पाणितः पिंडपतनं च ॥

अर्थ- -भोजननिमित्त नाभितैं नीचा द्वारमैं नीचो मस्तक करि गमन करै तौ नाभ्यधोनिर्गमननामा अंतराय है ९ बहुरि जा वस्तुका अपणे त्याग था सो वस्तु भोजनमैं आजाय तौ स्वप्रत्याख्यानसेवन-नामा अंतराय है१० बहुरि भोजनसमय अपने अग्रभागमैं कोऊ प्राणीका वध होय तौ जीववधनामा अंतराय है११ बहुरि भोजन करतां काकादिक पक्षी ग्रास ले जाय तौ काकादिपिंडहरणनामा अंतराय है१२ बहुरि भोजन करता साधुका हस्ततैं ग्रासका पतन हो जाय तौ पिंडपतननामा अंतराय है १३ ॥

पाणीए जंतुवहो मंसादीदंसणे य उवसग्गो ।
पादंतरंमि जीवो संपादो भायणाणं च ॥

पाणौ जंतुवधः मांसादिदर्शनं च उपसर्गः ।
पादांतरे जीवः संपातः भाजनानां च ॥

भावार्थ—द्वीद्रियादिक विकलत्रय जीव साधुके हस्तमैं आयकरि मरि जाय तौ जंतुवध नामा अंतराय है१४ बहुरि भोजनके समय मृतक पंचेंद्रियजीवको कलेवर दीखै तौ मांसदर्शननामा अंतराय है१५ बहुरि भोजनके समय मनुष्य देव तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय तौ साधुकै उपसर्गनामा अंतराय है१६ बहुरि भोजन करतां साधुकै चरणनिकै वीचि होय मूसा मीडका आदि पंचेंद्रिय जीव नीसरि जाय तौ पंचेद्रियनामा अंतराय है१७ बहुरि दातारके हाथतै भोजनको पात्र गिरि पड़ै तौ भाजनसंपातनामा अंतराय है१८॥

उच्चारं पस्सवणं अभोजगिहपवेसणं तहा पडणं ।
उववेसणं सदंसं भूमीसंफास निट्ठुवणं ॥
उच्चारः प्रस्रवणं अभोज्यगृहप्रवेशनं तथा पतनम् ।
उपवेशनं सदंशः भूमिसंस्पर्शः निष्ठीवनम् ॥

अर्थ--भोजन करतां साधुके शरीरतै रोगादिककरि मल निकस्यावै तौ उच्चारनामा अंतराय है१९ बहुरि भोजन करतां साधुकै मूत्रका स्राव होवै तौ प्रस्रवणनामा अंतराय है २० बहुरि साधु भिक्षानिमित्त भ्रमण करता शूद्रका गृहमैं प्रवेश करै तौ अभोज्यगृहप्रवेशननामा अंतराय है२१ बहुरि भोजननिमित्त जावता साधु मूर्छादिककरि भूमिमैं गिर पड़ै तौ पतननामा अंतराय है२२ बहुरि भोजन करता साधु भौलि आदि रोगके निमित्ततैं बैठि जाय तौ उपवेशननामा अंतराय है२३ बहुरि भोजननिमित्त जावता

साधुकूं श्वान आदि पंचेंद्री जीव काटि खाय तौ दृष्ट अंतराय है२४ बहुरि भोजनके समय साधु सिद्धभक्ति कीये पीछें अपने हाथकरि भूमिका स्पर्श करै तौ भूमिस्पर्शनामा अंतराय है२५ बहुरि भोजनके समय साधु कफ थूंक आदि पटकै तौ निष्ठीवननामा अंतराय है २६॥

उदरक्किमिणिग्गमणं अदत्तगहणं पहार गामडाहो य:
पादेण किंचि गहणं करेण वा जं च भूमीए ॥७५॥
उदरकृमिनिर्गमनं अदत्तग्रहणं प्रहारो ग्रामदाहश्च ।
पादेन किंचिद्ग्रहणं करेण वा यच्च भूमौ ॥

अर्थ—बहुरि भोजनके समय साधुका उदरतैं कृमि निकसै तौ कृमिनिर्गमननामा अंतराय है२७ बहुरि भोजनसमय पराई वस्तुकूं हस्तकरि स्पर्शै तौ अदत्तग्रहणनामा अंतराय है२८ बहुरि भोजन करतां कोऊ दंड खड्ग आदि करि साधुकै देव अथवा अन्यकै देवै तौ प्रहारनामा अंतराय है२९ बहुरि ग्राममैं भोजननिमित्त आवतां अग्नि लागि जाय तौ ग्रामदाहनामा अंतराय है३० बहुरि भोजन करतां साधुके चरणकरि कोऊ वस्तुका स्पर्श होय तौ पादग्रहणनामा अंतराय है३१ बहुरि भोजनसमय साधु भूमिमैं पड़ी कोऊ वस्तुकूं छीवैं तौ करग्रहणनामा अंतराय है ३२ ॥

एदे अण्णे बहुगा कारणभूदा अभोयणस्सेह ।
वीहणलोगदुगुंछणसंयमणिव्वेदणट्ठं च ॥ ७६ ॥
एते अन्ये बहुकाः कारणभूता अभोजनस्येह ।
भयलोकजुगुप्सासंयमनिर्वेदनार्थं च ॥ ७६ ॥

अर्थ—ये भोजनत्यागके कारणभूत बत्तीस अंतराय कहे तैसै ही और हू भोजन त्यागके कारण बहुत हैं;—ते ऐसैं कि—भय लोकनिंदा ग्लानि आदि होतसंतै भोजनका त्याग संयमके पालनेकै अर्थि वा वैराग्यकै अर्थि करै है ॥ भावार्थ—चांडालादि अस्पृश्यको स्पर्शन कलह इष्ट गुरु शिष्य आदिको मरण साधर्मीको संन्यासतै पतन तथा राजा आदि प्रधान पुरुषनिको मरण होत सतैं वा दिन भोजनको त्याग करै । इत्यादि द्रव्य क्षेत्र कालकी योग्यता अयोग्यता आदि विशेष मूलाचारतैं अथवा सकलकीर्त्तिकृत यत्याचारतैं अथवा चामुंडरायकृत चारित्रसारतैं वीरनंदिकृत आचारसार आदि ऋषिप्रणीत ग्रंथनितै जानना ॥

तथा प्रश्नोत्तरश्रावकाचारसैं —

शुद्धं सत्प्रासुकं स्निग्धं क्रीतादिदोषवर्जितम् ।
तपोवृद्धिकरं सारं त्यक्तमिश्रासचित्तकम् ॥ १ ॥
कुटुंबकारणोत्पन्नमन्नदानं सुखप्रदम् ।
स्वयमागतपात्राय दातव्यं गृहिनायकैः ॥ २ ॥

अर्थ—मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनादि करि रहित शुद्ध होय अर स्निग्ध कहिये जा करि साधुकै कोऊ प्रकारको विकार नहीं होय, अर तत्काल मोलि ल्यायकरि देवै सो क्रीत है सो क्रीतादिदोषनिकरि रहित होय बहुरि तपकी वृद्धिको करनेवालो होय अर सारभूत होय अर सचित्त अचित्तसों सिलापरूप मिश्रदोषकरि तथा सचित्तकरि रहित होय ॥ १ ॥ बहुरि अपना कुटुम्बके पोषणे निमित्त उत्पन्न कीयो होय अर सुखको देनेवालो होय ऐसो अन्नदान विना न्यौंत्यौ विना बुलायो स्वयमेव आहारकै

निमित्त आयौ जो पात्र ताकै अर्थि गृहस्थनिनै देवो योग्य है ॥२॥

बहुरि नव कोटिकरि शुद्ध प्रासुक जोग्य उत्तम औषध हू उत्तम पात्रनिकू देयवो योग्य है, सो ही प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैः—

व्याधिग्रस्तमुनीन्द्राय चौषधं श्रावकोत्तमैः ।
ज्ञात्वा रोगं प्रदातव्यं तद्व्याध्याद्युपशांतये ॥ १ ॥

अर्थ--उत्तम श्रावकनिनै पात्रकै रोग जाणिकरि तिस व्याधिकी शांति होने निमित्त रोगग्रस्त उत्तमपात्र महामुनिकै अर्थि औषधदान देवो योग्य है ॥ १ ॥

तथा शास्त्रदान हू उत्तमपात्रनिकूं देवो योग्य है, ऐसै सारचौवीसीमै कहै है --

ददते ये मुनीन्द्रेभ्यो ज्ञानदानं च पुस्तकम् ।
प्राप्य नाकं श्रुतं सर्वं स्युस्ते केवलिनोऽचिरात् ॥१७॥

अर्थ--जे पुरुष मुनींद्रनिकै अर्थि ज्ञानदान अर पुस्तकदान देवै ते पुरुष स्वर्गनै तथा सकल श्रुतनै प्राप्त होय शीघ्रकालतै ही केवलज्ञानसंयुक्त होय है ॥ १७ ॥

यामै ज्ञानदान अर पुस्तकदान दोऊ लिखे है ताका अभिप्राय ऐसा है कि मुनीश्वरकूं मुनीश्वर तो पढाय ज्ञानदान देवै अर गृहस्थ पढावै भी अर पुस्तक भी देवै ॥

तथा वस्तिकादान हू उत्तम पात्रनिकूं देवो योग्यहै,---

संयताय मठं दत्ते प्रासुकं योऽघवर्जितम् ।
स्थितये स भजत्येव नाके मन्दिरमुत्तमम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जो पुरुष संयमीनिकै अर्थि पापवर्जित नवकोटिशुद्ध मठ देवै है सो पुरुष स्वर्गके विषै उत्तम मंदिर रहनेकूं पावै है ॥१९॥

यामैं अघवर्जित पद है तातै उनके निमित्त बनाय करि नहीं देवै।

तथा पद्मनन्दिपंचविंशतिकामैं आहारदान वर्णनः—

सर्वो वांछति सौख्यमेव तनुभृत्तन्मोक्ष एव स्फुटं
दृष्ट्यादित्रय एव सिध्यति स तन्निर्ग्रंथ एव स्थितम्।
तद्वृत्तिर्वपुषोऽस्य वृत्तिरशनात्तद्दीयते श्रावकैः
काले क्लिष्टतरेऽपि मोक्षपदवी प्रायस्ततो वर्त्तते ॥८॥

अर्थ—संपूर्ण देहधारी जे है ते सुखनै ही बांछै हैं, सो सुख मोक्षकै विषै ही प्रकट है, अर सो मोक्ष रत्नत्रयतै ही सिद्ध होय है, अर सो रत्नत्रय निर्ग्रंथके विषै ही हैं, अर वा निर्ग्रंथपणाकी वृत्ति शरीरतै है, अर वा शरीरकी वृत्ति भोजनतै है, सो भोजन श्रावक-निकरि दीजिये है; तातै महान् क्लेशरूप कलिकालके विषै भी मोक्षपदवी श्रावकतै ही प्रवर्त्तै है ॥ ८ ॥

औषधदान श्लोकः—

स्वेच्छाऽऽहारविहारजल्पनतया नीरुग्वपुर्जायते
साधूनां तु न सा ततस्तदपटुप्रायेण संभाव्यते।
कुर्यादौषधपथ्यवारिभिरिदं चारित्रभारक्षमं
यत्तस्मादिह वर्त्तते प्रशमिनां धर्मो गृहस्थोत्तमात् ॥९॥

अर्थ—इच्छापूर्वक आहार विहार जल्पनपणाकरि नीरोग शरीर होय है सो साधुनिकै नही है तातै बाहुल्यता करि मुनीश्वरनिको शरीर क्षीण संभावना करिये है, अर जो औषधकरि पथ्यकरि जलकरि या शरीरनै चारित्रका भार सहनेकूं समर्थ करै है तातै या वर्त्तमानकालमै मुनीश्वरनिकै उत्तम गृहस्थनितै धर्म प्रवर्त्तै है ॥ ९ ॥

ज्ञानदानलक्षणश्लोकः—

व्याख्यापुस्तकदानमुन्नतधियां पाठाय भव्यात्मनां
भक्त्या यत्क्रियते श्रुताश्रयमिदं दानं तदाहुर्बुधाः ।
सिद्धेऽस्मिन् जननान्तरेषु कतिषु त्रैलोक्यलोकोत्सव-
श्रीकारिप्रकटीकृताखिलजगत्कैवल्यभाजो जनाः॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष सर्वोत्तम बुद्धिके धारी भव्यजीव जे हैं तिनकूं भक्तिकरि उपदेश अर पुस्तकदान पठनकै अर्थि करिये सो यो दान श्रुतकै आश्रय ज्ञानवान कहै है, अर याकूं सिद्ध होतां संतां मनुष्य जे है ते कितनेक जन्मांतरकै विषैं तीन लोकमै लोकनिकूं उत्सव अर लक्ष्मीको कर्त्ता अर प्रकट कीयो है समस्त जगत जानैं ऐसा केवलज्ञानका भजबावाला होय हैं ॥ १० ॥

अभयदानलक्षणश्लोकः—

सर्वेषामभयं प्रवृद्धकरुणैर्यद्दीयते प्राणिनां
दानं स्यादभयादि तेन रहितं दानत्रयं निष्फलम् ।

आहारौषधशास्त्रदानविधिभिः क्षुद्रोगजाड्याद्भयं
यत्तत्पात्रजने विनश्यति ततो दानं तदेकं परम् ॥११॥

अर्थ—जो अत्यन्त करुणाभावकरि सब प्राणीनिकूं अभय दीजिये सो अभयदान है अर जाकरि रहित दानत्रय जो है सो निष्फल है, अर आहार औषध शास्त्रदान विधिकरि पात्रजनकै विषै क्षुधातैं रोगतैं अज्ञानतैं उत्पन्न भयो भय नाशनै प्राप्त होय है, तातैं सो एक अभयदान ही उत्कृष्ट है ॥ ११ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

प्रश्न—देय द्रव्यका स्वरूप कह्या सो तौ श्रद्धान कीया अब दानयोग्य पात्रका लक्षण कहौ ।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका बीसवां परिच्छेदमें उत्तम-पात्र श्लोकः—

सर्वसंगपरित्यक्ता युक्ताः सद्व्रतगुप्तिभिः ।
घोरवीरतपस्तप्ता मुखसंस्कारवर्जिताः ॥ ६ ॥

मलेन लिप्तसर्वांगास्त्यक्तदेहाः सुदुर्बलाः ।
तपसा क्षामसर्वांगाः परीषहसहा वराः ॥ ७ ॥

मूलोत्तरगुणाढ्याश्च त्रिसंख्यगुणसागराः ।
लाभालाभे समा धीराः निंदास्तुतिपराङ्मुखाः ॥८॥

तृणहेमादिसंतुल्याः संसाराहःखवारिधेः ।
स्वयं तरन्ति भव्यानां क्षमास्तारयितुं बुधाः ॥ ९ ॥

क्रीतादिभिर्महादोषैस्त्यक्ताऽऽहारावलोकिनः।
उच्चनीचगृहेष्वेव प्रविशंतोऽतिनिःस्पृहाः ॥ १० ॥
इन्द्रियादिजये शूराः सर्वजीवहितप्रदाः।
रत्नत्रयसमायुक्ता ज्ञानध्यानपरायणाः ॥ ११ ॥
सदैर्यापथसन्नेत्रा ये मुनीन्द्राः शुभाशयाः।
रागद्वेषमदोन्मादभयमोहादिवर्जिताः ॥ १२ ॥
तानेवोत्तमसत्पात्रान्विद्धि त्व मुनिनायकान्।
दानयोग्यान्महापूज्यान् दातृसंतारकान् भुवि ॥१३॥

अर्थ—जे बाह्य अभ्यन्तर समस्त परिग्रहकरि रहित हैं अर पच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्तिकरि युक्त है अर घोर वीर तपकरि तप्तायमान है अर मुखप्रक्षालनकरि रहित है ॥ ६ ॥

अर जिनका सर्वांग मलकरि लिप्त है, बहुरि देहमै ममत्त्वकरि रहित है, अर अत्यंत दुर्बल जिनका देह है, अर तपकरि कृश भये हैं सर्व अंग जिनके अर क्षुधातृषादि परीषहके सहनेमै तत्पर हैं ॥ ७ ॥

अर अठाईस मूलगुण चौरासीलाख उत्तरगुणनिमें कितने ही गुणनिकरि सहित हैं। प्रश्न—मूलमै उत्तरगुण सामान्यपद है, तुमने कितनेक कैसै लिखे ? उत्तर— इहां दानका प्रकरण है अर परिपूर्ण उत्तरगुण स्नातक जो केवली तिनकै होय हैं ते कोई दानयोग्य नही हैं उनकै तौ नवलब्धिमै अनंतो दान है तातै कितनेक विशेषग लिख्यो है। अर अनन्त गुणनिके समुद्र है, अर जिनकै लाभ अलाभ समान है, अर महावीर है, अर निंदास्तुतितै परामुख हैं ॥८॥

अर जिनकै तृण कंचन समान है, अर दुःखको समुद्र जो संसार तातै आप तरै है अर भव्यजीवनिके तारबेकूं महासामर्थ्यवान परमप्रवीण है ॥ ९॥

अर क्रीतादिक दोषनिकरि रहित शुद्ध आहारकूं अव-लोकन करै हैं, अर धनाढ्य के अथवा निर्धनके गृहमै आहारकै निमित्त प्रवेश करै हैं, अर अत्यंत निस्पृह हैं ॥ १० ॥

अर इंद्रियादिकके जीतनेमै शूरवीर है, अर सर्व जीवनिकूं हितके दाता हैं, अर रत्नत्रयकरि सहित है, अर ज्ञान ध्यानमैं तत्पर हैं ॥११ ॥

अर सदा ईर्यापथमै स्थापन कियेहैं नेत्र जिननै, अर जिनके परिणाम अत्यंत निर्मल है, अर राग द्वेष मद उन्माद भय मोह आदिकरि रहित हैं ॥ १२ ॥

अर दातारकूं संसारतैं तारनेवारे हैं ऐसे परमपूज्य महामुनि-राजनिकूं हे भव्य ! तू दानयोग्य उत्तमपात्र जानि ॥ १३ ॥

मध्यमपात्रलक्षण;—

सम्यक्त्वादिगुणोपेतान् श्रावकव्रततत्परान् ।
धर्मसंवेगसंयुक्तान् सत्प्रोषधविधायिनः ॥ १४ ॥
देवगुर्वादिसंभक्तान् दानपूजादिकारकान् ।
विद्धि त्वं श्रावकानेव पात्रमध्यमसंज्ञकान् ॥ १५ ॥

अर्थ—जे सम्यक्त्वादि गुणनिकरि सहित अर श्रावकके व्रत पालनेमै तत्पर है, अर धर्मविषै प्रीति अर संसारसे उदासीनताकरि सहित हैं, अर च्यारूं पर्वानिमै प्रोषध उपवासके करनेवारे है, अर अर्हन्तदेव निर्ग्रंथगुरु आदिके परमभक्त हैं अर दानपूजादिकके

धरनेवारे हैं, ऐसे अणुव्रती श्रावकनिकूं हे भव्य! मध्यमपात्र जानि ॥ ११४-११५ ॥

जघन्यपात्रलक्षण,—

सम्यग्दर्शनसंशुद्धा भक्ताः श्रीजिनशासने।
पूजादितत्परा लोके संवेगादिविभूषिताः ॥११६॥
तत्त्वज्ञानादिसद्ध्यानयुक्ताः श्रेष्ठगुणान्विताः।
त एव पात्रतां प्राप्ता जघन्याख्याः सुदृष्टयः ॥११७॥

अर्थ—जे सम्यग्दर्शनकरि भले प्रकार शुद्ध हैं, अर श्रीजिनशासनके भक्त हैं अर पूजादिक षट् कर्मनिविषै तत्पर हैं, अर संवेग आदि गुणनिकरि विभूषित हैं ॥ ११६ ॥

अर तत्त्वज्ञानआदि समीचीन ध्यानयुक्त हैं अर श्रेष्ठगुणनिकरि संयुक्त हैं; ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टी श्रावक जे हैं ते ही जघन्यपात्र संज्ञाकूं प्राप्त होय हैं ॥ ११७ ॥

तथा पद्मनंदिपचविंशतिकाका दानपंचाशताधिकारमैं,—

उत्कृष्टपात्रमनगारमणुव्रताढ्यं
मध्यं व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम्।
निर्दर्शनं व्रतनिकाययुतं कुपात्रं
युग्मोज्झितं नरमपात्रमिदं च विद्धि ॥ ४३ ॥

अर्थ—अनगार महाव्रती जो है ताहि उत्कृष्टपात्र जानि, अर अणुव्रतयुक्त जो है ताहि मध्यमपात्र जानि, अर व्रतरहित सम्यग्दृष्टी जो है ताहि जघन्यपात्र जानि, अर सम्यग्दर्शनरहित व्रतयुक्त जो है ताहि कुपात्र जानि, अर सम्यग्दर्शन अर व्रत इनि

दोऊनिकरि रहित मनुष्य जो है ताहि अपात्र जानि ॥ ४३ ॥

प्रश्न—पात्रनिके लक्षण कहे सो तौ श्रद्धान किये अब दानका फल भी कहो।

उत्तर—उत्तमपात्रदानफल प्रश्नोत्तरश्रावकाचारके विशतिमा पर्वमें,—

पात्रदानं जिनाः प्राहुः पोतं संसारसागरे।
गृहस्थानां महाघोरे दुःखमीनाकुलेऽवरे ॥१॥

अर्थ—महान घोर दुःखरूप मगरमच्छनिकरि व्याकुल ऐसा अनंतसंसाररूप सागरकै विषै गृहस्थनिकै पात्रदाननैं जिनेंद्र झाजि (जहाज) कहै हैं ॥ १ ॥

पात्रदानानुमोदेन तिर्यंचोऽपि दिवं गताः।
भोगभूमौ सुखं भुक्त्वा परमाह्लादकारणम् ॥५१॥

अर्थ—पात्रदानका अनुमोदनकरि तिर्यंच भी भोगभूमिकैं विषै परम आह्लादका कारण सुख भोगि स्वर्गनैं प्राप्त हुये है ॥५१॥

वारैकदानयोगेन दृष्टिहीना नरा गताः।
देवालयं सुभुक्त्वापि भोगभूम्यादिजं सुखम ।५२।

अर्थ—मिथ्यादृष्टी मनुष्य भी एकबार पात्रदानके योगकरि भोगभूमि आदितैं उत्पन्न भया सुखनैं भोगि देवनिका स्थान स्वर्ग जो है ताहि प्राप्त भये है ॥ ५२ ॥

किमत्र बहुनोक्तेन पात्रदानप्रभावतः।
भुक्त्वा नृदेवजं सौख्यं याति मुक्तिं क्रमाद्बुधाः।५७

अर्थ—इहां बहुत कहनेकरि कहा प्रयोजन है, पात्रदानका प्रभावतै मनुष्यनितै तथा देवनितै उत्पन्न भया सुखनै भोगि अनु-

क्रमतैं ज्ञानवान पुरुष मुक्तिनै प्राप्त होय हैं ॥ ५७ ॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामैं श्लोक;—

ते चाणुव्रतधारिणोऽपि नियतं यांत्येव देवालयं
तिष्ठंत्येव महर्धिकामरपदं तत्रैव लब्ध्वा चिरम्।
अत्रागत्य पुनः कुलेऽतिमहति प्राप्य प्रकृष्टं शुभा-
न्मानुष्यं च विरागतां च सकलत्यागं च मुक्तास्ततः॥

अर्थ—जे अणुव्रतके धारक है ते नियमतै सौधर्मादि देव-लोकनैं प्राप्त होय हैं अर तहां इन्द्र सामानिक आदि महाधकपदनैं पाय चिरकाल तिष्ठै हैं, बहुरि तहांतै चयकरि पुण्यके प्रभावतै उत्तमकुलविषै उत्तम मनुष्यजन्म पाय संसार देह भोगतै विरक्तता पाय सकल संगको त्यागकरि ता पीछैं शुक्लध्यानके प्रभावतैकर्म काटि मुक्त होय है ॥ २३ ॥

अब कुपात्रदानका फल प्रश्नोत्तरश्रावकाचारमैं;—

यः कुपात्राय नादत्ते सद्दानं पुण्यहेतवे।
भोगभूमिषु तिर्यक्त्वं कुनृत्वं वालभेत सः॥ १॥

अर्थ—जो मनुष्य पुण्यकै अर्थि समीचीन दान कुपात्रकै अर्थि देवै है सो भोगभूमिमैं तिर्यंचपणानैं प्राप्त होय है अथवा कुभोगभूमिमैं कुमनुष्यपणानैं प्राप्त होय है ॥ १ ॥

कलोदधौ नृणां यत्स्यात्कुनृत्वं लवणार्णवे।
लंबकर्णादिसंयुक्तः कौलवित्युन्मुखादिजम्॥२॥

अर्थ—लवणसमुद्रकै विषै तथा कालोदधिसमुद्रकै विषैं दोऊ तटनिकै समीप छिनवै द्वीप हैं तिनिमैं लंबे कर्णनिकरि युक्त

तथा सूरसमान मुखवाले तथा बीजलीकेसे मुखवाले कुमनुष्य होय हैं ॥

भोगभूमिषु तिर्यक्त्वं सदीर्घायुः सुखान्वितम् ।
तत्सर्वं विबुधैर्ज्ञेयं कुपात्रदानजं फलम् ॥३॥

अर्थ—जो भोगभूमिमै तिर्यचपणू सुखसहित दीर्घ आयु पाइए है सो सर्व ज्ञानवाननिनै कुपात्रदानतै उत्पन्न भयो फल जाननू ॥ ३ ॥

लक्ष्मीः कुपात्रदानेन लभ्यते प्राणिभिः स्फुटम् ।
कुमार्गजाऽतिपापाढ्या श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रदा ॥४॥

अर्थ—जो प्राणीनिकरि कुपात्रदानकरि कुमार्गतै उपजी लक्ष्मी प्रकट पाइये है सो लक्ष्मी अति पापकरि सहित नरक तिर्यंच-गतिसंबंधी घोर दुःखकी दाता है ॥ ४ ॥

अब अपात्रदानको फल कहै है;—

शिलोपरि यथा उप्तं बीजं भवति निष्फलम् ।
तथाऽपात्राय यद्दत्तं तद्दानं निष्फलं भवेत् ॥५८॥

अर्थ—जैसै शिला ऊपरि बोयो बीज निष्फल होय है तैसै अपात्रकै अर्थि दीयो जो दान सो निष्फल होय है ॥५८॥

येन दत्तमपात्राय दानं तत्तेन नाशितम् ।
कुमार्गे हि यथाऽरण्ये गृहीतं तस्करैर्धनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो जानै अपात्रकै अर्थि दान दियो सो दान तानै नष्ट कियो जैसै कुमार्गकै विषै अथवा गहनवनकै विषै चोर धाड़ै-तीनिकरि हर्यो धन नष्ट होय ॥ ५९ ॥

पोषितोऽपि यथा शत्रुरहिर्वा दुःखमंजसा।
ददाति प्राणिनां तद्वदपात्रो दुरितं परम्॥ ६०॥

अर्थ—जैसैं पुष्ट कियो शत्रु वा सर्प तत्काल दुःखनै देवै है तैसैं अपात्र जो है सो प्राणीनिकूं प्रचुर पापनै देवै है॥ ६०॥

प्रश्न—गुरु उपासनाका विधान कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब स्वाध्यायका लक्षण विधान भी कहौ।

उत्तर—स्वाध्याय शब्दकी निरुक्ति ऐसैं है "सुष्ठु सम्यक्प्रकारेण अधीते इति स्वाध्यायः" याका अर्थ ऐसा है—सुष्ठु कहिये भलैप्रकार मनवचनकायकी शुद्धतातै योग्य क्षेत्रकालमैं यथावत् वर्णोच्चारणके अष्ट स्थाननितै शब्दकी शुद्धतापूर्वक अर्थका चिन्तवनसहित जो जिनागमको अध्ययन करिये सो स्वाध्याय है। याके पंच भेदरूप विशेष वर्णन तपकावर्णनमैं लिखेंगे।

प्रश्न—स्वाध्यायको लक्षण कह्यो सो तौ श्रद्धान किया अब संयमको भी लक्षण कहौ।

उत्तर—राजवार्त्तिकका नवम अध्यायमैं,—वार्त्तिक—

समितिषु प्रवर्त्तमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारः संयमः।

अर्थ—पंचसमितिकै विषै प्रवर्त्तमान साधुकै पंच समितिका परिपालनकै अर्थि जो प्राणीको अर इन्द्रियको परिहार सो संयम कहिये है।

भावार्थ—छहूं कायका जीवोंकी रक्षा करना अर पांचूं इन्द्री छठा मनकूं विषयनि प्रति गमन करतानै रोकना जो है सो संयम है। ताके भेद दोय हैं—एक प्राणीसंयम दूसरा इंद्रियसंयम। तहां एकेंद्रियादि प्राणीनिकै पीड़ाको जो परिहार सो प्राणीसंयम है

अर शब्द रस गंध वर्ण स्पर्शरूप पंच इंद्रियनिके विषयनिमैंरा गको अभाव है सो इंद्रियसंयम है।

वार्त्तिक—अतोऽपहृतसंयमभेदसिद्धेः॥१५॥

अर्थ— या प्रकारकरि अपहृतसंयमके भेदनिकी सिद्धि होय है।

अर पूर्वोक्त संयम दोय प्रकार है, एक उपेक्षा संयम दूसरा अपहृत संयम। देश कालका विधानको ज्ञाता अर कायतैं ममत्वरहित अर मन वचन कायकी गुप्तिकरि सहित ऐसा साधुकै अन्यका उपरोधकरि रागद्वेषका अभावरूप है लक्षण जाको सो उपेक्षासंयम है। अर अपहृतसंयम तीन प्रकार है, एक उत्कृष्ट, दूसरा मध्यम, तीसरा जघन्य ऐसै। तहां प्रासुक वस्तिका आहारमात्र है बाह्यसाधन जाकै अर स्वाधीन है इतर कहिये अंतरंग ज्ञान चारित्ररूप साधन जाकै ऐसा बाह्य प्राणीनिका उपनिपात होतसंतैं आत्मानैं संकोचि जीवनकी पालना करता साधुकै उत्कृष्ट अपहृतसंयम है; अर कोमल पिच्छिकातै मार्जनकरि जीवनिकी विराधनाका परिहार करताकै मध्यम अपहृतसंयम है; अर अन्य उपकरणकी इच्छाकरि जीवनिकी विराधनाका परिहार करताकै जघन्य अपहृतसंयम है।

वार्त्तिक—तत्प्रतिपादनार्थः शुद्ध्यष्टकोपदेशः।

अर्थ—तिस अपहृतसंयमका प्रतिपादनको है प्रयोजन जामैं ऐसो अष्ट शुद्धिको उपदेश देखवो योग्य है।

सो ही कहिये है—

वार्तिक—अष्टौ शुद्धयः—भावशुद्धिः कायशुद्धिर्विनयशुद्धिरीर्यापथशुद्धिर्भिक्षाशुद्धिःप्र तिष्ठापनशुद्धिः

शयनासनशुद्धिर्वाक्यशुद्धिश्चेति ।

अर्थ—तहां कर्मका क्षयोपशमतैं उत्पन्न भई अर मोक्षमार्गमैं रुचिकरि अंगीकृत है प्रसन्नता जामै अर रागद्वेषादि उपद्रवनिकरि रहित ऐसी भावशुद्धि है, तिस भावशुद्धिकूं होतसंतैं अतिशुद्ध भींतिकै विषै प्राप्त किया चित्रकर्मसमान आचार प्रकाशमान होत है ॥ १ ॥ बहुरि वस्त्राभरणरहित अर मज्जन आदि संस्काररहित अर यथाजात नग्नरूप अर रज प्रस्वेद आदि मलकी धारणेवाली अर अंगविकाररहित अर सर्वत्र यत्नाचारसहित है प्रवृत्ति जामैं ऐसी मानू मूर्त्तिमान प्रशमसुखकौ ही अतिशयकरि दिखावती है ऐसी कायशुद्धि है, तिस कायशुद्धिकूं होतसंतैं या साधुकै आपतैं भय नहीं उपजत है अर ताकैं अन्यतैं हू भय नहीं उपजत है ॥ २ ॥ बहुरि अरहंतादिक पंच परमगुरुनिकै विषैं यथायोग्य पूजन स्तवन वंदनामैं प्रवीणता अर ज्ञानादिकविषै यथाविधि भक्तिसहित प्रवीणता अर सर्वत्र गुरांकै अनुकूल प्रवृत्ति अर प्रश्न स्वाध्याय वाचना कथा विज्ञप्ति आदिकै विषैं जो प्रतिपत्ति कहिये यथावत् अवबोध ताकरि कुशल अर देशकाल भावके ज्ञानकरि निपुण अर आचार्यनिकी आज्ञाप्रमाण चर्याकरि सहित ऐसी विनयशुद्धि है, सो है मूळ जिनको ऐसी सर्वसंपदा है सो या विनयशुद्धि पुरुषनिकै आभूषण है अर विनयशुद्धि ही ससारसमुद्रतै तिरनेविषै नाव है ॥३॥ बहुरि नानाप्रकार जीवस्थान अर नानाप्रकार योनिस्थान इनका आश्रयको जो ज्ञान ताकरि उत्पन्न भया यत्नाचारतै दूरि भई है प्राणीनिकी पीड़ा जामैं अर ज्ञानरूपसूर्यके प्रभावतै अपनी इंद्रियनिके प्रकाशकरि देख्या हुआ प्रदेशमैं है गमन जामै बहुरि शीघ्रगमन विलम्बनकरि गमन संभ्रमकरि आश्चर्य लीला विकार दिशांतराव

लोकन आदि दोषनिकरि रहित है गमन जामैं ऐसी ईर्यापथशुद्धि है, याकूं होतसंतै जैसैं सुनीतिविषैं विभवसंपदा होय तैसैं संयम प्रतिष्ठावान होय है ॥ ४ ॥ बहुरि सर्वतरफतैं देख्यो है अथवा परीक्षा कीयो है अंतरंग बहिरंग प्रचार जहां अर शुद्ध किये जे पूर्वापर अपने अंगके प्रदेश तिनको है विधान जामैं अर आचार-सूत्रोक्त देशकालसंबन्धी प्रवृत्तिके जाननेमैं प्रवीण अर लाभ अलाभ मान अपमान विषै समान है मनकी वृत्ति जहां अर लोकनिंदित कलके त्यागमै तत्पर बहुरि चंद्रमाकी गतिकी नाईं हीन' अधिक ग्रहको अविशेष है उपस्थान जामैं बहुरि दीनअनाथदानशाला विवाह पूजन स्थान आदिका त्यागकरि उपलक्षित बहुरि दीनवृत्ति-करि रहित अर प्रासुक आहारके हेरने विषै है उपयोग जहां अर आगमोक्त निर्दोष आहारकरि परिपूर्ण प्राप्त भयो है प्राणनिकी रक्षारूप फल जामै ऐसी भिक्षाशुद्धि कहिये है, जैसैं साधुजनकी सेवा है कारण जहा ऐसी गुणसंपदाकी नाईं चारित्रसंपदा इस भिक्षा-शुद्धिके निमित्ततैं होय है, सो भिक्षाशुद्धि लाभ अलाभविषैं सुरस विरसविषैं समान संतोषतै अन्तरंगकी शुद्धितानैं कारण है, जैसैं गौ कहिये वृषभ जो है सो लीलावान अलंकारसहित सुन्दर यौव-नवती रूपवान स्त्रीनिकरि प्राप्त कीयो है घास जाकै आगैं ऐसो तिन स्त्रीनिके अंगसंबंधी सौन्दर्य ताके देखनेमैं उपयोगरहित केवल घासहीकूं खाय है, अथवा जैसैं समीप वा दूर तिष्ठतो जैसैं प्राप्त होय तैसैं तृणकूं भखै है अर तृणके इकट्ठे करणेपर निगाह नही है तैसैं भिक्षाको अर्थी मुनि जो है सो सुन्दर भिक्षा मनोहरवस्त्रा-भरणके धारक लोगनिके कोमल मनोहररूप भेष विलासके देखनेमैं नहीं है उत्साह जाकै अर सूखो वा नरम आहार ताके देखनेकरि

रहित जैसैं विधिपूर्वक निर्दोष आहार प्राप्त होय ताहि गौकी नाईं भक्षण करै है सो गौचारभिक्षा कही है अथवा याकूं गवेषणा हू कहै है; बहुरि जैसैं रत्ननिके भारकरि परिपूर्ण भऱ्या गाड़ाकं यत्किंचित् तैलघृततै वांगिकरि मनोवांछित स्थानकूं वणिकजन प्राप्त करै हैं तैसैं साधुजन गुणरूप रत्ननिकरि भऱ्यो जो शरीररूप-गाड़ो वाहि निरवद्य भिक्षाकरि वांगि मनोवांछित समाधिरूप पत्त-नकूं प्राप्त करै है सो अक्षम्रक्षण है, बहुरि जैसैं गृहस्थ भंडारविषैं लागी लायकूं शुद्ध अशुद्ध जलकूं डारि बुझावै तैसैं यतीश्वर उद-राग्निकूं सरस नीरस रूक्ष सचिक्कण शुद्ध भोजनकरि शांत करै है सो उदराग्निप्रशमन कहिये है, बहुरि जैसैं भ्रमर पुष्पकं बाधा नहीं करतो सुगंधकूं ग्रहण करै तैसैं महामुनि दातारकै बाधा-रहित भोजनकूं ग्रहण करनेमैं प्रवीण होय सो भ्रमराहार कहिये है, बहुरि जैसैं गृहविषै पड़े खाड़ेकूं पाषाण काकरे धूल किजोड़ा आदिकरि जैसैं तसैं भरिकरि गृहमै प्रवर्त्तै तैसैं महामुनि उदररूप गर्त्तकूं स्वादिष्ट अथवा स्वादरहित रूक्ष सचिक्कण नरम कठोर शुद्धभोजनकरि भरिकरि प्रवर्त्तै सो गर्त्तपूरण कहिये है, ऐसै भि क्षाशुद्धिके पाच भेद है ॥ ५ ॥ अब प्रतिष्ठापनशुद्धि कहिये है— प्रतिष्ठापनाशुद्धिविषैं तत्पर संयमी नख रोम नासिका मल कफ शुक्र मल मूत्र इनके सोधनमैं अर देहके परित्यागमैं जाण्यो है देशकाल जिनूनै ऐसे प्राणीनिकी बाधारहित यत्नाचारसूं प्रवर्त्त सो प्रतिष्ठापनाशुद्धि है ॥ ६ ॥ अब शयनासनशुद्धि कहिये है— शयनासनकी शुद्धिविषै तत्पर संयमी जो है तानैं जिन स्थानक-निमै स्त्रिया नीचजन चोर जुवारी मद्यपानी शाकुनिक आदि पापी-जन आदि बसैं ते स्थान दूरहीतैं त्यागिये है अर जिनि स्थान-

कनिमैं शृङ्गारकरिसहित अनेक अंगविकारकी करनेवारी उज्ज्वल वस्त्राभरणकी धारक वेश्यानिकी क्रीडा मनोहर गीत नृत्य वादित्र आदिके शब्द होंय ते स्थानक दूरिहीतैं छांड़िये हैं, अकृत्रिम पर्वतनिकी गुफा वृक्षनिके कोटरादिक अर कृत्रिम शून्य गृहादिकमैं बसिये है, अर जिनि स्थानकनिकूं अपनी इच्छातैं छोड़ गए वा परकृत उपद्रवतै छूटि गये ऐसे स्थानकनिमैं है आवास जिनका, बहुरि इनि स्थानकनिमै संयमी बसैंगे ऐसा उद्देशकरि रहित होय आरंभरहित होय, ऐसे स्थानकनिमैं संयमी शयनासन करै सो शयनासनशुद्धि है ॥ ७ ॥ अबैं वाक्यशुद्धि कहिये है—पृथ्वीकायिके आरंभ आदिकी प्रेरणाकरि रहित, अर कठोर कड़वी आदि परजीवनिकै पीड़ा करनेके प्रयोगमैं उत्साहरहित, अर व्रतशीलादिकको उपदेश आदि प्रधान है फल जामै बहुरि हितकारी प्रमाणीक मिष्ट मनोहर संयमीनिकै योग्य जो शब्दका उच्चारण करना सो वाक्यशुद्धि है, इस वाक्यशुद्धिके आधार ही सर्व संयमसंपदा है ॥ ८ ॥

ऐसैं संयमका प्रकरणमै अष्ट शुद्धि वर्णन करी ते एकदेश गृहस्थनिकूं हमेसा पालनेयोग्य है। अर द्वादशभेदरूप पूर्वोक्त संयमहू एकदेश गृहस्थनिकूं पालनेयोग्य है।

चौपई।

शुद्ध उपासन गुरुकी एम। शास्त्रपठन अरु पाठन प्रेम।
संयम द्वैविध करन विधान। उचित कह्यो आगमपरमान।

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीतविद्वज्जनबोधके
सम्यग्दर्शनोद्योतके प्रथमकाण्डे गुरूपासनस्वाध्यायसंयमनिर्णयो नाम एकादशोल्लासः।

श्रीरस्तु

ॐनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ द्वादशप्रकार तप तथा चतुर्विधदानस्वरूप लिख्यते;—

दोहा ।

अर्हंत सिद्ध मुनीन्द्रके, चरणयुगल उर धारि ।
द्वादश तप अर दानको, लिखूं विधान विचारि ॥

प्रश्न—संयमका स्वरूप कह्या सो श्रद्धान कीया अब तपका भी स्वरूप कहौ ।

उत्तर—सो तप दोय प्रकार है एक बाह्य एक अभ्यंतर । तिनिके हू प्रत्येक छह छह भेद हैं । तहां प्रथम बाह्यतपका षट् भेदनिके जनावनेनिमित्त तत्त्वार्थसूत्रमै,—

सूत्र—**अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।**

अर्थ—अनशन१ अवमौदर्य२ वृत्तिपरिसंख्यान३ रसपरित्याग४ विविक्तशय्यासन५ कायक्लेश६ ऐसैं षट्भेदरूप बाह्यतप है ।

वार्त्तिक—**दृष्टफलानपेक्षं संयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकर्मविनाशध्यानाऽऽगमावाप्त्यर्थमनशनवचनम् ।**

अर्थ—जो कछु प्रत्यक्ष है फल जाको ऐसा मंत्रसाधनादिकका उद्देशकरि रहित उपवास करिये सो अनशनतप कहिये है ।

प्रश्न—मंत्रसाधनादिकनिमित्त नहीं करिये तौ कहा निमित्त करिये ?

उत्तर—संयमकी अतिशयकरि सिद्धि अर रागका अभाव

अर कर्मनिका नाश अर ध्यान अर आगमकी प्राप्तिके अर्थि निश्चय जाणिये है।

वार्तिक—**तत् द्विविधमवधृतानवधृतकालभेदात्।**

अर्थ—सो अनशन दोय प्रकारव्यवस्थारूप है।

प्रश्न—काहेतैं?

उत्तर—अवधृतकाल अनवधृतकालके भेदतैं है। तहाँ अवधृतकाल अनशन तौ एकभक्तभोजन उपवास बेलो तेलो पक्ष मासोपवासादिकालकी मर्यादरूप है, अर देहके परित्यागपर्यंत चतुर्विध आहारका परित्यागकरि जो उपवासादि करिये है सो अनवधृतकाल अनशन है।

अबै अवमौदर्य तप कहिये है;—

वार्तिक—**संयमप्रजागरदोषप्रशमसन्तोषस्वाध्यायसुखसिद्ध्याद्यर्थमवमौदर्यम्।**

अर्थ—इहाँ अवमौदर्यपदकी निरुक्ति ऐसी है कि—"अवमं ऊनं उदरं अस्यासौ अवमोदरः, अवमोदरस्य भावः कर्म वा अवमौदर्य" याका अर्थ ऐसा है कि—अवम कहिये ऊन है उदर जाको सो अवमोदर है अर अवमोदरको जो भाव अथवा कर्म सो अवमौदर्य है। भावार्थ—एक ग्रास ग्रहणकरि अवशेषभोजनका त्याग करै सो तौ उत्तम अवमौदर्य है अर एकग्रासका तौ त्याग करै अर अवशेष सर्व भोजन करै सो जघन्य अवमौदर्य है, अर मध्यके नाना भेद है।

प्रश्न—सो अवमौदर्य काहेकै अर्थि करिये है?

उत्तर—संयमकी सिद्धिकै अर्थि निद्राके अभावकै अर्थि

वातपित्तकफका प्रकोपकी प्रशान्तिकै अर्थि संतोषकै अर्थि सुखत स्वाध्यायकी सिद्धिकै अर्थि इत्यादिककी सिद्धिकै अर्थि करियेहै।

अब वृत्तिपरिसंख्यानतप कहिये है;—

वार्त्तिक—**एकागारसप्तवेश्मैकरथ्यार्द्धग्रामादिविषयः संकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानम्।**

अर्थ—भिक्षाका अर्थी मुनिकै एकघर आदि सप्तघरपर्यंत अर एक रस्ता आदि सात रस्तापर्यन्त अर ग्रामका पलसातैं लेय अर्द्धग्रामपर्यन्त आदि गोचर जो संकल्प कहिये चित्तका रोकना सो वृत्तिपरिसंख्यानतप आशाकी निवृत्तिकै अर्थि जानबोयोग्य है।

अब रसपरित्यागव्रत तप कहियेहै,—

वार्त्तिक—**दान्तेन्द्रियत्वं तेजोहानिसंयमोपरोधव्यावृत्त्याद्यर्थं घृतादिरसत्यजनं रसपरित्यागः।**

अर्थ—इन्द्रियनिका दमनपणा, तेजकी हानि, संयमका उपरोधको अभाव इत्यादिककै अर्थि घृत दही गुड तैल आदि रसनिको जो त्यजन सो रसपरित्यागतप है।

अब विविक्तशय्यासनतप कहैहै,—

वार्त्तिक—**आबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थं विविक्तशय्यासनम्।**

अर्थ—आबाधाका अभावकै अर्थि ब्रह्मचयकै अर्थि, स्वाध्यायकै अर्थि ध्यानकै अर्थि इत्यादिक सद्गुणनिकी सिद्धिकै अर्थि प्राणीनिकी पीड़ाकरिरहित शून्यगृह गिरिगुहा आदि एकान्तस्थानकनिविषैं संयमीको शय्यासन जानबो योग्य है।

अब कायक्लेश तप कहिये है;—

वार्त्तिक—**कायक्लेशः स्थानमौनातापनाद्यनेकधा ।**

अर्थ—प्रतिमायोग धारि खड़ा रहना अर मौनधारण करना अर ग्रीष्मकालमैं पर्वतके शिखरपरि आतापन योग धारना अर वर्षाऋतुमै वृक्षमूलमै योग धरना इत्यादिककरि शरीरकै जो सर्व तरफतैं खेद होय सो कायक्लेश तप कहिये है ।

वार्त्तिक—**देहदुःखतितिक्षासुखानभिष्वंगप्रवचनप्रभावनाद्यर्थम् ।**

अर्थ—दुःखनिकूं निकट आवतैं संतै देहतैं सहनेकै अर्थि अर विषयसुखनिमै वांछाका अभावकै अर्थि अर प्रवचनकी प्रभावनाकै अर्थि कायक्लेशतपको अनुष्ठान करिये है । अर जो कायक्लेशका अनुष्ठान नही करिये तौ ध्यानविषैं प्रवेशका अवसरमै भलैप्रकार प्रेरण किया चित्तकै उपसर्गपरीषहादिक दुःखनै आवतां संता समाधानता नही होय है ।

प्रश्न—परीषहके सहनेमे अर कायक्लेशतपके करनेमै कहा अंतर है ?

उत्तर—**स्वकृतक्लेशापेक्षत्वात् बुद्धिपूर्वो हि कायक्लेश इत्युच्यते, यदृच्छयोपनिपाते परीषहः ।**

अर्थ—आपकरि किया क्लेशकी अपेक्षापणातै बुद्धिपूर्वक कायक्लेश कहिये है अर स्वइच्छाबिना दुःखनिका सहना है सो परीषह है, तातैं भेद है ॥

ऐसै तौ षट्भेदरूप बाह्यतप जानना अब अभ्यंतरतपके षट्भेद कहिये है,—

सूत्र—**प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।**

अर्थ—प्रायश्चित्त १ विनय २ वैयावृत्त्य ३ स्वाध्याय ४ व्युत्सर्ग ५ ध्यान ६ ये उत्तर कहिये बाह्यतैं उत्तर अंतरंगतपके षट् भेद हैं।

अब प्रायश्चित्तादिकनिके भेद जनावनेकूं सूत्र कहै है,—

सूत्र—**नवचतुर्दशपंचद्विभेदाः यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।**

अर्थ—प्रायश्चित्तके नव भेद है, विनयके च्यार भेद है, वैयावृत्त्यके दश भेद है, स्वाध्यायके पांच भेद है, व्युत्सर्गके दोय भेद है. ऐसै अनुक्रमतैं ध्यानकै पूर्व पंचविध अंतरंगतपके अवांतरभेद है. अर ध्यानके भेद जुदे कहेंगे।

अब प्रथम कह्या जो प्रायश्चित्त ताके नव भेद जनावनेकूं कहै है,—

सूत्र—**आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ।**

अर्थ—आलोचना १ प्रतिक्रमण २ तदुभय कहिये आलोचना प्रतिक्रमण ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ छेद ७ परिहार ८ उपस्थापना ९ ये प्रायश्चित्तके नव भेद है।

अब प्रायश्चित्तका प्रयोजन कहै है,—

वार्त्तिक—**प्रमाददोषव्युदासभावप्रसादनैःशल्यान-**

वस्थाव्यावृत्तिर्मर्यादाऽत्यागसंयमदाढर्याराधनादि-सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तम् ।

अर्थ—प्रमादतैं उत्पन्न भये जे दोष तिनिको अभाव, भावांकी निर्मलता, माया मिथ्या निदान तीन शल्यका रहितपणौं, अनवस्थाको अभाव, मर्यादाकूं नहीं छोड़ना, संयममैं दृढ़पणौं, आराधना इत्यादिकनिकी सिद्धिकै अर्थि नव प्रकार प्रायश्चित्त करिये है।

वार्तिक—**तत्र गुरवे प्रमादनिवेदनं दशदोषनिर्वर्त्तितमालोचनम् ।**

अर्थ—तिनि नव प्रायश्चित्तके भेदनिविषै आलोचनाको स्वरूप ऐसो है—एकांतकै विषै तिष्ठते अर प्रसन्नचित्तकरिसहित ऐसा गुरुकै अर्थि विनयसहित देशकालका ज्ञाता शिष्यकै दशदोषरहित अपना प्रमादको जो निवेदन कहिये जनावनूं सो आलोचना कहिये है।

प्रश्न—ते दश दोष कौनसे है ?

उत्तर—उपकरणनिकू भेट करतसंतैं मोकूं लघु प्रायश्चित्तका उपदेश करेगे ऐसैं विचारि उपकरणकौ भेटकरि जो आलोचना करना सो प्रथमदोष है १ बहुरि मै स्वभावकरि दुर्बल रोगग्रस्त उपवासादि करनेकूं समर्थ नहीं हूं जो लघु प्रायश्चित्त देवै तौ दोषको निवेदन करूंगो ऐसैं वचन कहनो सो द्वितीयदोष है २ बहुरि अन्य पुरुषनिनै नहीं देख्या दोषकूं छिपायकरि प्रकटदोषको निवेदन करैं सो मायाचारनामा तृतीय दोष है ३ बहुरि आलस्यतैं तथा प्रमादतैं अल्पदोषके जनावनेमैं उत्साहरहित साधुकै स्थूलदोषका कहना सो बादरनामा चतुर्थदोष है ४ बहुरि महान दुःखकरि आचरण किया जाय ऐसा प्रायश्चित्तका भयतैं महान दोषनैं छिपायकरि

वाकै अनुकूल दोषका जनावना सो पंचम दोष है ५ बहुरि ऐसो व्रतमैं दोष होतसंतैं प्रायश्चित्त कह्या नहीं होय ऐसै उपायकरि गुरूनिकी सेवा उपासना करना सो षष्ठदोष है ६ बहुरि पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक कर्मनिविषै बहुत मुनीश्वरनिका समागम होतसतैं आलोचनाका शब्दकरि आकुल समयकै विषै पूर्वदोषका कहना सो सप्तमदोष है ७ बहुरि गुरूनिनैं प्रतिपादन कीयो सो या प्रायश्चित्त आगमकै विषै योग्य है कि नहीं है ऐसो शंकावान भयो संतो साधु अन्य साधुनिकूं पूछै ताकै अष्टमदोष है ८ बहुरि यत्किंचित् प्रयोजनकौ उद्देशकरि अपनेंसमान साधुकै अर्थि दोषनिवेदनकरि ग्रहणकियो महानहू प्रायश्चित्त फलकारी नहीं है सो नवम दोष है ९ बहुरि याके अपराधकै समान मेरा अपराध है ताकूं योही साधु जानै है तातैं गुरूनिनैं जो याकूं प्रायश्चित्त दिया सो ही मोकूं योग्य है यातैं लघु नहीं करणू या बराबर ही करणूं ऐसै अपना दोषका छिपावना सो दशमदोष है १० ॥

तथा धारा—**आत्मन्यपराधं चिरमनवस्थाप्य कृतिभावमन्तरेण बालवदृजुबुद्ध्या दोषं निवेदयतो न ते दोषा भवन्ति ।**

अर्थ—आपकै विषै अपराधकूं बहुतकाल नहीं स्थापनकरि कपटरहित बालकसमान सरल बुद्धिकरि दोषनै निवेदन करता साधुकै ते दश दोष नहीं होय है।

तथा धारा—**अन्ये च, संयतालोचनं द्विविषयमिष्टमेकान्ते संयतिकालोचनं आश्रयं प्रकाशते लज्जापरिभवादिगणनया निवेद्यातिचारं यदि न**

शोधयेदपरीक्षिताऽऽयव्ययाधमर्णवदवसीदति, महदपि तपः कर्मानालोचनपूर्वकं नाभिप्रेतफलप्रदं अतितिक्तकायगतौषधवत् कृतालोचनस्यापि गुरुदत्तप्रायश्चित्तमकुर्वतः अपरिकर्मशस्यवन्महाफलं न स्यात् कृतालोचनचित्तगतं प्रायश्चित्तं परिमृष्टदर्पणतलरूपवत् परिभ्राजते ।

वार्तिक--**मिथ्यादुष्कृताविधानाद्यभिव्यक्तिप्रतिक्रिया प्रतिक्रमणम्।**

अर्थ—कर्मके वशतैं प्रमादका उदयजनित अपराध मेरै मिथ्या होहू इत्यादि प्रकट प्रतिक्रिया कहिये इलाज करिये सो प्रतिक्रमण कहिये है।

अब तदुभय कहिये है,—

वार्तिक—**तदुभयसंसर्गे सति शोधनात्तदुभयम्।**

अर्थ—कोऊ अपराध तौ आलोचनामात्रतैं ही शुद्ध होय है अर कोऊ अपराध प्रतिक्रमणकरि शुद्ध होय है अर कोऊ अपराध आलोचना प्रतिक्रमण दोऊका संसर्ग होतसंतैं शुद्धिनैं प्राप्त होय है सो तदुभय कहिये है।

प्रश्न—ये अयुक्त वर्त्तै है।

उत्तर—इहाँ अयुक्त कहा है?

प्रश्न—प्रथम तौ आलोचना नही करता साधुकै प्रायश्चित्त कछू भी कार्यकारी नहीहै, आलोचना किये ही प्रायश्चित्त कार्यकारी है, ऐसैं कह्या। बहुरि यह उपदेश दिया कि आलोचना किये बिना प्रतिक्रमणमात्र ही शुद्ध करै है ऐसैं यह पूर्वोक्त उपदेश अयुक्त है, अर प्रतिक्रमणविषैं भी आलोचनापूर्वकपणू ही अंगीकार करिये है तौ तदुभयको उपदेश वृथा है।

इनि दोऊ प्रश्ननिका उत्तर ग्रंथकार कहैहै कि--दोऊ ही ये दोष नही है क्योंकि आलोचनापूर्वक ही सर्व प्रतिक्रमण है। परन्तु इहां इतना विशेष है,—

धारा--**पूर्व गुरुणाऽभ्यनुज्ञातं शिष्येणैव कर्तव्यं, इदं पुनर्गुरुणैवानुष्ठेयम्।**

अर्थ--जो पहली गुरुनिकी आज्ञातैं शिष्य जानि रहे है जो प्रतिक्रमणमात्रतै फलाणा दोष निवर्त्तन होय है सो ऐसा दोषका प्रतिक्रमण तौ शिष्य ही करि लेवै है सो तौ आलोचनपूर्वक भया ही, बहुरि जो पहली जा दोषका प्रतिक्रमणकी गुरुनिकी आज्ञा नाहीं सो आलोचनपूर्वक ही शिष्य करैहै अर गुरु करै सो आप ही करले है तिनिके आलोचना नाही है। भावार्थ—जा शिष्यनैं पूर्व कालमैं जा अपराधका आलोचना कीया था अर गुरुनैं उपदेश कीया था कि ऐसा दोषका केवल प्रतिक्रमण ही करिये है ता दोषका शिष्य केवल प्रतिक्रमण ही करै है ऐसा अभिप्रायतैं केवल प्रतिक्रमणतैं ही शुद्ध होना कह्या है, अर इतना और समझो कि यामै आलोचना भी है क्योंकि पूर्वं आलोचना करी थी सो अभिप्रायमैं विद्यमान है तातै सर्व प्रायश्चित्त आलोचनापूर्वक होय है, ऐसा उपदेशभी निरर्थक नहीं है, ऐसैं तौ शिष्यकै केवल प्रतिक्रमणका उपदेश सफल है अर गुरु आप अपना अपराधका केवल प्रतिक्रमण ही करै है क्योकि अपने गुरुके अभावमै आप सर्वके ज्ञाता होतसंतै आलोचना कौनकै पासि करै, यातैं गुरुनिकै भी केवल प्रतिक्रमणका उपदेश सफल है अर इनकै भी पूर्वकालमैं गुरांकै निकट आलोचना करी थी सो अभिप्रायमै विद्यमान है तातै आलोचनापूर्वक ही है।

अवैं विवेक कहिये है;—

वार्तिक—**संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः।**

अर्थ—संसक्तानां अन्नपानोपकरणादीनां कहिये सदोष निर्दोष मिले हुये अन्न उपकरणआदिकै मध्य सदोपमैं निर्दोपका ज्ञान भयाहोय तथा निर्दोपमैं सदोषका ज्ञान भया होय ताका भेद करना कि यथावत्

जानना सो विवेक है। अथवा त्यागी वस्तुका ग्रहण हो जाय तौ वाका फेरि त्याग करना सो विवेक है।

अबै व्युत्सर्ग कहिये है;—

वार्त्तिक—**व्युत्सर्गः कायोत्सर्गादिकरणम्।**

अर्थ—कालका नियमकरि कायोत्सर्गआदिका करना सो व्युत्सर्ग कहिये है।

अबै तप कहिये है,—

वार्त्तिक—**तपोऽनशनादिः।**

अर्थ—अनशन अवमौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान आदि तप जानने।

अबै छेद कहिये है;—

वार्त्तिक—**दिवसपक्षमासादिना प्रव्रज्याहापनं छेदः।**

अर्थ—चिरकालका दीक्षितकै दिवस पक्ष मास आदिका विभागकरि दीक्षाका न्यून करना सो छेद है।

अबै परिहार कहिये है,—

वार्त्तिक—**पक्षमासादिविभागेन संसर्गमन्तरेण दूरतः परिवर्जनं परिहार इत्यवध्रियते।**

अर्थ—पक्ष मास आदिका विभागकरि संसर्ग विना दूरतैं परिवर्जन करना कि संघ बाहिर करना सो परिहार है, ऐसा निश्चय करिये है।

अबै उपस्थापन कहियेहै,—

वार्त्तिक—**पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना।**

अर्थ—महाव्रतनिको मूलतै छेदकरिकै बहुरि दीक्षाकूं प्राप्त करना सो उपस्थापना कहिये है।

अबै ये नवभेद प्रायश्चित्तके कहे सो कहां कहां लेने ताका संक्षेप कहिये है;—

धारा—**विद्यायोगोपकरणग्रहणादिषु प्रश्नविनयमन्तरेण प्रवृत्तिरेव दोष इति तस्य प्रायश्चित्तमालोचनमात्रम्।**

अर्थ—विद्याका पढ़ना, आतापनआदि योग धारना, उपकरणादि ग्रहण करना इत्यादिविषै विनयसहित पूछें बिना प्रवृत्ति होय सो दोष है ताका प्रायश्चित्त आलोचना मात्र है। बहुरि परोक्षप्रमादसेवना आचार्यका वचन विना कि पूछें बिना करना, अर आचार्यके प्रयोजननिमित्त बिना पूछे जाना, तथा परसंगमैसूं बिना पूछें आवना इत्यादि विषै भी आलोचना ही है। ये अर्थविशेष सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकातै लिख्या है।

धारा—**देशकालनियमेनावश्यं कर्त्तव्यमित्यास्थितानां धर्मकथादिव्याक्षेपहेतुसंनिधानेन विस्मरणे सति पुनरनुष्ठाने प्रतिक्रमणं तस्य प्रायश्चित्तम्।**

अर्थ—देशकालका नियमकरि अवश्य करनेयोग्य कर्मनिकैविषैं धर्मकथादिक चित्तकूं व्याक्षेपके कारण जे हैं तिनिकी निकटता होनेकरि विसमरण होतसंतैं बहुरि अनुष्ठान होतांसंतां भया जो दोष ताका प्रायश्चित्त प्रतिक्रमण ही है तथा सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकातैं—बहुरि इंद्रियनिका तथा वचनका दुःपरिणाम होय जाय, आचार्यआदिकै पग लागि जाय, व्रतसमितिगुप्तिविषैं स्वल्प अतीचार

लागै, परके बिगाड़ होनेका वचन निकलै, कलह हो जाय, वैयावृत्त्य स्वाध्यायादिविषै प्रमाद करै इत्यादिविषै भी प्रतिक्रमण है। बहुरि अकालमैं भोजनकै अर्थि गमन करै, लोच नखछेद करै, स्वप्नादि विषैं रात्रिभोजनादिका अतीचार लागै, उदरमैंसूं कृमि नीसरै, मांछर पवनादिके निमित्ततै रोमांच होय, हरिततृणादिकयुक्त भूमि परि तथा पंकपरि गमन करै, गोडातांई जलमैं प्रवेश करै, नावतैं नदी तिरै, अन्यका उपकरणादि अपणावै, पुस्तकप्रतिमादिकका अविनय होय जाय, पंचस्थावरका घात हो जाय, अदृष्टदेशविषै मलमूत्र क्षेपै, प्रतिक्रमणक्रिया व्याख्यानकै अंत नहीं करै इत्यादि दोषनिविषै आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ है।

धारा—**भयत्वरणविस्मरणानवबोधाशक्तिव्यसनादिभिर्महाव्रतातिचारे सति प्राक्छेदात् षड्विधं प्रायश्चित्तं विधेयम्।**

अर्थ—भयकी आतुरताकरि तथा विस्मरणकरि तथा अजाणपणाकरि तथा कोई कार्यकी अशक्तताकरि तथा व्यसन कहियें कष्टकरि इत्यादि कारणकरि महाव्रतमै अतीचार होतसंतै छेदकै पहलीके आलोचना १ प्रतिक्रमण २ तदुभय ३ विवेक ४ व्युत्सर्ग ५ तप ६ ये षट् प्रकार प्रायश्चित्त यथासंभव करबो योग्य है।

धारा—**शक्त्यनिगूहनेन प्रयत्नेन परिहरतः कुतश्चित्कारणादप्रासुकग्रहणग्राहणयोः प्रासुकस्यापि प्रत्याख्यातस्य विस्मरणात् प्रतिग्रहे च स्मृत्वा पुनस्तदुज्झनं प्रायश्चित्तम्।**

अर्थ—शक्तिकूं नहीं छिपायकरि यत्नाचारतै परिहार करता साधुकै कोई कारणतै अप्रासुकका ग्रहण आप करै तथा अन्य कोऊ ग्रहण करावै तहां, अथवा त्याग्या हुवा प्रासुकका भी विस्मरणतै ग्रहण होत संतै बहुरि स्मरणकरि वाका त्याग करना ही प्रायश्चित्त है।

धारा—**दुःस्वप्नदुश्चिन्तनमलोत्सर्जनमूत्रातिचारमहानदीमहाटवीतरणादिषु व्युत्सर्गः प्रायश्चित्तम्।**

अर्थ—खोटा स्वप्न खोटा चितवन मलोत्सर्जन मूत्रोत्सर्जन महानदी महाटवीतरण आदि विषैं व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है।

धारा—**बहुकृत्वः प्रमादबहुदृष्टापराधप्रत्यनीकवृत्तिविरुद्धदृष्टीनां यथाक्रमं छेदमूलभूम्यनुपस्थापनपारंचिकविधानं क्रियते, अपकृष्टयाचार्यमूले प्रायश्चित्तग्रहणमनुपस्थापनं आचार्यादाचार्यान्तरप्रापणमातृतीयं पारंचिकम् ।**

अर्थ—जाकै बहुतबार प्रमादतै भये बहुत अपराध दीखैं अर जो प्रतिकूल प्रवर्त्तै अर जो विरुद्ध श्रद्धान करै तिनकै अनुक्रमतैं मलच्छेद अनुपस्थापन पारञ्चिक विधान करिये है। इनि तीननिका लक्षण ऐसे जानौ—जो मूलच्छेदका लक्षण तौ जाका मूलतैं छेद करिये ऐसा अक्षरार्थतै ही स्पष्ट भया, अर आचार्यनिका चरणनिकै समीप सर्वसंघतैं नीचो पाड़ि प्रायश्चित्त ग्रहण करावै सो अनुपस्थापन है, अर जाकूं संघका आचार्यतै अन्य तीन आचार्यपर्यन्त प्रायश्चित्त लेनेकूं आज्ञा करै सो पारंचिक है।

भावार्थ—बहु अपराधीकूं मूलच्छेद प्रायश्चित्त है, विरुद्धवृत्तिकै अनुपस्थापन प्रायश्चित्त है, विरुद्धश्रद्धानीकै पारंचिक प्रायश्चित्त है।

धारा—**तदेवं नवविधं प्रायश्चित्तं देशकालशक्तिसंयमाद्यविरोधेनापराधानुरूपं दोषप्रशमनं चिकित्सितवद्विधेयं जीवस्यासंख्येयलोकपरिमाणाः परिणामविकल्पा अपराधाश्च तावन्त एव न तेषां तावद्विकल्पं प्रायश्चित्तमस्ति व्यवहारनयापेक्षया पिंडीकृत्य प्रायश्चित्तविधानमुक्तम्।**

अर्थ—सो यह ऐसे नवप्रकार प्रायश्चित्त देश काल शक्ति संयमादिकका अविरोधकरि अपराधकै अनुकूल वैद्यकी नाईं दोषनिको प्रशमन करवो योग्य है, बहुरि निश्चयकरि जीवके असंख्यातलोकप्रमाण परिणामनिके विकल्प हैं अर तितने ही अपराध हैं तथापि असंख्यातलोकप्रमाण ही तिनि अपराधनिके तितने ही प्रमाण प्रायश्चित्तनिका आगममें उपदेश नही है क्योंकि आगमके अक्षर तौ एक घाटि एकट्ठीप्रमाण संख्याते है अर विकल्प असंख्याते हैं तातैं व्यवहारनयकी अपेक्षाकरि प्रायश्चित्तनिकूं मध्यवृत्तितैं इकट्ठेकरि नवप्रकार कहिये है।

प्रश्न—अकलंककृत दोय ग्रंथ प्रायश्चित्तके बतावेहैं तिनिमैं सुवर्ण रौप्य पुष्प चन्दन तीर्थयात्राआदि बाह्यसाधन अनेक प्रायश्चित्तके होत संतैं शुद्धताके निमित्त बतातेहै, सो कैसे है?

उत्तर—द्वादशतपमै षट्प्रकार अभ्यन्तर तपके भेदनिमैं प्रथमभेद प्रायश्चित्त है ताके निरूपणमै राजवार्त्तिककै विषैं ऐसा लिख्या है,—

धारा—अन्तःकरणव्यापाराऽऽलम्बनं ततोऽस्याभ्यन्तरत्वं बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वाच्च न हि बाह्यं द्रव्यमपेक्ष्य वर्त्तमानं प्रायश्चित्तादि ततश्चाभ्यन्तरत्वमवसेयम् ।

अर्थ—अन्तःकरणका व्यापारको है अवलम्बन जा विषैं तातै प्रायश्चित्तादिकनिकै अभ्यन्तरपणूं है जातै प्रायश्चित्तादिक तपनिकुं अंगीकार करनेमै बाह्यद्रव्यकी अपेक्षाको अभाव है, अर्थात् प्रायश्चित्तादिक बाह्यद्रव्यकी अपेक्षा करिकै नही वर्त्तै है तातै प्रायश्चित्तादिकनिकै अंतरंगपणूं निश्चय करणूं । भावार्थ—प्रायश्चित्त शब्दकी निरुक्ति ऐसैं है कि—"प्राय साधुलोकः प्रायस्य साधुलोकस्य यस्मिन् कर्मणि चित्तं तत्प्रायश्चित्तम्" अर्थ—प्राय नाम साधुजनको है अर साधु जनका चित्त जिस कर्म विषैं वर्तै सो प्रायश्चित्त है तातैं ये निश्चय करना जो प्रायश्चित्तक्रिया प्रधानपणैं साधुजनिनकै है अर साधुजनकै किंचित् भी बाह्यद्रव्य है नाही तब उनकै द्रव्यका अभाव होतसतैं प्रायश्चित्तका अभाव भया चाहिये, सो है नांही, दोषकी निवृत्तिनिमित्त साधुजन सदाकाल प्रायश्चित्त अंगीकार करैहै । इहां इतना और समझो कि जो दोष उपज्ता है सो अंतरंगके विकारतैं उपजता है सो दोष अन्तरंगकी शुद्धता भयें ही अभावकूं प्राप्त होय, तातैं ऐसा निश्चय करो कि प्रायश्चित्त रूपकर्ममै बाह्यद्रव्य कछु प्रयोजनकारी नाही है ।

तथा निरुक्ति ऐसैं है;—

धारा—प्रायस्य चित्तं प्रायश्चित्तमपराधशुद्धिरित्यर्थः ।

अर्थ--प्राय जो अपराध ताका जो चित्त कहिये शुद्ध करना सो प्रायश्चित्त है अर्थात् अपराधकी शुद्धि है सो प्रायश्चित्त है।

प्रश्न—मुनीश्वरनिकै तौ प्रायश्चित्त अंतरंगतैं ही होना मानैंगे परंतु गृहस्थनिकै तौ बाह्यद्रव्यतैं होना योग्य है कि नाही ?

उत्तर—प्रथम तौ याका भी उत्तर तुमै कह्या ताहीमै है कि--अंतरंगके विकारतैं भया दोषकी निवृत्ति अंतरंगकी शुद्धता भये ही होयगी बाह्यद्रव्यतैं कदाचित् नहीं होयगी ताका दृष्टान्त ऐसा है कि--मदिराका भर्या घटकूं बाहिरतैं अनेक सुगंध द्रव्यनितैं धोवते संते भी वाकी दुर्गंध कदाचित् हू नहीं जावै है अर जा समय वा घटमैतैं मदिराकूं दूरिकरि अग्नितै तपावै ता समय वा घटका दुर्गंध सहज ही दूरि होयगा तैसै ही अंतरंगका विकार दूरिकरि प्रायश्चित्तरूप तपमयी अग्निकरि तपावै वाही समय शुद्धता होय है तथा और सुनो कि--सूत्रकारनै प्रायश्चित्तके आलोचनाआदि नव भेद कहे है तिनिमै एक हू भेदमै बाह्यद्रव्य कह्या नाहीं तथा दशाध्यायसूत्रकी व्याख्या सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक श्लोकवार्त्तिक आदिविषैं कहू नहीं कह्या तातैं जानिये है कि वार्तिककारअकलंकदेव हैं तिनिकृत तौ वै प्रायश्चित्तके ग्रंथ नहीं है वै अकलंक नाम कोऊ और कवि है तातैं श्रद्धानकरनेयोग्य नहीं है।

अब विनयतप कहिये है,—

सूत्र--ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।

अर्थ--विनयतप च्यारि प्रकार है, दर्शनविनय १ ज्ञानविनय २ चारित्रविनय ३ उपचारविनय ४॥

वार्तिक—तत्र सबहुमानज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः।

अर्थ—आलस्यरहित निर्मलचित्तको धारक देशकालादिकी विशुद्धिका विधानमैं प्रवीण पुरुष जो है तानैं मोक्षकै अर्थि बहुत आदरसहित यथाशक्ति सेवन कीयो जो ज्ञान ताको ग्रहण अभ्यास अर बारंबार चितवन आदि है सो ज्ञानविनय जाणबोयोग्य है।

वार्त्तिक—**पदार्थश्रद्धाने निःशंकितत्वादिलक्षणोपेतता दर्शनविनयः।**

अर्थ—सामायिक आदि चतुर्दश प्रकीर्णक अर लोकविन्दुसारपर्यंत चतुर्दश पूर्व ऐसा समस्त श्रुतसमुद्रकै विषैं भगवत्सर्वज्ञदेवनिनैं जैसैं उपदेश किया है तैसैं ही पदार्थका श्रद्धानकै विषैं निःशंकितत्वादिलक्षणनिकरि सहितता जो है सो दर्शनविनय है।

वार्त्तिक—**तद्वतश्चारित्रे समाहितचित्तता चारित्रविनयः।**

अर्थ—सम्यग्ज्ञान श्रद्धानवानकै पंचप्रकार दुर्धर चारित्रका सुननेकै अनंतर प्रकट भया रोमांचकरि प्रकट है अंतरंगभक्ति जाकै ऐसा पुरुषकै परमप्रसन्नता जो है सो अर मस्तकपरि अंजुलीस्थापनकरि नमस्कार करना आदिकरि भावतैं जो अनुष्ठान करना सो चारित्रविनय प्रतीति करबोयोग्य है।

वार्त्तिक—**प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिषु पूजनीयेष्वभ्युत्थानाभिगमनांजलिकरणादिरुपचारविनयः।**

अर्थ—पूजनीक आचार्यादिकनिकूं प्रत्यक्ष होतसंतैं उठि खड़ाहोना सन्मुख जावना अंजुली करना वंदना करना अर उनकै पीछै गमन करना आदि आपकै योग्य विनय करना है सो उपचारविनय है।

वार्त्तिक—**परोक्षेष्वपि कायवाङ्मनोभिरंजलिक्रियागुणानुसंकीर्त्तनानुस्मरणादिः ।**

अर्थ—आचार्यादिकनिकूं परोक्ष होतसतैं मनवचन कायकरि अंजुली करना उनके गुणनिकी प्रशंसा करना वारंवार स्मरण करना ज्ञानका अनुष्ठान करना आदि विनय करना है सो परोक्ष विनय जानना ।

प्रश्न—**किमर्थमिदं विनयभावनम् ।** अर्थ—ये विनयभावना काहेकै अर्थि करिये है ?

उत्तर—**ज्ञानलाभाऽऽचारविशुद्धिसंवेगाराधनाद्यर्थं विनयभावनम् ।**

अर्थ—विनयभावनाकरि ज्ञानको लाभ होय आचार्यकी विशुद्धिता होय सवेग होय आराधना होय इत्यादिकनिकी सिद्धि होय है बहुरि मोक्षका सुख होय है, तातैं विनयभावना करिये है।

तथा मूलाचारमै विनयकर्मकी प्रयोजनसहित निरुक्ति कहैं हैं;—

जम्हा विणयदि कम्मं अट्ठविहं चाउरंगमोक्खो य।
तम्हा वदंति विदुसो विणओत्ति विलीणसंसारा।७६।
यस्मात् विनयति कर्म अष्टविधं चातुरंगमोक्षश्च।
तस्माद्वदंति विद्वांसो विनय इति विलीनसंसाराः॥

अर्थ—जातै अष्टविध कर्म जे हैं ते नाशकूं प्राप्त होय हैं अर द्रव्य क्षेत्र, काल भावरूप चतुर्विध संसारतैं मोक्ष होय है तातैं विलीन भयो है ससार जिनकै ऐसे विद्वान जे हैं ते बिनय कहैं हैं॥

पुव्वं चेव य विणओ परूविदो जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
सव्वासु कम्मभूमिसु णिच्चं सो मोक्खमग्गंति ॥
पूर्वं चैव विनयः प्ररूपितः जिनवरैः सर्वैः ।
सर्वासु कर्मभूमिषु नित्यं सः मोक्षमार्गे इति ॥

अर्थ—जातैं पूर्वकालके विषैं सर्व जिनेश्वर जे है तिनिनै सर्व कर्मभूमिसंबंधी एकसौसत्तरि क्षेत्रनिके विषैं मोक्षमार्गमैं निरन्तर सो विनयधर्मनैं प्ररूपण कियो ।

प्रश्न—यो विनयधर्म कितना प्रकारको है ?

उत्तर—गाथा—

लोगाणुवित्तिविणओ अत्थणिमित्ते य कामतंते य ।
भयविणओ य चउत्थो पंचमओ मोक्खविणओ य ॥
लोकानुवृत्तिविनयः अर्थनिमित्तं च कामतंत्रे च ।
भयविनयश्च चतुर्थः पंचमकः मोक्षविनयश्च ॥

अर्थ—लोकके अनुकूल प्रवर्त्तन करना सो लोकानुवृत्ति नाम प्रथम विनय है, अर अर्थके निमित्त विनय करै सो अर्थविनय है, अर कामसेवनका अनुष्ठानके निमित्त विनय करैं सो कामविनय है, अर भयनिवारणनिमित्त विनय करै सो चतुर्थ भयविनय है, अर मोक्षके-निमित्त विनय करै सो पंचमों मोक्षविनय है; या प्रकार कारणद्वारकरि पंचप्रकार विनय है ।

इहां प्रथम लोकानुवृत्तिविनयका स्वरूप कहै है —

अब्भुट्ठाणं अंजलि आसणदाणं च अतिहिपूजा य ।
लोगाणुवित्तिविणओ देवपूया सविभवेण ॥ ८१ ॥

भासाणुवित्तिछन्दाणुवत्तणं देसकालदाणं च ।
लोगाणुवित्तिविणओ अंजलिकरणं च अत्थकदे ॥८२॥
अभ्युत्थानं अंजलि: आसनदानं च अतिथिपूजा च ।
लोकानुवृत्तिविनय: देवपूजा सविभवेण ॥ ८१ ॥
भाषानुवृत्ति: छंदानुवर्त्तनं देशकालदानं च ।
लोकानुवृत्तिविनय: अंजलिकरणं चार्थकृते ॥८२॥

अर्थ—अभ्युत्थान कहिये अपने घर आवते पुरुषनिकूं देखते प्रमाण आसनतें उठि खड़ा होना, अर अंजलिकरणं कहिये दोऊ हाथनिका जोडना, अर आसनदान कहिये आसनका देना, अर अतिथिपूजा कहिये मध्याह्नकालमैं आया साधुका तथा और साधर्मीनिका बहोत सत्कार करना, अर देवपूजा कहिये अपना वित्तकै अनुसारकरि अरहंतदेवका पूजन करना ॥ ८१ ॥ अर भाषानुवृत्ति कहिये उत्तम आर्यपुरुषनिकै वचनकै अनुकूल वचनका बोलना अर छंदानुवर्तन कहिये उत्तम आर्यपुरुषनिके अभिप्रायकै अनुकूल आचरण करना, अर देशकालदान कहिये देशकै योग्य कालकै योग्य अपना द्रव्यका देना, यो सर्व लोकानुवृत्तिविनय लोककूं अपने करनेके अर्थि है, अर जैसैं यामैं अंजुली अभ्युत्थानआदि करिये है तैसैं अंजुली अभ्युत्थान आदि अर्थकै निमित्त करिये सो अर्थ-निमित्तविनय है ॥ ८२ ॥

एमेव कामतंते भयविणओ चेव आणुपुव्वीय ।
पंचमओ खलु विणओ परूवणा तस्सिमा होदि ॥
एवमेव कामतंत्रे भयविनयश्चैव आनुपूर्व्या च ।
पंचमक: खलु विनय: प्ररूपणा तस्येयं भवति ॥

अर्थ—जैसै लोकानुवृत्तिविनय अर अर्थनिमित्त विनय कह्या तैसैं ही कामतंत्रविनय भी जाननो क्योकि मूलगाथामे आनुपूर्वीकै- विषै विशेष जनावनेको अभाव है यातैं, अर जो पंचमौ मोक्षविनय है ताकी यह प्ररूपणा है। भावार्थ—जो पुरुष अपने घर आवै ताका विनय सर्वका यथायोग्य करना कि देखतप्रमाण ताजीम देना सन्मुख जावना अंजुलिकरि यथायोग्यस्थान बैठावना, वाके चित्तकूं प्रसन्न ता रहै ऐसे वचन कहना अर वाके मर्मच्छेदके वचन नहीं कहना, हितकारी मिष्ट प्रमाणीक वचन कहना, अर वाके तिष्ठते वाके अभिप्रायकै अनुकूल प्रवर्त्तना, अर देशकालके योग्य अपना द्रव्य देना अथवा अपनी शक्तिप्रमाण वाका मनोरथ सिद्ध करना इत्यादि लोकका अभिप्रायकै अनुकूल करना है सो लोकानुवृत्तिविनय है। अर ऐसै ही आपकूं जापुरुषसैं प्रयोजनसिद्धि करना है तापुरुषका भी विनय पूर्वोक्त प्रकार करै सो अर्थविनय है अर ऐसै ही कामविनय है अर ऐसैं ही भयविनय है। इहां इतना विशेष जानना कि ये विनय लौकिकजन जे है तिनकूं अपने समान जे है तिनिका करना योग्य है। कुदेव कुगुरु कुआगमका अर इनिके सेवनेवारोका विनय करनेका निषेध षडायतनके प्रकरणमै निषेधरूप स्पष्टतर लिख्या है यातैं करना योग्य नाहीं॥

अब मोक्षविनयका स्वरूप कहिये है,—

दंसणणाणचरित्ते तवविणओ ओवचारिओ चेव।
मोक्खम्हि एस विणओ पंचविहो होदि णायव्वो॥८५॥

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनयः औपचारिकश्चैव।
मोक्षे एष विनयः पंचविधः भवति ज्ञातव्यः॥८५॥

अर्थ—दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, औपचारिकविनय ये पचप्रकार विनय मोक्षमार्गके विषै हैं, सो जानवो योग्य है ॥ ८५ ॥

अब इनि पंचभेदनिके भिन्न भिन्न लक्षण कहै हैं तिनमैं प्रथम दर्शनविनयस्वरूपकी, गाथा—

जे दव्वपज्जया खलु उवदिट्ठा जिणवरेहिं सुदणाणे।
ते तह सद्दहदि णरो दंसणविणओत्ति णादव्वो ॥
ये द्रव्यपर्यायाः खलु उपदिष्टाः जिनवरैः श्रुतज्ञाने।
तान् तथा श्रद्दधाति नरः दर्शनविनय इति ज्ञातव्यः॥८६॥

अर्थ—जे जिनेद्रदेवनै श्रुतज्ञानकैविषै द्रव्यनैं अर पर्यायनैं उपदेश किये है ते निश्चयकरि तैसै ही जो मनुष्य श्रद्धान करै सो मनुष्य दर्शनविनयवान है, ऐसै जानवो योग्य है ॥

अब ज्ञानविनयका प्रयोजन कहै है,—

णाणी गच्छदि णाणी वंचदि णाणी ण वंचणा दियदि।
णाणेण कुणदि चरणं तम्हा णाणे भवे विणओ ॥
ज्ञानी गच्छति ज्ञानी वंचति ज्ञानी न वंचनां ददाति।
ज्ञानेन करोति चरणं तस्मात् ज्ञाने भवेद्विनयः ॥८७॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुष मोक्षनै प्राप्त होय है तथा मोक्षनै जानै है अर ज्ञानी पापनै वंचति कहिये त्यागै है अर ज्ञानी नवीन कर्मनिनै नहीं ग्रहण करै है अर ज्ञानकरि आचरण न करै है, तातैं ज्ञानकै विषै विनय करवो योग्य है ॥

अब चारित्रविनयका प्रयोजन कहै है;—

पोराणयकम्मरयं चरिया रित्तं करेदि जदमाणो।
णवकम्मं च ण बंधदि चरित्तविणओत्ति णादव्वो॥
पौराणिककर्मरजः चर्यया रिक्तं करोति यतमानः।
नवकर्म च न बध्नाति चरित्रविनय इति ज्ञातव्यः॥

अर्थ—चारित्रकरि यत्न करतो पुरुष चिरकालतैं संचय किया कर्मरजनैं तुच्छ करै है अर नवीनकर्मनैं नहीं बांधै है या कारणतैं चारित्रकै विषै विनय करबो योग्य है॥ ८८॥

अब तपविनयका प्रयोजन कहै है;—

अवणयदि तवेण तमं उवणयदे मोक्खमग्गमप्पाणं।
तवविणयणिर्यमिदमदी सो तवविणओत्ति णादव्वो॥
अपनयति तपसा तमः उपनयते मोक्षमार्गे आत्मानम्।
तपोविनयनियमितमतिः सः तपोविनय इति ज्ञातव्यः॥

अर्थ—तपकरि अज्ञानरूप तमनैं दूर करै है अर आत्मानै मोक्षमार्गकै विषैं प्राप्त करै है सो प्रमाणीक बुद्धिको धारक तपविनयवान है या प्रकार तपविनय जाणबो योग्य है॥ ८९॥

अब वैयावृत्त्य कहिये है;—

सूत्र—**आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।**

अर्थ—आचार्य १ उपाध्याय २ तपस्वी ३ शैक्ष्य ४ ग्लान ५ गण ६ कुल ७ संघ ८ साधु ९ मनोज्ञ १० ये दशप्रकारके मुनि जे हैं तिनिकौ वैयावृत्त्य करणौं सो दशप्रकार वैयावृत्त्य है।

वार्त्तिक—वैयावृत्त्यमित्यनुवृत्तेः प्रत्येकमभिसम्बन्धः।

अर्थ—मूलसूत्रमें वैयावृत्त्य नहीं कह्या तौहू पूर्व सूत्रतें वैयावृत्त्यका अनुवर्तन है सो वैयावृत्त्यपद सूत्रनिकै प्रत्येक लगावना सो ऐसें—आचार्यनिको वैयावृत्त्य १ उपाध्यायनिको वैयावृत्त्य २ तपस्वीनिको वैयावृत्त्य ३ शैक्ष्यनिको वैयावृत्त्य ४ ग्लानिको वैयावृत्त्य ५ गणको वैयावृत्त्य ६ कुलको वैयावृत्त्य ७ संघको वैयावृत्त्य ८ साधुको वैयावृत्त्य ९ मनोज्ञको वैयावृत्त्य १० ऐसें वैयावृत्त्य दशप्रकार है।

वार्त्तिक—व्यावृतस्य भावः कर्म वा वैयावृत्त्यम्।

अर्थ—कायकी चेष्टाकरि अथवा अन्यद्रव्यनिकरि व्यापारयुक्त जो पुरुष ताको जो भाव अथवा कर्म सो वैयावृत्त्य कहिये है।

प्रश्न—दशभेदरूप मुनीश्वर कहे तिनके भिन्न भिन्न लक्षण भी कहौ।

उत्तर—अनुक्रमतें कहै हैं, सो सुनौं,—

वार्त्तिक—आचरन्ति यस्माद्व्रतानीत्याचार्यः।

अर्थ—भव्यजीव जा सम्यग्ज्ञानादिगुणनिका आधारभूत मुनीश्वरतें स्वर्गमोक्षसंबंधी सुखरूप अमृतके वीजभूत व्रत जे हैं तिनिनैं ग्रहणकरि हितकै अर्थि आचरण करै सो आचार्य है।

वार्त्तिक—उपेत्य तस्मादधीत इत्युपाध्यायः॥४॥

अर्थ—विनयवान भव्य जो है तानैं निकट प्राप्त होय जा व्रतशीलभावनाका आधारभूतसाधुतैं श्रुतज्ञानरूप आगम पढ़िये सो उपाध्याय है।

वार्त्तिक—महोपवासाद्यनुष्ठायी तपस्वी॥ ५॥

अर्थ—महान बेला तेला पंचोपवास पक्ष मास ऋतु अयनके उपवास आदि हैं लक्षण जाको ऐसा तपकूं जो आचरण करै सो तपस्वी कहिये है ॥ ५ ॥

वार्त्तिक—**शिक्षाशीलः शैक्ष्यः ॥ ६ ॥**

अर्थ—श्रुतज्ञानके सीखनेविषैं तत्पर अर निरन्तर व्रतनिकी भावनामै निपुण हैं सो शैक्ष्य कहिये है ॥

वार्त्तिक—**रुजादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः ॥ ७ ॥**

अर्थ—रोग आदिकरि क्लेशित है शरीर जाको सो ग्लान कहिये है ।

वार्त्तिक—**गणः स्थविरसन्ततिः ॥ ८ ॥**

अर्थ—साधुपुरुषनिको जो समूह सो गण कहिये है ॥ ८ ॥

वार्त्तिक—**दीक्षकाचार्यशिष्यसंतत्यायः कुलम् ॥९॥**

अर्थ—दीक्षाको दाता जो आचार्य ताके शिष्यनिको जो परंपराय सो कुल नाम होवेकै योग्य है ॥ ९ ॥

वार्त्तिक—**चतुर्वर्णश्रमणनिवहः संघः ॥ १० ॥**

अर्थ—च्यारूं वर्णका साधुनिको समूह जो है सो संघ है ॥ १० ॥

प्रश्न—च्यारूं वर्ण साधुनिके कौनसे है तिनका नामपूर्वक लक्षण भी कहो ।

उत्तर चारित्रसारमैं;—

धारा—**अनगारा यतयो मुनय ऋषयश्चेति ।**

अर्थ—अनगारी, यति, मुनि, ऋषि ये नाम है ।

धारा—**तत्र अनगाराः सामान्यसाधवः उच्यन्ते ।**

अर्थ—तिनमै सामान्यपणैं निजगुणके साधक है ते अनगार कहिये है।

धारा—यतयो भण्यन्ते उपशमक्षपकश्रेण्या-रूढाः।

अर्थ—उपशमश्रेणीकै विषै तथा क्षपकश्रेणीकै विषै जो आरूढ है सो यति कहिये है।

धारा—मुनयोऽवधिमनःपर्ययज्ञानिनः केवल-ज्ञानिनश्च कथ्यन्ते।

अर्थ—अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी तथा केवलज्ञानी जे हैं ते मुनि कहिये हैं।

धारा—ऋषय ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधा राजब्रह्म-देवपरमभेदात्।

अर्थ—जो ऋद्धिकूं प्राप्त भये ते ऋषि है, ते राजऋषि ब्रह्मऋषि देवऋषि परमऋषि भेदतैं च्यार प्रकार हैं।

धारा—तत्र राजर्षयो विक्रियाक्षीणर्द्धिप्राप्ता भवंति।

अर्थ—तिनमै विक्रियाऋद्धि तथा अक्षीणमहानसी ऋद्धिकूं प्राप्त भये ते राजऋषि है।

धारा—ब्रह्मर्षयो बुद्धयौषधियुक्ताः कीर्त्यन्ते।

अर्थ—अर बुद्धिऋद्धि तथा औषधिऋद्धिसंयुक्त है ते ब्रह्मऋषि कहिये है।

धारा—देवर्षयो गगनगमनर्धिसंपन्नाः पठ्यन्ते।

अर्थ—अर आकाशगमनऋद्धिसंयुक्त हैं ते देव ऋषि कहिये हैं।

धारा—**परमर्षयः केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते।**

अर्थ—केवलज्ञानी जे हैं ते परमऋषि कहिये हैं।

तथा ऐसै हू कहिये है; स्रग्धरा छंद;—

देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिः प्रोद्गतर्द्धि-
रारूढश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः॥
राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्ति-
प्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण।

अर्थ—इहां देशप्रत्यक्ष जो अवधि मनःपर्यय ताके जाननेवारे जे हैं ते मुनि हैं अर प्रकट भई है ऋद्धि जिनकै ते ऋषि हैं अर उपशम तथा क्षपकश्रेणीविषै आरूढ भये हैं ते यती हैं अर इनितैं अन्य साधु जे है ते अनगार कहिये है, बहुरि विक्रियाऋद्धिके तथा अक्षीणमहानसीऋद्धिके धारक जे हैं ते राजऋषि हैं अर बुद्धिऋद्धिके तथा औषधऋद्धिके स्वामी जे हैं ते ब्रह्मऋषि हैं अर आकाशगमन करनेमै चतुर हैं ते देवऋषि हैं अर समस्त लोकालोकका ज्ञाता जे हैं ते परमऋषि हैं, या प्रकार अनुक्रमतैं जानबोयोग्य है॥

वार्त्तिक—**चिरप्रव्रजितः साधुः॥ ११॥**

अर्थ—चिरकालतैं भावनारूप कियो है दीक्षाको गुण जानैं सो साधु मानिये है॥ ११॥

वार्त्तिक—**मनोज्ञोऽभिरूपः॥ १२॥**

अर्थ—सर्वोत्तम रूपवान होय सो मनोज्ञ है।

वार्त्तिक—**सम्मतो वा लोकस्य विद्वत्तावक्तृत्व-महाकुलत्वादिभिः।**

अर्थ—अथवा पण्डितपणाकरि तथा वक्तापणाकरि तथा महाकुलवानपणाकरि जो लोककै भलैप्रकार मान्य होय सो मनोज्ञ है और लोकके विषै वा मनोज्ञको ग्रहण सिद्धान्तकै गौरव ताका उपजावनेको कारणपणू है यातैं॥

वार्तिक—**असंयतसम्यग्दृष्टिर्वा।**

अर्थ—अथवा असंयत सम्यग्दृष्टी जो है सो भी मनोज्ञ है।

धारा—**तेषां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते प्रासुकौषधभक्तपानप्रतिश्रयपीठफलकसंस्तरणादिभिर्धर्मोपकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादि वैयावृत्त्यम्।**

अर्थ—तिन आचार्यादिकनिकै व्याधि परीषह मिथ्यात्वादिकको उपनिपात कहिये संयोग होत संतैं प्रासुक औषध भोजन पान प्रतिश्रय कहिये विनय सिंहासन पाटो संस्तरणादिककै अथवा धर्मोपकरणनिकरिकैं उन उपद्रवनिको प्रतीकार कहिये इलाज करनौ सम्यक्त्वकै विषैं प्रत्यवस्थापन करनौ इत्यादिक करना है सो वैयावृत्य है।

वार्त्तिक—**बाह्यद्रव्यासंभवे स्वकायेन तदानुकूल्यानुष्ठानं च।**

अर्थ—औषधि भक्त पानादि बाह्य सामग्रीको असंभव होत संतैं भी अपनी कायकरि कफ नासिका मल आदि अन्तर्मलका दूरिकरना अंगमर्दन आदि उनकै अनुकूल अनुष्ठान करना सो वैयावृत्य कहिये है।

प्रश्न—सो वैयावृत्य काहेकै अर्थि करिये है?

उत्तररूप वार्त्तिक—**समाध्याधानविचिकित्साऽभावप्रवचनवात्सल्याद्यभिव्यक्त्यर्थम् ।**

अर्थ—समाधिविषै एकाग्रता, अर ग्लानिको अभाव, प्रवचनवत्सलपणौ इत्यादिककी प्रगटताकै अर्थि वैयावृत्य करना इष्ट है।

प्रश्न—आचार्य आदि बहुत दशभेदको उपदेश काहेकै अर्थि करिये है? संघका वैयावृत्य करना ऐसैं ही कहना योग्य था?

उत्तररूप वार्त्तिक—**बहूपदेशात् कचिन्नियमेन प्रवृत्तिज्ञापनाय भूयसामुपन्यासः ।**

अर्थ—वैयावृत्त्यकै योग्य बहुतको उपदेश करत संतै कोईकै विषै यथायोग्य वैयावृत्यकी प्रवृत्ति होय इत्यादि प्रयोजनकै निमित्त बहुतको ग्रहण करिये है। भावार्थ—बहुतका उपदेश या प्रयोजन निमित्त है कि कदाचित् कोऊ देशकालमैं आचार्य उपाध्याय आदि जिनका सम्बन्ध मिलै तिनका ही वैयावृत्य करै इस वास्तैं बहुतको ग्रहण करिये है।

अब स्वाध्यायका लक्षण कहिये है;—

सूत्र—**वाचनाप्रच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशाः ।**

अर्थ—वाचना १ प्रच्छना २ अनुप्रेक्षा ३ आम्नाय ४ धर्मोपदेश ५ ये स्वाध्यायके पांच भेद हैं।

वार्त्तिक—**निरवद्यग्रंथार्थोभयप्रदानं वाचना ॥१॥**

अर्थ—पूर्वापरविरोधरहित अर संशय विमोह विभ्रम आदि दोषनिकरि रहित निर्दोष ग्रंथका अर निर्दोष अर्थका अर उभय कहिये ग्रंथ अर अर्थ दोऊनिका पात्रविषै प्रतिपादन करना सो वाचना कहिये है।

वार्त्तिक—**संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा-परानुयोगः प्रच्छना ॥ २ ॥**

अर्थ—अपनी उन्मत्तता अर परका उपहास्य अर उच्चस्वरतैं बोलना अर अट्टहास करना आदि श्रोतापनाका दोषनिकरि रहित्त प्रश्नका कर्त्ता शिष्य जो है सो संशयच्छेदकै अर्थि अर निश्चित बलका उपयोगकै अर्थि ग्रंथको अथवा अर्थको अथवा ग्रंथअर्थ दोऊनिको अन्य बहुज्ञानीनिप्रति प्रश्न करै सो प्रच्छना है ॥ २ ॥

वार्त्तिक—**अधिगतार्थस्य मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा ॥ ३ ॥**

अर्थ—निश्चित भई है पदार्थकी प्रक्रिया जाकै अर तप्त लोहका पिंडकै समान अर्पण कियो है चित्त जानै ऐसा पुरुषकै मनकरि कियो जो अभ्यास सो अनुप्रेक्षा कहिये है।

वार्त्तिक—**घोषविशुद्धं परिवर्त्तनमाम्नायः ॥ ४ ॥**

अर्थ—जान्यूं है अक्षरनिको समाहार कहिये समास जानैं अर या लोकसंबंधी फलको निर्वांछकव्रती जो है ताकै शीघ्र उच्चारण करना अर विलंबकरि उच्चारण करना इत्यादिक दोषनिकरि रहित शुद्ध अक्षरनिका उच्चारणपूर्वक जो परिवर्त्तन करना सो आम्नाय है, ऐसैं उपदेश करिये है ॥ ४ ॥

वार्त्तिक—**धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः ॥ ५ ॥**

अर्थ—या लोकसंबंधी दृष्टप्रयोजनका परित्यागतैं उन्मार्गका निवर्त्तनकै अर्थि संदेहकूं दूरकरनेपूर्वक अपूर्वपदार्थका प्रकाशनकै-अर्थि धर्मकथादिकका जो अनुष्ठान सो धर्मोपदेश है, ऐसैं कहिये है।

प्रश्न—सो स्वाध्याय कहानिमित्त करिये है ?

उत्तररूप वार्त्तिक—**प्रज्ञातिशयप्रशस्ताध्यवसायाद्यर्थः स्वाध्यायः ॥ ६ ॥**

अर्थ—भूत भविष्यत वर्त्तमानसंबंधी पदार्थनिकूं जाननवारी जो प्रज्ञानामा बुद्धिविशेष ताको अतिशय प्रकट होय है, अर धर्मध्यानरूप प्रशस्त उपयोग होय है, अर जिनागमकै विषै परिणामनिकी स्थिरता होय है, अर संशयको अभाव होय है, अर परवादीनिकरि स्थापित किया पदार्थका अन्यथास्वरूपजनित शंकाको अभाव होय है, अर संसारदेहभोगनितैं परम उदासीनता होय है अथवा धर्ममैं अर धर्मके फलमै प्रीति होय है, अर तपकी वृद्धि होय है, अर अतीचारनिकी शुद्धता होय है, इत्यादिक प्रयोजननिमित्त स्वाध्यायका आचरण करिये है।

अब व्युत्सर्ग कहिये है;—

सूत्र—**बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥**

अर्थ—बाह्यउपधि अर अभ्यन्तरउपधिको जो त्याग सो व्युत्सर्ग है ॥ २६ ॥

वार्त्तिक—**उपधीयते बलाधानार्थमित्युपधिः ।**

अर्थ—जो पदार्थ अन्यकै बलका धारणकै अर्थि अंगीकार करिये सो उपधि कहिये है।

वार्त्तिक—**अनुपात्तवस्तुत्यागो बाह्योपधिव्युत्सर्गः ।**

अर्थ—आत्मानैं नहीं ग्रहण किया अर आत्माकरि एकपणानै नहीं प्राप्त भया ऐसा धनधान्य आदि बाह्य उपधिका त्याग जो है सो बाह्योपधिव्युत्सर्ग है ॥ २ ॥

वार्त्तिक—**क्रोधादिभावनिवृत्तिरभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः।**

अर्थ—क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा आदि दोषनिका त्याग सो अभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है ॥ ३ ॥

वार्त्तिक—**कायत्यागश्च नियतकालो यावज्जीवं वा ॥ ४ ॥**

अर्थ—बहुरि कायका त्याग हू अभ्यन्तरव्युत्सर्ग कहिये है, ताके दोय भेद हैं—एक नियतकाल दूसरा यावज्जीव। तहां मुहूर्त्त प्रहर दिवस आदि संवत्सरपर्यंत देहतैं ममत्वका त्यागकरि तिष्ठना सो नियतकाल व्युत्सर्ग है, अर अंतसमय संन्यास धारणकरि देहतैं ममत्वका त्याग करना सो यावज्जीव अभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्ग है ॥ ४ ॥

वार्त्तिक—**परिग्रहनिवृत्तेरवचन इति चेत्। न, तस्य हिरण्यविषयत्वात् ॥ ५ ॥**

अर्थ प्रश्न—महाव्रतनिके उपदेशका अवसरमैं परिग्रहको त्याग कह्यो ही है तातैं बहुरि यह उपधित्यागवचन अनर्थक है। उत्तर—सो नहीं है। प्रश्न—काहेतें? उत्तर—जो महाव्रतनिका उपदेशमै तौ परिग्रहका त्याग कह्या है ताकै धन हिरण्य वस्त्र आदिकै गोचरपणा है यातैं, अर इहां बाह्य अभ्यंतर दोऊका त्याग उपदेश है तातैं यहां उपधित्यागवचन अनर्थक नहीं है ॥ ५ ॥

वार्त्तिक—**धर्माभ्यन्तरे भावादिति चेत्। न, प्रासुकनिरवद्याऽऽहारादिनिवृत्तितंत्रत्वात् ॥ ६ ॥**

अर्थ—प्रश्न—दशलक्षणधर्मकै विषै अन्तर्भूत त्याग है तातै बहुरि इहां व्युत्सर्ग कहना अनर्थक है। उत्तर—अनर्थक नहीं है क्योंकि वहां तौ अयोग्य आहारआदिका त्यागरूप उपदेश था प्रासुक निरवद्यआहारआदि योग्यका ग्रहण था अर इहां प्रासुक निरवद्य-आहारआदिका भी त्याग है तातै बहुरि व्युत्सर्ग कहना निरर्थक नहीं है ॥ ६ ॥

वार्तिक—**तस्य प्रायश्चित्ताभ्यन्तरत्वादिति चेत्। न, प्रतिद्वन्द्विभावात्।**

अर्थ—प्रश्न—यो व्युत्सर्ग जो है सो प्रायश्चित्तमैं गर्भित है तातै बहुरि ताका कहना अनर्थक है। उत्तर—अनर्थक नहीं है। प्रश्न—कहा कारण? उत्तर—प्रायश्चितमैं अंतर्भूत व्युत्सर्ग जो है ताकैं तौ प्रतिपक्षी अतीचार विद्यमान हैं अर इहा व्युत्सर्ग जो है सो अपेक्षारहित करिये है, इतना विशेष है, यातैं बहुरि कहना निरर्थक नहीं है ॥ ७ ॥

वार्तिक—**अनेकत्रावचनमनेनैव गतत्वादिति चेत्। न, शक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ८ ॥**

अर्थ—प्रश्न—अनेक स्थलमै व्युत्सर्गका कहना अनर्थक ही है यातै वारंवार कहनेतै पूरणता होय है। उत्तर—अनर्थक नहीं है क्योंकि शक्तिकी अपेक्षापणा है यातै, सो ऐसै—कहूं तौ सावद्यनै त्यागिये है कहूं निरवद्यनै हू त्यागिये है कहूं नियतकाल व्युत्सर्ग करिये है कहूं अनियतकाल व्युत्सर्ग करिये है। पुरुषशक्तिकी अपेक्षापणातैं या व्युत्सर्गरूप निवृत्तिधर्मकै उत्तरोत्तर प्रकर्ष उत्साहका उत्पादनार्थपणातै इहां पुनरुक्तपणौं सदोष नहीं है ॥ ८ ॥

प्रश्न—व्युत्सर्ग तप काहेके अर्थि है ?

उत्तररूप—वार्त्तिक—**निःसंगनिर्भयत्वजीवितआशाव्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्गः ॥ ६ ॥**

अर्थ—निःसंगपणू निर्भयपणू जीवितकी आशाको त्याग दोषनिको अभाव मोक्षमार्गकी भावनामैं तत्परपणू इत्यादिककै अर्थि व्युत्सर्ग कहिये है ॥

अब ध्यान कहिये है,—

सूत्र—**उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ।**

अर्थ—उत्तमसंहननके धारक जीवको अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत एकाग्रचितानिरोध जो है सो ध्यान है । भावार्थ—या सूत्रमैं ध्याता ध्यान ध्येय इन तीननिका लक्षण अर कालकी मर्यादा च्यारू कहै है, सो ऐसै है—ध्याता तौ उत्तमसंहननको धारक होय है अर ध्येय एक द्रव्य अथवा एक पर्याय अथवा एक गुण अथवा श्रुतका एकपद तथा एक बीज है सो एक ध्येय है, अर एककै ऊपरि चिंताको रुकबो सो ध्यान है अर काल उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त है ।

वार्त्तिक—**आद्यं संहननत्रयमुत्तमम् ।**

अर्थ—वज्रऋषभनाराचसंहनन, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन ये तीन सहनन उत्तम है ।

प्रश्न—इनकै उत्तमपणौ काहेतै है ?

उत्तररूप-धारा—**ध्यानादिवृत्तिविशेषहेतुत्वात ।**

अर्थ—ध्यानका करना उपसर्गका सहना परीषहका जीतना आसनकी दृढ़ता दुर्धरतपका आचरणना आदि वृत्तिविशेषका कारणपणातैं तीनूं आदिके संहनन उत्तम है।

धारा—**तत्र मोक्षस्य कारणमाद्यमेकमेव ध्यानस्य त्रितयमपि उत्तमसंहननम्।**

अर्थ—तीनूं संहनननिकै मध्य मोक्षको कारण तौ आदिको एक वज्रऋषभनाराचसंहनन ही है अर ध्यानके कारण तीनूं ही उत्तमसंहनन हैं। भावार्थ—इन आदिके तीन संहननको धारक है सो ध्यानको ध्याता है तथा मोक्ष तौ एक प्रथमसंहननतैं ही है।

वार्त्तिक—**चिंता अन्तःकरणवृत्तिः।**

अर्थ—जो पदार्थकै विषै अन्तःकरणकी प्रवृत्ति है सो चिंता कहिये है।

वार्त्तिक—**अनियतक्रियार्थस्य नियतक्रियाकर्तृत्वेनावस्थानं निरोधः।**

अर्थ—गमन भोजन शयन अध्ययन आदि क्रियाविशेषनिकैविषैं नियमरहित प्रवर्तता अन्तःकरणकैं एकक्रियाका कर्त्तापणाकरि जो अवस्थान कहिये स्थिरता है सो निरोध जाननौं।

धारा—**एकमग्रं मुखं यस्य सोऽयमेकाग्रः।**

अर्थ—एक है अग्र कहिये सन्मुख जाकै सो एकाग्र है।

धारा—**चिंताया निरोधश्चिन्तानिरोधः।**

अर्थ—चिंताको जो निरोध कहिये रुकवो सो चिंतानिरोध है।

धारा—**एकाग्रचिन्ताया निरोध एकाग्रचिन्तानिरोधः।**

अर्थ—एकद्रव्यकै सन्मुख जो चित्तका रुकना सो एकाग्रचिन्तानिरोध है।

प्रश्न—एकद्रव्यकै सन्मुखपणाकरि यो चित्तको निरोध काहेतैं होय है?

उत्तररूप—वार्तिक—**वीर्यविशेषात्प्रदीपशिखावत्।**

अर्थ—जैसैं पवनआदिकी बाधारहित स्थानककैविषैं प्रज्वलित भई दीपककी शिखा इत उत नही गमन करै है स्थिरीभूत रहै है तैसैं दंशमशक शीत उष्ण वर्षा आदिकी बाधारहित निराकुलस्थानकै विषैं वीर्यविशेषतैं रोकी जो चिन्ता सो व्याक्षेप बिना एक द्रव्यकै सन्मुखपणाकरि तिष्ठै है॥

वार्तिक—**उत्तमसंहननाभिधानमन्यस्येयत्कालाध्यवसायधारणासामर्थ्यात्।**

अर्थ—अवै वार्त्तिककार अकलंकदेव सूत्रकारनिके अभिप्रायकूं पदविशेषकरि स्पष्ट दिखावै हैं-अर्द्धनाराचसंहनन कीलितसंहनन स्फाटिकसंहनन ये अतके तीन संहनन अन्तमुहूर्त्तकालपर्य्यन्त चिन्तानिरोधका धारणविषै साधनभाव प्रति असमर्थ है, याही कारणतैं सूत्रकारनै उत्तमसंहनन ग्रहण किये है।

वार्तिक—**एकाग्रवचनं वैयग्र्यनिवृत्त्यर्थम्।**

अर्थ—अर व्यग्रपणाकी निवृतिकै अर्थि एकाग्रवचन ग्रहण करिये है क्योकि व्यग्रता कहिये नानापदार्थका ग्रहण करना जो है सो ज्ञान है, ध्यान नही है।

वार्तिक—**चिंतानिरोधग्रहणं तत्स्वाभाव्यप्रदर्शनार्थम् ।**

अर्थ—जैसै घट शब्द पृथ्वीका कोई पर्यायविशेषविषै वर्त्तै है तैसै ध्यानशब्द भी ज्ञानस्वरूप चिंताकी वृत्तिविशेषविषै वर्त्तै है, ऐसै दिखावनेकै अर्थि चिंतानिरोध कह्यो है ।

वार्तिक—**ध्यानमित्यधिकृतस्वरूपनिर्देशार्थम् ।**

अर्थ—जो अधिकार कियो उत्तमतप ताका स्वरूपके निर्देशकै अर्थि ध्यानशब्द करिये है ।

वार्तिक—**मुहूर्त्तवचनादहरादिव्यावृत्तिः ।**

अर्थ—दिवस रात्रि पक्ष मास आदि कालांतरकी व्यावृत्तिकै अर्थि अन्तर्मुहूर्तवचन ग्रहण करिये है अर्थात् अन्तमुहूर्तकै उपरांति चितानिरोधरूप ध्यानको दु ́रपणौ है यातै ।

वार्तिक—**दिवसमासाद्यवस्थानमुपयुक्तस्येति चेत् । न, इन्द्रियोपघातप्रसंगात् ।**

अर्थ—इहां कोऊ प्रश्न करै है कि—ध्यानरूप उपयोगकरि युक्त पुरुषको दिवस मासादिकको अवस्थान है, अंतमुहूर्ततैं ध्यान नहीं होय है । उत्तर—सो दिवस मासादिकाल ध्यानको नही है क्योंकि दिवस मास आदि काल ध्यानको ग्रहण करिये तौ इन्द्रियनिका उपघातको प्रसंग आवै है यातै अंतर्मुहूर्त ही ध्यानको काल कह्यो है ।

वार्त्तिक—**प्राणापानविनिग्रहो ध्यानमिति चेत् । न, शरीरपातप्रसङ्गात् ।**

अर्थ—इहां फेर प्रश्न करै है कि श्वासोच्छ्वासका निग्रह कहिये रोकना जो है सो ध्यान है। उत्तर—श्वासोच्छ्वासका रोकना ध्यान नहीं है क्योंकि शरीरका पतनको प्रसंग आवै है, यातै, क्योंकि श्वासोच्छ्वासका निग्रह होत सतै श्वासोच्छ्वासके रोकने जनित तीव्रवेदना होवसंतै शीघ्र ही शरीरको पतन होय है तातै मंदमंद श्वासोच्छ्वासका प्रचार मानकै ध्यान जुडै है।

प्रश्न—ध्यानका सामान्य लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब ध्यानके विशेष भेद भी कहो।

उत्तररूप सूत्र—**आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि।**

अर्थ—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान ऐसे ध्यानके च्यार भेद है।

वार्त्तिक—**ऋतमर्दनमार्त्तिर्वा तत्र भवमार्त्तम्।**

अर्थ—ऋत नाम दुःखका है अथवा ऋतनाम अर्दनका है कि मर्दनका है अथवा ऋतनाम आर्त्तिका है तातैं तिन विषैं भयो जो अंतःकरणको व्यापार सो आर्त्तध्यान है।

भावार्थ—दुःखमैं अर्दनमैं आर्त्तिमै जो अन्तःकरणको व्यापार सो आर्त्तध्यान है।

वार्त्तिक—**रुद्रःक्रूरस्तत्कर्म रौद्रम्।**

अर्थ—रुद्र जो क्रूरपुरुष ताको जो कर्म अथवा भाव ता विषै भयो जो चितवनरूप कर्म सो रौद्रध्यान कहिये है।

वार्त्तिक—**धर्मादनपेतं धर्म्यम्।**

अर्थ—धर्मकरि सहित जो ध्यान सो धर्मध्यान कहिये है।

वार्त्तिक—**शुचिगुणयोगाच्छुक्लम्।**

अर्थ—जैसै मलके दूर होनेतै प्रकट भयो जो शुचिगुण ताका योगतै वस्त्रकूं शुक्ल कहिये है तैसै शुक्लगुणका साधर्म्यपणातै शुक्लनाम है। शुक्लपरिणतियुक्त आत्मस्वरूपकूं शुक्लध्यान कहिये है।

अर ये च्यार प्रकारके ध्यान द्विविधपणानै अंगीकार करै है।

प्रश्न—काहेतै ?

उत्तररूप वार्तिक—**प्रशस्ताप्रशस्तभेदात्।**

अर्थ—पापास्रवका कारणनै आर्त्त रौद्र दोऊ ध्यान तौ अप्रशस्त हैं, अर कर्मनिके नाश करनेके सामर्थ्यतै धर्म शुक्ल दोऊ ध्यान प्रशस्त हैं।

सो ही सूत्रकार कहै हैं;—

सूत्र—**परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥**

अर्थ—परे कहिये धर्म शुक्ल दोऊ ध्यान मोक्षके कारण है ॥ २९ ॥

वार्तिक—**परयोर्मोक्षहेतुत्वात्पूर्वयोः संसारहेतुत्वसिद्धिः।**

अर्थ—धर्म शुक्ल मोक्षके कारण हैं या कहनेतैं बाकी पूर्वके आर्त्त रौद्र ये दोऊ ध्यान संसारके कारण है, ऐसै जानिये है। अर सूत्रकारके विना कहे ही संसार मोक्षरूप दोऊ साध्यविना तीसरा साध्यको अभाव है याही तै आर्त्त रौद्रध्यानकै संसारको साधनपणा सिद्ध होय है।

ऐसा आर्त्तध्यानका च्यार भेद हैं, तिनिमैं प्रथम अनिष्टसंयोग नामा आर्त्तध्यानकों कहै है;—

सूत्र—**आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥**

अर्थ—अमनोज्ञको संयोग होतसंतैं ताका वियोगकै अर्थि जो स्मृतिको जोड़बो सो अनिष्टसंयोगजनामा आर्त्तध्यान है ॥ ३० ॥

वार्त्तिक—**अप्रियममनोज्ञं बाधाकारणत्वात्।**

अर्थ—विष कंटक शत्रु शस्त्र आदि जो अप्रिय वस्तु है सो बाधाका कारणपणातैं अमनोज्ञ कहिये है।

वार्त्तिक—**भृशमर्थान्तरचिन्तनादाहरणं समन्वाहारः।**

अर्थ—अर्थान्तरनिकै चितवनतैं अधिकपणाकरि आहरण कहिये एक वस्तुकै विषै अन्तःकरणको अवरोध होय सो समन्वाहार है ॥ २ ॥

याका समास ऐसा है कि—
"स्मृतेः समन्वाहारः स्मृतिसमन्वाहारः" अर्थ—स्मृतिको जो समन्वाहार कहिये एक वस्तुमैं रुकबो सो स्मृतिसमन्वाहार है।

धारा—**अमनोज्ञस्योपनिपाते स कथं नाम मे न स्यादिति संकल्पश्चिन्ताप्रबन्ध आर्त्तमित्याख्यायते।**

अर्थ—अमनोज्ञको संबंध होतसंतैं ऐसा चिन्ताका प्रबंध होय जो या अमनोज्ञका संबंध मेरैं कौन विधिकरि नहीं होय ऐसो जो निरन्तर विचार है सो आर्त्त कहिये है।

अब इष्ट वियोगजनामा आर्त्तध्यानकूं कहै है,—

सूत्र—**विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥**

अर्थ—मनोज्ञको वियोग होतसंतैं ताका संयोगकै अर्थि स्मृतिको जोड़वो सो इष्टवियोगजनामा आर्त्तध्यान है॥

वार्त्तिक—**प्रागुक्तनिमित्तविपर्ययाद्विपरीतम् ॥**

अर्थ—पूर्वैं कह्यो जो अनिष्टको संयोग ताकूं होतसंतै ताका वियोगकै निमित्त जो चिंतवन तातै विपरीत जो इष्ट ताको वियोग होतसंतै ताका संयोगकै अर्थि चिन्तवन सो इष्टवियोगज आर्त्त-ध्यान है॥

अब पीडाचिन्तवननामा आर्त्तध्यान कहै है,—

सूत्र—**वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥**

अर्थ—ज्वर आदि रोगनिकी वेदनातै उत्पन्नभया दुःखका प्रतीकारकै अर्थि जो चिंतवन सो पीडाचिंतवननामा आर्त्तध्यान है॥

वार्त्तिक—**प्रकरणात् दुःखवेदनासंप्रत्ययः ।**

अर्थ—यद्यपि वेदनाशब्द सुख दुःखका अनुभवकै गोचर सामान्य है तथापि आर्त्तध्यानका प्रकरणतैं इहां रोगकी पीडाजनित दुःखकी वेदनाका निश्चय होय है।

धारा—**तत्प्रतिचिकीर्षां प्रत्यागूर्णस्यानवस्थितमनसो धैर्योपरमात्स्मृतिसमन्वाहारः आर्त्तध्यानमवगन्तव्यम् ।**

अर्थ—उस वेदनाजनित दुःखका इलाजकी वांछाप्रति उद्यमवान अर धीरताका अभावतैं चलाचल है मन जाका ऐसा पुरुषकै जो स्मृतिको एकत्र जुडनो सो पीडाचिंतवननामा आर्त्त-ध्यान जाननेयोग्य है। या आर्त्तध्यानके बाह्यचिह्न ऐसे प्रगट होय

हैं—शरीरकी शिथिलतातैं अंगनिका इत उत पटकना अर शोक करना उच्चस्वरकरि पुकारना रुदनकरि अश्रुपात पटकना आदि प्रकट चिह्न होय है।

अब निदानजनित आर्त्तध्यान कहै है,—

सूत्र—**निदानं च ॥ ३३ ॥**

अर्थ—आगामीकालमैं सुखनिकी वांछा सो निदान है॥

वार्त्तिक—**विपरीतं मनोज्ञस्येत्येव सिद्धमिति चेत्। न, अप्राप्तपूर्वविषयत्वान्निदानस्य।**

अर्थ—प्रश्न—'मनोज्ञको वियोग होतैं वाके संयोगकी वांछा'-ऐसै पूर्वँ इष्टवियोगज आर्त्तध्यान कह्या था ताहींमैं निदान सिद्ध भया फेरि निदानका भिन्न कहना निरर्थक है। उत्तर—सो नही है, क्योकि निदानकै अप्राप्तपूर्व विषयपणूं है यातैं। भावार्थ—इष्टवियोग आर्त्तध्यानमै तौ मनोज्ञवस्तुका वियोग होतैं वाकी पुनः प्राप्ति होनेका उपायरूप चिंतवन है अर या निदान आर्त्तध्यानमैं अपनै पूर्वकालमै जो सुखकारी सामग्री कदाचित् हीं नहीं भई ताका आगामी कालमै उपायरूप चितवन करना है सो निदान है, यातैं इष्टवियोगज आर्त्तध्यानमै निदान अन्तर्भूत नही है। तातैं भिन्न कहना निरर्थक नाही है।

प्रश्न—सो यह च्यारप्रकार आर्त्तध्यान कृष्ण, नील, कापोत लेश्याका बलकै आश्रय है अर अज्ञानभावसूं उपजै है, अर बुद्धिपूर्वक पुरुषकै परिणामनितैं उत्पन्न होय है, बहुरि पापके प्रयोगनिको आधार है, अर भोगोपभोगसामग्रीको जामैं प्रसंग है, बहुरि नाना संकल्प विकल्पनिकरि संयुक्त है, अर धर्मका आश्रयकूं छाडै है, अर

कषायका आश्रयकूं अंगीकार करै है, बहुरि कषायनिकूं प्रज्वलित करै है, अर याका मूल प्रमाद है, अर पापकर्मकूं ग्रहण करै है, अर कटुक है फल जाको ऐसी असातावेदनीयका बंधकूं कारण है, अर तिर्यंचगतिमै गमनको कारण है; ऐसो यो आर्त्तध्यान कौन कौनसे गुणस्थानवर्त्ती जीवनिकै होय है ?

उत्तररूप—सूत्र—**तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥**

अर्थ—सो यो आर्त्तध्यान मिथ्यात्वादि अविरतपर्यंत च्यार गुणस्थान अर देशविरत पंचम गुणस्थान तथा प्रमत्तसंयत छठा गुणस्थानवर्त्ती पंचदशप्रमादनिकरि सहित आहार विहार उपदेश आदि क्रियाके आचरण करनेवारे जीवनिकै होय है ॥

वार्त्तिक—**कदाचित्प्राच्यमार्त्तध्यानत्रयं प्रमत्तानाम् ।**

अर्थ—प्रमादका उदयकी उत्कटतातै कोई कालकै विषै निदानरहित और तीन आर्त्तध्यान जे हैं ते प्रमत्तसंयमीनिकै भी होय है ।

अब च्यारभेदयुक्त रौद्रध्यानकूं कहै हैं;—

सूत्र—**हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥**

अर्थ—हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद, परिग्रहानंदरूप चतुर्विध रौद्रध्यान मिथ्यात्वादि च्यार अविरत गुणस्थान अर देशविरत पंचमगुणस्थानवर्त्ती जीवनिकै हिंसाके उपकरणनिकी तथा

अनृतके उपकरणनिकी तथा चोरीके उपकरणनिकी तथा परिग्रहकी रक्षा करनेतै उत्पन्न होय है।

चतुर्विध रौद्रध्यान अविरत (पर्यन्त) च्यार गुणस्थानवर्त्ती जीवनिकै तौ होहु परन्तु देशव्रतीनिकै रौद्रध्यान कैसै संभवै?

उत्तररूप—वार्तिक—**देशविरतस्यापि हिंसाद्यावेशाद्वित्तादिसंरक्षणतंत्रत्वाच्च।**

अर्थ—धन धान्य आदिकी रक्षाका आधीनपणातैं कदाचित् हिंसादिकका आवेशतै देशविरतीनकै रौद्रध्यान होनेकी योग्यता बणै है परन्तु सम्यग्दर्शनका सामर्थ्यतैं नरकादि कुगतिका गमनकूं कारण नही होय है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन विद्यमान है तातैं ऐसो प्रबल रौद्रध्यान नही होय है जातैं नरक आदि कुगतिमै पहुंचै।

वार्तिक—**अथकथमिदं रौद्रध्यानं संयतस्य न भवति, तदयुक्तं; संयते तदावेशे संयमप्रच्युतेः।**

अर्थ—प्रश्न—जो देशसंयमीकै कदाचित् रौद्रध्यानका होना संभवता कह्या तौ संयमीकै विषै रौद्रध्यान काहेतै नही युक्त करिये है? उत्तर—रौद्रध्यानका आवेशतै संयमकी प्रच्युति है यातै संयमीकै रौद्रध्यान नहीं होत है। जा समय आत्माके परिणाम रौद्रध्यानरूप होय है ता समय संयम नहीं तिष्ठै है। अर चतुर्विध रौद्रध्यान तीव्र कृष्ण नील कापोत लेश्याका बलकै आधार है, अर याकी भूमिका प्रमाद है, अर याको मुख्य फल नरकगति है। ऐसै कहे जे अप्रशस्तरूप आर्त्तरौद्र दोऊ ध्यान तिनिस्वरूप परणम्यो आत्मा जैसै तप्तायमान लोहको पिंड जलनै ग्रहण करै तैसैं कर्मनिकूं ग्रहण करै है।

अब चतुर्विध धर्मध्यान कहिये है;—

सूत्र—**आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥**

अर्थ—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसै धर्मध्यान च्यार प्रकार है। अर इहां विचयशब्दकूं विवेक-विचार-अर्थवाची जानना ॥

अब आज्ञाविचय धर्मध्यानकूं कहै है;—

वार्त्तिक—**तत्राऽऽगमप्रामाण्यादर्थावधारणमाज्ञाविचयः ॥ ४ ॥**

अर्थ—तहां उपदेशदाताके अभावतैं बुद्धिकी मंदतातैं कर्मका उदयतैं अर पदार्थनिका सूक्ष्मपणातैं अर हेतु दृष्टांतका अभाव होतै सर्वज्ञप्रणीत आगमकूं प्रमाण करिकै यह ऐसै ही है जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नाही है ऐसै गहनपदार्थका श्रद्धानतै अर्थका अवधारण करना जो है सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है ॥ ४ ॥

वार्त्तिक—**आज्ञाप्रकाशनार्थो वा ॥ ५ ॥**

अर्थ—अथवा सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध है परिणाम जाके अर जाणूं है स्वमतपरमतसंबधी पदार्थनिको निर्णय जानै अर सर्वज्ञ देवकरि कहे जे अतिसूक्ष्म पदार्थ तिनकूं अवधारण करिकै "यह ऐसैं ही है" या प्रकार अन्य जीवनि प्रति उपदेश करबाको इच्छुक, अर कथामार्गकै विषै श्रुतज्ञानका सामर्थ्यतै निजसिद्धांतका अविरोधकरि हेतु नय प्रमाणका वारंवार कथनकरि पदार्थनिके स्वरूपकूं ग्रहण करनेमैं श्रोतानिकूं समर्थ करिकै पदार्थनिका स्वरूपकूं यथावत् व्याख्यान करै ताकै पदार्थनिका समर्थनकै अर्थि

तर्क नय प्रमाणकूं युक्त करनेमैं तत्पर ऐसो जो स्मृतिको समन्वाहार कहिये एकवस्तु प्रति जुड़वो सो सर्वज्ञकी आज्ञाके प्रकाश करनेका प्रयोजनपणातैं आज्ञाविचय धर्मध्यान कहिये है ॥

अब अपायविचय धर्मध्यानकूं कहै हैं;—

वार्तिक—**सन्मार्गापायचिंतनमपायविचयः ॥६॥**

अर्थ—मिथ्यादर्शनकरि आच्छादित है सम्यक्श्रद्धारूप नेत्र जिनके ऐसे मिथ्यादृष्टीनिके आचार विनय प्रतिविधान आदि समस्तक्रिया अज्ञानका बाहुल्यपणातैं जन्मका आंधाकी नाईं संसारकी वृद्धिकै अर्थि होय है। जैसैं जन्मके आंधे बलवान हू सन्मार्गतैं चिगे अर मार्गके जाननेमैं प्रवीण ऐसा पुरुषनैं मार्ग नही बताया ते नीचे ऊंचे पर्वत विषम पाषाण कठिन ठूंठ अर कठिन कंटकनिकरि व्याप्त गहन अटवी आदि दुर्ग स्थाननिमैं पड़े संते हलन चलनादि क्रिया करते हू सन्मार्गनै प्राप्त होनेकूं उपदेशदाताके अभावतैं समर्थ नहीं होय है तैसें सर्वज्ञप्रणीतमार्गतैं विमुख अर मोक्षके अर्थी ऐसे पुरुषहू सम्यक् मार्गके नही जाननेतैं सम्यक्मार्गतै दूरही रहै हैं, ऐसैं सन्मार्गतै जो अपाय कहिये चिगनो ताका चितवन करना सो अपायविचयनामा धर्मध्यान है।

वार्तिक—**असन्मार्गापायचिंतनमपायविचयः, असन्मार्गापायसमाधानं वा ।**

अर्थ—अथवा मिथ्यादर्शनकरि आकुल है चित्त जिनको ऐसे कुवादीनिकरि उपदेश्यो जो उन्मार्ग तातैं ये प्राणी कैसै दूरि होय अथवा अनायतनका सेवनको अभाव कैसे होय, ऐसैं आपायका अर्पणकरि चितवन करना सो अपाय विचय है।

अब विपाकविचय धर्मध्यानकूं कहै है,—

वार्त्तिक—कर्मफलानुभवविवेकं प्रतिप्रणिधानं विपाकविचयः ।

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल भाव जे हैं तिनिका निश्चयपूर्वक ज्ञानावरणादि कर्मनिके फलका अनुभवप्रति जो उपयोगका एकत्र ठहरना सो विपाकविचय है; सो ही कर्मका उदय राजवार्त्तिककी नवम अध्यायतैं दिखाइये हैं—मिथ्यादर्शनका अर एकेन्द्रिय द्वीद्रिय त्रीद्रिय चतुरिंद्रिय ये च्यार जाति अर आतप स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त साधारण इनि दश प्रकृतनिका उदय प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानविषै है, सासादनादि ऊपरले गुणस्थाननिमै उदय नाही है, बहुरि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिका उदय मिथ्यात्व सासादन इनि दोय गुणस्थाननिविषै है ऊपरि नाही है, बहुरि सम्यक्तमिथ्यात्व जो मिश्रमोहिनीयप्रकृति ताको उदय सम्यक्‌मिथ्यादृष्टीनामा तीसरा गुणस्थानविषै ही है ऊपरि भी नाही है अर नीचें भी नाही है यांहींमैं है बहुरि अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ नरकायु देवायु नरकगति देवगति वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअंगोपांग नरकगत्यानुपूर्वी तिर्यंचगत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी देवगत्यानुपूर्वी दुर्भग अनादेय अयशकीर्त्ति इनि सतरह प्रकृतिनिका उदय मिथ्यादृष्ट्यादि असंयतपर्यंत च्यार गुणस्थाननिविषै है ऊपरि नाहीं है अर च्यारूं आनुपूर्वीनिका तीसरा मिश्र गुणस्थानविषै उदय नाही है अवशेष तेरह प्रकृतिनिका उदय है; बहुरि प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ तिर्यंच आयु तिर्यंचगति उद्योत नीचगोत्र इनि आठ प्रकृतिनिका उदय देशसंयतनाम पंचमगुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है; बहुरि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिनाम तीन प्रकृतिनिका उदय

आहारक रिद्धिके धारक मुनीश्वर विना और प्रमत्तसंयमी मुनीश्वरनिविर्षे है ऊपरि नाहीं है, वहुरि आहारक शरीर आहारक अंगोपांग इनि दोऊनिका उदय प्रमत्तसंयमी कै ही है ऊपरि नीचें नाही है, वहुरि सम्यक्तमोहनीयका उदय चौथा गुणस्थान आदि सप्तम गुणस्थानपर्यंत च्यारि गुणस्थाननिमैं है ऊपरि नीचै नाही है, वहुरि अर्द्धनाराचसंहनन कीलकसंहनन असंप्राप्तासृपाटिकसंहनन इनि तीनि सहननका उदय छट्ठा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है, वहुरि हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा इन छह प्रकृतिनिका उदय अपूर्वकरणनामा अष्टमगुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाही है, वहुरि स्त्रीपुरुष नपुंसक इनि तीनि वेदनिका अर संज्वलन क्रोध मान माया इनि तीन कषायनिका उदय अनिवृत्तिवादरसांपरायनामा नवम गुणस्थानसंवंधी कालका शेष संख्यात भागनिकूं व्यतीतकरि उदयको अभाव होय है, वहुरि संज्वलनलोभको उदय सूक्ष्मसांपरायनाम दशम गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाही है, वहुरि वज्रनाराचसंहनन नाराचसंहनन इनि दोऊनिका उदय प्रशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है, वहुरि निद्राप्रचला इनि दोय प्रकृतिनिका उदय क्षीणकषायनामा वारमा गुणस्थानको उपातसमय जो अंतका समयको पहलो समय ता पर्यंत है ऊपरि नाहीं है, अर पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण अर पांच अंतराय ऐसै चौदह प्रकृतिनिको उदय क्षीणकषायनामा वारमा गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है, वहुरि साता असातावेदनीयमैंसूतौ कोई एक अर औदारिक तैजस कार्माण ये तीनशररी समचतुरस्रसंस्थानन्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान कुब्जकसंस्थान स्वातिकसंस्थान हुंडकसंस्थान ये षटसंस्थान अर औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभनाराचसंहन पंच वर्ण दोय गंध पांच रस आठ स्पर्श इनि बीसनिके सामान्याच्यर

अर अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास प्रशस्तविहायोगति अप्रशस्तविहायोगति प्रत्येक शरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुस्वर दुःस्वर इनि तीस प्रकृतिनिको उदय सयोगकेवलीनामा तेरमा गुणस्थानका चरमसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं, बहुरि वेदनीय दोयमै तौ एक मनुष्य आयु मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति त्रस बादर पर्याप्तक सुभग आदेय यशःकीर्त्ति उच्चगोत्र इनि ग्यारह प्रकृतिनिको उदय अयोगकेवलीनामा चौदमागुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाही, बहुरि तीर्थंकरनामा कर्मको उदय सयोगकेवली अयोगकेवली इनि दोय गुणस्थाननिविषैं ही है नीचले मिथ्यात्वादि क्षीणकषायपर्यंत बारह गुणस्थाननिविषै नाहीहै।

वार्त्तिक—**अयथाकालविपाकः उदीरणोदयः।**

अर्थ—अयथाकालविषै जो उदय होय सो उदीरणोदय है। भावार्थ—अपने उदयके अवसरमै उदय आवै सो तौ उदय है अर उदयका अवसर विना उदय आवै सो उदीरणोदय है, सो ही दिखाइये है;—तहां मिथ्यादर्शनको उदीरणोदय मिथ्यात्वगुणस्थानविषै उपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया जो भव्यजीव ताकै अन्तका आवलीप्रमाण कालकूं छोड़िकरि और अन्यकालकै विषै होय है। अर एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय त्रीद्रिय चतुरिंद्रिय ये च्यार जाति अर आतप स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इनि नव प्रकृतिनिको उदीरणोदय मिथ्यात्वगुणस्थानविषै है ऊपरि नाही है। बहुरि अनंतानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारनिका उदीरणोदय मिथ्यादृष्टी सास्वादनसम्यग्दृष्टी इनि दोय गुणस्थाननिविषैं है ऊपरि नाही है। बहुरि मिश्रमोहनीयको उदीरणोदय तीसरा गुणस्थानविषै ही है ऊपरि नीचै नाहीं है। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ

ये च्यारि कषाय अर नरकगति देवगति वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक अंगोपांग दुर्भग अनादेय अयशकीर्त्ति इनि ग्यारह प्रकृतिनिको उदीरणोदय असयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थगुणस्थानपर्यन्त होय है ऊपरि नाहीं है, अर नरक आयु देव आयु इनिको उदीरणोदय मरणकालविषैं अतका आवलीपर्यंत कालकूं छोड़िकरि असंयतसम्यग्दृष्टी गुणस्थानविषै होय है ऊपरि नीचैं नाही होय है। बहुरि च्यारूं आनुपूर्वीनिको विग्रहगतिविषै मिथ्यादृष्टी सासादनसम्यग्दृष्टी असंयतसम्यग्दृष्टी इन तीन गुणस्थाननिविषै उदीरणोदय है अन्यत्र नाहीहै। बहुरि प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ तिर्यंचगति उद्योत नीच गोत्र इनि सात प्रकृतिनिको उदीरणोदय संयतासंयतनाम पंचमगुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाही होय है अर तिर्यंच आयुको उदीरणोदय मरणकालविषै चरमावलीकालकूं छोड़िकरि संयतासंयतनामा पंचमगुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है। बहुरि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि सातावेदनीय असातावेदनीय इनि पाच प्रकृतिनिका उदीरणोदय प्रमत्तसंयतनामा छट्टा गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है अर आहारकऋद्धिके धारक मुनीश्वरनिकै आहारकशरीरका समुद्घातकै विषैं पूर्व चरमावलीकालसहित उदीरणोय नाहीं है अर आहारक शरीर आहारक अंगोपांग इनि दोय प्रकृतिनिको उदीरणोदय प्रमत्त संयतनामा छठा गुणस्थानपर्यंत होय है ऊपरि नाही होय है। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीयको उदीरणोदय असंयत सम्यग्दृष्टीनामा चतुर्थ गुणस्थानकूं आदि देय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत च्यार गुणस्थाननिविषै है ऊपरि नीचैं नाही है। अर अर्द्ध नाराच कीलक असंप्राप्तासृपाटिक इनि तीन संहननिको उदीरणोदय अप्रमत्तसंयतनामा सप्तम गुणस्थानपर्यंत है ऊपरि नाही है। बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जु-

गुप्सा इनि षट् प्रकृतिनिको उदीरणोदय अपूर्वकरणनामा अष्टम गुणस्थानका अंतसमयपर्यंत है ऊपरि नाहीं है। बहुरि तीनूं वेद अर संज्वलन क्रोध मान माया इनि षट् प्रकृतिनिको उदीरणोदय अनिवृत्तिकरण बादरसांपराय नवम गुणस्थानका उपान्त समय पर्यन्त है ऊपरि नाहीं है अर तिस अनिवृत्तिकरणका कालका शेष शेष ऊपरिले संख्यात भागनिकूं प्राप्त होयकरि उदीरणोदयकी व्युच्छित्ति होय है। बहुरि संज्वलनलोभको उदीरणोदय सूक्ष्मसांपराय दशमगुणस्थानका अंतसमयसम्बन्धी चरमावलीकालकूं छांड़िकरि पूर्वके गुणस्थाननिविषैं है ऊपरि नाही है। बहुरि वज्रनाराचसंहनन नाराच संहनन इनि दोउनिको उदीरणोदय उपशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानका अंतपर्यंत है ऊपरि नाही है। बहुरि निद्रा प्रचला इन दोय प्रकृतिनिको उदीरणोदय क्षीणकषायनामा बारमा गुणस्थानका अंतसम्बन्धी एकसमय अधिक आवली प्रमाणकालकूं छांड़ि करि है ऊपरि नाही है। अर पांच ज्ञानावरण च्यार दर्शनावरण पांच अंतराय इनि चौदह प्रकृतिनिको उदीरणोदय अंतसंबंधी आवली प्रमाण कालकूं छांड़िकरि क्षीणकषायपर्यंत है ऊपरि नाही है। बहुरि मनुष्यगति पंचेंद्रियजाति औदारिक तैजस कार्माण ये तीन शरीर षट् संस्थान अर औदारिक शरीर अंगोपांग वज्रवृषभनाराचसंहनन वर्ण गन्ध रस स्पर्श अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास प्रशस्तविहायोगति अप्रशस्तविहायोगति त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुभग सुस्वर दुःस्वर आदेय यशःकीर्त्ति निर्माण उच्चगोत्र इनि अठ्ठीस प्रकृतिनिको उदीरणोदय सयोगकेवलीनामा तेरम गुणस्थानका अंतसमय पर्यंत है ऊपरि नाही है अर तीर्थकरनाम कर्मको उदीरणोदय सयोगकेवली गुणस्थानविषैं ही है ऊपरि नीचे नाही है।

अब संस्थानविचयनामा धर्मध्यानकूं कहै हैं;—

वार्त्तिक—**लोकसंस्थानस्वभावावधानं संस्थानविचयः।**

अर्थ—लोकको जो संस्थान कहिये आकार अर ताके अवयव जे द्वीप समुद्रादिक तिनिका स्वभावका जो चिन्तवन सो संस्थानविचय धर्मध्यान है।

वार्त्तिक—**धर्मादनपेतं धर्म्यम्।**

अर्थ—उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मतैं जो तन्मय सो धर्मध्यान है जातैं जाकै उत्तमक्षमादिककी भावना है ताहीकी धर्मध्यानमैं प्रवृत्ति होय है।

वार्त्तिक—**अनुप्रेक्षाणां धर्मध्यानजातीयत्वात् पृथगनुपदेश इति चेत्। न, ज्ञानप्रवृत्तिविकल्पत्वात्।**

अर्थ—प्रश्न—अनुप्रेक्षा भी धर्मध्यानविषै अन्तर्भूत है क्योंकि अनुप्रेक्षा भी धर्मध्यानकी ही जाति है यातैं अनुप्रेक्षाका उपदेश न्यारा करना अनर्थक है। उत्तर—अनुप्रेक्षानिकै ज्ञानकी प्रवृत्तिको विकल्पपणूं है यातैं न्यारा उपदेश करना अनर्थक नाहीं है। जा समय ज्ञान अनित्यादिक भावनाकै गोचर होय ता समय तौ अनुप्रेक्षा कहिये है, अर जा समय अनित्यादिस्वरूपमैं एकाग्रचित्तानिरोध होय ता समय धर्मध्यान है। ऐसैं अनुप्रेक्षामैं अर धर्मध्यानमैं भेद है, तातैं भिन्न उपदेश योग्य है।

वार्त्तिक—**धर्म्यमप्रमत्तस्येति चेत्। न, पूर्वेषां विनिवृत्तिप्रसंगात्।**

अर्थ—प्रश्न—धर्मध्यान अप्रमत्तगुणस्थानवर्त्ती मुनीश्वरनिकै ही होय है। उत्तर—ऐसैं नाहीं है, क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थानीनिकै ही कहिये तौ पूर्वके तीन गुणस्थानीनिकै धर्मध्यानका अभावको प्रसंग आवै, तातैं अप्रमत्तकै ही कहना योग्य नाही क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टीकै अर संयतासयतकै अर प्रमत्तसंयतीकै सम्यक्त्वका प्रभावतैं आगममैं धर्मध्यान कह्यो है तिनकै अभावको प्रसंग आवै तातै असंयतादि अप्रमत्तसंयतपर्यंत च्यार गुणथाननिमै ही धर्मध्यान जाननों।

वार्तिक—उपशांतक्षीणकषाययोश्चेति तन्न, शुक्लाभावप्रसंगात्।

अर्थ—असंयतादि च्यार गुणस्थानीनिकै ही नहीं होय है, उपशान्तकषाय क्षीणकषायवर्त्तीनिकै भी होय है। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि जो उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै भी धर्मध्यान होय तौ शुक्लध्यानका अभावको प्रसंग आवै है, सो है नाहीं, उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै शुक्लध्यान इष्ट करिये है अर धर्मध्यान नाहीं है।

वार्तिक—तदुभयं तत्रेति चेन्न, पूर्वस्यानिष्टत्वात्।

अर्थ—उपशांतकषाय क्षीणकषायवर्त्तीनिकै धर्मध्यान अर शुक्लध्यान दोऊ ही है ऐसैं कहो। उत्तर—सो नहीं है क्योंकि उपशांतकषाय क्षीणकषायवालेनिकै धर्मध्यानको अनिष्टपणूं है यातैं, उपशमश्रेणी अर क्षपकश्रेणीनिकै विषैं धर्मध्यान अनिष्ट है तातैं अपूवकरणादि अयोगकेवलीपर्यंत शुक्लध्यान ही इष्ट है अर असंयतादि अप्रमत्तपर्यंत धर्मध्यान इष्ट है ऐसै आर्षग्रंथनिविषैं कह्यो है॥

अब शुक्लध्यान कहिये है;—

सूत्र—शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थ—आदिके दोय शुक्लध्यान पूर्वके वेत्तानिकै होय है।

वार्तिक—पूर्वविद्विशेषणं श्रुतकेवलिनस्तदुभयप्रणिधानसामर्थ्यात्।

अर्थ—सकल श्रुतके धारक श्रुतकेवलीनिकै आदिके दोय शुक्लध्यानविषैं एकाग्रचिंतवनकी सामर्थ्य है श्रुतकेवलीनिकै विना औरनिकै नाहीं है ऐसैं जनावनेकै अर्थि 'पूर्ववित' विशेषण ग्रहण कियो है।

वार्तिक—चशब्दः पूर्वध्यानसमुच्चयार्थः।

अर्थ—जो सूत्रविषैं 'च' शब्द कह्यो है सो धर्मध्यानका समुच्चयकै अर्थि है। भावार्थ—श्रुतकेवलीनिकै धर्मध्यान शुक्लध्यान दोऊ ही होय है।

वार्तिक—विषयविवेकापरिज्ञानमिति चेन्न, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः।

अर्थ—'च' शब्दकरि धर्मध्यानको समुच्चय करनेमें विषयको भेदविज्ञान नहीं जाणिये है कि चकारतैं धर्मध्यान ही ग्रहण करना और अर्थ नहीं ग्रहण करना, ऐसा नियमरूप विषयका निर्णय नहीं होय है। उत्तर—सो नहीं है, क्योंकि व्याख्यानतैं विशेषको ज्ञान होय है। श्रेणीसैं आरोहणतैं पूर्व धर्मध्यान होय है अर दोऊ श्रेणीनिविषै शुक्लध्यान होय है ऐसैं आगानैं व्याख्यान करेंगे।

प्रश्न—आदिके दोऊ शुक्लध्यान उपशांतमोह क्षीणमोह गुणस्थानकै विषै नियमकरि प्रतिज्ञा करिये है तौ अवशेष अंतके दोय शुक्लध्यान कौनकै होय है?

उत्तररूप—सूत्र—**परे केवलिनः ॥ ३८ ॥**

अर्थ—उत्तरके दोऊ शुक्लध्यान क्रमतै सयोगकेवली अयोगकेवलीनिकै होय है छद्मस्थकै नही होय है।

ऐसै शुक्लध्यानके स्वामी कहे अर अब च्यारूं भेदनिके नाम लक्षण कहै है;—

सूत्र—**पृथक्त्वैकत्ववितर्कवीचारसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्त्तीनि ॥३९॥**

अर्थ—पृथक्त्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवर्ती ये शुक्लध्यानके च्यार भेद है॥३९॥

प्रश्न—इनि च्यारूं ध्याननिका अवलंबन कहा है?

उत्तररूप-सत्र—**त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥**

अर्थ—पृथक्त्ववितर्कवीचारनामा प्रथम शुक्लध्यान तीनूं योगनिके अवलंबनकरि होय है। अर एकत्ववितर्कअवीचारनामा दूसरो शुक्लध्यान तीनूं योगनिमैंसूं कोऊ एक योगके अवलंबनकरि होय हैं। अर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तीसरो शुक्लध्यान काययोगके अवलंबनकरि होय है। अर व्युपरतक्रियानिवर्त्तीनामा चतुर्थ शुक्लध्यान अयोगकेवलीकै होय है ॥४०॥

अब आदिके दोऊ शुक्लध्यान जे हैं तिनका विशेष जनावनेके निमित्त सूत्र कहै है;—

सत्र—**एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥**

अर्थ—वितर्क अर वीचार इनि दोऊनिकरि सहित आदिके दोऊ ध्यान एक श्रुतकेवलीकै ही आश्रय होय हैं श्रुतकेवलीबिना अन्यकै नहीं होय है ॥४१॥

वार्तिक—**पूर्वविदारभ्यत्वादेकाश्रयसिद्धिः ।**

अर्थ—आदिके दोऊ ही शुक्लध्यान परिपूर्णश्रुतके धारक जो श्रुतकेवली ताकरि आरंभ करिये है याते ये दोऊ एकाश्रय ही हैं ऐसैं कहिये है।

वार्तिक—**पूर्वत्वमेकस्यैवेति चेन्नोक्तत्वात् ।**

अर्थ—सूत्रकारनै पूर्वपणूं दोऊनिकै कह्या सो अयोग्य भासै है क्योंकि पूर्वपणूं एकहीकै होय है। सो नहीं है, क्योंकि याका उत्तर पहली कह्या ही है याते।

प्रश्न—कहा कह्या है ?

उत्तर—आदिकाकै समीपवर्त्ती द्वितीयकै भी पूर्वपणाको उपदेश है तथा द्विवचन कहनके सामर्थ्यतै दोऊनिको ग्रहण है।

अब या सूत्रकै विषै वितर्क वीचार दोऊ कहे तिनिका आदिके दोऊ ध्याननिकै यथाक्रमसंबंधका दोषकी निवृत्तिकै अर्थि सत्र कहिये है;—

सूत्र—**अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥**

अर्थ—दूसरो शुक्लध्यान वीचाररहित है ॥४२॥

वार्त्तिक—**पूर्वयोर्द्वितीयं तदवीचारं प्रत्येतव्यम् ।**

अर्थ—पूर्वके दोऊ ध्याननिविषै जो दूसरो ध्यान है सो वीचाररहित है। भावार्थ—आदिको ध्यान तौ वितर्कवीचारसहित है ताको पृथक्त्ववीचार नाम है अर दूसरो ध्यान वितर्कसहित वीचाररहित है ताको एकत्ववितर्कअवीचार नाम है।

प्रश्न—वितर्कके बिषै अर वीचारकै विषैं कहा विशेष है ?

याका उत्तररूप-सूत्र—**वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥**

अर्थ--विशेषकरितर्क करना है सो वितर्क है अर वितर्क है सो श्रुत है। भावार्थ—वितर्कशब्दश्रुतज्ञानको पर्यायवाची शब्द है ॥४३॥

प्रश्न—जोवितर्क शब्द श्रुतज्ञानवाची है तौ वीचारशब्द कहा वाची है?

याका उत्तररूप-सूत्र—**वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः॥४४॥**

अर्थ--अर्थ अर व्यंजन अर योग इनको जो संक्रांति कहिये पलटनौ सो वीचार कहिये है ॥४४॥

वार्तिक—**अर्थो ध्येयः द्रव्यं पर्यायो वा, व्यंजनं वचनं, योगः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणः, संक्रांतिः परिवर्त्तनम्।**

अर्थ—अर्थनाम ध्येय करने योग्य पदार्थका है सो द्रव्य है अथवा पर्याय है, अर व्यंजननाम श्रुतके वचनका है, अर योगनाम काय वचन मनकी क्रियाका है, अर संक्रांतिनाम पलटनेका है।

तहां द्रव्यकूं छांड़ि पर्यायकूं प्राप्त होय अर पर्यायकूं छांड़ि द्रव्यकूं प्राप्त होय सो तौ अर्थसंक्रांति है। अर एक श्रुतका वचनकूं अंगीकारकरि अन्यवचनको अवलंबन करै बहुरि वाहूकूं छांड़ि अन्यको अवलंबन करै सो व्यंजन संक्रांति है। अर काययोगकूं छांड़ि अन्ययोगको ग्रहण करै अर वाहूकूं छांड़ि अन्ययोगको ग्रहण करै सो योगसंक्रांति है, ऐसैं जो परिवर्त्तन सो वीचार है।

सो यो सामान्य विशेषकरि कह्यो जो च्यार प्रकार शुक्लध्यान अर पूर्वै कह्यो है गुप्ति आदि वहुत प्रकार उपाय जाको ऐसो धर्मध्यान जो है ताहि संसारका अभावके अर्थि ध्यानकरनेके

महामुनि समर्थ होय है, अर तिसके आरंभकै विषै परिकर्म होय है सो जा समय उत्तम शरीरका संहननपणाकरि परीषहनकी बाधाकूं सहनेकूं समर्थ आत्माकूं जानै ता समय ध्यानकै योग्य परिचयकै अर्थि प्रारभ करै है।

प्रश्न—सो कैसैं करै है? या प्रकार तर्क होत संतें उत्तर कहै है;—

धारा—**पर्वतगुहाकंदरदरीद्रुमकोटरनदीपुलिनपितृवनजीर्णोद्यानशून्यागारादीनामन्यतमस्मिन्नवकाशे व्यालमृगपशुपक्षिमनुष्याणामगोचरे तत्रत्यैरागंतुकैश्च जंतुभिः परिवर्जिते नात्युष्णे नातिशीते नातिवाते वर्षातपवर्जिते समंताद्बाह्यांतःकरणविक्षेपकारणविरहिते भूमितले शुचावनुकूलस्पर्शे यथासुखमुपविष्टो बद्धपल्यंकासनः समृजुं प्रणिधाय शरीरयष्टिमस्तब्धां स्वांके वामपाणितलस्योपरि दक्षिणपाणितलमुत्तलंसमुपादाय नात्युन्मीलन्नातिमीलन् दंतैर्दन्ताग्राणि संदधानः ईषदुन्नतमुखः प्रगुणमध्योऽस्तब्धमूर्त्तिः प्रणिधानगंभीरशिरोधरः प्रसन्नवक्त्रवर्णः अनिमिषस्थिरसौम्यदृष्टिः विनिहतनिद्राऽऽलस्यकामरागरत्यरतिशोकहास्यभयद्वेषविचिकित्सः मंदमंदप्राणापानप्रचार इत्येवमादिकृतपरिकर्मा साधुः नाभेरूर्द्ध्वं हृदये मस्तकेऽन्यत्र वा म-**

नोवृत्तिं यथापरिचयं प्रणिधाय मुमुक्षुः प्रशस्तध्यानं ध्यायेत् । तत्रैकाग्रमना उपशांतरागद्वेषमोहो नैपुण्यान्निगृहीतशरीरक्रियो मंदोच्छ्वासनिःश्वासः सुनिश्चिताभिनिवेशः क्षमावान् बाह्याभ्यंतरान् द्रव्यपर्यायान् ध्यायन्नाहितवितर्कसामर्थ्यः अर्थव्यंजने कायवचसी च पृथक्त्वेन संक्रामता मनसा अपर्याप्तबलोत्साहवदव्यवस्थितेनाशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तरुं छिंदन्निव मोहप्रकृतीरुपशमयन् क्षपयंश्च पृथक्त्ववितर्कवीचारध्यानभाग् भवति पुनर्वीर्यविशेषहानेर्योगाद्योगांतरं व्यंजनाद्व्यंजनांतरमर्थादर्थान्तरमाश्रयन् ध्यानविधूतमोहरजाः ध्यानयोगान्निवर्त्तते, इत्युक्तं पृथक्त्ववितर्कवीचारम् ।

अर्थ—पर्वतनिकी गुफा कंदरा दण्डे जीर्ण वृक्षनिके कोटर नदीनिके पुलिन श्मशानभूमि जीर्ण उद्यान शून्यगृह इत्यादिकनिकै मध्य कोऊ एक स्थानविषै अवकाशमैं सर्प सिंह व्याघ्र मृग पशु पक्षी मनुष्य आदिकै अगोचर कहिये गम्य नाहीं अर तहां तिष्ठते जीवनिकरि अथवा आगंतुक जीवनिकरि रहित, बहुरि च्यारूं ओरतैं बाह्य अभ्यंतर विक्षेपके कारणनिकरि रहित अर पवित्र अनुकूल है स्पर्श जाको ऐसा भूमितलकै विषै पल्यंकासनयुक्त सुखरूप तिष्ठतौ अर क्षोभरहित सम तथा सरल शरीरयष्टिकूं करि अपना अंककै विषैं बाम हस्ततल ऊपरि दक्षिण हस्ततलकूं उत्तलरूप कहिये सौंधा स्थापनकरि नेत्रनिकूं नहीं अति उन्मीलन तथा नहीं अति निमी-

लन करतो अर दंतनकरि दंतनिके अग्रभागकूं जोड़रूप करतो अर किंचित् नम्र है मुख जाको अर अति सरल है मध्यभाग जाको अर क्षोभरहित शातरूप है मुद्रा जाकी अर प्रणिधान जो परिधि ताकी गंभीरतासहित मस्तककूं धारण करनेवारो भावार्थ—मस्तककूं चलाचल नहीं करनेवारो, अर प्रसन्न है मुखको वर्ण जाको अर टिमकारबेकरि रहित स्थिरीभूत सौम्य है दृष्टि जाकी अर विशेषपणै हणै है निद्रा आलस्य काम राग रति अरति शोक हास्य भय द्वेष विचिकित्सा जानै, अर मंद मंद है सासोस्वासको प्रचार जाकै इत्यादि कियो है परिकर्म जानै; ऐसो साधु-नाभिकै ऊपरि हृदयविषै मस्तकविषै अथवा नासिका ललाट आदि अन्य उत्तम अंगविषै मनकी वृत्तिकूं जैसैं ध्यानको परिचय होय तैसैं उपयुक्तकरि मोक्षको वांछक प्रशस्त ध्यानकूं ध्यावै तहां एकाग्र है मन जाको अर उपशांत हुये है राग द्वेष मोह जाकै अर भलै प्रकार निश्चयरूप है उपयोग जाको, अर क्षमावान अर बाह्य अभ्यंतर द्रव्यकी पर्यायनिकूं ध्यावतो, अर अंगीकार कियो है श्रुतको सामर्थ्य जानै, ऐसो साधु जो है सो नहीं परिपूर्ण भयो है बलको उत्साह जाकै ताकै समान अव्यवस्थित अर तीक्ष्णतारहित ऐसा शस्त्रकरि चिरकालतैं वृक्षनै छेदताकै समान अर्थ व्यंजन जे है तिननैं तथा काय वच जे हैं तिननैं जुदा जुदापणाकरि पलटता मनकरि मोहकी प्रकृतिनिनै उपशम करतो तथा क्षय करतो संतो पृथक्त्ववितर्कवीचारनामा प्रथम शुक्लध्यानको ध्याता होय है अर वीर्यविशेषकी हानितैं योगतैं योगान्तरकूं व्यंजनतैं व्यंजनांतरकूं अर्थतैं अर्थान्तरकूं आश्रय करतो प्रथम शुक्लध्यानकरि उपशम कियो है विशेषपणैं मोहरज जानैं ऐसोहू साधु ध्यानका योगतैं पाछो बाहुड़ै है। ऐसैं पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा

प्रथम शुक्लध्यानको स्वरूप कह्यो ।

अब एकत्ववितर्कअवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानको स्वरूप कहै है;—

धारा—**अनेनैव विधिना सतूलमूलः (?) मोहनीयं निर्दिधक्षन्ननंतगुणविशुद्धं योगविशेषमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञानावरणसहायिभूतानां प्रकृतीनां बंधं निरुंधन् स्थितेः ह्रासक्षयौ च कुर्वन् श्रुतज्ञानोपयोगवान्निवृत्तार्थव्यंजनयोगसंक्रांतिरविचलमनाः क्षीणकषायो वैडूर्यमणिनिरुपलेपो ध्यात्वा पुनर्न वर्त्तते इत्युक्तमेकत्ववितर्कम् । एवमेकत्ववितर्कशुक्लध्यानवैश्वानरनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनः प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमंडलः मेघपंजरनिरोधनिर्गत इव घर्मरश्मिर्भास्यमानो भगवाँस्तीर्थंकर इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽर्चनीयश्चायुःपूर्वकोटिं देशोनां विहरति ।**

अर्थ—याही विधिकरि मूलसहित मोहनीयकूं भस्म करवाको इच्छुक अनंतगुणा विशुद्ध योगविशेषकूं आश्रयकरि ज्ञानावरणीकी सहायीभूत बहुत प्रकृतिनिका बंधकूं रोकतो अर तिनकी स्थितिकूं घटावतो अथवा क्षय करतो श्रुतज्ञानका उपयोगको धारक अर निवृत भई है अर्थ व्यंजन योगनिकी पलटिन जाकै अर अविचल है मन जाको ऐसा क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्ती साधु वैडूर्यमणिसमान अन्यक्षेपरहित एकत्ववितर्कअवीचार

ध्यानकूं ध्यायकरि बहुरि पाछो नहीं पलटै है। ऐसैं एकत्ववितर्क अवीचारनामा दूसरो शुक्लध्यान कह्यो। या प्रकार एकत्ववितर्क-अवीचारनामा ध्यानकरि भस्म किया है घतियाकर्मरूप इंधन जानैं अर अतिशयकरि प्रकाशमान भयो है केवलज्ञानरूप किरणनिको मंडल जाकै ऐसो मेघपंजरके निरोधतैं निकस्या अतिशयकरि कांतिमान सूर्यकै समान भगवान तीर्थंकरदेव अथवा सामान्य-केवली जो है सो इन्द्र नरेन्द्र चमरेद्रनिकै प्राप्त होबाकै योग्य पूजनकै योग्य हुवा संता उत्कर्षपणाकरि अन्तमुहूर्तकरि अधिक आठ वर्ष घाटि कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण विहार करै है ॥ २ ॥

अब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामा तीसरा शुक्लध्यानको स्वरूप कहै है;—

धारा—**स यदांऽतर्मुहूर्त्तशेषायुष्कः ततोऽधिकस्थितिविशेषकर्मत्रयो भवति योगी तदात्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्टकरणस्य महासंवरस्य लघुकर्मपरिपाचनस्य शेषकर्मरेणुपरिसातनशक्तिस्वाभाव्याद्दंडकपाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसर्पणतः चतुर्भिः समयैः कृत्वा पुनरपि तावद्भिरेव समयैः समुपहृतप्रदेशविसरणः समीकृतस्थितिविशेषकर्मचतुष्टयः पूर्वशरीरपरिमाणो त्वाभ् सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानं ध्यायति।**

अर्थ—सो केवली भगवान जा समय अंतर्मुहूर्त्त अवशेष आयुके धारक होय अर वेदनी नाम गोत्र इनि तीन कर्मनिकी स्थिति

भी आयुकर्मकै ही समान होय तदितौ ता समय सर्व वचन मन योगनै अर बादरकाययोगनै छांडिकरि सूक्ष्मकाययोगको अवलंबन करतो संतो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तृतीय शुक्लध्यानने प्राप्त होयबेकूं योग्य होय है, बहुरि जा समय अंतर्मुहूर्त्त अवशेष आयुको धारक होय अर आयुकर्मतै अधिक स्थितिविशेषवान नामकर्म गोत्रकर्म वेदनीयकर्म ये तीनूं होय ता समय सयोगकेवली भगवान् सामायिकको सहायी अर महासंवरको विशेषरूप कारण अर शीघ्र ही कर्मको पचावनवारो ऐसो आत्माको उपयोगको अतिशय जो है ताकै बाकीके कर्मरूप रेणुका दूरि करनेकी शक्तिस्वभावरूप निजात्मप्रदेशनिका फैलावतै च्यार समयनिकरि दंड कपाट प्रतर लोकपूरण जे है तिनने करि बहुरि च्यार ही समयनिकरि संकोचरूप कियो है प्रदेशनिको फैलाव जिननै अर समान करी है स्थिति विशेष कर्मचतुष्टयकी जानै ऐसो हुवो सतो पूर्वशरीर प्रमाण होयकरि सूक्ष्मकाययोगकरि सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तीसरा शुक्लध्याननैं ध्यावै है ॥ ३ ॥

अब समुच्छिन्नक्रियनामा चतुर्थ शुक्लध्यानने कहै है;—

धारा—**ततस्तदनंतरं समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्ति, ध्यानमारभ्यते-समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगसर्वप्रदेशपरिस्पन्दक्रियाव्यापारात् समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्तीत्युच्यते। तस्मिन् समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्तिनि ध्याने सर्वबंधास्रवनिरोधसर्वशेषकर्मशातनसामर्थ्योपपत्तेरयोगिनः केवलिनः संपूर्णयथाख्यातचारित्रज्ञानदर्शनं सर्वसंसारदुःखजाल-**

परिष्वंगोच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणमुपजायते स पुनरयोगकेवली भगवान् तदा ध्यानानलनिर्दग्धसर्वमलकलंकबंधो निरस्तकिट्टधातुपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मा परिनिर्वाति ।

अर्थ—ता पीछै वा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा ध्यानकै अनंतर समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्तिनामा चतुर्थ शुक्लध्यानकै आरंभ करै है—तहां समस्तपणाकरि दूरि भयो है सासोस्वासको प्रचार जा विषै अर सर्वप्रकार दूरि भया काय वचन मनयोगद्वारकरि सर्व आत्मप्रदेशनिका परिस्पंदरूपक्रियाका व्यापारपणातैं समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्ति ध्यान कहिये है, तिस समुच्छिन्नक्रियानिवर्त्तिनाम ध्यानकै विषै सर्वबंध सर्व आस्रवका निरोधपूर्वक समस्त अवशेष कर्मनिका नाश करनेका सामर्थ्य उत्पन्न होनेतैं अयोग केवली भगवानकै समस्त संसारसंबंधी दुःखजालका संबधको उच्छेद करनेवारो अर साक्षात् मोक्षको कारण ऐसो परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र ज्ञान दर्शन उत्पन्न होय है, बहुरि तासमय अयोगकेवली भगवान ध्यानरूप अग्निकरि भस्म किये है सर्वमलकलंकबंध जानैं अर दूरि भयो है किट्टिका अर अन्य धातुपाषाण जातैं ऐसा जातिमान सुवर्णसमान प्राप्त भयो है आत्मा जाकै ऐसे भये संते निर्वाणनै प्राप्त होय है ।

यो बाह्य अभ्यंतररूप द्विविधतप जो है सो नवीनकर्मका निरोधकपणातैं संवरनै कारण है अर प्राक्तन कर्मरजका दूरि करबापणातैं निर्जरानै भी कारण है ।

इहां प्रश्न करै कि परीषहके जीतनेतैं अर तपके करनेत-

कर्मनिकी निर्जरा होय है तहां ये नहीं जानिये है कि सर्व सम्यग्दृष्टीनिकै निर्जरा समान होय है कि कछू विशेष है ।

याका उत्तररूप सूत्र—

सूत्र—सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी कहिये सप्त तत्त्व नव पदार्थनैं आदि लेय देव गुरु धर्मके श्रद्धानी चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती अविरतसम्यग्दृष्टी, अर श्रावक कहिये पंचम गुणस्थानवर्त्ती पंच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यार शिक्षाव्रतके धारक [1]दशभेदरूप अणुव्रती श्रावक, अर विरत कहिये षष्ठ गुणस्थानवर्त्ती महाव्रती मुनि, अर अनंतवियोजक कहिये अनंतानुबंधी पूर्वसंचित कर्म जे हैं तिननैं प्रत्याख्यानरूप तथा संज्वलनरूप विसंयोजन करनैवारा कि परिणमावनेवारा, अर दर्शनमोहक्षपक कहिये सम्यग्दर्शनकूं रोकनेवारी दर्शनमोहनीय प्रकृति जे हैं तिनकूं क्षपण करनेवारा, अर उपशमक कहिये चारित्रकूं रोकनेवारी चारित्रमोहनीय प्रकृति जे हैं तिनकूं उपशम करनेवारा, अर उपशांतमोह कहिये उपशांतकषायनामा ग्यारमा गुणस्थानी समस्त मोहनीयकूं उपशांत करनेवारा, अर क्षपक कहिये अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपरायनामा आठमा नवमा दशमा इनि तीन गुणस्थानवर्त्ती क्षपकश्रेणीवारा, अर 'जिनाः' कहिये तेरमा गुणस्थानवर्त्ती केवली जिन स्वस्थानमैं प्रवर्त्तनेवारा,

---

१—'दशभेदरूप' के स्थानमें 'एकादशभेदरूप' ऐसा पाठ होना चाहिये ।

अर तैसै ही केवलीजिन समुद्घात करनेवारा ऐसैं एकादशभेदरूप जीवकै अनुक्रमतैं असंख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा जाननीं ।

भावार्थ—ध्यानकर्त्ता सम्यग्दृष्टीतैं अणुव्रतीकै असंख्यात-गुणी निर्जरा होय है, अर अणुव्रतीतैं महाव्रतीकै असंख्यातगुणी निर्जरा होय है, तैसै ही महाव्रतीतैं अनंतानुबंधीका विसंयोजककै, अर विसंयोजकतैं दर्शनमोहके क्षपककै, अर क्षपकतैं चारित्रमोहके उपशमककै, अर उपशमकतैं उपशांतमोहकै, अर उपशांतमोहतैं क्षपकश्रेणी चढ़ताकै, अर क्षपकश्रेणीवारेतैं क्षीणमोहकै, अर क्षीणमोहतैं स्वस्थानगत जिनकै, अर स्वस्थानगत जिनतै समुद्घात करता जिनकै असंख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा जाननी ॥ ४५ ॥

तथा ध्यानका स्वरूप स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी चूलिका-मैं गाथा,—

अंतोमुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्हि माणसं णाणं ।
झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं॥४७४॥
अन्तर्मुहूर्त्तमात्रं लीनं वस्तुनि मानसं ज्ञानं ।
ध्यानं भण्यते समये अशुभं च शुभं च तत् द्विविधं ॥

अर्थ—एकवस्तुविषैं अन्तर्मुहूर्त्तमात्र मनसंबंधी ज्ञानका लीन होना जो है सो जिनागमके विषैं सामान्यपणैं ध्यान कहिये है, सो ध्यान शुभ अशुभ भेदकरि दोय प्रकार है ॥

असुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि ।
अट्टं तिव्वकसायं तिव्वत्तमकसायदो रुद्दं ॥४७५॥
मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं ।

अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि तं होदि ॥४७६॥
अशुभमार्त्तं रौद्रं धर्म्यं शुक्लं च सुखकरं भवति।
आर्त्तं तीव्रकषायं तीव्रतमकषायतः रौद्रम् ॥४७५॥
मंदकषायं धर्म्यं मंदतमकषायतः भवेच्छुक्लम्।
अकषायेऽपि श्रुताढये केवलज्ञानेऽपि तत् भवति॥

युग्मम्।

अर्थ—आर्त्तध्यान अर रौद्रध्यान ये दोय ध्यान तौ अशुभ हैं अर धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ये दोऊ सुखके कर्त्ता शुभध्यान हैं, तीव्रकषायरूप आर्तध्यान है अर अति तीव्र कषायतैं रौद्रध्यान होय है॥ ४७५॥

मंदकषायरूप धर्मध्यान है बहुरि अतिमंद कषायतैं शुक्लध्यान होय हैं, बहुरि पूर्वके वेत्ता महामुनि उपशांतकषाय क्षीणकषाय अकषायनिकैहू शुक्लध्यान होय है अर सयोगकेवली अयोगकेवलीकै हू शुक्लध्यान होय है॥

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इति विचिंतितो।
चेट्ठदि जो विक्खित्तो अट्टज्झाणं हवे तस्स ॥४७७॥
दुःखकरविषययोगे केन इदं त्यज्यते इति विचिंतयन्।
चेष्टते यः विक्षिप्तः आर्तध्यानं भवेत् तस्य ॥४७७॥

अर्थ—दुःखका कर्त्ता विषय जे हैं तिनका संयोगनैं होता संतां जो या प्रकार चिंतवन करै कि "यो अनिष्टसंयोग कौन उपायकरि छूटै" ऐसैं विक्षिप्त हुवो संतो चेष्टा करै ताकै अनिष्टसंयोगनामा आर्तध्यान होय है ॥४७७॥

मणहरविसयवियोगे कह ते पावेमि इदि वियप्पो जो।
संतावेण पयट्टो सो वि य अट्टं हवे झाणं ॥४७८॥
मनोहरविषयवियोगे कथं तान् प्राप्नोमि इति विकल्पः यः।
संतापेन प्रवृत्तः तत् एव च आर्त्तं भवेत् ध्यानम् ॥

अर्थ—मनोहर विषयका वियोगनै होता संता जो या प्रकार विकल्प करै कि "तिन मनोहर विषयनिनैं कैस प्राप्त हूं" ऐसैं संतापकरि प्रवर्त्तै सो ही इष्टवियोगनामा आर्त्तध्यान होय है ॥ ४७८ ॥

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं झाणं हवे तस्स ॥ ४७९ ॥
हिंसानंदेन युतः असत्यवचनेन परिणतः यस्तु।
तत्रैव अस्थिरचित्तः रौद्रं ध्यानं भवेत् तस्य ॥४७९॥

अर्थ—जो हिंसानदकरि संयुक्त होय ताकै अर असत्यवचनकरि परिणमै ताकै अर वाही हिंसानंदमैं तथा असत्यवचनमैं ही उद्वेगवान अस्थिरचित्त रहै ताकै हिंसानंदनामा अर मृषानंदनामा रौद्रध्यान होय है ॥

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो।
तग्गयचिंताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥ ४८० ॥
परविषयहरणशीलः स्वकीयविषयेषु रक्षणे दक्षः।
तद्गतचिंताविष्टः निरंतरं तदपि रौद्रमपि ॥ ४८० ॥

अर्थ—अर पराये विषयनिकूं हरणेका है स्वभाव जाका अर अपने विषयनिकै विषै भलैप्रकार रक्षा करणेकू चतुर अर निरतर याही विषै है चित्तको आसक्तता जाको ऐसा पुरुषकै ही

स्तेयानंदनामा अर स्वविषयरक्षणानंदनामा रौद्रध्यान होय है ॥४८०॥

विण्णि वि असुहे झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणह ॥ ४८१ ॥
द्वे अपि अशुभे ध्याने पापनिधाने च दुःखसंताने।
ज्ञात्वा दूरे वर्जयत धर्मे पुनः आदरं कुरुत ॥४८१॥

अर्थ—पूर्वोक्त आर्त्तध्यान अर रौद्रध्यान दोऊ ही अशुभरूप पापका निधान दुःखका संतान जाणि दूरितैं ही वर्जो अर धर्मध्यानकै विषै आदर करो ॥ ४९१ ॥

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥४८२॥
धर्मः वस्तुस्वभावः क्षमादिभावश्च दशविधः धर्मः।
रत्नत्रयं च धर्मः जीवानां रक्षणं धर्मः ॥ ४८२ ॥

अर्थ—वस्तुका स्वभाव है सो धर्म है अर दशप्रकार क्षमादिभाव है सो धर्म है अर रत्नत्रय है सो धर्म है अर जीवनिकी रक्षा है सो धर्म है ॥

धम्मे एयग्गमणो जो ण वेदेइ इंदियं विसयं।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥४८३॥
धर्मे एकाग्रमनाः यः न वेदयति इंद्रियं विषयम्।
वैराग्यमयः ज्ञानी धर्मध्यानं भवेत्तस्य ॥ ४८३ ॥

अर्थ—जो ज्ञानी पूर्वोक्त धर्मकै विषै एकाग्रमन हुवो संतो तथा वैराग्यमय हुवो संतो इन्द्रियनिनैं तथा इन्द्रियनिके विषयनिनं नहीं अनुभव करै ताकै धर्मध्यान होय है ॥

सुविसुद्धरायदोसो बाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो।

एयग्गमणो संतो जं चिंतइ तं पि सुहझाणं ॥४८४॥
सुविशुद्धरागद्वेषः बाह्यसंकल्पवर्जितः धीरः।
एकाग्रमनाः सन् यच्चिंतयति तदपि शुभध्यानम् ॥

अर्थ—भलैप्रकार विशेषपणैं शुद्ध भयो है रागद्वेष जाकै अर बाह्यसंकल्पकरि वर्जित अर धीर ऐसो पुरुष एकाग्रमन हुवो संतो जो चितवन करै सो ही शुभध्यान है ॥ ४८४ ॥

ससरूवसमुब्भासो णट्ठममत्तो जिदिंदिओ संतो।
अप्पाणं चिंतंतो सुहझाणरओ हवे साहू ॥४८५॥
स्वस्वरूपसमुद्भासः नष्टममत्वः जितेंद्रियः सन्।
आत्मानं चिंतयन् शुभध्यानरतः भवेत्साधुः ॥४८५॥

अर्थ—निजस्वरूपको है प्रकाश जाकै अर नष्ट भयो है ममत्व जाकै (इहां नष्टशब्दतैं उपशम भयो ही जाननूं) अर जीती है इन्द्रियां जानैं ऐसो हुवो संतो साधु आत्मानैं चिंतवन करत संतो शुभध्यानरत होय है। इहां 'नष्टममत्व' शब्दका भावार्थ उपशमभया ममत्व ही कहना क्योंकि शुभध्यानरत कह्या है तातैं, अर नष्टममत्व ही भावार्थ होता तौ शुक्लध्यान कहता ॥ ४८५ ॥

वज्जियसयलवियप्पो अप्पसरूवे मणं णिरुंभित्ता।
जं चिंतदि साणंदं तं धम्मं उत्तमं झाणं ॥४८६॥
वर्जितसकलविकल्पः आत्मस्वरूपे मनः निरुध्य।
यत् चिंतयति सानंदं तत् धर्म्यं उत्तमं ध्यानम् ॥

अर्थ—दूरि भये हैं समस्त विकल्प जाके ऐसो हुवो संतो आत्मस्वरूपकै विषै मननैं रोकि आनंदसहित जो चितवन करै सो उत्तम धर्मध्यान है ॥ ४८६ ॥

जत्थगुणा सुविसुद्धा उवसमखवणं च जत्थ कम्माणं।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे झाणं ॥४८७॥
यत्र गुणाः सुविशुद्धाः उपशमक्षपणे च यत्र कर्मणाम्
लेश्याऽपि यत्र शुक्ला तत् शुक्लं भण्यते ध्यानम् ॥

अर्थ—जहां सुन्दर विशेषपणै शुद्ध गुण है अर जहां कर्मनिको उपशम है तथा क्षय है अर जहां लेश्या भी शुक्ल है सो ध्यान शुक्ल कहिये है ॥ ४८७ ॥

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए।
पढमं सुक्कं झायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥४८८॥
प्रतिसमयंशुद्ध्यन् अनंतगुणितया उभयशुद्ध्या।
प्रथमं शुक्लं ध्यायति आरूढः उभयश्रेणीषु ॥४८८॥

अर्थ—समय समय प्रति अनंतगुणा शुद्ध होता संता दोऊ श्रेणीके विषै आरूढ अतरंग बाह्यशुद्धिकरि शुक्लध्यानकै ध्यावै है ॥४८८॥

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले।
ससरूवम्हि णिलीणो सुक्कं झायेदि एयत्तं ॥४८९॥
निःशेषमोहविलये क्षीणकषायश्च अंतिमे काले।
स्वस्वरूपे निलीनः शुक्लं ध्यायति एकत्वम् ॥

अर्थ—निःशेष मोहनै विलीन होत संते क्षीणकषाय गुणस्थानी जो है सो अंतका समयकै विषै निजस्वरूपमें लीन होतसंत एकत्ववितर्का शुक्लध्यानकू ध्यावै है ॥

केवलणाणसहावो सुहुमे जोगम्हि संठिओ काए।
जं झायदि सजोगिजिणो तं तदियं सुहुमकिरियं च ४९०

केवलज्ञानस्वभावः सूक्ष्मे योगे संस्थितः काये।
यत् ध्यायति सयोगिजिनः तत् तृतीयं सूक्ष्मक्रियं च॥

अर्थ—केवलज्ञानस्वभाव सयोगी जिन जो है सो सूक्ष्मकाययोगकै विषै भलैप्रकार तिष्ठतो सतो जो ध्यान करै है सो सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामा तृतीय शुकलध्यान है॥ ४९० ॥

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं।
जं झायदि अजोगिजिणो णिक्किरियं तं चउत्थं च॥
योगविनाशं कृत्वा कर्मचतुष्कस्य क्षपणकरणार्थम्।
यत् ध्यायति अयोगिजिनः निष्क्रियं तत चतुर्थं च॥

अर्थ—जो योगी योगका विनाशकरि अयोगीजिन हुवो सतो कर्मचतुष्टयका क्षिपावाका अर्थि ध्यावै है सो निष्क्रियनामा चतुर्थ शुक्लध्यान है॥ ४९१ ॥

एसो बारसभेओ उग्गतवो जो चरेदि उवजुत्तो।
सो खविय कम्मपुंजं मुत्तिसुहं उत्तमं लहइ॥४९२॥
एतत् द्वादशभेदं उग्रतपः यः चरति उपयुक्तः।
सः क्षपित्वा कर्मपुंजं मुक्तिसुखं उत्तमं लभते॥४९२॥

अर्थ—जो पुरुष उपयुक्त हुवो संतो यो पूर्वोक्त द्वादशभेदरूप उग्रतप जो है ताहि आचरण करै है सो पुरुष कर्मसमूहनै क्षपाय उत्तम मुक्तिसुखनै प्राप्त होय है॥ ४९२ ॥

या प्रकार द्वादशभेदरूप तपका संक्षेप स्वरूप दिखाया है ताहि समझि विशेष जानवाकी इच्छा होय तौ अन्यग्रथनितैं देखि यथाशक्ति धारण करियो॥

अब दानका स्वरूप भी संक्षेपमात्र आगमतैं कहिये है, सो आदिपुराणका अड़तीसमा पर्वमैं श्लोक;—

चतुर्द्धा वर्णिता दत्तिर्दयापात्रसमान्वये ॥ ३५ ॥

अर्थ—दत्ति कहिये दान देवो च्यार प्रकार है, सो ऐसैं एक तौ दयादत्ति१ दूसरां पात्रदत्ति२ तीसरा समदत्ति३ चौथी अन्वयदत्ति ॥३५॥

प्रश्न—इनके भिन्न भिन्न लक्षण कहौ।

उत्तर—दयादत्तिलक्षण—

सानुकंपमनुग्राह्ये प्राणिवृंदेऽभयप्रदा।
त्रिशुद्ध्यनुगता सेयं दयादत्तिर्मता बुधैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनुग्रह करनेयोग्य प्राणीनिका समूहकै विषैं अभयकी दाता अनुकंपासहित जैसैं होय तैसैं मन वचन कायकी शुद्धतानैं प्राप्त भई सो या दयादत्ति ज्ञानवाननिनैं कही है॥

भावार्थ—दुःखित भुखित जीवनिनैं दयाकरि दीजिये सो दयादत्ति है॥ ३६॥ पात्रदत्तिलक्षण।

महातपोधनायार्चाप्रतिग्रहपुरःसरम्।
प्रदानमशनादीनां पात्रदानं तदिष्यते ॥ ३७ ॥

अर्थ—महान तपोधन जे हैं तिनकै अर्थि पूजनप्रतिग्रहपूर्वक आहार आदिका देना है सो पात्रदान इष्ट करिये है ॥ ३७ ॥

समदत्तिलक्षण।

समानायाऽऽत्मनाऽन्यस्मै क्रियामंत्रव्रतादिभिः।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥३८॥
समानदत्तिरेषा स्यात्पात्रे मध्यमतामिते।
समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्त्या श्रद्धयाऽन्विता ।३९।युग्मं।

अर्थ—या प्रकरणकै विषैं क्रियाकरि मंत्रकरि व्रतादिककरि अपने समान अन्य निस्तारक उत्तम जो है ताकै अर्थि पृथ्वी सुवर्ण आदिका देना

है सो समानदत्ति है, अर या समानदत्ति है सो मध्यमपणानै प्राप्तभया पात्रकै विषै श्रद्धानसंयुक्त प्रवृत्तिकरि समान प्रतिपत्तिकै अर्थिही है ॥

भावार्थ— मध्यमपात्र सम्यग्दृष्टि व्रती है सोही सम्यग्दृष्टी व्रती-कै समान है ताकै अर्थि समानताकी प्राप्तिकै निमित्त पृथ्वी सुवर्ण वस्त्र वाहन धन धान्य आदिका श्रद्धाभक्तिसंयुक्त प्रवृत्तिकरि देनाहै सो समानदत्ति है ॥३८-३९॥ अन्वयदत्तिलक्षण ।

आत्मान्वयप्रतिष्ठार्थं सूनवे यदशेषतः ।
समं समयवित्ताभ्यां स्ववर्गस्यातिसर्जनम् ॥४०॥

अर्थ—जो अपना वंशकी प्रतिष्ठाकै अर्थि समीचीन धर्म अर धनकरि सहित समस्तपणातैं पुत्रकै अर्थि अपना परिवारको समर्पण है सो या सकलदत्ति है ॥४०॥

भावार्थ—अपने पदतैं उत्तमपदनै धारण करै तब अपना सर्वस्व अर समस्त परिवारका रक्षण पुत्रकै अर्थि समर्पणकरि आप अपना आत्माको कल्याण करै सो सकलदत्ति कहिये है ॥४०॥

प्रश्न—दानका लक्षण कह्या सो तौ श्रद्धान किया अब कुदान-का भी नाम कहो ।

उत्तर—प्रश्नोत्तरश्रावकाचारका वीसमा पर्वमै—

गोकन्याहेमहस्त्यश्वगेहक्ष्मातिलस्यन्दनाः ।
दासी चेति कुदानानि प्रणीतानि शठैर्भुवि ॥

अर्थ—संसारसमुद्रमै निज परके डबोवनेवाले अर कुज्ञानके अंशकरि उद्धत ऐसे शठ जे है तिनन अपने विषय कषाय पोषनेनि-मित्त पृथ्वीकै विषै गौ १ कन्या २ सुवर्ण ३ हस्ती ४ अश्व ५ गृह ६ पृथ्वी ७ तिल ८ रथ ९ दासी १० ए दश दान भोले जीवनिकूं उप-देश किये है सो ये दान कुदान हैं क्योंकि ये आरंभ हिंसा कषायके बधावनहारे है, तातैं जिनमतमै इनिका निषेध है ॥१॥

तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकाका दानपंचाशताधिकारमें;—

चत्वारि यान्यभयभेषजभुक्तिशास्त्र-
दानानि तानि कथितानि महाफलानि।
नान्यानि गोकनकभूमिरथांगनादि-
दानानि निश्चितमवद्यकराणि यस्मात् ॥३८॥

अर्थ--जे अभय, औषधि, आहार, शास्त्र ये च्यार दान कहे हैं ते तौ स्वर्गादिक महाफलके कारण है अर इनितैं अन्य गौ सुवर्ण भूमि रथ स्त्री आदि दान जे हैं ते निश्चयतैं पापके कारण हैं, याहीतैं दान नहीं हैं, कुदान हैं ॥३८॥

यद्दीयते जिनगृहाय धरादि किंचि-
त्तत्तत्र संस्कृतिनिमित्तमिह प्ररूढम्।
आस्ते ततस्तदतिदीर्घतरं हि कालं
जैनं च शासनमतः कृतमस्ति दातुः ॥३९॥

अर्थ--जो जिनमंदिर बनावनें निमित्त किंचित् पृथ्वी अर धन दीजिये है अथवा प्राचीन जीर्णमंदिरनिके संस्कारनिमित्त धन दीजिये है तातैं तहां सो जिनमंदिर अति दीर्घतरकाल तिष्ठै है यातैं दातानैं अतिदीर्घतर काल जिनशासन प्ररूढ कियां क्योंकि धर्म है सो आयतनकै आधार है यातै ॥ चौपई।

द्वादशविध तप कहे सुजान, कहे चतुर्विध दान प्रधान।
करहु भव्य निज करन कल्यान, लिखे जिनागमकै परमान

इति श्रीमज्जिनवचनप्रकाशकश्रावकसंगृहीत विद्वज्जनबोधके प्रथमकाण्डे द्वादशतपःस्वरूप तथा चतुर्विधदानस्वरूपनिर्णयो नाम द्वादश उल्लासः ॥
